Downloaded from https:// www.studiestoday.com

राजनीति विज्ञान

कक्षा–12

माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान,
अजमेर

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

राजनीति विज्ञान

कक्षा–12

संयोजक

डॉ. भँवर सिंह राठौड़
सह आचार्य, राजनीति विज्ञान
राजकीय महाविद्यालय, जोधपुर

लेखकगण

बालूदान बारहठ
सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान
मोहनलाल सुखाडिया विश्वविद्यालय, उदयपुर

सरोज कुमार
सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान
राजकीय महाविद्यालय, गोगुन्दा (उदयपुर)

डॉ. बंशीलाल जाखड़
प्रधानाचार्य
राजकीय उ.मा. विद्यालय, ओसियाँ (जोधपुर)

सोहन लाल शर्मा
व्याख्याता, राजनीति विज्ञान
राजकीय चौपड़ा उ.मा. विद्यालय,
गंगाशहर (बीकानेर)

उमेश चन्द शर्मा
व्याख्याता, राजनीति विज्ञान
राजकीय उ.मा. विद्यालय, कुन्हाड़ी (कोटा)

महावीर प्रसाद शर्मा
सेवानिवृत, प्रधानाचार्य
खाटू श्यामजी (सीकर)

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

राजनीति विज्ञान

कक्षा—12

पाठ्यक्रम समिति

डॉ. इनाक्षी चतुर्वेदी
संयोजक
एसो. प्रोफेसर राजनीति विज्ञान विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

श्री नरेन्द्र कुमार शर्मा
व्याख्याता,
राजकीय संस्कृत शिक्षण प्रशिक्षण विद्यालय,
महापुरा, जयपुर

श्री जगदीश सिंह खोसा
व्याख्याता,
राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय,
हरिजन बस्ती, श्रीगंगानगर

श्री उमेश कुमार शर्मा
व्याख्याता,
राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय,
आवासन मण्डल, कुन्हाडी (कोटा)

डॉ. कर्मवीर सिंह
प्रवक्ता,
बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय,
अलवर

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

प्राक्कथन

दो खण्डों में विभाजित यह पुस्तक माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, अजमेर की कक्षा 12 के राजनीति विज्ञान के नवीन पाठ्यक्रम के अनुरूप लिखी गई है। इस पुस्तक में राजनीति विज्ञान विषय के विभिन्न सिद्धान्तों व विचारों को शामिल किया गया है। सम्बन्धित विद्यार्थियों को राजनीति के व्यावहारिक पहलुओं को पूर्णरूपेण समझने हेतु विषय के विभिन्न सिद्धान्तों का पर्याप्त ज्ञान होना आवश्यक है। प्रस्तुत पुस्तक की रचना इसी पृष्ठभूमि में की गई है। यह पुस्तक का संशोधित नवीन संस्करण है जिसमें मौलिक त्रुटियों को दूर करने का प्रयास किया गया है।

राजनीति विज्ञान का विषय क्षेत्र अत्यन्त व्यापक एवं परिवर्तनशील है। वर्तमान विश्व की जटिल राजनीति की पर्याप्त समझ विद्यार्थियों में विकसित हो सके, इसी उद्देश्य से इस पुस्तक को लिखा गया है। पुस्तक के प्रथम खण्ड 'अ' में प्रचलित अवधारणाओं का वर्तमान वैश्विक परिदृश्य के संदर्भ में विश्लेषण किया गया है। पुस्तक में 'धर्म' जैसे शाश्वत प्रत्यय के अतिरिक्त वैश्वीकरण और आतंकवाद के नवीन स्वरूप को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

पुस्तक में लिखी गई समस्त सामग्री तथ्यपरक और नवीनतम जानकारी पर आधारित है। विद्यार्थियों हेतु सहज बनाने के लिए पुस्तक को निर्धारित पाठ्यक्रमानुसार इकाइयों व अध्यायों में वर्गीकृत किया गया है। पुस्तक अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों के लिए उपयोगी बनाने के लिए इकाइयों, शीर्षकों व उपशीर्षकों का अंग्रेजी रूपान्तरण भी किया गया है।

पुस्तक में अनेक विचारकों व विद्वानों के मौलिक कथन एवं विश्लेषण को शामिल किया गया है। लेखकगण उन सभी विद्वानों, लेखकों, प्रकाशकों और विचारकों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हैं, जिनके विचारों व उद्धरणों को इस पुस्तक में सम्मिलित किया गया है। पुस्तक को विद्यार्थियों के लिए सहज एवं सुबोध बनाने के लिए यथासंभव सभी प्रयास किए गए हैं। पुस्तक प्रस्तुतीकरण में जिन महानुभावों का प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से योगदान रहा, उन सभी के प्रति भी लेखकगण आभारी है। लेखकगण, माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान, अजमेर के प्रति विशेष रूप से आभार व्यक्त करते हैं जिसने उन्हें पुस्तक लिखने का अवसर प्रदान किया।

डॉ. भंवर सिंह राठौड़

संयोजक

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

राजनीति विज्ञान (POLITICAL SCIENCE)
राजनीति विज्ञान की मूल अवधारणाएँ
खण्ड (अ)

प्रमुख अवधारणाएँ– **10 अंक**

1. न्याय
2. शक्ति, सत्ता, वैधता
3. धर्म
4. स्वतंत्रता एवं समानता

आधुनिक राजनीतिक अवधारणाएँ– **10 अंक**

1. राजनीतिक समाजीकरण
2. राजनीतिक संस्कृति
3. राजनीतिक सहभागिता

राजनीतिक विचारधाराएँ– **10 अंक**

1. उदारवाद
2. समाजवाद
3. मार्क्सवाद
4. गाँधीवाद

भारतीय राजनीति के उभरते आयाम – **10 अंक**

1. नियोजन और विकास, नीति (NITI) आयोग
2. पर्यावरण और प्राकृतिक संसाधन
3. भारत और वैश्वीकरण
4. नवीन सामाजिक आन्दोलन– महिला आन्दोलन, पर्यावरण संरक्षण आन्दोलन
5. सामाजिक और आर्थिक न्याय एवं महिला आरक्षण

भारत में शासन व लोकतंत्र
खण्ड (ब)

भारत का संविधान – **10 अंक**

1. भारत के संविधान की विशेषताएँ – प्रस्तावना
2. मूल अधिकार, नीति निर्देशक तत्व एवं मूल कर्त्तव्य
3. भारत की संघीय व्यवस्था के आधारभूत तत्व

भारत में शासन – **10 अंक**

1. संसद, लोकसभा एवं राज्यसभा
2. संघीय कार्यपालिका, राष्ट्रपति निर्वाचन एवं शक्तियाँ, प्रधानमंत्री, स्थिति, कार्य
3. न्यायपालिका – सर्वोच्च न्यायालय का गठन, कार्य एवं न्यायिक पुनरावलोकन
4. राज्य स्तरीय एवं स्थानीय शासन, 73वें एवं 74वें संविधान संशोधन के सन्दर्भ में वर्तमान स्वरुप

भारतीय लोकतंत्र के समक्ष चुनौतियाँ– **08 अंक**

1. जातिवाद एवं साम्प्रदायिकता
2. क्षेत्रवाद एवं भाषावाद
3. आतंकवाद, राजनीति का अपराधीकरण, भ्रष्टाचार
4. गठबंधन की राजनीति

भारत की विदेश नीति व संयुक्त राष्ट्र संघ – **12 अंक**

1. भारत की राजनीति की प्रमुख विशेषताएँ, गुट निरपेक्षता
2. संयुक्त राष्ट्र संघ संगठन एवं विश्व शांति स्थापना में योगदान
3. भारत के पड़ौसी देशों से संबंध – पाकिस्तान, चीन व नेपाल
4. क्षेत्रीय संगठन – आसियान, सार्क

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अनुक्रम

खण्ड (अ)
राजनीति विज्ञान की मूल अवधारणाएँ

इकाई—I

	प्रमुख अवधारणाएँ	**02—21**
1.	न्याय	02
2.	शक्ति, सत्ता और वैधता	07
3.	धर्म	12
4.	स्वतंत्रता एवं समानता	17

इकाई—II

	आधुनिक राजनीतिक अवधारणाएँ	**22—34**
1.	राजनीतिक समाजीकरण	22
2.	राजनीतिक संस्कृति	25
3.	राजनीतिक सहभागिता	29

इकाई—III

	राजनीतिक विचारधाराएँ	**35—59**
1.	उदारवाद	35
2.	समाजवाद	39
3.	मार्क्सवाद	44
4.	गाँधीवाद	51

इकाई—IV

	भारतीय राजनीति के उभरते आयाम	**59—87**
1.	नियोजन एवं विकास नीति आयोग	59
2.	पर्यावरण और प्राकृतिक संसाधन	63
3.	भारत और वैश्वीकरण	70
4.	नवीन सामाजिक आन्दोलन	78
5.	सामाजिक और आर्थिक न्याय एवं महिला आरक्षण	80

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

खण्ड (ब)
भारत में शासन एवं लोकतंत्र

इकाई–I

भारत का संविधान **88–108**

1. भारत के संविधान की विशेषताएँ 88
2. मूल अधिकार, नीति निर्देशक तत्व एवं मूल कर्तव्य 94
3. भारत की संघीय व्यवस्था के आधारभूत तत्व 105

इकाई–II

भारत में शासन **109–136**

1. संसद, लोकसभा एवं राज्यसभा 109
2. संघीय कार्यपालिका, राष्ट्रपति निर्वाचन एवं शक्तियाँ, प्रधानमंत्री, स्थिति, कार्य 116
3. न्यायपालिका – सर्वोच्च न्यायालय का गठन, कार्य एवं न्यायिक पुनरावलोकन 124
4. राज्य स्तरीय एवं स्थानीय शासन 73वें एवं 74वें संविधान संशोधन के सन्दर्भ में वर्तमान स्वरूप 130

इकाई–III

भारतीय लोकतंत्र के समक्ष चुनौतियाँ **137–163**

1. जातिवाद एवं साम्प्रदायिकता 137
2. क्षेत्रवाद एवं भाषावाद 145
3. आतंकवाद, राजनीति का अपराधीकरण व भ्रष्टाचार 149
4. गठबन्धन की राजनीति 158

इकाई–IV

भारत की विदेश नीति एवं संयुक्त राष्ट्र संघ **164–197**

1. भारत की विदेश नीति की प्रमुख विशेषताएँ, गुट निरपेक्षता 164
2. संयुक्त राष्ट्र संगठन एवं विश्व शान्ति स्थापना में योगदान 170
3. भारत के पड़ोसी देशों से सम्बन्ध – पाकिस्तान, चीन और नेपाल 177
4. क्षेत्रीय संगठन – आसियान एवं सार्क 193

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

खण्ड (अ)

राजनीति विज्ञान की मूल अवधारणाएँ

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

इकाई–I
प्रमुख अवधारणाएँ
1. न्याय (Justice)

न्याय की अवधारणा (Concept of Justice)

न्याय की संकल्पना प्राचीन काल से ही राजनीतिक चिंतन का महत्त्वपूर्ण विषय रही है। पश्चिमी परम्परा के अन्तर्गत न्याय के स्वरूप की व्याख्या करने के लिए मुख्यतः ' न्यायपरायण व्यक्ति ' अर्थात् सद्चरित्र मनुष्य के गुणों पर विचार किया जाता था। इसमें उन सद्गुणों की तलाश की जाती थी जो व्यक्ति को न्याय की ओर प्रवृत्त करते हैं। भारतीय परम्परा में भी मनुष्य के ' धर्म ' को प्रमुखता दी गई है। इन दोनों ही मान्यताओं में मनुष्य के कर्त्तव्य पालन पर बल दिया गया है। प्रत्येक मनुष्य द्वारा अपना निर्दिष्ट कार्य करना एवं दूसरे के कार्यों में हस्तक्षेप न करना ही न्याय है। यद्यपि आधुनिक चिंतन में न्याय की परिभाषा में परिवर्तन आया है।

न्याय ' प्रत्यय ' की व्याख्या अलग–अलग विचारकों ने अपने–अपने ढंग से करने का प्रयत्न किया है। पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन में न्याय के अर्थ को स्पष्ट करने का सर्वप्रथम प्रयास यूनानी दार्शनिक एवं राजनीतिक विचारक प्लेटो ने किया था। प्लेटो ने अपने दर्शन में ' न्याय ' प्रत्यय को मनुष्य का आत्मीय गुण माना है। उनके अनुसार यह वह सदगुण है जिससे प्रेरित होकर मनुष्य सबकी भलाई में अपना भला ढूंढता है। प्लेटो से लेकर अब तक सभी चिंतकों ने न्याय को महत्त्वपूर्ण राजनीतिक एवं नैतिक प्रत्यय माना है। एक तरफ न्याय, व्यक्ति का निजी चारित्रिक सद्गुण है, वहीं दूसरी तरफ न्याय राजनीतिक समाज का वांछनीय गुण माना गया है। न्याय, नैतिक, सामाजिक एवं राजनीतिक निर्णयन को प्रभावित करने वाला तत्व है। मध्यकालीन ईसाई विचारकों ऑगस्टाइन व एक्वीनास ने न्याय की अपने ढंग से व्याख्या की है। आधुनिक चिंतन के प्रारम्भिक चरण में हॉब्स, ह्यूम, कार्ल मार्क्स, काण्ट और मिल ने अपने चिंतन में न्याय को प्रमुख स्थान प्रदान किया है। समकालीन विचारकों में जॉन रॉल्स ने न्याय को नवीन स्वरूप में प्रस्तुत किया है।

1.1 प्लेटो का न्याय सम्बन्धी विचार (Plato's Concept of Justice)

प्लेटो का न्याय से तात्पर्य है प्रत्येक व्यक्ति द्वारा अपना निर्दिष्ट कार्य करना और दूसरों के कार्यों में हस्तक्षेप न करना। प्लेटो ने न्याय को एक मौलिक सदगुण (Cardinal) मानते हुए कहा है कि हम सभी अपेक्षित हितों को साधने में सहायक बनें।

प्लेटो अपनी पुस्तक रिपब्लिक में न्याय को समझाने के लिए पुस्तक II, III और IV में काफी रोचक विश्लेषण करता है। वह सबसे पहले सामाजिक व राजनीतिक न्याय की धारणा को व्यक्तिगत न्याय से पृथक् करने की चेष्टा करता है। इबेन्स्टीन ने लिखा है कि '' न्याय के विचार विमर्श में प्लेटो के राजनीतिक दर्शन के सभी तत्व निहित है। ''

"In the discussion of justice all elements of Plato's political philosophy are contained." - **Ebenstein**

प्लेटो न्याय के दो रूप मानता है जिनमें एक व्यक्तिगत और दूसरा सामाजिक या राज्य से सम्बन्धित न्याय। प्लेटो की मान्यता थी कि मानवीय आत्मा में तीन तत्व पाये जाते हैं – बुद्धि, शौर्य और तृष्णा। इन तीनों तत्वों की मात्रा के अनुसार ही वह राज्य और समाज में तीन वर्ग स्थापित करता है। पहला शासक वर्ग, जिसमें बुद्धि का अंश सर्वाधिक पाया जाता है। दूसरा सैनिक वर्ग या रक्षक वर्ग जिसमें शौर्य एवं साहस तत्व की अपेक्षाकृत अधिक मात्रा पायी जाती है। तीसरा उत्पादक या सहायक वर्ग जिसमें इन्द्रिय तृष्णा व इच्छा तत्व की अधिकता पायी जाती है। सभी मनुष्यों में तीनों तत्व न्यूनाधिक मात्रा में पाये जाते हैं। परन्तु जिस तत्व की मात्रा प्रधान रूप से पायी जाती है, वही उसके सद्गुणों को प्रवृत करता है। प्लेटो न्याय को आत्मा का मानवीय सद्गुण मानता है। प्लेटो के अनुसार आत्मा में निहित न्याय का विचार वास्तव में राज्य में निहित न्याय का ही सादृश्य है। जिस प्रकार व्यक्ति की आत्मा में विद्यमान न्याय व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों को परस्पर संतुलित करता है, उसी भाँति राज्य में व्याप्त न्याय, समाज के तीनों वर्गों में सामंजस्य स्थापित करता है। प्रत्येक व्यक्ति को वही कार्य करना चाहिए जिसके लिए वह प्राकृतिक रूप से सर्वाधिक समर्थ व उपयुक्त है। इसी तरह राज्य के तीनों वर्गों को भी अपने–अपने निर्दिष्ट कार्यक्षेत्र की परिधि में ही कार्य करना चाहिए। दूसरों के कार्यों में अनावश्यक हस्तक्षेप को प्लेटो व्यक्ति व राज्य दोनों के लिए अनिष्टकारी मानता है। इन तत्वों की उपस्थिति के अनुपात में ही प्रत्येक व्यक्ति को अपनी योग्यता व क्षमता के अनुरूप आचरण करना चाहिए और दूसरों के कार्य क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। इस प्रवृत्ति को प्लेटो न्याय की संज्ञा देता है। प्लेटो ने अपने न्याय के सिद्धान्त को एक नैतिक सिद्धान्त के रूप में प्रतिपादित किया न कि कानूनी सिद्धान्त के रूप में। उनका न्याय सिद्धान्त कार्य विशेषीकरण के सिद्धान्त पर आधारित है जो प्रत्येक व्यक्ति को समाज के प्रति विशेष योगदान हेतु प्रेरित करता है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

1.2 अरस्तू के न्याय सम्बन्धी विचार (Aristotle's Concept of Justice)

प्लेटो के शिष्य अरस्तू के अनुसार, न्याय का सरोकार मानवीय सम्बन्धों के नियमन से है। अरस्तू का विश्वास था कि लोगों के मन में न्याय के बारे मे एक – जैसी धारणा के कारण ही राज्य अस्तित्व में आता है। इस मानकीय धारणा के रूप में न्याय समग्र सात्विकता को प्रतिबिंबित करता है। प्रयोग–क्षेत्र के आधार पर अरस्तू ने न्याय के दो रूप प्रस्तुत किये –

1. **वितरणात्मक न्याय (Distributive Justice) -**
   अरस्तु वितरणात्मक न्याय के अन्तर्गत शक्ति एवं संरक्षण का वितरण व्यक्ति की योग्यता व योगदान के अनुरूप करने की बात कहता है। वह आनुपातिक समानता का पक्षधर है। समानता की इस अवधारणा के अनुसार लाभ एवं उत्तरदायित्व व्यक्ति की क्षमता व सामर्थ्य के अनुपात में ही होना चाहिए।

2. **सुधारात्मक न्याय (Corrective Justice) -**
   अरस्तु का सुधारात्मक न्याय से तात्पर्य ऐसे न्याय से है जो नागरिकों के अधिकारों की अन्य व्यक्तियों के द्वारा हनन की रोकथाम पर बल देता हो। सुधारात्मक न्याय में राज्य का उत्तरदायित्व है कि वह व्यक्ति के जीवन, सम्पत्ति, सम्मान और स्वतन्त्रता की रक्षा करें। इस प्रकार वितरणात्मक न्याय से प्राप्त मनुष्य के अधिकारों की रक्षा के लिये राज्य द्वारा की गयी व्यवस्था को सुधारात्मक न्याय की संज्ञा देता है।

1.3 मध्यकाल में न्याय सम्बन्धी विचार (The Concept of Justice in Medieval Period)

संत ऑगस्टाइन अपने ' ईश्वरीय राज्य ' के सिद्धान्त को प्रतिपादित करने में न्याय को इसका महत्त्वपूर्ण व अपरिहार्य तत्व माना है। वह अपनी रचना '' द सिटी ऑफ गॉड '' में लिखते हैं कि '' जिन राज्यों में न्याय विद्यमान नहीं हैं, वे केवल चोर उच्चक्कों की खरीद फरोख्त हैं। ''

> "Set justice aside them and what are kingdoms but fair thievish purchases."

ऑगस्टाइन परिवार, लौकिक राज्य और ईश्वरीय राज्य के सन्दर्भ में न्याय की विवेचना करते हैं। व्यक्ति द्वारा ईश्वरीय राज्य के प्रति कर्त्तव्य पालन को ही वह न्याय मानते हैं।

मध्यकाल में ही थॉमस एक्विनास कानून व न्याय को परस्पर सम्बन्धित मानते हुए न्याय की निम्नलिखित परिभाषा व्यक्त करते हैं–

''न्याय एक व्यवस्थित और अनुशासित जीवन व्यतीत करने तथा उन कर्त्तव्यों का पालन करने में निहित हैं, जिनकी व्यवस्था मांग करती है।''

थॉमस एक्विनास समानता को न्याय का मौलिक तत्व मानते हैं।

1.4 आधुनिक काल में न्याय सम्बन्धी धारणा (The Concept of Justice in Modern Period)

आधुनिक युग में डेविड ह्यूम (1711–76) ने यह मत व्यक्त किया कि न्याय का अर्थ नियमों की पालना मात्र है क्योंकि अनुभव से यह सिद्ध हो चुका है कि ये नियम 'सर्व–हित' का आधार है। अतः ' सर्व–हित ' या 'सार्वजनिक उपयोगिता' को न्याय का एकमात्र स्त्रोत होना चाहिए। मनुष्य की प्रकृति, तर्कबुद्धि या अनुबन्ध में इन नियमों का स्त्रोत ढूंढ़ने से कोई लाभ नहीं फिर उपयोगितावाद के प्रवर्त्तक जैरेमी बेंथम ने कहा कि 'प्राकृतिक कानून' सरीखी शब्दावली यथार्थ मूल्यों को धुँधला कर देती है। सार्वजनिक वस्तुओं, सेवाओं, इत्यादि का वितरण 'उपयोगिता' के आधार पर होना चाहिए जिसका सूत्र 'अधिकतम लोगों का अधिकतम सुख' है। जॉन स्टुअर्ट मिल ने न्याय को सामाजिक उपयोगिता का सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व मानते हुए यह तर्क दिया है कि मनुष्य अपने लिए सुरक्षा की कामना करते हैं, इसलिए वे ऐसे नैतिक नियम स्वीकार कर लेते हैं जिनमें दूसरे भी वैसी ही सुरक्षा अनुभव कर सकें। अतः उपयोगिता ही न्याय का मूल मन्त्र है।

वर्तमान में प्राकृतिक कानून या कोरी उपयोगिता पर आधारित न्याय की संकल्पना में विश्वास नहीं किया जाता। वस्तुतः प्राकृतिक कानून के नियमों, प्राकृतिक अधिकारों या सार्वजनिक उपयोगिता के स्वरूप के बारे में कोई सर्वसम्मत मान्यता विकसित नहीं हो पाई है। आज न्याय के सम्बन्ध में केवल ऐसी संकल्पना को स्वीकार कर सकते हैं जिसका निर्माण जीवन के सामाजिक–आर्थिक–राजनीतिक यथार्थ को सामने रखकर किया गया हो।

1.5 जॉन रॉल्स के न्याय सम्बन्धी विचार (The Concept of Justice of John Rawls)

जॉन रॉल्स ने अपनी पुस्तक '' ए थ्योरी ऑफ जस्टिस '' 'A Therory of Justice' में आधुनिक परिप्रेक्ष्य में सामाजिक न्याय का विश्लेषण किया है। रॉल्स न्याय के उस परम्परागत विचार से असन्तुष्ट है जो एक सामाजिक संस्था को न्यायप्रद बनाने को बल देते हैं। वे इस बात से भी असहमत हैं जिसमें परम्परागत न्याय के प्रतिपादक राजनीतिक एवं सामाजिक नीतियों को सही ठहराते हैं। उन्होंने उपयोगितावादियों के 'अधिकतम व्यक्तियों के अधिकतम सुख' पर आधारित न्याय की धारणा को त्रुटिपूर्ण बताते हुए कहा कि यह सिद्धान्त बहुमत की अल्पमत पर तानाशाही स्थापित करता है। रॉल्स संवैधानिक

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

लोकतंत्र में न्याय के दो मौलिक नैतिक सिद्धान्तों की प्रतिस्थापना करते हैं।

(1) अधिकतम स्वतन्त्रता स्वयं स्वतंत्रता की सुरक्षा के लिये आवश्यक है। इस सिद्धान्त के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति को व्यापक स्वतन्त्रता प्राप्त होती है, जो उस जैसे अन्य व्यक्तियों को भी उपलब्ध रहती है।

(2) व्यक्ति व राज्य द्वारा ऐसी सामाजिक व आर्थिक स्थितियाँ स्थापित की जाती हो, जो सबके लिए कल्याणकारी हो।

सबकी प्रगति के लिये वह **' अज्ञानता के पर्दे '** **(Veil of Ignorance)** के सिद्धान्त को स्थापित करते हैं। रॉल्स के अनुसार न्याय के नियमों का निर्माण करने से पूर्व मनुष्य अज्ञानता के पर्दे के पीछे है अर्थात वे अपनी उस मूल स्थिति में आ जाते है, जहां वे योग्यताओं, हितों, क्षमताओं आदि में समान है। इस स्थिति में न्याय की सर्वप्रथम मांग 'सबको समान स्वतंत्रता' तथा 'अवसरों की उचित समता' की होती है अर्थात जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं से जुड़ी वस्तुओं का बिना किसी भेदभाव के समान वितरण हो। इस नियम से विलग तभी हुआ जा सकता है, जब इससे 'हीनतम को अधिकतम' लाभ मिले।

1.6 भारतीय राजनीतिक चिन्तन में न्याय (Justice in Indian Political Thought)

प्राचीन भारतीय राजनीतिक व सामाजिक चिन्तन में विद्यमान धर्म की धारणा एवं प्लेटो के न्याय सिद्धान्त में समानता है। धर्म की प्राचीन भारतीय अवधारणा व्यक्ति को समाज में उसके नियत स्थान एवं निर्दिष्ट कर्त्तव्यों का अभिज्ञान कराती है। यह अवधारणा तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में सामंजस्य स्थापित करने का मूल मंत्र है। 'स्वधर्म' का भाव व्यक्ति को उसके कर्त्तव्यों का बोध कराता है। व्यक्ति के अधिकारों व विशेष अधिकारों की उत्पति 'स्वधर्म' की पालना में निहित है। मनु, कौटिल्य, वृहस्पति, शुक्र, भारद्वाज, विदुर व सोमदेव ने राज्य व्यवस्था में न्याय को महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया हैं। जहाँ प्लेटो की न्याय की अवधारणा मूलतः राजनीतिक व सामाजिक थी वहीं भारतीय चिन्तन में न्याय के कानूनी रूप को स्वीकार कर लिया गया है। मनु व कौटिल्य दोनों ने ही न्याय की निष्पक्षता को राज्य व्यवस्था की आधारभूत प्रवृत्ति माना।

1.7 न्याय के विविध रूप (Different Types of Justice)

परम्परागत रूप में न्याय की दो धारणाऐं प्रचलित रही हैं– नैतिक और कानूनी किन्तु वर्तमान में सामाजिक व आर्थिक न्याय की धारणा भी महत्त्वपूर्ण हो गयी हैं।

1. **नैतिक न्याय (Moral Justice) –** न्याय की मूल धारणा नैतिकता पर आधारित है। जिसमें कुछ सर्व व्यापक अपरिवर्तनीय तथा अंतिम प्राकृतिक नियम है जो व्यक्तियों के आपसी सम्बन्धों को निरूपित करते हैं। इन प्राकृतिक नियमों और प्राकृतिक अधिकारों पर आधारित जीवन व्यतीत करना ही नैतिक न्याय है। जब व्यक्तियों का आचरण सदाचारी होता है, तो उसे नैतिक न्याय की अवस्था कहा जाता है, जबकि जब व्यक्ति का आचरण नैतिकता से परे होता है तो उसे नैतिक न्याय के विरुद्ध माना जाता है। भूतकाल से लेकर वर्तमान तक सभी चिन्तक सत्य, करूणा, अहिंसा, वचनबद्धता, उदारता आदि गुणों को नैतिक सिद्धान्त मानते हैं।
2. **कानूनी न्याय (Legal Justice) –** राजनीतिक व्यवस्था में कानूनी व्यवस्था को न्याय व्यवस्था भी कहा जाता हैं। इसमें वे सभी नियम और कानून शामिल हैं, जिनका नागरिक स्वाभाविक रूप से अनुसरण करते हैं। कानूनी न्याय की धारणा दो बातों पर बल देती हैं – (i) सरकार द्वारा निर्मित कानून न्यायोचित होने चाहिए। (ii) सरकार द्वारा ऐसे कानूनों को न्यायपूर्ण ढ़ंग से लागू करने चाहिए। कानूनों के उल्लंघन की स्थिति में निष्पक्ष दंड का प्रावधान किया जाना चाहिए।
3. **राजनीतिक न्याय (Political Justice) –** राजनीतिक न्याय समानता व समता पर आधारित होना चाहिए। एक राजव्यवस्था में सभी व्यक्तियों को समान अधिकार व अवसर प्राप्त होने चाहिए। राजनीतिक न्याय भेदभाव व असमानता को अस्वीकार करता हैं। राजनीतिक न्याय सभी व्यक्तियों के कल्याण पर आधारित होता हैं। ऐसा न्याय केवल प्रजातांत्रिक व्यवस्थाओं में ही प्राप्त किया जा सकता हैं। राजनीतिक न्याय प्राप्त करने के कुछ साधन उपलब्ध हैं –वयस्क मताधिकार, विचार भाषण व अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता, बिना किसी भेदभाव के सार्वजनिक पद पर आसीन होने का अधिकार व अवसर सभी नागरिकों का समान रूप से प्रदत्त होना राजनीतिक न्याय की प्राप्ति के लिये संविधान व संवैधानिक शासन को आवश्यक माना गया हैं। किसी विशेष वर्ग व व्यक्ति को विशेष अधिकार प्रदान न करना राजनीतिक न्याय का एक अन्य गुण हैं।
4. **सामाजिक न्याय (Social Justice) –** सामाजिक न्याय समाज में ऐसी व्यवस्था पर बल देता हैं जिसमें सामाजिक स्थिति के आधार पर व्यक्तियों में भेदभाव न हो और प्रत्येक व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व के विकास के पूर्ण अवसर प्राप्त हो। राज्य द्वारा व्यक्ति के अच्छे जीवन के लिये आवश्यक परिस्थितियाँ उत्पन्न करनी चाहिए। राज्य व्यवस्था से अपेक्षा की जाती हैं कि वह नीति निर्माण करते समय ऐसे विधायी व प्रशासनिक नियमों का निर्माण करें, जो एक समतामूलक समाज निर्माण करने में सहायक हो। जॉन रॉल्स आदि ने

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

सामाजिक न्याय को विशेष महत्त्व दिया हैं। सामाजिक न्याय के अभाव में समानता व स्वतंत्रता जैसे मूल्यों का कोई अर्थ नहीं हैं।

5. **आर्थिक न्याय (Economic Justice) –** आर्थिक न्याय का उद्देश्य समाज में आर्थिक समानता स्थापित करना हैं, किन्तु व्यवहार में आर्थिक समानता ला पाना अभी तक संभव नहीं हुआ हैं। आर्थिक न्याय का सिद्धान्त इस बात पर बल देता हैं कि आर्थिक संसाधनों का वितरण करते समय राज्य व्यवस्था को व्यक्ति की आर्थिक स्थिति का ध्यान रखना चाहिए। आर्थिक न्याय धन–सम्पदा के आधार पर व्यक्तियों के बीच पायी जाने वाली असमानता की निन्दा करता हैं तथा गरीबी और अमीरी के बीच की खाई को कम करने पर बल देता हैं। आर्थिक विषमता को दूर करने के लिए और आर्थिक न्याय के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए व्यक्तिगत सम्पति के अधिकार को सीमित करने की आवश्यकता हैं। समाजवादी विचारक के अनुसार आर्थिक विषमता गरीब और अमीर के बीच की खाई को और अधिक गहरी कर देती हैं जिससे समाज में सदैव वर्ग संघर्ष की स्थिति बनने की संभावना रहती हैं।

निष्कर्ष (Conclusion)

यद्यपि न्याय के मौलिक स्वरूप में काफी परिवर्तन हो चुका है लेकिन न्याय का लक्ष्य आज भी वहीं है जो सदियों पहले था। न्याय के सिद्धान्त का मुख्य सरोकार सामाजिक जीवन में लाभों और दायित्वों के तर्कसंगत वितरण से है। न्याय की चर्चा केवल ऐसे समाज में प्रासंगिक होगी जिसमें वस्तुओं, सेवाओं, अवसरों इत्यादि का अभाव हो, और जहाँ प्रचलित कानूनों, अधिकारों, सम्पत्ति–सम्बन्धों और नैतिक मान्यताओं की आलोचना करने और उनमें उपयुक्त परिवर्तनों की माँग करने की स्वतन्त्रता और गुंजाइश हो। कुछ ऐसी प्रणालियाँ भी हो सकती हैं जिनमें न्याय की चर्चा निरर्थक होगी। उदाहरण के लिए, शुद्ध सत्तावादी प्रणाली के अन्तर्गत सम्पूर्ण वितरण के मानदण्ड पहले से निर्धारित होते हैं वहाँ वितरण के नए मानदण्डों की तलाश करना अनावश्यक है। फिर, शुद्ध प्रतिस्पर्धात्मक प्रणाली के अन्तर्गत सारा वितरण बाजार–शक्तियों की परस्पर क्रिया से निर्धारित होता है। अतः वहाँ वितरण के नए मानदण्डों को मान्यता नहीं दी जाती है। अंततः काल्पनिक साम्यवादी समाज के अन्तर्गत अभाव की स्थिति ही समाप्त हो जाएगी, और 'प्रत्येक व्यक्ति को अपनी–अपनी आवश्यकता के अनुसार' प्राप्त होगा। अतः वहाँ न्याय के किसी वैकल्पिक सिद्धान्त पर विचार करना व्यर्थ होगा। जहां सबकी सभी आवश्यकताएं पूरी हो जाएंगी, वहाँ समाज से अन्याय की समस्या ही समाप्त हो जाएगी।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- पाश्चात्य राजनीतिक चिंतन में न्याय की सर्वप्रथम व्याख्या यूनानी दार्शनिक प्लेटो ने की।
- प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन में 'धर्म' का प्रयोग 'न्याय' के सादृश हुआ है।
- प्लेटो ने न्याय को मनुष्य का आत्मीय गुण माना है।
- प्लेटो के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति द्वारा अपना निर्दिष्ट कार्य करना और दूसरे के कार्यों में अनावश्यक हस्तक्षेप न करना ही न्याय है।
- अरस्तू के अनुसार न्याय का सरोकार मानवीय सम्बन्धों के नियमन से है।
- परम्परागत न्याय का सरोकार व्यक्ति के चरित्र से है, वहीं आधुनिक दृष्टिकोण का सरोकार सामाजिक न्याय से है।
- प्लेटो और अरस्तू परम्परागत न्याय के प्रमुख विचारक हैं।
- प्लेटो ने न्याय सिद्धान्त की व्याख्या अपनी रचना 'रिपब्लिक' में की हैं।
- प्लेटो न्याय के दो रूप मानता है –
  1.व्यक्तिगत न्याय
  2.सामाजिक या राज्य से सम्बन्धित न्याय
- अरस्तू ने न्याय के दो रूप प्रस्तुत किए –
  1.वितरणात्मक
  2.सुधारात्मक न्याय
- मध्यकाल में संत ऑगस्टाइन ने 'ईश्वरीय राज्य' में न्याय को अपरिहार्य तत्व माना है।
- थॉमस एक्विनास समानता को न्याय का मौलिक तत्व मानते हैं।
- जॉन रॉल्स ने अपने न्याय सम्बन्धी विचार अपनी पुस्तक 'ए थ्योरी ऑफ जस्टिस' (A Theory of Justice) में व्यक्त किए है।
- जॉन रॉल्स ने 'अज्ञानता के पर्दे ' (Veil of Ignorance) के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।
  न्याय की धारणा के विविध रूप
  1.नैतिक न्याय
  2.कानूनी न्याय
  3.राजनीतिक न्याय
  4.सामाजिक न्याय
  5.आर्थिक न्याय
- डेविड ह्यूम ने नियमों की अनुपालना को ही न्याय माना है।
- जेरेमी बेंथम ने 'अधिकतम लोगों के अधिकतम सुख' को ही न्याय का मूल मंत्र माना है।
- जॉन स्टुअर्ट मिल ने न्याय को सामाजिक उपयोगिता का सबसे महत्त्वपूर्ण तत्व माना है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. पाश्चात्य राजनीतिक चिंतन में न्याय की व्याख्या सर्वप्रथम किस विचारक ने की थी?
   (अ) संत ऑगस्टाइन (ब) अरस्तू
   (स) प्लेटो (द) एक्वीनास ( )
2. वितरणात्मक न्याय की अवधारणा के प्रतिपादक है–
   (अ) प्लेटो (ब) अरस्तू
   (स) एक्वीनास (द) जॉन रॉल्स ( )
3. "जिन राज्यों में न्याय विद्यमान नहीं हैं, वे केवल चोर उच्चक्कों की खरीद फरोख़्त है", यह कथन है–
   (अ) संत ऑगस्टाइन (ब) कौटिल्य
   (स) अरस्तू (द) एक्वीनास ( )
4. न्याय की निष्पक्षता को राजव्यवस्था की आधारभूत प्रवृत्ति इनमें से कौन विचारक मानते हैं –
   (अ) बृहस्पति (ब) मनु एवं कौटिल्य
   (स) प्लेटो (द) आचार्य नरेन्द्र देव ( )
5. कानून के उल्लंघन पर दिया जाने वाला दण्ड न्याय के किस रूप को परिलक्षित करता है –
   (अ) नैतिक न्याय (ब) राजनीतिक न्याय
   (स) आर्थिक न्याय (द) कानूनी न्याय ( )

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. न्याय के भारतीय प्रतिपादक कौन–कौन हैं ?
2. प्लेटो ने अपने किस ग्रन्थ में न्याय सम्बन्धी विचार प्रस्तुत किये हैं ?
3. प्लेटो ने अपने न्याय सिद्धान्त में समाज की कितनी श्रेणियाँ बताई है ?
4. रिपब्लिक पुस्तक के रचियता कौन है ?
5. अरस्तू ने न्याय के कितने प्रकार बताये है ?
6. अरस्तू का वितरणात्मक न्याय सिद्धान्त किस बात पर बल देता है ?
7. अरस्तू का सुधारात्मक न्याय का उद्देश्य क्या है ?
8. मध्यकाल में न्याय के दो प्रतिपादक कौन थे ?
9. आर्थिक विषमता की बात किस विचारक ने कही है ?
10. 'अज्ञानता के पर्दे' सिद्धान्त का प्रतिपादक कौन हैं ?
11. जॉन रॉल्स ने सामाजिक न्याय की स्थापना के लिये किस सिद्धान्त की स्थापना की है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. प्लेटो के न्याय से आप क्या समझते हैं ?
2. अरस्तू के न्याय संबंधी विचारों पर टिप्पणी कीजिए।
3. न्याय के परम्परागत व आधुनिक दृष्टिकोण में तुलना कीजिए।
4. न्याय के सार्वभौमिक मूल्यों की वर्तमान समय में क्या प्रासंगिकता है ?बताइये।
5. उपयोगितावादियों द्वारा दी गई न्याय की अवधारणा परम्परागत दृष्टिकोण से किस प्रकार भिन्न है ?
6. जॉन रॉल्स के न्याय सम्बन्धी विचार संक्षेप में लिखिए।
7. न्याय के सार्वलौकिक और स्थिर तत्वों पर टिप्पणी कीजिए।
8. "आर्थिक न्याय के अभाव में सामाजिक व राजनीतिक न्याय अर्थहीन है"। स्पष्ट कीजिए।
9. "न्याय मूलरूप से एक नैतिक सिद्धान्त हैं, जिसकी अलग–अलग विचारकों ने अपने–अपने ढ़ंग से व्याख्या की हैं।" स्पष्ट कीजिए।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. न्याय से आप क्या समझते हैं?न्याय के परम्परागत सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।
2. प्लेटो व अरस्तू के न्याय पर विचारों की समीक्षा कीजिए।
3. आपकी राय में न्याय की भारतीय व पाश्चात्य अवधारणा में क्या भिन्नता/साम्यता है, का विवेचन कीजिए।
4. न्याय के विविध रूपों को स्पष्ट कीजिए।

बहुचयनात्मक प्रश्नों के उत्तर

1. स 2. ब 3. अ 4. ब 5. द

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

2. शक्ति, सत्ता और वैधता
(Power, Authority and Legitimacy)

शक्ति (Power)

शक्ति राजनीति विज्ञान की मूल अवधारणा रही है क्योंकि राजनीति हमारे समाज का वह क्षेत्र है, जहाँ सभी के लिए नियम बनाए जाते हैं, सभी के लिए निर्णय लिए जाते हैं तथा अधिकारों एवं कर्तव्यों का आवंटन किया जाता है। इन सब कार्यों को करने के लिए शक्ति की आवश्यकता होती है। लेकिन शक्ति का स्वरूप क्या है? उसकी प्रवृत्ति क्या है? समाज में शक्ति का स्रोत क्या है? आदि तत्वों पर एकरूपता का अभाव है। जहाँ प्राचीन समय में सैनिक शक्ति महत्त्वपूर्ण मानी जाती थी, वहीं इस समय राजनीतिक शक्ति पर विशेष जोर दिया जाता है। प्राचीन भारतीय चिन्तन में मनु, कौटिल्य, शुक्र आदि ने शक्ति के विविध तत्वों पर प्रकाश डाला है, वहीं यूरोपीय चिन्तन में मेकियावली को प्रथम शक्तिवादी विचारक माना जाता है। उसके बाद इंग्लैण्ड के टामस हॉब्स ने अपनी पुस्तक 'लेवियाथन' में 1651 ई. में राज्य और राजनीति के क्षेत्र में शक्ति के महत्त्व को रेखांकित किया। लेकिन एक राजनीतिक अवधारणा के रूप में शक्ति पर विशेष जोर आधुनिक राजनीति विज्ञान की एक विशेषता है। आधुनिक राजनीति विज्ञान के प्रमुख प्रणेता चार्ल्स मेरियम ने शक्ति के विविध पक्षों की व्याख्या की। उसके बाद शक्ति की अवधारणा को स्पष्ट करने में कैटलिन, लासवेल, कैप्लान, मार्गेन्थाऊ आदि विद्वानों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। कैटलिन ने "राजनीति विज्ञान को शक्ति के विज्ञान" के रूप में परिभाषित करते हुए कहा कि राजनीति प्रतियोगिता का ऐसा क्षेत्र है, जिसमें शक्ति प्राप्ति के लिए व्यक्तियों के बीच निरन्तर संघर्ष चलता रहता है। कैटलिन की ही भांति लासवेल की भी मान्यता है कि राजनीति विज्ञान का दायरा शक्ति से अपरिहार्य रूप से जुड़ा हुआ है। समाज में एक "प्रक्रिया या गतिविधि के रूप में शक्ति" कैसे क्रियाशील रहती है, हैराल्ड लासवेल के अनुसार यही राजनीति विज्ञान की मुख्य विषयवस्तु है। इसलिए लासवेल ने अपनी पुस्तक का नाम ही "कौन, कब, क्या, कैसे प्राप्त करता है (**Politics: Who gets, what, when how**)" । मेकाइवर ने अपनी पुस्तक " द वैब ऑफ गवर्नमेण्ट " में शक्ति को परिभाषित करते हुए लिखा कि, "यह किसी भी संबंध के अन्तर्गत ऐसी क्षमता है, जिसमें दूसरों से कोई काम लिया जाता है या आज्ञापालन कराया जाता है। "

आर्गेन्सकी के शब्दों में "शक्ति दूसरे के आचरण को अपने लक्ष्यों के अनुसार प्रभावित करने की क्षमता है।"

राबर्ट बायर्सटेड के अनुसार, "शक्ति बल प्रयोग की योग्यता है न कि उसका वास्तविक प्रयोग।"

शक्ति की परिभाषाएं यह संकेत देती है कि जिसके पास शक्ति है, वह दूसरों के कार्यों, व्यवहारों एवं विचारों को अपने अनुकूल बना सकता है। वहीं दूसरी ओर समकालीन सामाजिक चिन्तन में शक्ति का अभिप्राय माना जाता है – कुछ करने की शक्ति अर्थात् जब कोई व्यक्ति स्वयं अपने लिए अथवा समाज के लिए कुछ कार्य करता है तब वह इसी अर्थ में शक्ति का प्रयोग करता है।

2.1 शक्ति का बल और प्रभाव से भेद (The Difference Between Power and Force)

सामान्यतः शक्ति और बल को एक ही माना जाता है, लेकिन वास्तव में दोनों में अन्तर है। शक्ति प्रछन्न बल है और बल प्रकट शक्ति। शक्ति में बल और प्रभाव दोनों निहित होते है। जब शक्ति व बल में अन्तर किया जाता है तो शक्ति अप्रकट होती है जबकि बल उसका प्रकट रूप है। जब शक्ति व प्रभाव में अन्तर किया जाता है तो प्रभाव अप्रकट होता है तब शक्ति प्रकट होती है। शक्ति अप्रकट तत्व है लेकिन बल प्रकट तत्व है, जैसे – पुलिस के पास अपराधी को दण्डित करने की शक्ति निहित रहती है लेकिन जब वह वास्तव में उसे दण्ड देती है जो कि आर्थिक दण्ड से शारीरिक दण्ड तक कुछ भी हो सकता है तब वह बल का प्रयोग करती है अथवा शिक्षक के पास विद्यार्थी को कक्षा से बाहर निकालने की शक्ति निहित रहती है और जब वह वास्तव में ऐसा करता है तब उसकी शक्ति बल में बदल जाती है।

इसी तरह शक्ति और प्रभाव में भी अनेक समानताएं और असमानताएं होती है। दोनों ही एक–दूसरे को सबलता प्रदान करते हैं। दोनों ही औचित्यपूर्ण हो जाने के पश्चात् ही प्रभावशाली होते हैं प्रभाव शक्ति उत्पन्न करता है तथा शक्ति प्रभाव को। लेकिन दोनों में अन्तर भी होता है। शक्ति दमनात्मक होती है और उसके पीछे कठोर भौतिक बल का प्रयोग होता है, जबकि प्रभाव मनोवैज्ञानिक होता है। शक्ति का प्रयोग किसी के खिलाफ उसकी इच्छा के विरुद्ध भी हो सकता है लेकिन प्रभाव सम्बन्धात्मक होता है और इसकी सफलता का आधार प्रभावित व्यक्ति की सहमति पर निर्भर करता है। इसके अलावा शक्ति अप्रजातांत्रिक तत्व है जबकि प्रभाव पूर्णतया प्रजातांत्रिक है। शक्ति कितनी भी अधिक हो उसे स्थिरता हेतु प्रभाव की आवश्यकता होती है लेकिन प्रभाव को अपने अस्तित्व के लिए शक्ति के प्रयोग की आवश्यकता नहीं होती है। जैसे अंग्रेज भारतीय जनता से शक्ति के माध्यम से अपने आदेशों की पालना करवाते थे जबकि महात्मा गाँधी प्रभाव का प्रयोग करते थे।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

2.2 शक्ति के रूप (Kinds of Power)

राजनीति विज्ञान में शक्ति का बहुत विस्तृत प्रयोग होता है, जिन्हें हम शक्ति के विविध आयाम कह सकते हैं। मोटे रूप में तीन तरह की शक्ति राजनीतिक शक्ति, आर्थिक शक्ति और विचारधारात्मक शक्ति की पहचान कर सकते हैं।

1. **राजनीतिक शक्ति** – राजनीतिक शक्ति से तात्पर्य है समाज के मूल्यवान संसाधनों जैसे पद, प्रतिष्ठा, कर, पुरस्कार, दण्ड आदि का समाज के विभिन्न समूहों में आवंटन । सामान्यतः राजनीतिक शक्ति का प्रयोग सरकार के विभिन्न अंग व्यवस्थापिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका करते हैं, जिन्हें हम शक्ति के औपचारिक अंग कहते हैं। इनके अलावा विभिन्न दबाव समूह, राजनीतिक दल और प्रभावशाली व्यक्ति भी सार्वजनिक नीतियों को प्रभावित करने की क्षमता रखते हैं। अतः इन्हें हम शक्ति के अनौपचारिक अंग कहते हैं।
2. **आर्थिक शक्ति** – आर्थिक शक्ति का अर्थ है उत्पादन के साधनों एवं धन सम्पदा पर स्वामित्व। आर्थिक शक्ति अनेक तरह से राजनीतिक शक्ति को प्रभावित करती है। ऐसा माना जाता है कि जो आर्थिक रूप से शक्तिशाली होते हैं वे राजनीतिक रूप से भी शक्तिशाली होते हैं लेकिन आर्थिक एवं राजनीतिक शक्ति के आपसी संबंध किस तरह के है, इसे लेकर उदारवाद और मार्क्सवाद में अन्तर है। उदारवाद के अनुसार राजनीतिक शक्ति को निर्धारित करने वाले समाज में अनेक तत्व होते हैं, जिनमें आपस में अन्तर्निभरता रहती है और अकेला आर्थिक तत्व ही राजनीति शक्ति को निर्धारित नहीं करता है। दूसरी ओर मार्क्सवाद का मानना है कि सब तरह की शक्ति आर्थिक शक्ति की नींव पर टिकी होती है एवं आर्थिक शक्ति ही समाज में राजनीतिक शक्ति को निर्धारित करती है। यद्यपि पूर्व सोवियत संघ जैसे साम्यवादी राज्य में निजी सम्पत्ति और उत्पादन के निजी स्वामित्व पर रोक के बावजूद राजनीतिक रूप से ताकतवर एक नया वर्ग अस्तित्व में बना रहा, जिससे स्पष्ट है कि मार्क्सवाद की यह धारणा सत्य नहीं है।
3. **विचारधारात्मक शक्ति** – विचारधारा का अर्थ है विचारों का समूह जिसके आधार पर हमारे दृष्टिकोण का विकास होता है। यह लोगों के सोचने, समझने के ढ़ंग को प्रभावित करती है। यह विचारधारा किसी शासन व्यवस्था को लोगों की दृष्टि में उचित ठहराती है, इसलिए उसे वैधता प्रदान करती है। भिन्न–भिन्न देशों में भिन्न–भिन्न प्रकार की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व्यवस्थाएं प्रचलित है और इन्हें उचित ठहराने के लिए उदारवाद, साम्यवाद, समाजवाद, एकात्म मानववाद इत्यादि विचारधाराओं का सहारा लिया जाता है। लेकिन कोई विचार किसी विशेष सामाजिक परिस्थिति में जन्म लेता है। कालान्तर में परिस्थिति बदल जाती है और तर्क की दृष्टि से यह विचार पुराना पड़ जाता है। परन्तु कुछ लोग उस विचार को बनाए रखना चाहते हैं, क्योंकि उसके साथ उनके स्वार्थ जुड़े रहते हैं। यह वर्ग इसे बचाए रखने के लिए हिंसा का प्रयोग भी करते हैं। मार्क्सवाद साम्यवाद के नाम पर पूर्व सोवियत संघ, कंबोडिया आदि देशों में हजारों लाखों लोगों को मौत के घाट उतार दिया गया। माओवादी चीन में सांस्कृतिक क्रान्ति के नाम पर लाखों लोगों का सफाया कर दिया गया। भारत में माओवादी–नक्सलवादी इसी विचारधारा से प्रेरित होकर हिंसक कार्यवाही में संलग्न है। कई बार लोकतांत्रिक देशों में भी कुछ लोग अपनी विचारधारा के अस्तित्व को बनाए रखने के लिए हिंसा की कार्यवाही में संलग्न हो जाते हैं, जैसे – भारत के केरल राज्य में मार्क्सवादी कार्यकर्ता अपने वैचारिक विरोधियों के विरुद्ध हिंसात्मक कार्यवाहियों में संलग्न है।

2.3 शक्ति की संरचना (Structure of Power)

शक्ति की परम्परागत संकल्पना ऐसी क्षमता के रूप में की जाती है, जिससे एक पक्ष दूसरे पक्ष पर अपना नियंत्रण स्थापित करता है। ऐसे में क्या समाज में ऐसे समूहों की पहचान कर सकते हैं जो नियमित रूप से किन्हीं अन्य पर शक्ति का प्रयोग करते हो। इस बारे में मुख्यतः चार सिद्धान्त महत्त्वपूर्ण है।

वर्ग प्रभुत्व का सिद्धान्त – वर्ग प्रभुत्व का सिद्धान्त जो कि मार्क्सवाद की देन है, जिसकी मूल मान्यता है कि आर्थिक आधार पर समाज दो विरोधी वर्ग में बंटा होता है – आर्थिक रूप से ताकतवर बुर्जुआ वर्ग तथा आर्थिक रूप से दुर्बल – सर्वहारा वर्ग। इन दोनों विरोधी वर्गों के बीच समाज में निरन्तर संघर्ष चलता रहता है। अतः इनका मानना है कि "अब तक का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास रहा है।" मार्क्सवाद के अनुसार प्रत्येक वर्गीय समाज मूलतः शक्ति–संरचना होता है, जिसमें प्रभु वर्ग, राजनीति, अर्थव्यवस्था, समाज, नैतिकता एवं संस्कृति के हर स्तर पर ऐसा वर्चस्व कायम रहता है, जिसे पराधीन वर्ग अपनी 'स्वाभाविक नियति' के रूप में आत्मसात कर लेते हैं।

विशिष्ट वर्गीय सिद्धान्त – विशिष्ट वर्गीय सिद्धान्त के अनुसार भी समाज शक्ति के आधार पर दो वर्गों – विशिष्ट वर्ग जो शक्तिशाली है तथा सामान्य वर्ग जिसके ऊपर शक्ति प्रयुक्त होती है, में बंटा होता है। लेकिन इस सिद्धान्त के अनुसार यह वर्ग विभाजन केवल आर्थिक आधार पर नहीं होकर इसके अनेक आधार जैसे कुशलता, आनुवंशिकता, संगठन क्षमता, बुद्धिमता, प्रबन्ध क्षमता, नेतृत्व क्षमता आदि होते हैं इन योग्यताओं के आधार पर प्रत्येक देश और प्रत्येक प्रकार की शासन व्यवस्था में समाज का छोटा वर्ग उभरकर आता है जो शक्तिशाली होता है और सामान्यजन पर अपनी शक्ति का प्रयोग करता है। जैसे – देश के राजनेता, प्रशासक, उद्योगपति, वकील, प्रोफेसर, डॉक्टर आदि मिलकर एक वर्ग का निर्माण करते हैं, जो हमेशा शक्तिशाली बने रहते हैं, भले ही औपचारिक रूप से किसी भी दल की सरकार हो। इटली के विल्फ्रेड परेटो (द माइण्ड एण्ड सोसायटी), गीतानो मोस्का (द

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

रूलिंग क्लास), जर्मनी के राबर्ट मिशेल्स (पॉलिटिकल पार्टीज) नामक पुस्तकों में इस सिद्धान्त की व्याख्या की।

नारीवादी सिद्धान्त – नारीवादी सिद्धान्त का मानना है कि समाज में शक्ति के विभाजन का आधार लैंगिक है। समाज की सारी शक्ति पुरूष वर्ग के पास है जो महिलाओं के ऊपर अपनी शक्ति का प्रयोग करते हैं। अतः इस आधार पर यूरोप में नारी मुक्ति के आन्दोलन प्रारम्भ हुए जो पुरुषों के पितृसत्तात्मक प्रभुत्व का अन्त करना चाहते हैं।

बहुलवादी सिद्धान्त – शक्ति विभाजन का चौथा सिद्धान्त बहुलवादी सिद्धान्त है, जो उपर्युक्त तीनों से ही भिन्न है। वर्ग प्रभुत्व, विशिष्ट वर्गवाद एवं नारीवाद यह दावा करते हैं कि शक्ति का प्रयोग समाज को दो वर्गों – शक्तिशाली एवं शक्तिहीन में बांटता है, परन्तु बहुलवादी सिद्धान्त के अनुसार समाज में सारी शक्ति किसी एक वर्ग के हाथ में न होकर अनेक समूहों में बंटी होती है। उदार लोकतांत्रिक व्यवस्था में इन समूहों के बीच सतत् सौदेबाजी चलती रहती है। अतः शक्ति के आधार पर समाज में शोषणकारी व्यवस्था नहीं होती है। यह भारतीय अवधारणा है, जो शोषण अथवा वर्ग संघर्ष पर आधारित नहीं होकर उत्तरदायित्व आधारित है, जिसकी मान्यता है कि शक्तिशाली होने का अर्थ है सार्वजनिक हित के लिए अपनी शक्ति का प्रयोग करना। इसमें शक्तिहीन को शक्तिसम्पन्न बनाकर समरस समाज की स्थापना पर जोर दिया गया है।

सत्ता (Authority)

जहाँ प्राचीन और मध्यकालीन राजतंत्रात्मक व्यवस्थाओं में शक्ति महत्त्वपूर्ण अवधारणा थी वहीं आधुनिक लोकतांत्रिक व्यवस्था में सत्ता की अवधारणा कहीं ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। शक्ति प्रत्येक जगह सही नहीं हो सकती, अनेक बार हम शक्ति के भय के कारण मजबूरी में उसे स्वीकार करते हैं। सत्ता किसी व्यक्ति, संस्था, नियम या आदेश का ऐसा गुण है, जिसके कारण उसे सही मानकर स्वेच्छा से उसके निर्देशों का पालन किया जाता है। जब हम किसी बलशाली के आदेश की पालना करते हैं तब उसकी आज्ञा पालन का आधार शक्ति होता है जबकि हम चौराहे पर यातायात पुलिस के सिपाही के इशारे पर रूकते है तब वह सत्ता का प्रतीक होता है। इस तरह शक्ति के साथ जब वैधता जुड़ती है तब वह सत्ता कहलाती है। दूसरे शब्दों में वैध शक्ति ही सत्ता है। बायर्सटेड ने इसे परिभाषित करते हुए कहा कि "सत्ता शक्ति के प्रयोग का संस्थात्मक अधिकार है।"

हेनरी फेयोल के अनुसार, "सत्ता आदेश देने का अधिकार और आदेश का पालन करवाने की शक्ति है।"

2.4 सत्ता पालन के आधार (Basis of Following the Authority)

सत्ता के बारे में एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि व्यक्ति सत्ता का पालन क्यों करते हैं। प्रमुख रूप से सत्ता पालन के निम्न आधार है–

विश्वास – सत्ता पालन का सबसे महत्त्वपूर्ण तत्व है अधिनस्थों का सत्ताधारी के प्रति विश्वास। यह विश्वास जितना गहरा होगा सत्ताधारी के आदेशों की पालना उतनी ही सरलता से होगी और इसके लिए उसे शक्ति के प्रयोग की आवश्यकता नहीं होगी।

एकरूपता – विचारों और आदर्शों की एकरूपता भी सत्ता का महत्त्वपूर्ण आधार होता है। वैचारिक एकरूपता स्वतः ही आज्ञापालन की स्थिति को पैदा करती है। इसी कारण राजव्यवस्थाएं उदारवाद, समाजवाद आदि विचारधारों का सहारा लेती है।

लोकहित – लोक कल्याण भी सत्ता का महत्त्वपूर्ण आधार है। हम राज्य के अधिकांश कानूनों की पालना केवल दण्ड शक्ति के दबाव में नहीं करते अपितु इसलिए करते हैं कि वे लोकहित को बढ़ावा देते है, जैसे – कर जमा करवाना, यातायात नियमों की पालना करना आदि।

दबाव – अनेक बार दबाव एवं शक्ति का भी सत्ता पालन के लिए प्रयोग करना होता है। प्रत्येक व्यवस्था में कुछ लोग ऐसे होते हैं, जिन पर सत्ता के अन्य आधारों का कम प्रभाव रहता है और जो दमन एवं दबाव की भाषा ही समझते हैं।

2.5 सत्ता के रूप (Kinds of Authority)

प्रसिद्ध समाज वैज्ञानिक मैक्स वेबर ने सत्ता के निम्न तीन रूप बताए है–

1. परम्परागत सत्ता – इस सत्ता का आधार परम्पराएं एवं इतिहास होता है। इसमें यह माना जाता है कि जो व्यक्ति या वंश परम्परा के अनुसार सत्ता का प्रयोग कर रहा है, सत्ता उसी के पास बनी रहनी चाहिए। इस सत्ता में तर्क एवं बुद्धिसंगतता का अभाव रहता है। घर में वृद्धजनों की सत्ता परम्परागत सत्ता का उदाहरण है।
2. करिश्माई सत्ता – यह सत्ता किसी व्यक्ति के व्यक्तिगत गुणों और चमत्कार पर आधारित है। इसमें जनता उस व्यक्ति के इशारे पर बड़े से बड़ा त्याग करने को तैयार रहती है। इसमें सत्ता का आधार भावनाएं होती है, जैसे – महात्मा गाँधी, पं. नेहरु, इन्दिरा गाँधी, अटल बिहारी वाजपेयी आदि करिश्माई सत्ता के उदाहरण है।
3. कानूनी, तर्कसंगत सत्ता – इसका आधार पद होता है व्यक्तित्व नहीं। उस पद में कानूनन जो सत्ता निहित है उस पद को प्राप्त करने वाला व्यक्ति उस सत्ता का प्रयोग करता है। जैसे शिक्षक की सत्ता, कलेक्टर की सत्ता, प्रधानमंत्री की सत्ता आदि। यदि कानूनी सत्ता का जो प्रयोग कर रहा है उसका व्यक्तित्व चमत्कारिक हो तब वह असीमित सत्ता का प्रयोग कर सकता है। जैसे प्रधानमंत्री में कानूनन समान सत्ता निहित होती है लेकिन उस पद पर बैठने वाले व्यक्ति के गुणों के आधार पर प्रयोग की सीमाएं अलग–अलग दिखती है।

वेबर ने यह स्वीकार किया कि इनमें से किसी प्रकार की सत्ता शुद्ध रूप में देखने को नहीं मिलती है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

इस प्रकार सत्ता के बिना सभ्य समाज की कल्पना नहीं की जा सकती, लेकिन प्रत्येक समाज सत्ता के ऊपर कुछ सीमाएं निर्धारित करता है, जिससे कि सत्ता का मनमाना प्रयोग नहीं किया जा सके। सत्ता को देश के संवैधानिक कानूनों तथा वहाँ की संस्कृति, मूल्यों, परम्पराओं व नैतिक अवधारणाओं आदि के सापेक्ष रहकर ही कार्य करना होता है।

वैधता (Legitimacy)

इस शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के Legitmus से हुई, जिसका अर्थ होता है – Lawful अर्थात् वैधानिक। वैधता अथवा औचित्यपूर्णता का लम्बा इतिहास रहा है। प्लेटो ने न्याय सिद्धान्त द्वारा व अरस्तु ने संवैधानिक शासन द्वारा शासक की वैधता को सिद्ध करने का प्रयास किया। इससे पूर्व भारतीय दर्शन में भी इसका अप्रत्यक्ष वर्णन मिलता है। मनु स्मृति, कौटिल्य के अर्थशास्त्र में राजा या स्वामी को सभी अधिकार कुछ कर्तव्यों के निर्वहन के साथ प्रदान किए गए हैं तथा प्रजा पालन व जनकल्याण को उनके मूल कर्त्तव्य के रूप में पहचान दी गई है। मध्यकाल में राज्य की उत्पत्ति के दैवीय सिद्धान्त को राज्य की वैधता का आधार माना गया। हॉब्स, लॉक एवं रूसों ने दैवीय उत्पत्ति के स्थान पर लोगों की सहमति को राज्य की वैधता का आधार बनाया। आधुनिक लोकतांत्रिक शासन में जनता की सहभागिता को राज्य की वैधता का प्रमाण माना जाता है। वास्तव में वैधता उस कारण की ओर इशारा करती है, जिन कारणों से हम किसी भी सत्ता को स्वीकार करते हैं। इसका अर्थ उस सहमति से है जो लोगों द्वारा राजनीतिक व्यवस्था को दी जाती है। यदि किसी राजनीतिक व्यवस्था को लोगों की ऐसी स्वीकृति प्राप्त नहीं होती तब वह व्यवस्था अधिक समय तक अस्तित्व में नहीं रह सकती है। मतदान, जनमत, संचार के साधन, राष्ट्रवाद आदि वे साधन है, जिनके माध्यम से वैधता को प्राप्त किया जा जाता है। वैधता ग्रीन के इस कथन को सिद्ध करती है कि "इच्छा, न कि बल राज्य का आधार होता है।"

वैधता वास्तव में शक्ति और सत्ता के बीच की कड़ी है। कोई भी शासक शक्ति के आधार पर व्यक्ति को बाहरी रूप से नियंत्रित कर सकता है लेकिन वैधता के आधार पर वह लोगों के हृदय पर शासन कर सकता है। इसी कारण लोकतंत्र और अधिनायकतंत्र में अन्तर करने के लिए यह तर्क दिया जाता है कि लोकतंत्र का प्रधान लक्षण वैधता है जबकि अधिनायकतंत्र मुख्यतः शक्ति या बल प्रयोग पर आधारित होता है। प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था को वैधता बनाए रखने के प्रयत्न करने होते हैं क्योंकि राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों में निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं। यदि राजनीतिक व्यवस्था अपने आपको इन परिवर्तनों के अनुरूप नहीं बना पाती तब उसकी वैधता प्रभावित होती है। प्राचीन काल में राजतंत्रीय व्यवस्था थी, कालान्तर में लोकतंत्रीय तत्वों का उदय हुआ। जिन राजनीतिक व्यवस्थाओं ने अपने आपको लोकतंत्रीय तत्वों के अनुरूप ढाल लिया, उनकी वैधता बनी रही लेकिन जो ऐसा नहीं कर पाये, वहाँ क्रान्ति की स्थिति बनी। साम्यवादी व्यवस्था अपने आपको समयानुकूल नहीं बदल सकी इसलिये आज इसकी कोई वैधता नहीं है। इसी तरह नवीन अवस्थाओं को कई बार परम्परागत संस्थाएं एवं समूह भी स्वीकार नहीं करते क्योंकि ऐसा करने से इनका अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है। ऐसी स्थिति में यह पूरी ताकत के साथ नवीन व्यवस्था को चुनौती देते हैं। इसी प्रकार नवीन समूहों के राजनीति में प्रवेश भी वैधता को प्रभावित करते हैं। यदि इनके प्रवेश को पुराना वर्ग स्वीकार कर ले तब तो वैधता को बढ़ावा मिलेगा लेकिन यदि वे बाधा पैदा करते हैं तब वैधता को बाधा पहुँचती है। इसके अलावा अनेक बार राजनीतिक व्यवस्थाओं से अत्यधिक आकांक्षाएं भी वैधता को प्रभावित करती है। जब राजनीतिक व्यवस्थाएं जनसामान्य की इन आशाओं को पूरा नहीं कर पाती तब लोग उनके खिलाफ क्रान्ति एवं तख्तापलट को तैयार हो जाते हैं। अनेक एशियाई–अफ्रीकी देशों में ऐसे तख्तापलट होते रहे हैं। ऐसे में राजनीतिक व्यवस्थाएं अपने आपको नवीन व्यवस्था के अनुरूप ढालकर, परम्पराओं की रक्षा कर तथा व्यक्तिगत गुणों के आधार पर वैधता के संकट का सामना करने का प्रयास करती है।

इस तरह शक्ति, सत्ता एवं वैधता की अवधारणाएं एक–दूसरे के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ी है। शक्ति के बिना समाज में शान्ति, व्यवस्था, न्याय और खुशहाली की स्थापना नहीं की जा सकती। परन्तु शक्ति की भूमिका सबसे ज्यादा वहाँ प्रभावशाली सिद्ध होती है, जहाँ वह केवल बल प्रयोग का साधन नहीं रह जाती बल्कि वैधता के साथ जुड़कर सत्ता का रूप धारण कर लेती है। समाज में व्यवस्था कायम रखने के लिए वैधता और शक्ति एक–दूसरे के पूरक है। यदि हम शक्ति की तुलना नंगी तलवार से करे तो सत्ता म्यान में ढकी हुई तलवार है, जो जरूरत पड़ने पर ही बाहर निकाली जाती है। वास्तव में, जब शासक की शक्ति सत्ता का रूप लेती है तब वह उसका अधिकार बन जाती है और चूंकि सत्ता में वैधता जुड़ी होती है, इसलिए नागरिकों के लिए आज्ञापालन उनका कर्तव्य बन जाता है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- शक्ति, राजनीति विज्ञान की केन्द्रीय अवधारणा है।
- शक्ति के विविध रूप – राजनीतिक, आर्थिक व विचारधारात्मक शक्ति है।
- शक्ति की संरचना के चार सिद्धान्त – वर्ग प्रभुत्व का सिद्धान्त, विशिष्ट वर्गीय सिद्धान्त, नारीवादी सिद्धान्त, बहुलवादी सिद्धान्त।
- सत्ता पालन के आधार – विश्वास, एकरूपता, लोकहित व दबाव है।
- सत्ता के तीन रूप है – परम्परागत सत्ता, करिश्माई सत्ता व कानूनी तर्क संगत सत्ता।
- वैधता– शक्ति व सत्ता के बीच की कड़ी है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. " राजनीति : कौन, कब, क्या, कैसे प्राप्त करता है " पुस्तक के लेखक है –
   (अ) कैटलिन (ब) लासवेल
   (स) मेकाइवर (द) लास्की ( )
2. "शक्ति दूसरे के आचरण को अपने लक्ष्य के अनुसार प्रभावित करने की क्षमता है "यह कथन किसका है–
   (अ) आर्गेन्सकी (ब) लासवेल
   (स) बायर्सटेड (द) थॉमस हाब्स ( )
3. " सत्ता आदेश पालन करने का अधिकार और आदेश पालन करवाने की शक्ति है।"
   (अ) प्लेटो (ब) मोस्का
   (स) हेनरी फेयोल (द) मैकाले ( )
4. इनमें से कौनसा सत्ता का रूप नहीं है –
   (अ) परम्परागत सत्ता (ब) करिश्माई सत्ता
   (स) कानूनी तर्कसंगत सत्ता (द) सैनिक सत्ता ( )
5. लैटिन भाषा के शब्द Legitimus का अर्थ है –
   (अ) वैधानिक (ब) हानिकारक
   (स) सत्ता (द) शक्तिशाली ( )

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. टॉमस हॉब्स की प्रसिद्ध पुस्तक का नाम बताइए।
2. राजनीति विज्ञान को शक्ति का विज्ञान कौनसा विद्वान् मानता है ?
3. शक्ति के कोई दो रूप लिखिए।
4. सत्ता की स्वीकृति या पालन के दो लोकप्रिय आधार बताइए।
5. वैधता प्राप्ति के दो साधन कौनसे हो सकते हैं ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. वैचारिक शक्ति से आप क्या समझते हैं ?
2. शक्ति के संदर्भ में ' नारीवादी सिद्धान्त ' क्या है ?
3. लोकहितकारी सत्ता को समझाइए।
4. मेक्सवेबर ने सत्ता के कितने रूप बताये है, लिखिए।
5. शक्ति के वर्गीय सिद्धांत को स्पष्ट कीजिए।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. शक्ति की अवधारणा पर एक लेख लिखिए।
2. सत्ता क्या है ? इसके विविध रूप बताते हुए स्पष्ट कीजिए कि हम इसका पालन क्यों करते हैं।
3. शक्ति, सत्ता एवं वैधता में अन्तर्सम्बन्धों की समीक्षा कीजिए।

बहुचयनात्मक प्रश्नों के उत्तर

1. ब 2. अ 3. स 4. द 5. अ

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

3. धर्म (Religion)

स्वामी विवेकानन्द ने आध्यामिकता और बाह्य औपचारिक धर्म में अन्तर करते हुए कहा हैं कि "धर्म मनुष्य में पहले से व्याप्त देवत्व व आध्यात्मिकता का विस्तार मात्र हैं।" सभी धर्म गुरुओं और अध्यात्म को समझने वाले विद्वानों ने अपने मत एवं विचार के आधार पर धर्म और अध्यात्म की परिभाषा प्रस्तुत की है, कन्फूशियश, मोजेस, पाईथागोरेस, बुद्ध, महावीर स्वामी, ईसा मसीह, मोहम्मद पैगम्बर, मार्टिन लूथर, केल्विन, गुरु नानक सभी ने "मनुष्य में दिव्यता" का संदेश दिया है। ऐतिहासिक रूप से विश्व के विभिन्न भागों में काल, स्थान व संस्कृति के अनुरूप कई धर्मों का उद्‌भव व विकास हुआ। समय, स्थान और सांस्कृतिक व आध्यात्मिक परिस्थितियों के परिवर्तन से धर्मों में भी परिवर्तन आये। बाहरी रूप से सभी धर्मों ने मूलतः एकता के बुनियादी तथ्यों एवं मूल्यों की बात की है। वर्तमान समस्या अलग–अलग धर्मों और मतों में एकता स्थापित करने की चेष्टा हैं। डॉ॰ सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने आध्यात्मिकता को धर्म का अभिकेन्द्र माना है, उनके अनुसार– "धर्म का सार इस बात में निहित हैं कि यह आत्मा के उन्नयन के लिए आध्यात्मिक पक्ष पर बल दें और जीवन को धर्म निरपेक्षता की ओर अग्रेषित करें।"

3.1 धर्म का अर्थ (Meaning of Religion) –

जहाँ तक धर्म शब्द की परिभाषा का प्रश्न है यह अलग–अलग संस्कृतियों व देशों में अलग–अलग अर्थ में प्रयुक्त हुआ हैं। भारत में इसे कर्त्तव्य, अहिंसा, न्याय, सदाचरण तथा सद्‌गुण के अर्थ में मान्यता प्राप्त हैं। सामान्यतः हम धर्म को "विश्वासों और प्रथाओं" की ऐसी प्रणाली के रूप में परिभाषित कर सकते हैं जिसके माध्यम से लोगों का समूह यह व्याख्या करता है कि उसके लिए क्या पवित्र और सात्विक है। वस्तुतः धर्म उन्नति और कल्याण में साधक होता है। व्यक्ति का उच्चस्थ विकास 'स्व' को जानना है। जब वह 'स्व' को जान लेता है तभी परमार्थ में जुटता है। अंग्रेजी में धर्म का समानान्तर शब्द Religion (रिलिजन) है, जिसका अर्थ है – आस्था, विश्वास अथवा अपनी मान्यता। लेकिन अंग्रेजी का शब्द रिलीजन सही अर्थों में धर्म को स्पष्ट नहीं करता। वस्तुतः धर्म किसी पूजा पद्धति, कर्मकाण्ड, उपासना विधि अथवा संकीर्ण अर्थों में तिलक–चोटी, दाढ़ी–टोपी या गण्डा–ताबीज धारण करने का नाम नहीं है। वास्तव में प्रत्येक मनुष्य का अपना सुनिश्चित कर्म अथवा कर्त्तव्य का निष्ठापूर्वक पालन करना ही धर्मानुसार आचरण करना है। यह तभी सम्भव है जब मनुष्य स्वार्थ, संकीर्णता, अभिमान और दूसरों पर शासन करने की इच्छा का परित्याग करे। धर्म सर्वत्र पवित्र माना गया है, लेकिन धार्मिक पवित्रता सापेक्षवादी है। जिसको एक धर्म पवित्र मानता है सम्भव है उसे दूसरे धर्म में घृणा की दृष्टि से देखा जा सकता है। वास्तव में मनुष्य ही यह निर्धारित करते हैं कि उनके लिए क्या पवित्र है, क्या नहीं। धर्म को एक ऐसी एकीकृत प्रणाली के रूप में भी परिभाषित किया जा सकता है जो अपनी प्रथाओं और विश्वासों से एक समुदाय विशेष को नैतिकता से जोड़ता है।

3.2 धर्म और धर्म निरपेक्षता (Religion & Secularism) –

भारतीय परिप्रेक्ष्य में धर्म निरपेक्षता का अर्थ पाश्चात्य धर्मनिरपेक्षता से सर्वथा भिन्न है। भारत बहुधर्मों का देश है जिसमें अनेक धर्म व मतों के अनुयायी निवास करते हैं। धर्म निरपेक्षता का अर्थ है किसी भी धर्म के मानने वाले के साथ भेदभाव न हो और सभी धर्मों को समान दृष्टि से देखा जाए। भारत में धर्म निरपेक्षता को संवैधानिक दर्जा प्राप्त है और यह सर्वत्र स्वीकार्य है। यह भारतीय संस्कृति की मौलिक अस्मिता है क्योंकि भारत में अनेक मत व मतान्तर पाए जाते हैं। भारत में ईश्वर को मानने वाले भी है और ईश्वर की सत्ता को नकारने वाले भी है। धार्मिक सहिष्णुता इस देश की मिट्‌टी में है।

3.3 धर्म और नैतिकता (Religion & Morality)–

धर्म का मूल लक्ष्य मानव मात्र की सेवा करना हैं। धर्म अच्छे आचरण, करूणा, शील व अहिंसा पर बल देता हैं। सभी धर्मों में सिद्धान्ततः यही भावना निहित हैं। धर्म बुराईयों से दूर रहने व भलाई व सदाचार के मार्ग पर चलने की शिक्षा देता हैं। धर्म का मूल स्वरूप आध्यात्मिक व आडम्बर रहित हैं। धर्म का काम भलाई करना और उसकी स्तुति करना है। धर्म और राजनीति का विवेकपूर्ण मिलन मानवीय कल्याण में साधक होता है। भारतीय विचारधारा के कई विद्वान् पाश्चात्य शब्द "Religion" को "धर्म" शब्द के पर्यायवाची शब्द के रूप में स्वीकारने से हिचकिचाते है क्योंकि धर्म "रिलीजन" से कही अधिक विस्तृत एवं नैतिक विचारधारा है। धर्म में न केवल नैतिकता अपितु नैतिक दायित्व के भौतिक गुणों, प्रकृति और मानव के सम्बन्धों एवं मनुष्य व जानवरों के व्यवहार को भी अन्तर्निहित माना गया है। यद्यपि आज के संदर्भ में इतना व्यापक दृष्टिकोण अप्रासंगिक हो सकता है। भारतीय दर्शन में व्याख्यायित तार्किक एवं नैतिक बल का आज भी हम प्रचुर मात्रा में प्रयोग कर सकते हैं। मूलतः यदि कोई भी धर्म अपने आध्यात्मिक पुरुषों द्वारा प्रतिपादित नैतिक मूल्यों का अवलम्बन करता है तो वह मानवता के लिए सर्वथा उपयोगी होता है। दुर्भाग्यवश विभिन्न धार्मिक मतों व पंथों ने अपनी व्यक्तिगत श्रेष्ठता को स्थापित करने के लिए एक–दूसरे से लड़ना–भिड़ना शुरु कर दिया है। इस तरह की आपसी विरोध, विद्वेष कलह की प्रवृत्ति ने धार्मिक संघर्ष की स्थिति उत्पन्न कर दी है। सभी धर्मों के सामान्य विश्वास व मूल्य एक जैसे होने के बावजूद वे अभी तक एक धरातल पर आने को तैयार नहीं है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

विभिन्न धर्मों के ज्ञान व मूल्यों का परस्पर आदान–प्रदान विज्ञान से भी कई अधिक उपयोगी हो सकता है। एक वैज्ञानिक सत्य तब अधिक सुदृढ़ हो जाता है जब वह अन्य देशों में हुए शोधों से प्रमाणित माना जाता हो। जिस प्रकार विज्ञान के क्षेत्र में कुछ भी विदेशी नहीं होता उसी तरह धर्म के क्षेत्र में भी कोई साम्प्रदायिकता नहीं होनी चाहिए। निसंदेह विश्व में कई ऐसे समाज सुधारक हुए है जिन्होंने सभी धर्मों के व्यावहारिक संश्लेषण के प्रयत्न किए है। यदि सभी धर्मों के सामान्य तत्वों के समानान्तर अनुभवों को एक कोष के रूप में संग्रहीत किया जाता है तो धर्म की स्थिति व प्रतिष्ठा विज्ञान व लोकतंत्र के समतुल्य हो सकती है। यदि कोई धर्म सत्य की स्थापना का दावा करता है तो उसे सार्वभौमिक ग्राह्यता व प्रयोज्यता स्थापित करनी पड़ेगी। एक धर्म तभी उपयोगी है जब वह अन्य सादृश धर्मों से एकरूपता स्थापित करता हो। जो धर्म दूसरे धर्मों की निन्दा, भर्त्सना व तिरस्कार करता है व उनके धार्मिक विश्वासों, प्रथाओं और रीति–रिवाजों को घृणा की दृष्टि से देखता है तो ऐसा धर्म कभी भी सत्यपरक व सार्वभौमिक नहीं रहता। धार्मिक मान्यताओं और आस्थाओं का किसी प्रयोगशाला में परीक्षण सम्भव नहीं है। वही धर्म श्रेष्ठ है जो नैतिकता के पैमाने पर खरे उतरते है और मानव मात्र के कल्याण के लिए प्रयासरत रहते हैं। अलग–अलग देशों में मान्यताएँ व आस्थाएँ भिन्न–भिन्न हो सकती है परन्तु सत्य व नैतिकता को देश व काल की परिधि में नहीं बाँटा जा सकता। नैतिक सत्य सभी धर्मों में प्रेम, करुणा व दया का संदेश देता है। सभी धर्मों के समान मूल्यों से ही विश्व में श्रेष्ठ राज्य की स्थापना सम्भव है। नैतिकता के नियमों का धारण ही धर्म का प्रतीक है।

3.4 धर्म और राजनीति (Religion & Politics)–

प्राचीन समय से ''धर्म और राजनीति'' अथवा ''राजनीति और धर्म'' में गहरा संबंध रहा हैं। जब–जब धर्म व राजनीति का नकारात्मक संसर्ग हुआ हैं, तब–तब राजनीति ने धर्म का दुरूपयोग किया हैं। बर्ट्रेड रसेल और ई.एम. फोस्टर जैसे शान्तिवादी विद्वानों ने धर्म की इस बात के लिए आलोचना की है कि धर्म के नाम पर शुद्ध राजनीति करने से विश्व में हमेशा खून–खराबा हुआ है जो आज भी जारी है। आज भी सभी धर्मों में धर्मांन्ध कट्टरपंथी मरने मारने को तैयार है। दूसरे विश्व युद्ध के बाद विश्व में कई ऐसे शक्ति समूह व संवर्ग उत्पन्न हुए है। प्रारम्भ में धर्म, शासन के लिए सुव्यवस्था और सुनीति का संस्थापक बना लेकिन बाद में अनेक शासकों ने धर्म विशेष को अपना राजधर्म घोषित किया और अपने अनुयायिओं की संख्या बढ़ाने के लिए धर्म की आड़ में युद्ध किए। इस्लाम, इसाई, यहुदी और हिन्दु धर्म से पृथक् हुए कुछ मतों ने शक्ति की आड़ में अपनी मान्यता, अपने धर्म के विस्तार का कार्य किया। धर्म की आड़ में साम्राज्यों का विस्तार किया गया और अनेक देशों में परस्पर युद्ध हुए। विगत लगभग दो हजार वर्ष का इतिहास धर्म के नाम पर अनेक बार रक्त रंजित हुआ। बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में धर्म आधारित युद्धों पर कुछ हद तक विराम अवश्य लगा किन्तु धार्मिक श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए धर्म की आड़ में आतंकी गतिविधियों की बाढ़ आ गई है। आतंकवादियों ने दूसरे धर्मानुयायियों को अकारण शिकार बनाना आरम्भ कर दिया है। भारत इसका सबसे बड़ा शिकार है।

राम मनोहर लोहिया के अनुसार ''धर्म और राजनीति के दायरे अलग–अलग हैं परन्तु दोनों की जड़े एक हैं। धर्म दीर्घकालीन राजनीति हैं, जबकि राजनीति अल्पकालीन धर्म हैं। धर्म का काम भलाई करना और उसकी स्तुति करना हैं, जबकि राजनीति का कार्य बुराई से लड़ना और बुराई की निन्दा करना हैं। समस्या तब उत्पन्न होती हैं जब राजनीति बुराई से लड़ने के स्थान पर केवल निन्दा करती हैं, तो वह कलही हो जाती हैं, इसलिये आवश्यक हैं कि धर्म और राजनीति के मूल तत्वों को समझा जाये। धर्म और राजनीति का विवेकपूर्ण मिलन मानवीय कल्याण में साधक होता हैं, जबकि इन दोनों का अविवेकपूर्ण मिलन दोनों को भ्रष्ट कर देता हैं, जो मानवता के लिए अनिष्टकारी होता हैं। इस अविवेकपूर्ण मिलन से साम्प्रदायिक कट्टरता उत्पन्न होती हैं। धर्म और राजनीति को पृथक् करने का सबसे बड़ा उद्देश्य यही हैं कि दोनों अपने–अपने मर्यादित क्षेत्र में सक्रिय रहें किन्तु दोनों एक दूसरे का अपनी निहित स्वार्थों की पूर्ति के लिये दुरूपयोग न करें। वस्तुतः धर्म और राजनीति में सदैव मर्यादित सम्पर्क बना रहना चाहिए ताकि दोनों एक दूसरे का परस्पर सकारात्मक सहयोग कर सकें। नीतिगत धर्म व धर्मप्रद राजनीति का अनुगमन विश्व शान्ति की स्थापना के लिये अपरिहार्य है। राजनीति का धर्म को और धर्म का राजनीति को नकारात्मक रूप से प्रभावित करना मानवता के लिए दुर्भाग्य पूर्ण है। इससे धार्मिक प्रतिक्रियावाद, कट्टरपन, साम्प्रदायिकता व गुलामी की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है, जो स्वतन्त्रता व समानता जैसे महत्त्वपूर्ण मूल्यों को प्रभावित करती है। आज विश्व में अधिकांश लोकतान्त्रिक व्यवस्थाओं में धर्म निरपेक्षता के सिद्धान्त को अपनाया गया है।

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार ''आडम्बर आच्छादित व हठधर्मितापूर्ण धर्म मनुष्य को विभाजित करता है, जबकि अनुभव से विकसित धर्म मनुष्य को परस्पर जोड़ने का कार्य करता है।'' उन्होंने यह भी कहा है कि ''जो दूसरों के लिये जीते हैं, वे ही सच में जीते हैं, शेष तो जीते हुए भी मरे जैसे है।'' उनके अनुसार व्यक्ति और समाज में परस्पर अनुकूलता एकात्मकता का भाव व मानवतावादी दृष्टिकोण धर्म के अनुशीलन से ही संभव है।

3.5 धर्म और अहिंसा (Religion & Non-Violence)–

धर्म और अहिंसा का अटूट सम्बन्ध है। अहिंसा और धर्म दोनों के आधार तत्व हैं– क्षमा, दया, करुणा, सत्य, कर्त्तव्यनिष्ठा और ईमानदारी। इन सभी तत्वों को सभी देशों के सभी धर्मों में स्वीकार किया गया है। इन मूल्यों के अभाव में किसी भी धर्म का गठन सम्भव नहीं है। जिस नैतिक नियम को विश्व में आजकल "Golden Rule" या "Ethic of Reciprocity " कहा गया है उसे भारत में प्राचीन काल से ही मान्यता प्राप्त है। सनातन धर्म में इसे ''धर्म सर्वस्वम्'' (धर्म का सबकुछ) कहा गया है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

3.6 धर्म और राष्ट्रीयता (Religion & Nationality) –

कई बार मनुष्य किसी के बहकावे में अथवा अंधानुकरण करते हुए कुछ भ्रान्तियाँ अथवा दुराग्रह पाल लेता है। हम चाहे किसी भी धर्म के अनुयायी हों अथवा किसी भी पंथ का अनुसरण करते हों, राष्ट्र हम सबके लिए सर्वोपरि है। हमारा कोई मत, भाषा, मान्यता और धर्म राष्ट्र से ऊपर नहीं हो सकता। स्पष्ट है राष्ट्र धर्म सर्वोपरि है राष्ट्र की सुरक्षा, राष्ट्र का विकास इसकी एकता और उन्नति में ही सबका हित है। वस्तुतः धर्म व्यवहार में परमार्थ की विलक्षण कला है। धर्म का मूल सार यही है कि हम अपने धर्म, सम्प्रदाय, वर्ण, आश्रम का अनुसरण करते हुए भी परमार्थ में जुटें तथा राष्ट्र को सर्वोपरि मानें।

3.7 भारतीय संस्कृति में धर्म की संकल्पना (The Concept of Religion in Indian Culture)–

संस्कृत के धर्मशास्त्र में उल्लेखित है कि –

यतो अभ्युदय निःश्रेयस सिद्धी सः धर्म

धर्म भारतीय संस्कृति और दर्शन की प्रमुख संकल्पना हैं। विभिन्न मत मतान्तरों के आधार पर धर्म की विभिन्न परिभाषाएँ एवम् धर्म के विभिन्न अर्थ प्रस्तुत किए जा सकते हैं। लेकिन धर्म की सटीक व्याख्या और अर्थ सनातन ग्रन्थों में उल्लिखित मिलता है। संस्कृत में धर्म शब्द "धारणात" से बना है जिसमें घृ घातु है जिसका आशय है कि धारण करना। 'धर्म' शब्द का पश्चिमी भाषाओं में कोई तुल्य शब्द पाना बहुत कठिन हैं। भारतीय संकल्पना में 'धर्म' केवल लौकिक धर्म नहीं हैं। भारतीय संदर्भ में धर्म के विभिन्न अर्थ हैं जिनमें मुख्य हैं – कर्तव्य, अंहिंसा, न्याय, सदाचरण, सद्गुण आदि। धर्म की पाश्चात्य धारणा भारतीय धारणा से बिल्कुल भिन्न हैं। धर्म के बारे में सामान्य रूप से कहा जाता हैं कि यह जीवन जीने का रास्ता बताता है। सभी धर्मों में इसी बात को लेकर अलग–अलग व्याख्या की गयी हैं। धर्म केवल नियम कानूनों में बंधना नहीं बल्कि धर्म एक इंसानियत का भाव बनाए रखने में मदद करता हैं। आज के परिप्रेक्ष्य में यह आवश्यक हैं कि मानवता के धर्म को सबसे श्रेष्ठ धर्म समझा जाये। ऐसा करने से बाकी सभी कुछ आसान हो जायेगा। धर्म की प्रारम्भिक बुनियाद परिवार में बच्चों को दिये जाने वाले संस्कारों से होती है।

"एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति"

ऋग्वेद में कहा गया हैं कि अद्वितीय ब्रह्म या सत्य एक हैं केवल बुद्धिजीवियों ने इसे समय–समय पर अलग–अलग नामों से बताया हैं। ऋग्वेद में ब्रह्म को इन्द्र, अग्नि, मित्र, वरुण, यम और मातरिश्वान् आदि नाम से सम्बोधित किया गया हैं। वस्तुतः ईश्वर एक हैं जो अपने स्वरूप को अनेक रूपों में प्रस्तुत कर सृष्टि की रचना करता हैं।

प्रसिद्ध भारतीय दार्शनिक याज्ञवल्क्य ने धर्म के लक्षण बताए हैं।

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
दानं दमो दया शान्तिः सर्वेषां धर्मसाधनम्।।

(अहिंसाः; सत्य; चोरी न करना (अस्तेय); शौच(स्वच्छता); इन्द्रिय–निग्रह(इन्द्रियों को वश में रखना); दान; संयम(दम); दया एवं शान्ति)

मनुस्मृति में धर्म के दस निम्नलिखित लक्षण बताये गए हैः–

घृतिः क्षमा दमाऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
घीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।

धैर्य, क्षमा, संचय व चोरी न करना, शौच(स्वच्छता), इन्द्रियों को वश में रखना, बुद्धि, विद्या, सत्य और क्रोध न करना ये धर्म के दस लक्षण है।

इस प्रकार सभी शाश्वत मूल्य न केवल भारत में उत्पन्न धर्मों में ही परिलक्षित होते हैं अपितु विश्व के अन्य धर्मो में ही आधारभूत जीवन मूल्यों के रूप में स्वीकार्य है। इस्लाम, ईसाई धर्म व बौद्ध धर्म में व्यक्तिपरक नैतिकता पर विशेष बल दिया गया है जो एक व्यक्ति के दूसरे व्यक्ति के साथ व्यवहार को संयमित करती है।

3.8 धर्म की ईसाई संकल्पना (Concept of Religion in Christianity) –

ईसाई धर्म एकेश्वरवादी धर्म हैं जिसकी उत्पति आज से 2018 वर्ष पूर्व ईसा मसीह ने की थी। ईसाईयों में बहुत से समुदाय हैं मसलन कैथोलिक, प्रोटैस्टैंट, आर्थोडोक्स, मॉरोनी, एवनजीलक आदि। यह धर्म विश्व की जनसंख्या की दृष्टि से सर्वाधिक अनुयायियों वाला धर्म हैं। इसके सिद्धान्त मूलतः अहिंसा पर बल देते हैं। पश्चिमी ईसाई राजनीतिक विचारधारा में धर्म और राजनीति दोनों की समानान्तर सत्ता को स्वीकार किया गया है।

3.9 इस्लाम में धर्म की संकल्पना (Concept of Religion in Islam) –

इस्लाम दुनिया के नवीनतम धर्मों में से एक है। इस्लाम धर्म का प्रादुर्भाव 622 ई. में मोहम्मद पैगम्बर ने किया। आज दुनिया की लगभग 1.5 अरब आबादी इस्लाम के अनुयायियों की है। दुनिया की कुल आबादी का पाँचवा भाग मुस्लिम है। भौगोलिक दृष्टि से विश्व के केन्द्रीय भू–भाग पर इस्लाम का आधिपत्य है। इस्लाम पूर्व से पश्चिम तक एक जाल की तरह फैला हुआ है। मोरक्कों से मिडांनाओं तक प्रसारित इस्लाम में उत्तर के उपभोक्ता देशों से लेकर दक्षिण के वंचित देश शामिल है। यह अमरीका, यूरोप और रुस को जोड़ने वाले महत्त्वपूर्ण सामरिक चौराहे पर स्थित है। वहीं दूसरी तरफ अश्वेत अफ्रीका, भारत और चीन तक इस्लाम का बोलबाला है। इस्लाम किसी एक राष्ट्रीय संस्कृति व राष्ट्रीय सीमा की परिधि में बंधा हुआ धर्म नहीं है बल्कि एक सार्वभौमिक शक्ति के रूप में पूरी दुनिया में फैला हुआ है।

622 ई. में इस्लाम की उत्पति से लेकर अब तक इस्लाम धर्म के अनुयायियों में लगातार वृद्धि हो रही है। इस्लाम का आविर्भाव सातवीं शताब्दी में एक छोटे से समुदाय के रूप में

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

मक्का व मदीना में हुआ था। अपने दो अनुयायियों के साथ मोहम्मद पैगम्बर ने इस धर्म की नींव रखी। अपने उद्भव के कुछ ही वर्षों में इस्लाम के बैनर तले सभी अरब जातियों को एकजुट कर दिया गया। अपने प्रादुर्भाव की पहली दो शताब्दियों के भीतर इस्लाम का प्रभाव वैश्विक स्तर पर फैल गया। इस्लाम ने अपने निरन्तर विजय अभियान के माध्यम से सम्पूर्ण मध्य पूर्व उत्तरी अफ्रीका, अरेबियन प्रायद्वीप, ईरानी भू–भाग, मध्य एशिया और सिन्धु घाटी के क्षेत्र को अपने प्रभाव क्षेत्र में ले लिया। यह विजय प्रक्रिया निर्बाध रूप से जारी रही और बाद में इस्लाम को प्राचीन मिश्र और मेसोपोटामिया की सभ्यताएँ विरासत में प्राप्त हुई। इस्लाम ने यूनान के दर्शन और विज्ञान को स्वीकार कर अपनी सुविधा के अनुसार सुधार करते हुए उसका इस्लामीकरण कर दिया। फारस की शासन कला की बारीकियों को सीखते हुए उन्होंने यहूदियों के कानून की तार्किकता और ईसाई धर्म के तरीकों को भी अपना लिया। पारसी द्वैतवाद और मेनेशिया की युक्तियों को इस्लाम में आत्मसात कर लिया गया। इस्लाम में अपनी पूर्वी विजय यात्रा में महायान बौद्धों और भारतीय दर्शन और विज्ञान को स्वीकारने से भी कोई परहेज नहीं किया। इस्लाम के महान महानगरीय केन्द्र बगदाद, काहिरा, कोरडोबा, दमिश्क और समरकंद ऐसी भट्टियों में परिवर्तित हो गए जिसमें इन सांस्कृतिक परम्पराओं की ऊर्जा को नए धर्म और राजनीति में रूपान्तरित किया जाने लगा।

इस्लाम धर्म के आध्यात्मिक और लौकिक, अलौकिक और व्यावहारिक, धार्मिक और धर्म निरपेक्ष में भेद नहीं करता। जहाँ पश्चिमी ईसाई राजनीतिक विचारधारा में धर्म और राजनीति दोनों की समानान्तर सत्ता को स्वीकार किया गया है वहीं इस्लाम धर्म और राजनीति के मध्य कोई भेद नहीं करता बल्कि दोनों को एक दूसरे से गुंथा हुआ मानते हैं। इस्लाम राज्य व शासन शक्ति व सत्ता नियम और वफादारी में व्यापक विविधता को स्वीकार करता है। यह एकता के सिद्धान्त पर आधारित है। हालांकि इस्लाम में ऐसी राजनीतिक सोच की कार्य योजना को तैयार करना अभी संभव नहीं हो सका है जो इसके विभिन्न सांस्कृतिक प्रस्तरों के ऊपर खड़ा हो। पश्चिम के विपरीत इस्लाम धर्म और राज्य के सम्बन्धित क्षेत्र एक दूसरे से आच्छादित है।

निष्कर्ष (Conclusion)

धर्म एक विश्वास एवं आस्था है, भारतीय संस्कृति से इसका प्रगाढ़ सम्बन्ध है। भारतीय संस्कृति में सांस्कृतिक और सामाजिक गतिविधियों का मूलाधार धर्म ही रहा है। प्राचीन काल से भारत के ऋषियों में अज्ञात शक्ति को जानने की जिज्ञासा रही है और धर्म के प्रति आस्था एवं अनुसंधान की प्रक्रिया रही है। धर्म मानव को चिन्तन, व्यवहार और कर्म को उचित और अनुचित का भेद कराने में सफल रहा है। संसार के प्रत्येक भाग में भगवान की कल्पना किसी न किसी रूप में अवश्य की गई है तथा धर्म के बदलते स्वरूप को भी देखा गया है। आज भौतिकवादी युग में धर्म व्यक्ति का वैयक्तिक एवं ऐच्छिक अंश ही रह गया है। आधुनिक काल में वैज्ञानिक आविष्कारों और उत्पन्न होने वाले प्रभावों के कारण सामाजिक जीवन द्रुत गति से परिवर्तित हो रहा है। भारतीय जनमानस पाश्चात्य संस्कृति, साहित्य तथा दर्शन से परिचित हुए तथा उससे प्रभावित हुए, जिसके फलस्वरूप हमारे देश की सामाजिक तथा सांस्कृतिक मान्यताओं में भी परिवर्तन आया है। वैज्ञानिकों की उपलब्धियों ने मानव का दृष्टिकोण परिवर्तित कर दिया है और विज्ञान ने धार्मिक अन्धविश्वासों, रूढ़ियों और आडम्बरों का विरोध कर वास्तविकता से परिचित करा दिया है। 20वीं शताब्दी के अन्त में पूरे विश्व में धर्म का राजनीति में प्रयोग होने से धर्मान्धता में बढ़ोतरी हुई है और कट्टरपन ने आतंकवाद जैसी दुष्प्रवृत्तियों को जन्म दिया है। भारतीय धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र की नींव धार्मिक सहिष्णुता, धार्मिक सद्भाव व नैतिकता पर आधारित है और हिंसा के लिए यहाँ कोई स्वीकार्यता नहीं है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- धर्म मनुष्य में पहले से व्याप्त देवत्व व आध्यात्मिकता का विस्तार मात्र हैं।
- विश्व की अधिकांश राजनीतिक व्यवस्थाओं में धर्मनिरपेक्षता को नीति के रूप में स्वीकार करने पर बल दिया जाता है।
- विश्व के विभिन्न भागों में काल, स्थान व संस्कृति के अनुरूप कई धर्मों का उद्भव व विकास हुआ।
- समय, स्थान और सांस्कृतिक व आध्यात्मिक परिस्थितियों के परिवर्तन से धर्मों में भी परिवर्तन आये।
- सभी धर्मों ने मूलतः एकता के बुनियादी तथ्यों एवं मूल्यों की बात की है।
- वर्तमान समस्या अलग–अलग धर्मों और मतों में एकता स्थापित करने की चेष्टा की हैं।
- धर्म आत्मा के उन्नयन के लिए आध्यात्मिक पक्ष पर बल देता है।
- धर्म, जीवन को धर्म निरपेक्षता की ओर अग्रेषित करें।
- भारतीय संस्कृति और दर्शन में धर्म सदैव एक महत्त्वपूर्ण संकल्पना रही हैं।
- धर्म का सबसे पहले आगाज पूर्वी संस्कृतियों में हुआ।
- भारत में धर्म को कर्त्तव्य, अहिंसा, न्याय सदाचरण तथा सद्गुण के अर्थ में मान्यता प्राप्त हैं।
- धर्म उन्नति और कल्याण में साधक होता है।
- अंग्रेजी में धर्म का समानान्तर शब्द Religion (रिलिजन) है, जिसका अर्थ है – आस्था, विश्वास अथवा अपनी मान्यता।
- धर्म सर्वत्र पवित्र माना गया है, लेकिन धार्मिक पवित्रता सापेक्षवादी है।
- धार्मिक मतों व पंथों ने अपनी व्यक्तिगत श्रेष्ठता को स्थापित करने के लिए एक–दूसरे से लड़ना–भिड़ना शुरु कर दिया है। इस तरह की आपसी विरोध, विद्वेष

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

कलह की प्रवृत्ति ने धार्मिक संघर्ष की स्थिति उत्पन्न कर दी है।

- आज के परिप्रेक्ष्य में मानवता के धर्म को सबसे श्रेष्ठ धर्म समझा जाये।
- एक धर्म तभी उपयोगी है जब वह अन्य सादृश धर्मों से एकरूपता स्थापित करता है।
- सभी धर्मों के समान मूल्यों से ही विश्व में ईश्वरीय राज्य की स्थापना सम्भव है।
- जब–जब धर्म व राजनीति का नकारात्मक संसर्ग हुआ हैं, तब–तब राजनीति ने धर्म का दुरूपयोग किया हैं।
- भारतीय परिप्रेक्ष्य में धर्म निरपेक्षता का अर्थ पाश्चात्य धर्म से भिन्न है।
- भारतीय संकल्पना में 'धर्म' केवल लौकिक धर्म नहीं हैं।
- धर्म और अहिंसा का अटूट सम्बन्ध हैं।
- भारत में धर्म का संबंध साधनापक्ष एवं आचारपक्ष से हैं जिसका लक्ष्य आत्मा का उत्थान हैं।
- याज्ञवल्क्य ने धर्म के नौ लक्षण गिनाये है।
- राष्ट्र धर्म सर्वोपरि है
- ईसाई धर्म एकेश्वरवादी धर्म है
- ईसाई राजनीतिक विचारधारा में धर्म और राजनीति दोनों की समानान्तर सत्ता को स्वीकार किया गया है।
- इस्लाम दुनिया के नवीनतम धर्मों में से एक है।
- इस्लाम धर्म के आध्यात्मिक और लौकिक, अलौकिक और व्यावहारिक, धार्मिक और धर्म निरपेक्ष में भेद नहीं करता
- इस्लाम धर्म और राजनीति के मध्य कोई भेद नहीं करता बल्कि दोनों को एक दूसरे से गुंथा हुआ मानता हैं।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न –

1. ''धर्म मनुष्य में पहले से व्याप्त देवत्व व आध्यात्मिकता का विस्तार मात्र है'' यह कथन किसका है –
   (अ) कन्फ्यूशियस (ब) स्वामी विवेकानन्द
   (स) प्लेटो (द) महात्मा गाँधी ( )
2. मैथिलीशरण गुप्त किस हृदय को पत्थर मानते हैं –
   (अ) धर्म विहीन हृदय।
   (ब) स्वदेश का प्यार विहीन हृदय।
   (स) शल्यक्रिया वाला हृदय
   (द) इनमें से कोई नहीं ( )
3. मनु स्मृति में कौनसा लक्षण धर्म के विरुद्ध माना गया है–
   (अ) क्षमा (ब) धैर्य
   (स) संचय करना (द) क्रोध नहीं करना ( )
4. धर्म निरपेक्ष राज्य से तात्पर्य है –
   (अ) धर्म विहीन राज्य
   (ब) राज्य एक धर्म को मान्यता दें
   (स) राज्य की दृष्टि में सभी धर्म समान हो
   (द) धार्मिक राज्य ( )
5. इस्लाम धर्म के संस्थापक है–
   (अ) पैगम्बर मोहम्मद (ब) अबू बकर
   (स) हसन व हुसैन (द) मोहम्मद बिन कासिम ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. आध्यात्मिकता को धर्म का अभिकेन्द्र किस विद्वान् ने माना है?
2. धर्म शब्द का अंग्रेजी अनुवाद लिखें।
3. इस्लाम धर्म की स्थापना किस वर्ष मानी जाती है?
4. ईसाई धर्म के प्रवर्तक कौन थे?
5. गौतम बुद्ध ने किस धर्म का प्रवर्तन किया ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. धर्म क्या है?बताइए।
2. धर्म निरपेक्षता की अवधारणा स्पष्ट कीजिए।
3. धर्म और नैतिकता में सम्बन्ध बताइए।
4. ईसाई धर्म में धार्मिक अवधारणा क्या है?
5. इस्लाम धर्म के सर्वाधिक प्रसार वाले पाँच देशों के नाम लिखिए।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. धर्म और राजनीति के अन्तर्सम्बन्धों की व्याख्या कीजिए।
2. इस्लाम में धर्म एवं राजनीति के संबंधों का विवेचन कीजिए।

बहुचयनात्मक प्रश्नों के उत्तर

1. ब 2. ब 3. स 4. स 5. अ

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

4. स्वतंत्रता एवं समानता
(Liberty & Equality)

स्वतंत्रता (Liberty)

स्वतंत्रता शब्द अंग्रेजी के 'लिबर्टी' (LIBERTY) शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है, जिसका अर्थ है– बंधनों का अभाव या मुक्ति। यह इच्छानुसार कार्य करने की छूट है। व्यापक रूप में स्वतंत्रता एक शब्द नहीं आन्दोलन है। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में असंख्य लोगों द्वारा अपना प्राणोत्सर्ग स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए किया गया पवित्र त्याग था। अमेरीकी स्वतंत्रता संग्राम हो या फ्रांस की राज्य क्रान्ति, सभी का केन्द्रीय पक्ष स्वतंत्रता प्राप्ति ही था। ' संसद का इतिहास स्वतंत्रता के लिए संघर्ष का इतिहास रहा है। ' एक सभ्य राजव्यवस्था की प्रथम कसौटी एवं लोकतंत्र का बीजमंत्र मानी जाने वाली यह अवधारणा मनुष्य के जीवन में कितनी महत्त्वपूर्ण है, पैटिक हेनरी के इन शब्दों से स्पष्ट हो जाती है– ' मुझे स्वतंत्रता दीजिए या मृत्यु। ' बाल गंगाधर तिलक के ये शब्द स्वतंत्रता के लिए अनवरत संघर्ष के प्रतीक है – ' स्वतन्त्रता मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है, और मैं इसे लेकर रहूँगा। ' इतिहासकार ' रिची ' के अनुसार ' जीवन के अधिकार ' के बाद साधारणतया स्वतंत्रता के अधिकार का नाम लिया जाता है और बहुत से व्यक्तियों के लिए प्राथमिक और सबसे अधिक आवश्यक अधिकार है। आदर्श दृष्टिकोण में मनुष्य की स्वतंत्रता की खोज मानव इतिहास की केन्द्रीय धारा और मानवमात्र की सर्वश्रेष्ठ आकांक्षा रही है, इसकी पूर्ति हेतु वह सदैव प्रयत्नशील रहता है। यह अन्य साध्य की प्राप्ति हेतु साधन मात्र नहीं बल्कि स्वयं सर्वोच्च साध्य है। इस साध्य की प्राप्ति हेतु व्यक्ति अपने जीवन का सर्वोच्च बलिदान देने को तत्पर रहता है।

4.1 स्वतंत्रता का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Liberty)

जिस शब्द या आन्दोलन के इर्द–गिर्द मानव सभ्यता व्याकुल है आखिर वह है क्या ? केवल बंधनों का अभाव ही स्वतंत्रता है तो मनुष्य परस्पर संघर्षों से ही नष्ट हो जाएगा। सबल या सक्षम ही स्वतंत्र होंगे बाकी उनके अधीन, तो फिर स्वतंत्रता क्या ? स्वतंत्रता व्यक्ति की अपनी इच्छानुसार कार्य करने की शक्ति का नाम है, इस दौरान दूसरे व्यक्तियों की इसी प्रकार की स्वतंत्रता में कोई बाधा नहीं पहुँचे। इस प्रकार स्वतंत्रता के दो विचार हुए – एक बंधनों का अभाव, दूसरा युक्तियुक्त बंधनों का होना। इन दोनों विचारों पर दृष्टिपात आवश्यक है।

स्वतंत्रता का नकारात्मक अर्थ – यह वह स्थिति है जिसमें कोई बन्धन नहीं होता है। व्यक्ति को मनमानी करने की छूट हो। सामाजिक समझौतावादी विचारक, हाब्स के अनुसार ' स्वतंत्रता का अभिप्राय निरोध व नियंत्रण का सर्वथा अभाव है।' रुसो भी इसी अवधारणा से प्रभावित था। व्यक्तिवादी विचारक भी स्वतंत्रता के इसी स्वरूप का समर्थन करते हैं। जे.एस. मिल इसी वर्ग में शामिल चिंतक है जो कहते है ''अंतःकरण, विचार, धर्म, प्रकाशन, व्यवसाय, दूसरों से सम्बन्ध बनाने के क्षेत्र में व्यक्ति को निर्बाध छोड़ देना चाहिए।''

इसी क्रम में मिल कहता है– राज्य को व्यक्ति के निजी कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। नकारात्मक अवधारणा मानती है कि –

1. प्रतिबन्धों का अभाव ही स्वतंत्रता है।
2. राज्य का कार्यक्षेत्र बढ़ने से व्यक्ति की स्वतंत्रता सीमित होती है।
3. कम से कम शासन करने वाली सरकार अच्छी सरकार है।
4. मानव विकास के लिए खुली प्रतियोगिता का सिद्धान्त हितकर है।
5. सरकार द्वारा समर्थित संरक्षण व्यक्तिगत हित में ठीक नहीं है।

वैश्वीकरण के वर्तमान सभ्य युग में, जहाँ मनुष्य परस्पर निर्भर है, स्वतंत्रता का यह अर्थ तार्किक नहीं है। समाज में रहते हुए मनुष्य को अनेक मर्यादाओं का पालन करना पड़ता है। वह असीमित स्वतंत्रता का उपभोग नहीं कर सकता।

स्वतंत्रता का सकारात्मक अर्थ –

सकारात्मक स्वतंत्रता की अवधारणा कल्याणकारी राज्य एवं आदर्शवादी विचारधारा के साथ जुड़ी हुई है। जहां नकारात्मक स्वतंत्रता राज्य के न्यूनतम कार्यक्षेत्र की समर्थक है, सकारात्मक स्वतंत्रता राज्य की कल्याणकारी भूमिका को आवश्यक मानती है। इसके अनुसार आर्थिक विषमता की स्थिति में कानूनों का अभाव स्वतंत्रता की गारंटी नहीं होता है। राज्य अपनी सकारात्मक कार्रवाई द्वारा वंचित तबकों के लिए ऐसी सामाजिक–आर्थिक स्थितियां उत्पन्न करता है, जिसमें व्यक्ति इन स्वतंत्रताओं का सचमुच उपयोग कर सके। इसी क्रम में आदर्शवादी विचारधारा यह स्थापित करती है कि स्वतंत्रता का अर्थ बंधनहीनता नहीं है बल्कि यह स्वछंदता तो मनुष्य को अधःपतित कर पशु तुल्य बना देगी। मनुष्य के तात्विक उत्कर्ष के लिए जरूरी है कि उसकी स्वतंत्रता पर राज्य द्वारा 'उचित' बंधन लगाए जाए, तभी वह सच्ची स्वतंत्रता होगी। स्वतंत्रता सकारात्मक स्वरूप में इसकी पक्षधर है कि –

1. स्वतंत्रता पर युक्तियुक्त प्रतिबन्ध आवश्यक है।
2. समाज एवं व्यक्ति के हित परस्पर निर्भर है।
3. स्वतंत्रता का सही स्वरूप राज्य के कानून पालन में है।
4. राजनीतिक एवं नागरिक स्वतंत्रता का मूल्य आर्थिक स्वतंत्रता के बिना निरर्थक है।
5. स्वतंत्रता के अस्तित्व को स्वीकार करने के लिए दूसरों की स्वतंत्रता को मान्यता देना आवश्यक है।
6. स्वतंत्रता व्यक्ति सर्वांगीण विकास की परिस्थितियाँ उत्पन्न करती है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

4.2 स्वतंत्रता के विविध रूप / प्रकार (Various Kinds of Liberty)

1. **प्राकृतिक स्वतंत्रता (Natural Liberty) –** मनुष्य को स्वतंत्रता का यह रूप मनुष्य या किसी मानवीय संस्था से प्राप्त नहीं होता बल्कि यह प्रकृति प्रदत्त है। यह प्रकृति द्वारा मनुष्य के जन्म के साथ ही उसके व्यक्तित्व में निहिंत है। व्यक्ति स्वयं भी इसका हस्तान्तरण नहीं कर सकता है। यह स्वतंत्रता राज्य के अस्तित्व में आने से पूर्व की अवस्था है। इस विचार के समर्थकों का मानना है कि राज्य की स्थापना के साथ ही यह स्वतंत्रता धीरे–धीरे विलुप्त हो जाती है। रुसों ने इस सम्बन्ध में कहा है – ' मनुष्य स्वतंत्र जन्म लेता है किन्तु वह सर्वत्र बन्धनों में जकड़ा रहता है। ' सभी समझौतावादी विचारक इस स्वतंत्रा के समर्थक थे।

2. **व्यक्तिगत स्वतंत्रता (Personal Liberty) –** मनुष्य को अपने निजी जीवन के कार्यों में स्वतंत्रता होनी चाहिए। उसके व्यक्तिगत कार्यों पर केवल समाज हित में ही बंधन लगाए जा सकते हैं। लोकतांत्रिक देशों में नागरिकों की स्वतंत्रता का विशेष महत्त्व है। उन्हें अपनी पसन्द, विचार, अभिव्यक्ति और मूल्यों के अनुसार जीवन जीने की स्वतंत्रता होती है। वेशभूषा, खान–पान, रहन–सहन, परिवार, धर्म आदि क्षेत्रो में व्यक्ति को पूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिए। व्यक्तिगत स्वतंत्रता मनुष्य की जीवन शैली से सम्बन्धित है, इसका प्रभाव जैसे ही समाज पर पड़ना प्रारंभ हो जाता है इस पर नियंत्रण अपेक्षित है।

3. **नागरिक स्वतंत्रता (Civil Liberty) –** एक नागरिक होने के कारण मनुष्य को उस देश में मिलने वाली वे स्वतंत्रताएँ जिन्हे समाज स्वीकार करता है और राज्य मान्यता प्रदान कर संरक्षण प्रदान करता है को नागरिक स्वतंत्रता कहा जाता है। हमारे देश में ये स्वतंत्रताएँ मूल अधिकारों के रूप में संविधान में समाहित की गई है। गेटिल के अनुसार, ''स्वतंत्रताएँ उन अधिकारों और विशेषाधिकारों को कहते हैं, जिनको राज्य अपने नागरिकों के लिए उत्पन्न करता है और रक्षा करता है।''

4. **राजनीतिक स्वतंत्रता (Political Liberty) –** राज्य के कार्यों व राजनीतिक व्यवस्था में हिस्सेदारी का नाम राजनीतिक स्वतंत्रता है। गिलक्राइस्ट इसे लोकतंत्र का दूसरा नाम बताते हैं। यह वह स्वतंत्रता है जिसमें प्रत्येक नागरिक को मतदान करने, चुनाव में हिस्सा लेने एवं सार्वजनिक पदों पर नियुक्ति पाने का अधिकार हो।

5. **आर्थिक स्वतंत्रता (Economic Liberty) –** आर्थिक स्वतंत्रता से अभिप्रायः है कि व्यक्ति का आर्थिक स्तर ऐसा होना चाहिए, जिसमें वह स्वाभिमान के साथ, बिना वित्तीय चुनौतियों का सामना किए, स्वयं व परिवार का जीवन निर्वाह कर सके। यह आर्थिक सुरक्षा भी है। इसमें आर्थिक आधार पर विषमताओं को कम करने के प्रयास भी शामिल है, जिसमें शोषण का दायरा–न्यूनतम हो, व्यक्ति आर्थिक गुलामी की अवस्था में नहीं हो, सभी को आर्थिक उन्नति के समान अवसर प्राप्त हो, व्यवसाय चुनने एवं रोजगार की स्वतंत्रता हो, जिससे वह गरिमापूर्ण जीवन जी सके।

6. **धार्मिक स्वतंत्रता (Religious Liberty) –** इसका सम्बन्ध अन्तःकरण से है। यह व्यक्ति को किसी भी धर्म को मानने, आस्था व आचरण की छूट देता है। इस स्वतंत्रता में धर्म के संस्कार, रीति–रिवाज पूजा के तरीके, संस्थाओं के गठन व धर्म के प्रचार की आजादी है। धर्म के नाम पर कानून व्यवस्था भंग करना या बलात् धर्म परिवर्तन की अनुमति इस स्वतंत्रता में नहीं है।

7. **नैतिक स्वतंत्रता (Moral Liberty) –** इसका सम्बन्ध व्यक्ति के चरित्र, नैतिकता एवं औचित्यपूर्ण व्यवहार से है। अंतःकरण एवं नैतिक गुणों से प्रभावित होकर जब व्यक्ति कार्य करता है तो वह नैतिक स्वतंत्रता है। स्वार्थ, लोभ, क्रोध, घृणा, दुर्भाव जैसी चारित्रिक दुर्बलताओं के वशीभूत होकर कार्य करने वाला व्यक्ति नैतिक परतंत्रता की श्रेणी में आता है।

8. **सामाजिक स्वतंत्रता (Social Liberty) –** सामाजिक स्वतंत्रता, सामाजिक समानता व न्याय की जननी मानी जाती है। मनुष्य के साथ जाति, वर्ग, वर्ण, लिंग, धर्म, नस्ल आदि के आधार पर भेदभाव नहीं किया जाना व समान व्यवहार करना सामाजिक स्वतंत्रता है। हमारे संविधान में समता का अधिकार इसी स्वतंत्रता को पुख्ता करने के लिए दिया गया है। कानून के समक्ष समता व समान कानूनी संरक्षण प्राप्त हो, यही सामाजिक स्वतंत्रता है।

9. **राष्ट्रीय स्वतंत्रता (National Liberty) –** कोई राष्ट्र जब संप्रभु राज्य बन जाता है तो यह राष्ट्रीय स्वतंत्रता का परिचायक है, अर्थात् वह अन्य देशों के आदेश पालन से मुक्त हो जाते हैं। उपनिवेशवाद इसका सबसे बड़ा शत्रु है। राष्ट्रीय स्वतंत्रता के बिना व्यक्ति की अन्य स्वतंत्रताएँ गौण है।

10. **संवैधानिक स्वतंत्रता (Constitutional Liberty) –** यह नागरिकों को संविधान द्वारा प्रदत्त की जाती है, संविधान ऐसी स्वतंत्रताओं की रक्षा की गारन्टी देता है, जिससे शासन भी इनमें कटौती नहीं कर सकता है। भारतीय संविधान का अनुच्छेद 32 नागरिकों को संवैधानिक उपचारों का अधिकार देता है।

4.3 स्वतंत्रता के लिए आवश्यक शर्ते (Essential Conditions for Liberty) –

मानवीय स्वतंत्रता के अनुरक्षण हेतु कुछ स्वाभाविक परिस्थितियाँ समाज में आवश्यक है, उनके अभाव में स्वतंत्रता का अस्तित्व संकट में पड़ जाता है। ये है –

1. व्यक्ति की स्वतंत्रता के प्रति निरन्तर जागरुकता।
2. नागरिक की निडरता एवं साहस।
3. समाज में लोकतांत्रिक भावनाओं का पनपना।
4. स्वतंत्रताएँ लोकतांत्रिक शासन में ही पनप सकती है।
5. साथी नागरिकों को विशेषाधिकार प्राप्त नहीं होना।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

6. आर्थिक दृष्टि से समता मूलक समाज।
7. पक्षपात विहीन विधि का शासन।
8. प्रेस की स्वतंत्रता।
9. निष्पक्ष जनमत।
10. समाज में शान्ति व सुरक्षा का वातावरण।
11. स्वतंत्र– न्यायपालिका।
12. संविधानवाद।

4.4 स्वतंत्रता के मार्ग की प्रमुख बाधाएँ (Hurdles in the Way of Liberty) –

1. अपनी स्वतंत्रता के प्रति जागरुकता का अभाव।
2. अशिक्षा।
3. गरीबी तथा संसाधनों का अभाव
4. न्यायपालिका के कार्यों में कार्यपालिका का हस्तक्षेप
5. संविधान व कानूनों के प्रति सम्मान का अभाव
6. अराजकता का वातावरण।
7. कार्यपालिका का स्वेच्छाचारी आचरण।
8. राष्ट्रविरोधी तत्व तथा आतंकवाद।

समानता (Equality)

समानता की अवधारणा की उत्पति विशेषाधिकार प्रथा के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में हुई है। प्रकृति ने सभी मनुष्यों को जन्म से ही समान उत्पन्न किया है। असमानता का निर्माण मानव निर्मित परिस्थितियों के कारण होता है। मानव अधिकारों के घोषणा–पत्र में कहा गया है कि '' मनुष्य स्वतंत्र और समान पैदा हुए है और वे अपने अधिकारों के विषय में भी स्वतंत्र और समान रहते हैं। '' अमेरीका की स्वतंत्रता की घोषणा 1776 में भी कहा गया है कि ' हम इस सत्य को स्वयंसिद्ध मानते हैं कि प्रकृति ने सभी मनुष्यों को समान उत्पन्न किया है। '

4.5 समानता का अर्थ (Meaning of Equality)–

समानता उस परिस्थिति का नाम है, जिसके कारण सभी व्यक्तियों को अपने व्यक्तित्व के विकास हेतु समान अवसर प्राप्त हो सकें। साथ ही सामाजिक विषमता के कारण उत्पन्न होने वाली असमानताओं को समाप्त किया जा सकें। समाज में सभी व्यक्तियों को एक समान किए जाने की अवधारणा संभव नहीं है। प्रकृति ने सभी लोगों की शारीरिक एवं मानसिक रूप से समान योग्यताएँ भी नहीं दी है। लास्की के अनुसार '' समानता का अर्थ यह नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति के साथ एक जैसा व्यवहार किया जाए या प्रत्येक व्यक्ति को समान वेतन दिया जाए। '' यदि एक मजदूर का वेतन प्रसिद्ध वैज्ञानिक या गणितज्ञ के बराबर कर दिया जाए तो इससे समाज का उद्देश्य ही नष्ट हो जाएगा इसलिए समानता का यह अर्थ है कि 'कोई विशेष अधिकार वाले वर्ग नहीं रहे और सबको उन्नति के समान अवसर प्राप्त हों।'

4.6 समानता के आधारभूत तत्व (Basic Elements of Equality) –

1. समान लोगों के साथ समान व्यवहार ही समानता है।
2. सभी लोगों को विकास के समान अवसर प्राप्त हों।
3. समाज एवं राज्य सभी लोगों के साथ समान आचरण एवं व्यवहार करें।
4. मानवीय गरिमा तथा अधिकारों को समान संरक्षण प्राप्त हों।
5. समाज में किसी व्यक्ति के साथ जाति, धर्म, भाषा, वर्ग, वर्ण, लिंग, निवास स्थान, सम्पत्ति, राष्ट्रीयता आदि के आधार पर भेदभाव नहीं किया जाए।
6. प्रत्येक व्यक्ति को समाज में समान महत्त्व दिया जाए।

4.7 समानता के प्रकार (Kinds of Equality)–

समानता के विविधि प्रकारों का जिक्र राजनीतिक चिंतकों ने किया है, जिन्हें समेकित रूप में हम इन रूपों में देख सकते हैं–

1. **नागरिक समानता (Civil Equality) –** राज्य के सभी नागरिकों को नागरिक अधिकार प्राप्त हो तथा राज्य अपने नागरिकों के साथ किसी तरह का भेदभाव नहीं करे, जिससे नागरिकों के मन में राज्य के प्रति विश्वास की भावना कायम हो सके। विधि के शासन की स्थापना द्वारा नागरिक समानता को स्थापित किया जा सकता है। हमारे देश में संविधान द्वारा मौलिक अधिकारों के अन्तर्गत अनुच्छेद 14 द्वारा सभी नागरिकों को विधि के समक्ष समानता तथा विधि का समान संरक्षण का अधिकार दिया गया है।

2. **राजनीतिक समानता (Political Equality) –** राज्य के सभी नागरिकों को बिना किसी भेदभाव के राज्य के कार्यों में भाग लेने की समानता हो। सभी वयस्क नागरिक जो अन्य योग्यताएँ पूर्ण करते हों, को समान रूप से मताधिकार, निर्वाचन हेतु अभ्यर्थना देने, सार्वजनिक पदों को प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त हो। राजनीतिक समानता प्रजातंत्र की आधारशिला है।

3. **सामाजिक समानता (Social Equality) –** सामाजिक दृष्टि में सभी व्यक्ति समान हो, किसी को विशेषाधिकार प्राप्त नहीं हो। समाज में सभी को विकास के समान अवसर व सहभागिता मिलें। इससे सामाजिक न्याय की अवधारणा परिपक्व होगी।

4. **प्राकृतिक समानता (Natural Equality) –** इस अवधारणा के प्रतिपादक मानते हैं कि प्रकृति ने सभी मनुष्यों को समान बनाया है। उनमें एक जैसा शरीर एवं बुद्धि होती है। कालान्तर में उनमें जो अन्तर दिखता है वह सामाजिक परिस्थितियों की भिन्नता का परिणाम है।

प्राकृतिक समानता का सिद्धान्त सबसे ज्यादा मतवैभिन्य युक्त है। प्रकृति सभी को समान पैदा भी नहीं करती और न ही

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

प्रकृति से सभी मनुष्य गुण, योग्यता, क्षमता, शक्ति, प्रतिभा, विचार आदि से समान होते हैं

5. **आर्थिक समानता (Economic Equality)** – यह समानता अन्य सभी समानताओं का आधार है। आर्थिक समानता के अभाव में राजनीतिक, नागरिक एवं सामाजिक समानता अर्थहीन है। सम्पत्ति का समान वितरण या सभी को समान वेतन, आर्थिक समानता नहीं है। यह अवसर की समानता है, अर्थात् सभी लोगों को कार्य करने के समान अवसर उपलब्ध करवाये जाए एवं सभी व्यक्तियों की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति हो।

6. **सांस्कृतिक समानता (Cultural Equality)** – राज्य द्वारा बहुसंख्यक एवं अल्पसंख्यक वर्गों के साथ समानता का व्यवहार करना, सांस्कृतिक समानता की श्रेणी में आता है। इन्हें अपनी भाषा, लिपि, संस्कृति तथा सामाजिक परिवेश के संरक्षण के समुचित अवसर प्रदान किए जाए। हमारा संविधान सांस्कृतिक समानता हेतु मौलिक अधिकार का प्रावधान करता है।

7. **कानूनी समानता (Legal Equality)** – प्रजातांत्रिक राज्यों में कानूनी समानता की स्थापना करके ही विषमता का अन्त किया जा सकता है। इसका तात्पर्य है, कानून के समक्ष समानता तथा कानूनों का समान संरक्षण। कानून के समक्ष समानता का आशय बिना किसी भेदभाव के नागरिकों को कानून के समक्ष समान समझना, जिससे विधि के शासन (Rule of law) की स्थापना हो सके। द्वितीय, कानून के समान संरक्षण का तात्पर्य है – '' एक जैसे लोगों से कानून का एक जैसा व्यवहार '' अर्थात् सभी के लिए समान कानून, समान न्यायालय व एक जैसे गुनाह पर समान दण्ड तथा कानून सभी को अपने बचाव के समान अवसर प्रदान करता है।

8. **अवसर की समानता (Equality of Opportunity)** – राज्य अपने समस्त नागरिकों को समुचित विकास के समान अवसर प्रदान करता है। राज्य जाति, धर्म, वर्ग, वर्ण, लिंग, नस्ल आदि के आधार पर बिना किसी भेदभाव के नागरिकों को अवसर की समानता प्रदान करता है।

9. **शिक्षा की समानता (Equality of Education)** –
राज्य अपने सभी नागरिकों को बिना किसी भेदभाव के समान शैक्षणिक अवसर उपलब्ध करवाता है लेकिन राज्य द्वारा समाज के कमजोर व पिछड़े वर्गों के लिए विशेष सुविधाएँ प्रदान करना समानता का हनन नहीं है।

4.8 स्वतंत्रता और समानता में सम्बन्ध (Relationship Between Equality & Liberty) –

स्वतंत्रता एवं समानता के पारस्परिक सम्बन्धों का विवेचन आवश्यक है। ये दोनों ही अवधारणाएँ व्यक्ति के जीवन को गहराई से प्रभावित करती है। किन्तु इस पर विद्वानों में मतैक्य नहीं है। पहला मत इन्हें परस्पर विरोधी मानता है तो दूसरा पूरक।

स्वतंत्रता एवं समानता परस्पर विरोधी है – इस अभिमत के समर्थक मानते हैं कि इनमें कोई साम्यता नहीं है। लार्ड एक्टन का मानना है कि समानता के आवेश ने स्वतंत्रता की आशा को व्यर्थ कर दिया है। इनकी मान्यता है कि – प्रकृति में ही असमानता विद्यमान है। योग्य तथा अयोग्य में समानता स्थापित करने का कोई औचित्य नहीं है और न ही वास्तविक रूप में समानता स्थापित की जा सकती है। व्यवहार में दोनों में से किसी एक परिस्थिति को स्थापित किया जा सकता है।

दूसरा विचार दोनों को एक–दूसरे का पूरक मानता है – रुसो तो यहाँ तक कहता है कि ' समानता के बिना स्वतंत्रता जीवित नहीं रह सकती। ' पोलार्ड लिखते हैं, ' स्वतंत्रता की समस्या का एकमात्र समाधान समानता में निहित है। ' व्यक्ति के विकास हेतु दोनों ही आवश्यक है। साथ ही यह भी आवश्यक है कि दोनों अवधारणाएँ अपनी मर्यादा में रहें। महात्मा गाँधी का यह विचार समीचीन है कि – 'स्वतंत्रता का अर्थ नियत्रंण का अभाव नहीं अपितु व्यक्तित्व के विकास की अवस्थाओं की प्राप्ति है। ' नियत्रंणहीन स्वतंत्रता स्वच्छंदता है तो बन्धन युक्त स्वतंत्रता निरर्थक है।

राजनीतिक समानता के बिना स्वतंत्रता अर्थहीन हो जाएगी। नागरिकों का बड़ा समूह शासन की भागीदारी से वंचित हो जाएगा। वहीं नागरिक समानता के अभाव में स्वतंत्रता का उपभोग करने के अवसर ही नहीं मिलेंगे। दूसरी ओर सामाजिक समानता के अभाव में स्वतंत्रता कुछ लोगों का विशेषाधिकार बनकर रह जाएगी तथा आर्थिक समानता की अनुपस्थिति में सम्पति का केन्द्रीकरण पूँजीपतियों के हाथों में हो जाने से शेष समाज उन पर आश्रित हो जायेगा। हर्बर्ट डीन का यह मत दोनों के सम्बन्धों को स्पष्ट कर देता है– '' स्वतंत्रता में समानता निहित है, स्वतंत्रता तथा समानता में परस्पर कोई द्वन्द्व नहीं है और न ही ये एक–दूसरे से पृथक् हैं, वरन् एक ही आदर्श के दो तथ्य है।''

महत्त्वपूर्ण बिन्दु :–

- स्वतंत्रता शब्द अंग्रेजी के 'लिबर्टी' का हिन्दी रूपान्तरण है जिसका अर्थ है – बंधनों का अभाव।
- भारतीय स्वाधीनता संग्राम में बाल गंगाधर तिलक का उद्घोष था – ' स्वतंत्रता मेरा जन्मसिद्ध अधिकार हैं, और मैं इसे लेकर रहूँगा।'
- स्वतंत्रता के दो विचार है– बंधनों का अभाव व युक्तियुक्त बंधनों का होना।
- प्रकृति ने सभी मनुष्यों को स्वतंत्र एवं यथायोग्य समान पैदा किया है।
- राजनीतिक स्वतंत्रता लोकतंत्र की आत्मा है।
- आर्थिक स्वतंत्रता के बिना अन्य स्वतंत्रताएँ निरर्थक है।
- राष्ट्रीय स्वतंत्रता, संप्रभुता का ही दूसरा नाम है।
- राज्य की संप्रभुता व्यक्ति की स्वतंत्रता पर बंधन आरोपित नहीं करती है। वस्तुतः मनुष्य राज्य में रहकर

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

ही वास्तविक स्वतंत्रता का उपभोग कर सकता है।

- आर्थिक असमानता, न्यायपालिका पर नियंत्रण, शिक्षा का अभाव, विधि के शासन का अभाव, आतंकवाद आदि स्वतंत्रता के मार्ग की अड़चने हैं।
- स्वतंत्रता तथा समानता एक दूसरे के पूरक है।
- समानता के विविध रूप है– नागरिक, राजनीतिक, सामाजिक, प्राकृतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, कानूनी अवसर व शिक्षा की समानता।
- समानता के आंगन में ही स्वतंत्रता का पौधा पनपता है

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. स्वतंत्रता का अर्थ है –
   (अ) प्रतिबन्धों का अभाव
   (ब) कोई भी कार्य करने की छूट
   (स) कोई भी कार्य करने की शक्ति
   (द) नागरिक के सर्वांगीण विकास के लिए उपलब्ध सुविधाएँ ( )

2. इनमें से कौनसा/से वक्तव्य उचित है, सही युग्म छाँटिए –
   (I) राजनीतिक स्वतंत्रता के बिना समानता का कोई औचित्य नहीं।
   (ii) समानता, विधि के शासन में सम्भव है।
   (iii) समाज में सम्पति का सभी नागरिकों में समान वितरण हो।
   (iv) राष्ट्रीय सम्प्रभुता के बिना स्वतंत्रता कपोल कल्पना है।
   (अ) i, ii, iii (ब) i, ii, iv
   (स) ii, iii, iv (द) i, ii, iii, iv ( )

3. सामाजिक समानता को स्पष्ट करने वाला कौनसा कथन सही है –
   (I) व्यक्ति को विकास के समान अवसर।
   (ii) बिना भेदभाव के कानूनी संरक्षण।
   (iii) समाज के सभी नागरिकों की समान आय।
   (iv) जातीय आधार पर भेदभावों की समाप्ति
   (अ) ii, iii, iv (ब) i, ii, iii
   (स) i, ii, iv (द) i, iii, iv ( )

4. कौनसा विचार स्वतंत्रता का मूलमंत्र माना जाता है–
   (अ) विधि का शासन
   (ब) अराजकता का साम्राज्य
   (स) कार्यपालिका की स्वेच्छाचारिता
   (द) असाक्षरता ( )

5. किस देश के नागरिक को समानता, मौलिक अधिकार के रूप में प्राप्त है –
   (अ) भारत (ब) अफगानिस्तान
   (स) पाकिस्तान (द) श्रीलंका ( )

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. स्वतंत्रता के दो विचार कौनसे है ?
2. स्वतंत्रता के सम्बन्ध में तिलक का नारा लिखिए ?
3. लोकतंत्र की आत्मा किस स्वतंत्रता को माना गया है ?
4. अवसर की समानता का क्या तात्पर्य है ?
5. पूँजीवादी देशों में किस समानता का अभाव पाया जाता है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. स्वतंत्रता के कोई पाँच प्रकार बताइये ?
2. राजनीतिक स्वतंत्रता क्या है ?
3. समानता की अवधारणा पर लास्की के विचार लिखें।
4. 'विधि का शासन ' अवधारणा स्पष्ट कीजिए ?
5. 'अवसरों की समानता ' पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।
6. सकारात्मक स्वतंत्रता को स्पष्ट कीजिए।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. 'मुझे स्वतंत्रता दीजिए या मृत्यु' पेट्रिक हेनरी के इस कथन के संदर्भ में स्वतंत्रता की अवधारणा पर अपने विचार सविस्तार लिखिए।
2. निर्बाध स्वतंत्रता आज सम्भव नहीं है। क्या आप इस कथन से सहमत है ? स्वतंत्रता के मार्ग में आने वाली बाधाओं को सोदाहरण बताइए।
3. पूर्ण समानता स्वप्नलौकीय कल्पना है। इस अवधारणा को समानता के अर्थ, आधारभूत लक्षण व प्रकारों की व्याख्या के संदर्भ में समझाइए।
4. स्वतंत्रता व समानता के अन्तर्सम्बधों को स्पष्ट कीजिए।

बहुचयनात्मक प्रश्नों के उत्तर

1. द 2. ब 3. स 4. अ 5. अ

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

इकाई–II

आधुनिक राजनीतिक अवधारणाएँ

1. राजनीतिक समाजीकरण (Political Socialisation)

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद स्वतंत्र हुए एशिया, अफ्रीका एवं लैटिन अमेरिकी राज्यों के अध्ययन के लिए तुलनात्मक राजनीति में अनेक नवीन अवधारणाओं का विकास हुआ। व्यवहारवादी क्रान्ति के अन्तः अनुशासनात्मक उपागम पर जोर देने के कारण भी राजनीति विज्ञान में विभिन्न नवीन अवधारणाएं शामिल की गई। समाज शास्त्र एवं राजनीति विज्ञान के बढ़ते अन्तर्सम्बन्धों के फलस्वरूप कई समाजशास्त्रीय संकल्पनाएं राजनीति विज्ञान में शामिल हुई, जिनमें राजनीतिक संस्कृति, राजनीतिक सहभागिता, राजनीतिक विकास एवं राजनीतिक समाजीकरण आदि प्रमुख है।

इस तरह राजनीतिक समाजीकरण समाजशास्त्रीय संकल्पना समाजीकरण से प्रेरित है।

समाजीकरण समाज में निरन्तर चलने वाली एक प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से व्यक्ति समाज के रीति–रिवाजों, परम्पराओं, मूल्यों एवं मान्यताओं अर्थात् समाज की संस्कृति को अंगीकार कर उसका क्रियाशील सदस्य बनता है। जैसे प्रत्येक समाज अपनी संस्कृति के अनुरूप बालक को बोलना, अभिवादन का तरीका, पूजा पद्धति, पहनावा एवं खान–पान की आदतें सीखाता है।

इस प्रक्रिया को समाजीकरण कहते हैं, जिसके द्वारा बालक मानव समाज से उस विशेष समाज का सदस्य बनता है। राजनीतिक जीवन के लिए भी इसी प्रकार सीखने–सिखाने की प्रक्रिया रहती है, जिनके माध्यम से व्यक्ति में राजनीतिक समझ विकसित होती है, राजनीतिक जीवन एवं पद्धति के प्रति उसके दृष्टिकोण का विकास होता है। इस तरह जिस प्रक्रिया द्वारा व्यक्ति राजनीति के प्रति अपना ज्ञान प्राप्त करता है, उस प्रक्रिया को राजनीतिक समाजीकरण कहते हैं।

दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि राजनीतिक समाजीकरण राजनीतिक संस्कृति को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित करने का एक साधन है। वास्तव में, राजनीतिक व्यवस्था के सुचारू संचालन में इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में कुछ आदर्श होते हैं, जैसे – भारत का आदर्श लोकतांत्रिक व्यवस्था एवं स्वतंत्र समाज है, अतः भारत में राजनीतिक समाजीकरण द्वारा नागरिकों को लोकतंत्र एवं स्वतंत्र समाज के प्रति निष्ठावान बनाने का प्रयास किया जाएगा, वहीं साम्यवादी चीन का आदर्श साम्यवादी व्यवस्था एवं बन्द समाज है, इसलिए चीन के नागरिकों को राजनीतिक समाजीकरण के माध्यम से इसी अनुरुप बनाने का प्रयास किया जाता है।

राजनीतिक समाजीकरण की सर्वप्रथम व्याख्या करने वालों में हरबर्ट हाइमन प्रमुख है, जिन्होंने अपनी पुस्तक "Political Socialization" में इसके विविध पक्षों पर प्रकाश डाला। आमण्ड और पॉवेल के अनुसार, "राजनीतिक समाजीकरण वह प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से राजनीतिक संस्कृति में प्रवेश कराया जाता है तथा उनकी राजनीतिक उद्देश्यों के प्रति अभिप्रेरणाओं को बनाया जाता है"।

कावनाघ के शब्दों में, "राजनीतिक समाजीकरण वह शब्द है जो उस प्रक्रिया का वर्णन करता है, जिस प्रक्रिया के माध्यम से व्यक्ति राजनीति से संबंधित अपना ज्ञान प्राप्त करता है"।

इन परिभाषाओं का सार यह है कि राजनीतिक समाजीकरण का उद्देश्य व्यक्तियों को अपनी राजनीतिक व्यवस्था की शिक्षा प्रदान करना तथा विकसित करना है, जिससे की वे राजनीतिक व्यवस्था के सुचारू संचालन में सहायक बन सके।

1.1 राजनीतिक समाजीकरण के साधन (Tools of Political Socialization)

व्यक्ति में राजनीतिक समझ विकसित करने वाली समाज में अनेक संस्थाएं होती है, जैसे – परिवार, शिक्षण संस्थाएं, राजनीतिक एवं सामाजिक संस्थाएं, सरकारी प्रक्रियाएं, जनसंचार के साधन इत्यादि। इनमें से कुछ संस्थाएं ऐसी है जो अनायास एवं स्वाभाविक रूप से राजनीतिक समाजीकरण करती है, जबकि कुछ ऐसी होती है जो औपचारिक तरीकों से यह कार्य करती है। प्रायः खुले एवं लोकतांत्रिक समाजों में राजनीतिक समाजीकरण में अनौपचारिक प्रक्रियाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है, जबकि चीन जैसे साम्यवादी एवं पाकिस्तान जैसे कट्टरपंथी राज्यों में सरकारी तंत्रों के माध्यम से राजनीतिक संस्कृति की जबरन घूंट पिलाई जाती है। उपर्युक्त संस्थाएं किस प्रकार से यह कार्य करती है, इस पर दृष्टि डालना उपयोगी रहेगा।

1.2 परिवार (Family)

परिवार प्रथम पाठशाला मानी जाती है, जिसके माध्यम से बालक रीति–रिवाजों और परम्पराओं को सीखता हैं वह अपने माता–पिता की आज्ञा को स्वीकार करता है, जिससे उसमें सत्ता का बोध होता है। इसके अलावा सबके साथ मिलकर रहने, परिवार में सहयोग करने एवं अपनी मांगों को मनवाने के लिए किस प्रकार दबाव बनाया जाये आदि बाते

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

सीखकर वह राजनीतिक क्रियाओं की क्षमता विकसित करता है। सामान्यतः चुनावी अनुभव यह बताते हैं कि परिवार का मुखिया जिस राजनीतिक दल का समर्थक होता है, परिवार के अन्य सदस्य भी उसका अनुसरण करते हैं। इस प्रकार राजनीति के प्रति प्रारम्भिक समझ का विकास परिवार के माध्यम से ही होता है।

1.3 शिक्षण संस्थाएं (Educational Institutions)

राजनीतिक समाजीकरण में शिक्षण संस्थाओं की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। बालक परिवार में जिन राजनीतिक अभिवृत्तियों को आत्मसात करता है, शिक्षण संस्थाओं में वे और अधिक दृढ़ बन जाते हैं। विभिन्न पृष्ठभूमि के सहभागियों के साथ अनुकूलन करने की आवश्यकता से बालक राजनीतिक व्यवस्थाओं की विविधताओं और विरोधाभासों के साथ समायोजन करना सीखता है।

बालक की शिक्षा जितनी व्यापक होगी, इसकी सम्भावना ज्यादा है कि वह राजनीति में उतनी ही रुचि लेगा, उसके राजनीतिक ज्ञान का विकास होगा। लेकिन शिक्षण संस्थाओं का पाठ्यक्रम कैसा है, उसकी मित्र मण्डली कैसी है अथवा शिक्षकों का राजनीतिक व्यवस्था के प्रति दृष्टिकोण एवं वैचारिक अभिमुखीकरण कैसा है, यह सब तत्व भी राजनीतिक समाजीकरण को प्रभावित करते हैं, क्योंकि शिक्षक अपने आचरण एवं अन्य विभिन्न तरीकों से अपने विद्यार्थियों को अपनी विचारधारा की ओर प्रेरित करने का प्रयास करते हैं।

1.4 राजनीतिक दल (Political Parties)

राजनीतिक दल अपनी नीतियों, विचारधारा और कार्यक्रमों के माध्यम से समाजीकरण का महत्त्वपूर्ण कार्य करते हैं। यद्यपि लोकतांत्रिक देशों एवं साम्यवादी सर्वाधिकारवादी राज्यों में राजनीतिक दलों की भूमिका अलग–अलग होती है। ऐसे राज्यों में समाजीकरण के साधनों पर राज्य का कठोर नियंत्रण रहता है, जबकि लोकतांत्रिक राज्यों में राजनीतिक दलों की बहुलता होती है एवं वे स्वतंत्रतापूर्वक अपने–अपने विचारों के अनुरूप समाजीकरण के लिए स्वतंत्र होते हैं।

1.5 राष्ट्रीय प्रतीक (National Symbols)

विभिन्न राष्ट्रीय प्रतीक जैसे राष्ट्रीय ध्वज, राष्ट्रगीत, राष्ट्रीय गणतंत्र दिवस समारोह, सेना की परेड आदि के माध्यमों से राजनीतिक व्यवस्था तथा राजनीतिक आदर्शों के प्रति नागरिकों में आस्था के भाव पैदा किये जाते हैं।

1.6 जनसंचार के साधन (Means of Communication)

आधुनिक समय में जनसंचार के साधन समाचार पत्र, टी. वी., रेडियो आदि व्यक्ति के राजनीतिक ज्ञान को तथा उसके विचारों को दिशा देने का सशक्त माध्यम बन चुके है। भारत में ऐसा माना जाता है कि चुनाव आजकल मीडिया के दफ्तरों में से लड़े जाते हैं, क्योंकि वे विभिन्न कार्यक्रमों से जनमत को प्रभावित करने का प्रयास करते हैं।

इस तरह राजनीतिक समाजीकरण किसी देश की राजनीतिक व्यवस्था को प्रभावित करने वाला महत्त्वपूर्ण कारक होता है। समाज की राजनीतिक संस्कृति को निर्धारित करने में राजनीतिक समाजीकरण की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। किसी देश में नागरिकों व सरकार के बीच अन्तःक्रिया का अभाव पाया जाता है, वहीं किसी और देश में सरकारों के कार्यों और नीतियों को प्रभावित करने में नागरिक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं यह अन्तर वास्तव में राजनीतिक समाजीकरण के स्तर का अन्तर है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- राजनीतिक समाजीकरण का उद्देश्य व्यक्तियों को राजनीतिक व्यवस्था की शिक्षा प्रदान करना है। यही शिक्षा, राजनीतिक व्यवस्था के सुचारु संचालन में सहायक बनती है।
- राजनीतिक समाजीकरण के साधन है – परिवार, शिक्षण संस्थाएँ, राजनीतिक दल, राष्ट्रीय प्रतीक व जनसंचार के साधन।
- शिक्षण संस्थाओं में विद्यार्थी की शिक्षा जितनी व्यापक होगी, उसका राजनीतिक समाजीकरण उतना ही सुदृढ़ होगा।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. इनमें से कौनसा विचारक राजनीतिक समाजीकरण की व्याख्या करता है ?
   (अ) हरबर्ट हाइमन (ब) कावानाद्य
   (स) आमण्ड और पावेल (द) उपरोक्त सभी ( )
2. कौनसा अभिकरण राजनीतिक समाजीकरण में सहायक नहीं है–
   (अ) परिवार (ब) शिक्षण संस्था
   (स) राजनीतिक दल (द) अनियंत्रित भीड़ ( )
3. "पॉलिटिकल सोशलाइज़ेशन" पुस्तक के लेखक है–
   (अ) डेविड ईस्टन (ब) अमर्त्यसेन
   (स) हरबर्ट हाइमन (द) लिकॉक ( )

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. राजनीतिक समाजीकरण के दो अभिकरण/साधन बताओ।
2. जनसंचार के तीन माध्यम बताइए।
3. विद्यार्थी का राजनीतिक समाजीकरण किस संस्था में होता है ?

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. परिवार राजनीतिक समाजीकरण की प्रक्रिया कैसे पूर्ण करते हैं ?
2. राजनीतिक समाजीकरण में संचार माध्यमों की भूमिका बताइए।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. राजनीतिक समाजीकरण की प्रक्रिया पर एक लेख लिखिए।

बहुचयनात्मक प्रश्नों के उत्तर

1. द 2. द 3. स

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

2. राजनीतिक संस्कृति
(Political Culture)

राजनीतिक संस्कृति एक समाजशास्त्रीय अवधारणा है। किसी भी राजनीतिक व्यवस्था के सदस्यों की उस राजनीतिक व्यवस्था के प्रति अभिवृत्तियों, विश्वासों, प्रतिक्रियाओं, अपेक्षाओं और सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवहार से ही किसी व्यवस्था की राजनीतिक संस्कृति का निर्माण होता है। वस्तुतः राजनीतिक संस्कृति उस व्यापक सामान्य संस्कृति का हिस्सा है, जिसमें समाज के सदस्य अपने मूल्यों, भावनात्मक मनोवृत्तियों, विश्वासों और भावनाओं को संचारित करते हैं। इस प्रकार एक सामान्य जीवन पद्धति और दृष्टिकोण का विकास ही सामान्य संस्कृति है। राजनीतिक संस्कृति उसी सामान्य संस्कृति के राजनीतिक शासकीय दृष्टिकोण से सम्बन्धित है। चूँकि राजनीतिक व्यवस्था मनुष्य के राजनीतिक व्यवहार का परिणाम है और यह राजनीतिक व्यवहार गतिशील होता है। तदनुसार राजनीतिक संस्कृति भी स्थिर न होकर गतिशील होती है।

2.1 राजनीतिक संस्कृति का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning & Definition of Political Culture)–

राजनीतिक संस्कृति को आमण्ड ने कार्य के प्रति अभिमुखीकरण, डेविड ईस्टन ने पर्यावरण, स्पिरो ने राजनीतिक शैली नाम से उद्धृत किया है। राजनीतिक संस्कृति को विकासशील देशों के सन्दर्भ में सर्वप्रथम अवधारणा के रूप में प्रतिपादित करने वाले आमण्ड और पॉवेल ने एक व्यापक परिभाषा प्रस्तुत की है। उनके अनुसार "राजनीतिक संस्कृति किसी राजनीतिक व्यवस्था के सदस्यों की राजनीति के प्रति–व्यक्तिगत अभिवृत्तियों और उन्मुखताओं की शैली है"। एलन बॉल ने अपनी पुस्तक "आधुनिक राजनीति और सरकार" में उसे परिभाषित करते हुए कहा है कि " राजनीतिक संस्कृति का निर्माण समाज की उन अभिवृत्तियों, विश्वासों तथा मूल्यों के समूह से होता है। जिनका राजनीतिक व्यवस्था और राजनीतिक विषयों के साथ सम्बन्ध है। "

लुसियन पाई के अनुसार "राजनीतिक संस्कृति का सम्बन्ध अभिवृत्तियों, विश्वासों एवं भावनाओं के समूह से है जो राजनीतिक प्रक्रिया को व्यापकता तथा सार्थकता प्रदान करते हैं और ऐसे अन्तर्निहित विचार एवं नियम प्रदान करते हैं जो राजनीतिक व्यवस्था में व्यवहार को नियंत्रित करते हैं। "

सिडनी बर्बा के शब्दों में "राजनीतिक संस्कृति में आनुभविक विश्वासों, अभिव्यक्तात्मक प्रतीकों और मूल्यों की वह व्यवस्था निहित है जो उस परिस्थिति अथवा दशा को परिभाषित करती है जिसमें राजनीतिक क्रिया सम्पन्न होती है।"

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि राजनीतिक संस्कृति राजनीतिक व्यवस्था के प्रति सदस्यों की मनोवृत्तियों की अभिव्यक्ति है, प्रतिक्रिया है एवं अपेक्षा है।

राजनीतिक संस्कृति के घटक
(Components of Political Culture)

राजनीतिक संस्कृति में अभिमुखीकरण और राजनीतिक विषय नामक दो घटक है–

(1) अभिमुखीकरण– अभिमुखीकरण का शाब्दिक अर्थ प्रवृति या झुकाव है। आमंड और पावेल ने अभिमुखीकरण के तीन घटकों या अंगों का उल्लेख किया है जो निम्नलिखित है–

(क) ज्ञानात्मक अभिमुखीकरण अर्थात् राजनीतिक विषयों का ज्ञान और उनके अस्तित्व के प्रति सजगता।

(ख) भावात्मक अभिमुखीकरण अर्थात् इन विषयों के प्रति व्यक्तियों के मन में पैदा होने वाले भावावेग और अनुभूतियां।

(ग) मूल्यांकनात्मक अभिमुखीकरण अर्थात् उन विषयों के बारे में व्यक्ति का उचित–अनुचित या शुभ–अशुभ का मूल्यांकन।

(2) राजनीतिक विषय– अभिमुखीकरण के चार विषय है –

(क) राजनीतिक व्यवस्था

(ख) राजनीतिक संरचना

(ग) समस्याएं एवं नीतियां

(घ) राजनीतिक कर्ता के रूप में व्यक्ति

2.2 राजनीतिक संस्कृति के निर्धारक तत्व (Determinants of Political Culture)–

इतिहास – किसी भी व्यवस्था की राजनीतिक संस्कृति का निर्माण और विकास उस देश की ऐतिहासिक परम्पराओं और प्रचलित मूल्यात्मक प्रणालियों के द्वारा ही होता है। भारत की राजनीतिक संस्कृति संवैधानिक, शांतिवादी लोकतांत्रिक होगी तो वहीं कुछ अर्द्धविकसित देशों में राजनीतिक संस्कृति हिंसक अथवा अलोकतांत्रिक हो सकती है। इसी तरह इंग्लैण्ड में राजनीतिक संस्कृति वहाँ की राजनीतिक निरन्तरता का परिणाम है जबकि फ्राँस की राजनीतिक संस्कृति फ्राँस की क्रान्ति का परिणाम है।

धार्मिक विश्वास – वर्तमान में धर्म राजनीतिक संस्कृति के निर्माण में न केवल महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते है बल्कि कई बार समाज की राजनीतिक व्यवस्था व संस्थाएँ किस प्रकार की होगी, इस बात को भी निर्धारित करते हैं।

भौगोलिक परिस्थिति – देश की भौगोलिक स्थिति उपलब्ध संसाधनों, जनसंख्या की प्रकृति की भी उस देश की राजनीतिक संस्कृति के निर्माण में महत्ती भूमिका होती है। भारत जैसे विशाल भौगोलिक परिवेश वाले देश की राजनीतिक संस्कृति निश्चित रूप से एक छोटे से यूरोपीय अथवा अफ्रीकी देश से भिन्न होगी।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

सामाजिक–आर्थिक परिवेश – देश का सामाजिक, धार्मिक, जातिगत, विभिन्नता, औद्योगिकरण, रूढ़िवादिता इत्यादि से भी राजनीतिक संस्कृति की प्रकृति निर्धारित होती है। धार्मिक विश्वास का प्रभाव मध्यपूर्व के देशों की राजनीतिक संस्कृति पर स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। आर्थिक रूप से विपन्न या विकासशील देशों में राजनीतिक संस्कृति विकसित देशों के जैसी नहीं हो सकती क्योंकि अपेक्षाओं और जीवन शैली का स्तर भिन्न हो जाता है।

विचारधाराएँ – विचारधाराओं का प्रभाव राजनीतिक संस्कृति के निर्माण में निर्णायक होता है। उदारवाद, मार्क्सवाद, पूँजीवाद जैसी विचारधाराएं अपने वैश्विक दृष्टिकोण के आधार पर ही राजनीतिक संस्कृति के विकास में सहायक भूमिका निभाती है। उपरोक्त तत्वों के अतिरिक्त वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति, मीडिया तथा प्रेस, शिक्षा इत्यादि की भी भूमिका राजनीतिक संस्कृति के निर्माण में होती है।

अन्य तत्व – इसके अतिरिक्त शिक्षा का स्तर, भाषा, रीति–रिवाज आदि भी राजनीतिक संस्कृति के निर्माण में भूमिका अदा करते हैं।

2.3 राजनीतिक संस्कृति की विशेषताएँ (Characteristics of Political Culture) –

राजनीतिक संस्कृति को किसी समाज की परम्पराओं, उसकी सार्वजनिक संस्थाओं की आत्मा एवं उसके नागरिकों की आकांक्षाओं, उसके सामूहिक विवेक, उसके नेताओं के तरीके तथा सक्रिय होने के नियम आदि के द्वारा ही समझा जा सकता है। इसकी विशेषताएँ इस प्रकार है –

1. **समन्वयकारी स्वरूप** – राजनीतिक संस्कृति में अनेक नवीन जीवन मूल्य आते रहते हैं। नवीन और प्राचीन जीवन मूल्यों में निरन्तर संघर्ष भी जारी रहता है। राजनीतिक संस्कृति की विशेषता इन दोनों के मध्य समन्वय करने की होनी चाहिए।
2. **नैतिक मूल्यों के प्रति समर्पण** – राजनीतिक संस्कृति में नैतिक मूल्यों के समर्थन की आवश्यकता होती है। नैतिक मूल्यों की स्थापना में कभी समाज का धार्मिक स्वरूप योगदान देता है और कभी सत्ता व्यवस्था का स्वरूप।
3. **अमूर्त स्वरूप** – जब जनता राज्य के प्रति अपना विद्रोह या आक्रोश जाहिर करती है जो कि राज्य के किसी कानून या कार्य के फलस्वरूप होता है तब जनता की मानसिक स्थिति को नहीं भाँपा जा सकता है, क्योंकि जनता के मनोमस्तिष्क में विचार अमूर्त होते हैं जो राजनीतिक संस्कृति को प्रभावित करते रहते हैं।
4. **गतिशीलता** – व्यक्ति और समाज में जीवन मूल्य, परिस्थितयों और सामाजिक आवश्यकताओं के अनुसार बदलते रहते हैं, इसी आधार पर राजनीतिक संस्कृति भी गतिशील बनी रहती है।

2.4 राजनीतिक संस्कृति और लोकतंत्र –

राजनीतिक संस्कृति की अवधारणा इस बात पर बल देती है कि जनता के मूल्य विश्वास व कुशलता का राजनीति पर सामान्य रूप से महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है, विशेषतः लोकतांत्रिक संस्थाओं पर। एक समाज में संस्कृति–व्यवहार, मूल्य और ज्ञान की वह व्यवस्था है जो पीढ़ी दर पीढ़ी स्थानांतरित होती रहती है। कई अन्य उपागमों की तरह ही 1950–60 के दशक में उभरे इस उपागम पर भी यूरोपीय केन्द्रवादी धारणा का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इसके अन्तर्गत विचारकों ने अपने देश की राजनीतिक व्यवस्था को आदर्श मानते हुए उसके स्थायित्व व अस्थायित्व के कारणों की खोज राजनीतिक संस्कृति उपागम के द्वारा करना शुरु किया। विशेष रूप से लोकतांत्रिक व्यवस्था व इसकी पूर्व शर्तों के बीच सम्बन्धों को समझने की चेष्टा की गई। इन सम्बन्धों पर विचार करना इसलिए भी जरुरी हो गया था, क्योंकि दोनों विश्वयुद्धों के बाद भी ब्रिटेन व संयुक्त राज्य अमेरीका में उदार लोकतंत्र या संस्थाएँ सुरक्षित रही। जबकि जर्मनी, स्पेन, इटली, के संवैधानिक ढाँचे पूर्ण रूप से नष्ट हो गए। इटली, जर्मनी के अनुभवों ने इस तथ्य को निरर्थक साबित कर दिया कि जहाँ संवैधानिक ढाँचे होंगे वहाँ धीरे–धीरे उदार लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना में मददगार होंगे। 1950 और 60 की दशक में तीसरी दुनिया के नवोदित देशों के संवैधानिक ढाँचों का पतन इस बात का उदाहरण था कि लोकतंत्रात्मक प्रणाली मात्र उचित व उपयुक्त सामाजिक परिवेश में ही पनप सकती है और इस सामाजिक परिवेश को राजनीतिक संस्कृति द्वारा ही निर्मित किया जा सकता है। इस प्रकार लोकतंत्र की स्थिरता के लिए अब तक जिन संस्थागत और सामाजिक–आर्थिक तत्वों को पर्याप्त माना जाता था वे अपूर्ण सिद्ध हुए और इसी कारण राजनीतिक संस्कृति का उपागम एक नवीन दृष्टिकोण से सांस्कृतिक तत्वों को अध्ययन का केन्द्र बिन्दु बनाते हुए राजनीति के अध्ययन के लिए इसे महत्त्वपूर्ण मानती है। राजनीतिक संस्कृति व लोकतंत्र के मध्य सम्बन्धों पर सबसे महत्त्वपूर्ण आनुभविक अनुसंधान गेब्रियल आमण्ड व सिडनी वर्बा द्वारा 1963 में लिखित प्रसिद्ध रचना "The Civic Culture : Political Attitudes & Democracy in Five Nations" द्वारा प्रस्तुत किया गया। उन्होंने ब्रिटेन, जर्मनी, इटली, अमेरीका और मैक्सिकों के लोकतंत्र की स्थिरता या अस्थिरता पर राजनीतिक संस्कृति के प्रभावों का विश्लेषण किया था। विशेष रूप से एक ओर ब्रिटेन तथा अमेरीका की राजनीतिक संस्कृति का अध्ययन किया गया था, वहीं दूसरी तरफ जर्मनी तथा इटली की राजनीतिक संस्कृति में अन्तर का खुलासा किया गया। आमण्ड व वर्बा के अनुसार " राजनीतिक संस्कृति से तात्पर्य है राजनीतिक दलों, न्यायालयों, संविधान और राज्य के इतिहास जैसे विषयों के प्रति – अभिविन्यासों का प्रतिमान अर्थात् समाज का कोई भी सदस्य इन संस्थाओं के संदर्भ में या अपने राजनीतिक पर्यावरण के सन्दर्भ में अपने आपको कहाँ रखता है।" अन्य शब्दों में एक व्यक्ति अपने देश की सरकार से क्या अपेक्षाएँ रखता है व उसके संचालन में अपनी क्या भूमिका समझता है। क्या वह सरकार के सामने अपने आपको विवश महसूस करता है अथवा अपनी आवाज वहाँ तक पहुँचाने और

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

न्याय प्राप्त करने की आशा रखता है ?क्या वह यह समझता है कि वह शासन के निर्णयों को प्रभावित कर सकता है ? सार रूप में व्यक्ति का झुकाव राजनीतिक कार्यवाही के प्रति किस तरह का है, और यह राजनीतिक संस्कृति के द्वारा कैसे प्रभावित होता है।

2.5 राजनीतिक संस्कृति के प्रकार (Kinds of Political Culture) –

राजनीतिक संस्कृति के वर्गीकरण का आधार यह है कि व्यक्तियों द्वारा राजनीतिक व्यवस्था में किस रूप और किस सीमा तक भाग लिया जाता है। इस आधार पर आमंड और वर्बा ने तीन प्रकार की राजनीतिक संस्कृति बतलाई है –

(क) संकीर्ण संस्कृति– इसके अन्तर्गत नागरिकों को ना तो राजनीतिक मुद्दों की जानकारी होती है और ना ही अपनी राजनीतिक भूमिका की समझ होती है।

(ख) अधीन या प्रजाभावी संस्कृति– इसके अन्तर्गत नागरिकों को राजनीतिक मुद्दों की जानकारी तो होती है किन्तु उन्हें अपनी राजनीतिक भूमिका की समझ नहीं होती है।

(ग) सहभागी संस्कृति– इसके अन्तर्गत नागरिकों को राजनीतिक मुद्दों और अपनी राजनीतिक भूमिका की समझ होती है।

राजनीतिक संस्कृति के प्रकार तथा आनुभविक आधार पर प्रचलित संस्कृतियों पर विभिन्न राजनीतिक वैज्ञानिकों ने अपनी अलग–अलग व्याख्याएँ प्रस्तुत की है। आमण्ड ने राजनीतिक व्यवस्थाओं के आधार पर चार प्रकार की राजनीतिक संस्कृतियों का उल्लेख किया है –

1. **आंग्ल अमेरिकी राजनीतिक व्यवस्था** – ब्रिटेन, अमेरिका जैसे देशों में सामंजस्यकारी, उदारवादी मूल्यों वाली लोकतांत्रिक राजनीतिक संस्कृति।

2. **महाद्वीपीय यूरोपीय राजनीतिक व्यवस्था** – फ्राँस, जर्मनी इत्यादि देशों में उदारवादी लोकतांत्रिक व्यवस्था के बावजूद एक राजनीतिक संस्कृति के बजाय कई उप–संस्कृतियों और परिणाम स्वरूप हिंसात्मक संघर्ष से उत्पन्न राजनीतिक संस्कृतियाँ भी दृष्टिगोचर होती है।

3. **गैरपश्चिमी अथवा पूर्व औद्योगिक राजनीतिक व्यवस्था** – एशिया तथा अफ्रीका के अनेक पूर्व उपनिवेश जहाँ औद्योगिक आर्थिक विकास और लोकतंत्र अभी भी नवजात या अल्पविकसित अवस्था में है।

4. **सर्वाधिकारवादी राजनीतिक व्यवस्था** – अधिनायकवादी, सर्वाधिकारवादी अलोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्थाएँ जहाँ विपक्ष और विरोध की संभावना नहीं होती। एशिया अफ्रीका के अनेक सैन्य तानाशाही और चीन–उत्तर कोरिया जैसे साम्यवादी देश।

इन स्थानों की राजनीतिक व्यवस्था में राजनीतिक संस्कृति की प्रकृति में अन्तर साफ किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त फाइनर ने सत्ता में सैन्य भूमिका के आधार पर परिपक्व, विकसित, निम्न और न्यूनास्तरीय राजनीतिक संस्कृतियों की चर्चा की है। परिपक्व मे सैन्य सत्ता की भूमिका न्यून होगी और बाकियों में क्रमशः बढ़ जाएगी।

वाइसमैन ने तीन विशुद्ध राजनीतिक संस्कृतियों, संकुचित, पराधीन, सहभागी तथा तीन मिश्रित राजनीतिक संस्कृतियों संकुचित पराधीन, सहभागी तथा संकुचित सहभागी राजनीतिक संस्कृति का वर्गीकरण किया है।

उक्त वर्गीकरण राजनीतिक व्यवस्था में जनभागीदारों की दशा की ओर संकेत करता है। इसी प्रकार मात्रात्मक और शक्ति के आधार पर जन संस्कृति तथा अभिजनवादी संस्कृति का भेद किया जाता है। सामान्यतः जन संस्कृति की अपेक्षाएँ अभिजनवादी संस्कृति से भिन्न होती है।

राजनीतिक संस्कृति का निर्माण और विकास एक सतत् चलने वाली प्रक्रिया है। राजनीतिक संस्कृति स्थिर नहीं होती क्योंकि सामाजिक परिवेश और राजनीतिक व्यवस्था स्वयं स्थिर नहीं होती। राजनीतिक संस्कृति से ही व्यवस्थाओं में राजनीतिक व्यवहार और तदनुसार राजनीतिक व्यवस्थाओं की स्थिरता तय होती है।

भारत में 1990 के पूर्व और उसके पश्चात् की राजनीतिक संस्कृति में काफी अंतर दिखाई देता है।

2.6 राजनीतिक संस्कृति व राजनीतिक समाजीकरण (Political Culture & Political Socialisation)–

आमण्ड व वर्बा के अनुसार राजनीतिक समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा राजनीतिक संस्कृति को स्थापित किया जाता है और उसमें आवश्यकता अनुसार परिवर्तन लाया जाता है। राजनीतिक समाजीकरण के द्वारा ही राजनीतिक संस्कृति के गुणों, विश्वासों तथा मनोवेगों को भावी पीढ़ियों तक पहुँचाया जाता है। इस प्रक्रिया में कई अभिकरण जैसे व्यक्ति का परिवार, मित्रमंडली, शिक्षण संस्थान, धार्मिक संस्थान, लोकसंचार, हित समूह व राजनीतिक दल आदि महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते है। राजनीतिक समाजीकरण के जरिए ही समाज अपने राजनीतिक मानकों, मान्यताओं और विश्वासों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक संचरित करता है। यह आवश्यक नहीं है कि इस प्रक्रिया के फलस्वरूप सभी व्यक्ति बने बनाए ढाँचों में ढल जाए, परन्तु इससे राजनीतिक जीवन में निरन्तरता अवश्य बनी रहती है। साथ ही राजनीतिक प्रणाली नए दबावों और तनावों को झेलने की सहनशक्ति विकसित कर लेती है। साधारणतयाः राजनीतिक समाजीकरण राजनीतिक स्थिरता को बढ़ावा देता है, लेकिन यदि किसी देश विशेष की राजनीतिक संस्कृति, अनेक उपसंस्कृतियों में बंटी हो तो राजनीतिक समाजीकरण की प्रक्रिया को राष्ट्र निर्माण की आवश्यकताओं के अनुरूप ढालना अपरिहार्य होगा।

2.7 राजनीतिक संस्कृति का महत्त्व (Importance of Political Culture) –

आमण्ड, वर्बा आदि विचारकों ने इस उपागम को विकसित किया है। राजनीतिक विज्ञान के क्षेत्र में जब से राजनीतिक संस्कृति के अध्ययन की शुरुआत हुई, तब से

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

राजनीतिक प्रणाली या संवैधानिक प्रणाली की स्थिरता और अस्थिरता के कारणों पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा है। वर्तमान समय में इसके महत्त्व को अनदेखा बिल्कुल नहीं किया जा सकता है। इसके निम्न लाभ है –

राजनीतिक संस्कृति की अवधारणा के फलस्वरूप अध्ययनकर्ताओं का केन्द्र बिन्दु औपचारिक संस्थाएँ न रहकर राजनीतिक समाज बन गया। दूसरा, इस अवधारणा ने राजनीतिशास्त्रियों को राजनीतिक क्रियाओं के अध्ययन में सामाजिक व सांस्कृतिक तत्वों के लिए विवश करके राजनीतिक शास्त्र का विकास किया है। तीसरा, इस अवधारणा ने अध्ययन में विवेकता लाने का प्रयत्न किया है। चौथे, राजनीतिक संस्कृति उपागम ने यह बताने का प्रयास किया है कि क्यों विभिन्न राजनीतिक समाज विभिन्न प्रकार की दिशाएँ ग्रहण करते हैं। अंत में इस उपागम से राजनीति शास्त्र सूक्ष्म और व्यष्टि उपागमों के मिलन के माध्यम से एक सम्पन्न समाजशास्त्र बन गया है।

निष्कर्ष (Conclusion) –

उपर्युक्त समीक्षा के बाजजूद राजनीतिक संस्कृति तुलनात्मक राजनीतिक संस्थाओं के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विचारधारा है। जब से आमण्ड व वर्बा ने राजनीतिक संस्कृति की संकल्पना प्रस्तुत की है तब से इसकी ओर बिना दृष्टि डाले किसी भी देश की राजनीति या तुलनात्मक राजनीति का अध्ययन नहीं किया जा सकता।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- राजनीतिक संस्कृति एक अवधारणा है जो, राजनीति के प्रति लोगों की धारणाओं व अभिवृत्तियों का नाम है।
- राजनीतिक संस्कृति के प्रमुख विचारक– सिडनी बर्बा, आमंड व पावेल, एलन बॉल, हींज यूलाउ, ल्यूशियन पाई है।
- आमण्ड ने चार प्रकार की राजनीतिक संस्कृतियों का उल्लेख किया है – आंग्ल अमेरीकी राजनीतिक व्यवस्था, महाद्वीपीय यूरोपीय राज व्यवस्था, पूर्वी औद्योगिक राजनीतिक व्यवस्था व सर्वाधिकारवादी व्यवस्था।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. भारत व पाकिस्तान की राजनीतिक व्यवस्थाओं में अन्तर का मुख्य कारण है ?
   (अ) भौगोलिक स्थिति
   (ब) राजनीतिक संस्कृति
   (स) राजनीतिक विकास
   (द) राजनीतिक आधुनिकीकरण ( )
2. एलन बॉल की राजनीतिक संस्कृति पर आधारित पुस्तक का नाम है –
   (अ) आधुनिक राजनीति और सरकार
   (ब) भारतीय राजनीति और सरकार
   (स) विश्व राजनीति की एक झलक
   (द) हिन्द स्वराज ( )
3. इनमें से कौन राजनीतिक संस्कृति का निर्धारक तत्व नहीं है –
   (अ) इतिहास
   (ब) सामाजिक आर्थिक परिवेश
   (स) भौगोलिक परिस्थितियाँ
   (द) लोगों की वेशभूषा ( )

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. राजनीतिक संस्कृति के दो प्रकार कौन से है ?
2. राजनीतिक संस्कृति के मुख्य विचारक कौन–कौन से है?
3. आमण्ड व पावेल की राजनीतिक संस्कृति की परिभाषा लिखिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. राजनीतिक संस्कृति क्या है ?
2. राजनीतिक संस्कृति के विभिन्न घटकों का उल्लेख कीजिए।
3. राजनीतिक संस्कृति के निर्धारक तत्व बताइए।
4. अभिजात्य संस्कृति को स्पष्ट कीजिए।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. राजनीतिक संस्कृति को परिभाषित करते हुए वर्तमान में प्रचलित संस्कृतियों का विवेचन कीजिए।

बहुचयनात्मक प्रश्नों के उत्तर

1. ब 2. अ 3. द

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

3. राजनीतिक सहभागिता (Political Participation)

राजनीतिक सहभागिता आधुनिक राजनीतिक अवधारणाओं में विशेष महत्त्व रखती हैं इसका अर्थ हैं – जनसाधारण की राजनीतिक प्रक्रियाओं में प्रत्यक्ष या परोक्ष भागीदारी। जब राजनीतिक व्यवस्था के सदस्यों द्वारा व्यवस्था के सुचारू संचालन में विभिन्न स्तरों पर राजनीतिक प्रक्रियाओं में जन भागीदारी सुनिश्चित की जाती हैं तो इस प्रवृत्ति को जन सहभागिता या राजनीतिक सहभागिता कहा जाता हैं। राजनीतिक सहभागिता और प्रत्यक्ष प्रजातंत्र के लिये स्विटजरलैण्ड विश्व का अग्रणी लोकतांत्रिक देश हैं। वहाँ पर जनता को अपने चुने हुए प्रतिनिधियों को ''वापिस बुलाने का अधिकार'' हैं। वहाँ की जनता जनमत संग्रह के द्वारा जन सहमति से देश के कानूनों में भी परिवर्तन कर सकती हैं। ऐसे अधिकार जब जनता के पास हो तो राजनीतिक प्रक्रिया में चुने प्रतिनिधि अपने निर्वाचकों की अनदेखी नहीं कर सकते। वे सदैव जनता के प्रति उत्तरदायी रहते हैं। राजनीतिक सहभागिता लोकतांत्रिक व्यवस्था का प्राण–तत्व मानी गयी हैं। प्रत्येक लोकतांत्रिक समाज वास्तव में एक ''सहभागिता पूर्ण समाज'' होता हैं।

किसी भी प्रकार की राजनीतिक व्यवस्था क्यों न हो, यथार्थ में राजनीतिक शक्ति कुछ लोगों में ही केन्द्रित होती हैं। जिस राजनीतिक समाज में राजनीतिक शक्ति सम्पन्न सत्ताधारी व्यक्ति जन साधारण को राजनीतिक प्रक्रिया में भाग लेने के लिये निरन्तर प्रेरित करते हैं और ऐसी भागीदारी को सकारात्मक मानते हैं। वहाँ पर स्वस्थ लोकतांत्रिक परम्पराओं का विकास होता हैं जो निरन्तर जारी रहता हैं। किसी भी व्यवस्था को सबल तभी बनाया जा सकता है जब उसमें जन सहभागिता का अंश ज्यादा हो। जिस राजनीतिक व्यवस्था में जनता राजनीतिक प्रक्रियाओं के प्रति उदासीन रहती है अथवा शासकीय वर्ग उसके सक्रिय भूमिका अदा करने के मार्ग में रोड़ा डालते है वहाँ व्यवस्था के शीघ्र ही विघटन की ओर अभिमुख होने की आशंका बन जाती हैं।

3.1 राजनीतिक सहभागिता का अर्थ (Meaning of Political Participation) –

राजनीति विज्ञान में 'राजनीतिक सहभागिता' का सूत्रपात व्यवहारवादियों ने किया। यद्यपि इस अवधारणा का प्रारम्भिक सन्दर्भ रूसो तथा गणतंत्रवादियों के लेखों में प्राप्त होता हैं। राजनीतिक सहभागिता से तात्पर्य राजनीतिक व्यवस्था के विभिन्न स्तरों पर नागरिकों की सम्पूर्ण भागीदारी से हैं। राजनीतिक सहभागिता एक व्यवस्था में राजनीतिक विकास को त्वरित करती हैं। यह व्यवस्था को आधुनिक व उदार बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। इसको निम्न रूप से परिभाषित किया जा सकता हैं:–

''यह उन स्वैच्छिक क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं से सम्बन्धित हैं जिनमें नागरिक या जनता भाग लेती है और प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप में जन नीतियों के निर्माण में भाग लेती हैं। वे अन्ततः शासन में नीति निर्माण की सम्पूर्ण प्रक्रिया को प्रभावित करती हैं व सत्ताधारी लोगों की मनमानी पर अंकुश लगाती हैं।''
(मैक्ग्लोस्की), 1968 : 253

मैक्ग्लोस्की की मान्यता हैं कि राजनीतिक सहभागिता केवल लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं की ही प्रवृत्ति नहीं हैं अपितु न्यूनाधिक मात्रा में यह सभी व्यवस्थाओं में विद्यमान रहती हैं। वे यह भी मानते हैं कि आधुनिक सुदृढ़ लोकतांत्रिक व्यवस्था में इसकी मात्रा का अधिक पाया जाना आवश्यक नहीं हैं। राजनीतिक सहभागिता विकासशील व अन्य व्यवस्थाओं में भी पायी जा सकती हैं। यह मात्रात्मक होने के स्थान पर गुणात्मक भी हो सकती हैं।

3.2 राजनीतिक सहभागिता के स्वरूप (Kinds of Political Participation) –

सिद्धान्त रूप में राजनीतिक सहभागिता के दो स्वरूप पाये जाते हैं– (1) विकास परक (2) लोकतांत्रिक। विगत 60–65 वर्षों में 'राजनीतिक सहभागिता' के अध्ययन का त्वरित प्रसार लोकतांत्रिक नीति निर्माण में नागरिकों की सक्रिय भागीदारी के महत्त्व को परिलक्षित करता हैं। विश्व में 1940 व 1950 वीं दशाब्दी में चुनावी सहभागिता पर केन्द्रित अब यह भागीदारी राजनीतिक व्यवस्था की हर प्रक्रिया को प्रभावित करती प्रतीत होती हैं। वोट देने व दिलाने, चंदा देने, याचिका प्रस्तुत करने, सत्ताधारी जनप्रतिनिधियों पर प्रभाव डालने, रैली निकालने से लेकर किसी विशेष मुद्दे पर धरना–प्रदर्शन व जन प्रतिनिधियों का विरोध प्रदर्शन करना सभी राजनीतिक सहभागिता के औजार हैं। ज्यों–ज्यों शासकीय गतिविधियों व

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

उत्तरदायित्वों में बढ़ोतरी हुई हैं, राजनीतिक सहभागिता में भी अप्रत्याशित वृद्धि हुई हैं। सोशल मीडिया ने राजनीतिक सहभागिता को ओर मुखर कर दिया है। विकसित समाज के हर सामाजिक पहलु से राजनीतिक सहभागिता का गहरा जुड़ाव हो गया हैं।

वास्तव में 'राजनीतिक सहभागिता' के अध्ययन का प्रारम्भ ही इस बात में निहित हैं कि लोकतंत्र और राजनीतिक सहभागिता दोनों अविभाज्य हैं।

पैरी ने लिखा हैं कि ''राजनीतिक सहभागिता से सम्बन्धित प्रत्येक पुस्तक, लोकतंत्र से भी सम्बन्धित होती हैं।''

काश और मार्श ने भी लिखा हैं कि ''राजनीतिक सहभागिता की धारणा लोकतांत्रिक राज्य की अवधारणा के केन्द्र में अवस्थित हैं।''

''जहाँ निर्णयों में कम लोग भाग लेते हैं वहाँ लोकतंत्र का अंश कम होता हैं, जहाँ निर्णयन में अधिक भागीदारी होती हैं वहाँ अधिक प्रभावी लोकतंत्र पाया जाता हैं।''
(वर्बा और नी)

प्रजातांत्रिक निर्णयन में नागरिकों की भागीदारी लोकतंत्र की एक अपरिहार्य शर्त हैं, इसके विचार का सूत्रपात पैरीक्लीज ने (431–430 बीसी) ई॰पू॰ में अपने अन्तिम भाषण में कर दिया था। उसके अनुसार ''लोकतंत्र की निराली विशेषता उसके नागरिकों को प्राप्त भूमिका में निहित हैं।''

बैंजामिन बार्बर (1984 से 1995) ने सशक्त 'सहभागी लोकतंत्र' की पुरजोर वकालात की। उसने यह भी कहा कि सशक्त, सहभागी लोकतंत्र 'कमजोर उदार लोकतंत्र' की तुलना में बेहतर विकल्प हैं। उसने "Thin Democracy" or "Politics as Zookeeping" जैसी शब्दावली का प्रयोग करते हुए कहा हैं कि ऐसे लोकतंत्र में व्यापक रूप में निजीभाव हावी रहता हैं। बैंजामिन ने एक मजबूत लोकतंत्र की आवश्यकता पर बल देते हुए कहा कि ऐसे लोकतंत्र के लिए आवश्यक है कि प्रतिद्वंद्वी नागरिक समूह, बिना किसी मध्यस्थ के सीधे स्वशासन में भाग ले जिसमें प्रत्येक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से सीधा सम्पर्क हो। इस सम्बन्ध में किसी मध्यस्थ या विशेष योग्य बिचोलिये की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए।

राजशाही से लोकशाही की परिवर्तन यात्रा वस्तुतः नागरिकों की निरन्तर बढ़ती आकांक्षा और अपेक्षाओं का ही परिणाम कही जा सकती है। लोकशाही ने जब सैद्धान्तिक प्रक्रिया से आगे बढ़ कर प्रतिनिधि लोकतन्त्र का स्वरूप ग्रहण किया तब राजनीतिक सहभागिता भी आकारित होने लगी।

3.3 नागरिक चेतना और सहभागिता –

नागरिकों की चेतना, उनका शैक्षिक स्तर, वैचारिक धरातल आदि वे तत्व हैं, जो उनकी राजनीतिक सहभागिता को सुनिश्चित करते हैं। यही कारण है कि जिन देशों का साक्षरता प्रतिशत जितना अधिक है वहाँ के नागरिकों की राजनीतिक सहभागिता का स्तर भी उतना ही व्यापक होता है। यूरोपीय देशों की तुलना में एशियाई–अफ्रीकी देशों में शिक्षा साक्षरता की न्यून दर ही नागरिकों की राजनीतिक उदासीनता को दर्शाने के लिए पर्याप्त आधार कहा जा सकता है। इसी के साथ जनसंख्या का घनत्व और विस्तारित रूप से फैलाव भी वे कारण है जिनसे नागरिक अपने जनप्रतिनिधियों के साथ व्यापक रूप से चर्चा–परिचर्चा नहीं कर पाते हैं। देखा गया है कि बड़े देशों में अल्पमात्रा में ही नागरिकों का अपने प्रतिनिधियों से प्रत्यक्ष संवाद हो पाता है। ऐसी स्थिति में नागरिकों की लोकतान्त्रिक तथा राजनीतिक सहभागिता अत्यल्प मात्रा में ही सक्रिय रह पाती है। स्वाभाविक रूप से इसे किसी देश के राजनीतिक स्वास्थ्य के लिए उपयुक्त नहीं माना जा सकता।

3.4 राजनीतिक सहभागिता का अभिजात्य स्वरूप –

लोकतान्त्रिक प्रक्रिया में नागरिकों की प्रभावी और सक्रिय सहभागिता प्रथम और अनिवार्य शर्त है। लेकिन व्यावहारिक धरातल पर यह शर्त कहीं नहीं टिकती। प्रसिद्ध राजनीतिक चिन्तक जोसेफ शुंपीटर का कहना है कि शासन चलाना और सार्वजनिक नीतियाँ बनाना व्यावसायिक राजनीतिज्ञों का काम है, सामान्य नागरिकों की भूमिका चुनाव द्वारा अपनी पसन्द के राजनीतिक दलों के माध्यम से अपने प्रतिनिधियों को चुनने तक सीमित है। स्पष्ट रूप से यह प्रक्रिया नागरिकों को नेपथ्य में धकेल देती है और शासन सत्ता या विपक्ष में केवल चुनिन्दा राजनीतिज्ञ होते हैं। यही नहीं ये जनप्रतिनिधित्व करने वाले राजनीतिज्ञ अथवा राजनीतिक दलों के सक्रिय तथा अग्रिम पंक्ति के व्यावसायिक राजनेता भी आर्थिक, वैज्ञानिक और तकनीकी पेचिदगियों के चलते नीति निर्माण में भी केवल सतही कार्य कर पाते है। वास्तविक सक्रियता और सत्ता में भागीदारी ब्यूरोक्रेट और टेक्नोक्रेट की होती है। इस प्रकार वर्तमान समय में वास्तविक सहभागिता अल्पमात्रा में अभिजात्य वर्ग के हाथों में सिमट कर रह गई है। स्पष्ट है कि आधुनिक लोकतन्त्रीय प्रणाली में लोकतन्त्र मूलतः राजनीतिज्ञों का शासन है जिसमें साधारण नागरिकों की भूमिका बहुत सीमित अल्पकालिक, रुक–रुक कर तथा

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

काल्पनिक मात्र है।

रॉवर्ट डहल ने लोकतन्त्र के इस अभिजात्य स्वरूप की तीखी आलोचना करते हुए कहा कि यह ऐसी यन्त्रबद्ध व्यवस्था है जो बाजार के सिद्धान्तों का अनुसरण करती है तथा विभिन्न हित समूहों के परस्पर विरोधी हितों में सन्तुलन स्थापित करने के लिए स्वतः ही अभिजात्य प्रक्रिया का हिस्सा बन जाती है। इस प्रक्रिया में सम्पूर्ण समाज शासन पर नियन्त्रण करने के लिए दो या कुछ अधिक समूहो में विभक्त होकर स्वनिर्मित अभिजात्य समूहों का अनुगामी हो जाता है। इस प्रकार ऐसी लोकतान्त्रिक व्यवस्था में नागरिकों की सहभागिता का स्तर अत्यन्त न्यून होता है जो किसी भी लोकतान्त्रिक व्यवस्था के लिए शुभ नहीं माना जा सकता।

3.5 राजनीतिक सहभागिता का स्वरूप –

राजनीतिक सहभागिता ऐसी गतिविधि है जिसके अन्तर्गत कोई व्यक्ति सार्वजनिक नीतियों और निर्णयों के निर्माण, निर्धारण और कार्यान्वयन की प्रक्रिया में सक्रिय रूप से भाग लेता है। व्यापक अर्थ में, यहाँ लोकतान्त्रिक राजनीतिक प्रणाली के अन्तर्गत किसी भी राजनीतिज्ञ, सरकारी अधिकारी या साधारण नागरिक की गतिविधि हो सकती हैं। सहभागितामूलक लोकतन्त्र मूलतः लोकतन्त्रीय प्रक्रिया में साधारण नागरिकों की सहभागिता पर बल देता है। लोकतन्त्र में राजनीतिक सहभागिता के अनेक मानदण्ड अपनाए जाते हैं। अधिकांश अध्ययनों के अन्तर्गत मतदान में भाग लेने वाले नागरिकों की प्रतिशत मात्रा को ही राजनीतिक सहभागिता का सूचक मान लिया जाता है। कहीं–कहीं राजनीतिक दलों के प्रचार–अभियान में हिस्सा लेने वाले नागरिकों की प्रतिशत मात्रा पर भी विचार कर लिया जाता है। राजनीतिक सहभागिता के अन्य तरीके भी स्वीकार किए जाते हैं, जिन्हें इस प्रक्रिया में सम्मिलित किया जा सकता है।

(1) **सामुदायिक गतिविधि** – इसके अन्तर्गत समुदाय के सदस्य किसी सामूहिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए (जैसे कि स्वच्छता, सुरक्षा इत्यादि की व्यवस्था के लिए) एक–दूसरे के साथ मिल–जुलकर कार्य करते हैं। इसके अलावा जब कोई नागरिक किसी व्यक्तिगत या सार्वजनिक मामले को सुलझाने के लिए अपने राजनीतिक प्रतिनिधि से सम्पर्क करता है, या जब कोई नागरिक जलसे–जुलूस, विरोध–प्रदर्शन, हड़ताल, धरने या बहिष्कार की गतिविधियों में हिस्सा लेता है तो इस कार्यवाही को भी राजनीतिक सहभागिता की अभिव्यक्ति मान लिया जाता है। नागरिक सहभागिता की मुख्य कसौटी यह है कि इस गतिविधि के बल पर कोई नागरिक सार्वजनिक नीति और निर्णयों को कहाँ तक प्रभावित कर पाता है?

(2) **सरकार और नागरिकों के बीच सक्रिय परस्पर क्रिया** –यह दोतरफा गतिविधि है। जब एक पक्ष क्रिया करता है तो दूसरा पक्ष उसका प्रत्युत्तर देता है। दूसरे शब्दों में राजनीतिक सहभागिता को कार्य–रूप देने के लिए नागरिक भी पहल कर सकते हैं, राज्य अथवा सरकार भी पहल कर सकती है, जिसको हम निम्नानुसार समझ सकते हैं–

3.6 राजनीतिक सहभागिता के प्रमुख अभिकरण –

1. **दबाव समूह** – उदार लोकतन्त्र के अन्तर्गत, लोगों के ऐसे समूह जो अपने किसी समान हित की सिद्धि के उद्देश्य से संगठित होते हैं; अपने दृष्टिकोण को लोगों के सामने रखकर लोक–मत का समर्थन जुटाने का प्रयास करते हैं; और अपनी आवाज सरकार तक पहुँचाकर ऐसी नीतियाँ बनवाने का प्रयत्न करते हैं जो उनके हित के अनुरूप हों। यह प्रक्रिया पश्चिमी देशों में बहुत प्रभावी है। विकासशील देशों में दबाव समूहों ने अनेक बार ऐसे अवैद्यानिक तौर–तरीकों का भी सहारा लिया है जिससे सार्वजनिक जीवन की शुचिता नष्ट हुई है तथा सार्वजनिक सम्पत्ति का भारी नुकसान हुआ है।
2. **आरम्भक (प्रस्ताव तैयार करना)** – प्रतिनिधि लोकतन्त्र के अन्तर्गत यह व्यवस्था या प्रथा कि स्वयं मतदाता किसी कानून या संविधान–संशोधन का प्रारूप तैयार करके उसे विधानमण्डल के पास विचार और मतदान के लिए भेज सकते हैं। इस प्रस्ताव पर मतदाताओं की निर्धारित संख्या के हस्ताक्षर जरूरी होते हैं। यह प्रणाली स्विट्जरलैण्ड में विशेष रूप से प्रचलित है। भारत में नागरिकों को अपने चुने हुए प्रतिनिधियों के माध्यम से संसद में निजी विधेयक पेश करने की छूट है। इसके साथ ही जन समर्थन से अथवा हस्ताक्षर अभियान चलाकर नागरिक सीधे सरकार को भी नए प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकते हैं।
3. **प्रत्याह्वान (प्रतिनिधि वापस बुलाना)** – संसदीय लोकतन्त्र के अन्तर्गत, यह व्यवस्था या प्रथा कि मतदाता अपने चुने हुए प्रतिनिधि को उसका कार्य–काल समाप्त होने से पहले ही पद से हटने के लिए विवश कर सकते हैं। इस प्रस्ताव पर मतदाताओं की निर्धारित संख्या के हस्ताक्षर जरूरी होते हैं। यह प्रणाली स्विट्जरलैण्ड में विशेष रूप से प्रचलित है। भारतवर्ष में अनेक नागरिक संगठनों द्वारा पिछले अनेक वर्षो से चुनाव प्रक्रिया में सुधार करने की माँग की जा रही है। जिसमे अनेक माँगों के साथ यह माँग भी शामिल है कि जो निर्वाचित जनप्रतिनिधि मतदाताओं की अपेक्षाओं पर खरा न उतरता हो उसे एक सुनिश्चित प्रक्रिया द्वारा वापस बुलाने का प्रस्ताव पारित कर सक्षम स्तर तक पहुँचाएं।
4. **जन सुनवाई** – वह प्रक्रिया जिसके अन्तर्गत

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

जन–प्रतिनिधि और सार्वजनिक अधिकारी वर्ग विभिन्न विषयों पर जनता के विचार उनकी समस्यायें जानने का प्रयत्न करते हैं। ये विचार सम्बद्ध अधिकारीवर्ग के सामने मौखिक रूप से या लिखित रूप से प्रस्तुत किये जा सकते हैं। हमारे देश में अब यह व्यवस्था लगभग संस्थाबद्ध हो चुकी है जिसे प्रशासन गाँवों/ शहरों की ओर नाम से जाना जाता है।

5. **सलाहकार परिषद्** – आजकल सरकारें अपने विभागों से जुड़े कार्यों के विशेष पक्षों पर सलाह देने के लिए गणमान्य नागरिकों का एक संगठन बना देती हैं, जिसे सलाहकार परिषद् का नाम दिया जाता है। ब्रिटेन की केन्द्रीय आवास सलाहकार समिति तथा केन्द्रीय स्वास्थ्य सेवा परिषद् इसके उपयुक्त उदाहरण हैं। भारत में अनेक विभागों में ऐसी ही सलाहकार समितियाँ और परिषदें बनाई जाती है।
6. **परिपृच्छा (किसी प्रश्न पर निर्णय हेतु मतदान)** – राजनीतिक सहभागिता का एक स्वरूप यह भी है कि इसके अन्तर्गत, वह प्रक्रिया जिसमें सार्वजनिक महत्त्व के किसी प्रश्न पर – जैसे कि किसी नए कानून, संविधान या संवैधानिक संशोधन के प्रश्न पर – जनसाधारण से मतदान कराया जाता है। जैसे अभी हाल ही में ब्रिटेन में यूरोपीय यूनियन की सदस्यता के लिए मतदान करावाकर निर्णय लिया गया जिसमें ब्रिटेन की जनता ने सदस्य बने रहने से इन्कार कर दिया।
7. **सविनय अवज्ञा** – वह कार्यवाही जिसमें किसी अन्यायपूर्ण कानून को जान–बूझकर और खुले तौर पर तोड़ा जाता है, या किसी निषिद्ध स्थान पर प्रवेश करके स्वेच्छा से गिरफ्तारी दी जाती है ताकि किसी विशेष मुद्दे की ओर जनता और सरकार का ध्यान खींचा जा सके। हमारे देश में आए दिन जन–विरोध दर्ज कराने हेतु सक्रिय रूप से नागरिकों द्वारा ऐसी गतिविधियाँ संचालित की जाती हैं।
8. **राजनीतिक प्रतिहिंसा** – विरोध–प्रदर्शन का सबसे उग्र रूप जिसमें बमबारी, हत्या, उपद्रव, लोगों को बंधक बनाने या सार्वजनिक सम्पत्ति को क्षति पहुँचाने की कार्यवाही की जाती है। ऐसी कार्यवाही लोकतन्त्र का सरासर उल्लंघन है। लेकिन यह भी देखा गया है कि सरकारें प्रायः ऐसी परिस्थितियों में या तो मौन रहती हैं या फिर झुक जाती हैं।

3.7 राजनीतिक सहभागिता की उपादेयता –

जन सहभागी लोकतन्त्र के बावजूद यह सही है कि आज के प्रतिनिधि लोकतन्त्र में अपने नागरिकों को निर्णय–प्रक्रिया में सार्थक सहभागिता के बहुत मामूली अवसर मिलते हैं। इसका परिणाम यह है कि इस प्रणाली के अन्तर्गत निर्वाचक मण्डल को राजनीतिक समस्याओं के बारे में बहुत कम जानकारी और अल्प समझ होती है। मतदाता मतदान के प्रति प्रायः उदासीन होते हैं। राजनीतिक प्रतिनिधि सार्वजनिक उत्तरदायित्वों से प्रायः विमुख दिखाई देते हैं। प्रशासन में पद और शक्ति का दुरूपयोग और भ्रष्टाचार इस कदर फैला हुआ है कि यदि नागरिकों को राजनीतिक सहभागिता के अधिक अवसर मिलें तो वे सार्वजनिक समस्याओं पर विस्तृत चर्चा करेंगे और राजनीतिज्ञों की गतिविधियों पर कड़ी नजर रखेंगे। इससे शक्ति के दुरूपयोग तथा भ्रष्टाचार को रोकने में मदद मिलती है। अतः राजनीतिक सहभागिता न केवल उत्तम समाज की जरूरी शर्त है बल्कि यह उत्तम जीवन का भी आवश्यक अंग है।

राजनीतिक सहभागिता की उपादेयता लोकतन्त्र के अन्तर्गत सार्वजनिक निर्णयों तक पहुँचने में सहायक होती है। नागरिकों की प्रत्यक्ष राजनीतिक सहभागिता का अधिकतम विस्तार होना आज के युग में आवश्यक हो गया है। आज के बड़े–बड़े राज्यों में इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए दो तरीके उपयुक्त माने जाते हैं–

(क) शासक एवं प्रशासन का विकेन्द्रीकरण करके बहुत सारे निर्णय स्थानीय समुदायों के हाथों में सौंप दिए जायें। भारत में पंचायती राज का विस्तार इसी का उदाहरण है।

(ख) सार्वजनिक नीतियाँ निर्धारित करने की प्रक्रिया में परिपृच्छा अर्थात् किसी विषय या प्रस्ताव को जनता द्वारा शुरू करने की प्रक्रिया को बढ़ाया जाये।

3.8 राजनीतिक सहभागिता के पक्ष में दृष्टिकोण –

(1) राजनीतिक सहभागिता स्वयं सहभागी व्यक्ति के हितों की रक्षा करती है, या उन्हें बढ़ावा देती है। लोग राजनीतिक गतिविधि में भाग लेने से पहले यह हिसाब लगाते हैं कि इसमें उन्हें कितना कष्ट उठाना पड़ेगा, कितना फायदा होगा, और वे अपने उद्देश्य की पूर्ति में कितने समर्थ सिद्ध होंगें।

(2) सहभागिता की प्रक्रिया नागरिकों की सामान्य नैतिक, सामाजिक और राजनीतिक सजगता को बढ़ाती है।

(3) राजनीतिक सहभागिता सामान्य हितों के लिए नागरिकों की एकजुटता बढ़ाती है।

राजनीतिक सहभागिता मूलक लोकतन्त्र के समर्थक केवल वर्तमान लोकतन्त्रीय प्रणाली के अन्तर्गत नागरिकों की सहभागिता को बढ़ाने पर बल देते हैं; इसकी कोई वैकल्पिक व्यवस्था प्रस्तुत नहीं करते। देखा जाए तो सहभागितामूलक लोकतन्त्र के लिए आवश्यक साधन उदार लोकतन्त्र की व्यवस्था और प्रक्रिया में पहले से ही विद्यमान है; सहभागिता को बढ़ावा देने के लिए ठोस कार्यवाही की जरूरत है, सिद्धान्त की नहीं।

राजनीतिक सहभागिता की सक्रियता के पक्षधर जरूरत

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

से ज्यादा आशावादी दिखाई देते हैं। लोकतन्त्र में जनसाधारण की सहभागिता को एक सीमा तक बढ़ाना ही उपयुक्त होगा; उसके बाद वह हानिकारक सिद्ध हो सकती है। सार्वजनिक निर्णयों, नीतियों और कार्यक्रमों के हितकर परिणाम आने में समय लगता है। इसके अन्तर्गत जन–कल्याण के उद्देश्य से कुछ पक्षों पर बोझ डालने की जरूरत हो सकती है। आम लोगों में इतना धैर्य और इतनी सूझ–बूझ नहीं होती कि वे सब स्थितियों का सही–सही मूल्यांकन कर सकें। यदि उन्हें अत्यधिक राजनीतिक सहभागिता के लिए प्रोत्साहन दिया जाएगा तो वे अपनी शिकायतों और विवादों को सड़कों पर ले जायेंगे और सामान्य जन–जीवन को अस्त–व्यस्त कर देंगे। जब आम नागरिक भीड़ का रूप धारण कर लेते हैं तो उन्हें अनुशासन या नियन्त्रण में रखना मुश्किल हो जाता है। जब लोग जोश में आकर बाहर निकल पड़ते हैं तो उन्हें यह समझाना कठिन होता है कि उन्हें कहाँ पर रूक जाना चाहिए?इसका परिणाम होता है – आए दिन के जलसे–जुलूस, नारेबाजी, रैलियाँ, प्रदर्शन, हड़तालें, धरने और घेराव, बिजली–पानी और बसों को बन्द करने की धमकियाँ, रास्ता–रोको और जेल–भरो आन्दोलन, मार–पीट, पथराव तथा सार्वजनिक सम्पत्ति को नुकसान पहुँचाने की घटनाऐं। इन हालातों में जो कोई भीड़ इकट्ठी कर सकता हो या भीड़ को जिस दिशा में चाहे, ले जा सकता हो – वह अपनी अनुचित मांगों को भी मनवा लेगा, और जो शान्त–संयत तरीकों से अपना पक्ष प्रस्तुत करेगा, उसकी कोई सुनवाई नहीं होगी। इस प्रकार राजनीतिक सहभागिता का विवेक संगत उपयोग ही सार्थक परिणाम दे सकता है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- **राजनीतिक सहभागिता का तात्पर्य,** राजनीतिक व्यवस्था के विभिन्न स्तरों पर नागरिकों की भागीदारी से है।
- **राजनीतिक सहभागिता के दो स्वरूप**– विकासपरक व लोकतांत्रिक है।
- **राजनीतिक सहभागिता के दो तरीके** – सामुदायिक गतिविधि, सरकार व नागरिकों के बीच सक्रिय परस्पर क्रिया।
- **राजनीतिक सहभागिता के अभिकरण** – दबाव समूह, आरम्भक, प्रत्याह्वान, जनसुनवाई, सलाहकार परिषदें, परिपृच्छा, सविनय अवज्ञा, राजनीतिक प्रतिहिंसा।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. राजनीतिक सहभागिता का सूत्रपात किन विचारकों ने किया ?
   (अ) व्यवहारवादी
   (ब) उदारवादी
   (स) समाजवादी
   (द) अतिवादी ( )
2. इनमें से कौनसा राजनीतिक सहभागिता का औजार नहीं है ?
   (अ) मतदान करना
   (ब) चुनाव याचिका प्रस्तुत करना
   (स) राजनीतिक दल का चन्दा देना
   (द) देश की सीमा पार करने का प्रयास करना ( )
3. प्रशासन गाँवों/शहरों की ओर कार्यक्रम राजनीतिक सहभागिता के किस अभिकरण का हिस्सा है ?
   (अ) आरम्भक
   (ब) प्रत्याह्वान
   (स) जनसुनवाई
   (द) परिपृच्छा ( )
4. 'प्रत्याह्वान ' का तात्पर्य है ?
   (अ) कानूनी प्रस्ताव तैयार करना
   (ब) निर्वाचित प्रतिनिधि को वापस बुलाना
   (स) किसी प्रस्ताव पर मतदान करना
   (द) विशेष अभियान चलाना ( )
5. गैर परम्परागत राजनीतिक सहभागिता के उपायों में कौनसा बेमेल है –
   (अ) सविनय अवज्ञा
   (ब) शासकीय पुरस्कार लौटाना
   (स) नुक्कड़ नाटक
   (द) आत्मघात ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. प्रत्यक्ष लोकतन्त्र का आरम्भ कहाँ से हुआ था?
2. वर्तमान में लोकतंत्र का कौनसा रूप विद्यमान है ?
3. राजनीतिक उदासीनता का प्रमुख कारण क्या है?
4. राजनीतिक सहभागिता के दो अभिकरणों के नाम लिखिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. अभिजात्य वर्ग की अधिक राजनीतिक सहभागिता से क्या आशय है?
2. सामुदायिक गतिविधि किसे कहते हैं?

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

निबन्धात्मक प्रश्न

1. राजनीतिक सहभागिता के परम्परागत और गैर–परम्परागत स्वरूपों पर लेख लिखिये।
2. राजनीतिक सहभागिता के पक्ष को रखते हुए आलोचनात्मक विवेचन कीजिये।
3. राजनीतिक सहभागिता के प्रमुख अभिकरणों की जानकारी देते हुए उनका इस प्रक्रिया में योगदान बताइए।

बहुचयनात्मक प्रश्नों के उत्तर

1\. अ   2. द   3. स   4. ब   5. द

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

इकाई—III

राजनीतिक विचारधाराएँ

1. उदारवाद (Liberalism)

उदारवाद स्थायी मूल्यों की अनिश्चित उपलब्धि है। यह यूरोपीय इतिहास और दर्शन दोनों की महत्त्वपूर्ण विरासत है। यह वास्तव में पुनर्जागरण की देन है। उदारवाद वह विचारधारा है जिसके अन्तर्गत मनुष्य को विवेकशील प्राणी मानते हुए सामाजिक संस्थाओं को मनुष्यों की सूझबूझ और सामूहिक प्रयास समझा जाता है। जॉन लॉक को उदारवाद का जनक माना जाता है। एडम स्मिथ और जेरेमी बेंथम भी उदारवादी विचारकों मे गिने जाते हैं। उदारवाद राजनीतिक सिद्धान्त की एक प्रबल विचारधारा है। वस्तुतः आधुनिक राजनीतिक विचारधाराओं में से उदारवाद की परम्परा सर्वाधिक प्राचीन है। उदारवादी दर्शन का उदय तथा विकास यूरोप में पुनर्जागरण तथा धर्म सुधार आन्दोलनों से जुड़ा है। 16वी शताब्दी में सामन्तशाही, राजशाही और पोपशाही जैसी मध्ययुगीन व्यवस्था के विरुद्ध एक प्रबल प्रतिक्रिया स्वरूप क्रान्तिकारी विचारधारा के रूप में उदारवाद का आगमन हुआ। इस शब्द का प्रयोग सबसे पहले 1815 में इग्लैण्ड में हुआ था।

1.1 उदारवाद की व्युत्पत्ति (Literal Meaning of Liberalism) –

उदारवाद अंग्रेजी के लिबरेलिज्म (Liberalism) शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है। इसकी व्युत्पति लैटिन भाषा के 'लिबर' (liber) शब्द से हुई है जिसका अर्थ है स्वतंत्र। उदारवाद एक ऐसी अस्पष्ट, बौद्धिक, गतिशील यथा स्थितिवादी, पूँजीवादी व्यवस्था की समर्थक, गरीब विरोधी, अन्यायी, अनैतिक, अमानवीय अवधारणा थी। यह ऐसी विचारधारा का नाम है जिसका स्वरूप एवं कार्यक्षेत्र विकास के प्रथम चरण से लेकर वर्तमान तक बदलता रहा है, कभी यह पूँजीपतियों के पक्ष में प्रत्यक्ष रूप से सामने आता था, तो बाद में यह दबी जुबान में पूँजीपतियों के हित की बात भी करता। बाद में मार्क्सवाद के डर से पूँजीपतियों को बचाने के लिए यह गरीबों के हितों की बात करने लगा। उदारवाद लोककल्याण की अवधारणा का प्रबल समर्थक बन गया। 1990 के दशक में जब सोवियत संघ की साम्यवादी व्यवस्था ध्वस्त होने के बाद वह पुनः अपने परम्परागत स्वरूप की तरफ बढ़ चला है। पुनर्जागरण तथा धर्म सुधार आन्दोलनों ने इसे जन्म दिया, औद्योगीकरण ने इसे आधार प्रदान किया। बढ़ते पूँजीवाद ने इसे स्वतंत्रता के निकट ला खड़ा किया, व्यक्ति के प्रति इस विचारधारा की आस्था ने राज्य को सीमित रूप दिया। सामान्यतया उदारवाद एक विचारधारा से अधिक है। यह सोचने का एक तरीका है, संसार को देखने की एक दृष्टि है तथा राजनीति को उदारवाद की ओर बनाए रखने का एक प्रयास है।

1.2 उदारवाद का उदय एवं विकास (Origin & Evolution of Liberalism) –

लॉक, बैंथम व एडम स्मिथ की रचनाओं में उदारवाद की झलक मिलती है। तब इसका रूप नकारात्मक था और इसे व्यक्तिवाद व शास्त्रीय उदारवाद के रूप में जाना जाता था। 19वीं शताब्दी में जॉन स्टुअर्ट मिल ने इसे सकारात्मक रूप प्रदान किया। तब राज्य को आवश्यक बुराई समझने की बजाय एक सकारात्मक अच्छाई समझा जाने लगा तथा अनियंत्रित वैयक्तिक स्वतंत्रता की व्यवस्था के लिए खतरा समझते हुए व्यक्ति की गतिविधियों पर उचित प्रतिबन्ध लगाए जाने लगे। 20वीं शताब्दी में लास्की और मेकाइवर ने इसे नये रूप में पेश किया व अब राज्य एक अच्छी तथा आवश्यक संस्था मानी जाने लगी और कानून व्यक्ति की स्वतंत्रता का रक्षक समझा जाने लगा।

20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मार्क्सवाद की बढ़ती लोकप्रियता से भयभीत होकर पुनः व्यक्ति की स्वायत्तता की ओर झुकता हुआ राज्य के कार्यों को सीमित करने का समर्थन करने लगा। उदारवाद व्यक्ति प्रेमी विचारधारा है जो व्यक्ति की स्वतंत्रता और अधिकारों पर बल देती है। यह राज्य को साधन और व्यक्ति को साध्य मानता है। यह रूढ़िवादिता व परम्परावाद के स्थान पर सभी क्षेत्रों में सुधारों व उदारीकरण का पक्ष लेता है। संविधानवाद, विधि का शासन, विकेन्द्रीकरण, स्वतंत्र चुनाव व न्याय व्यवस्था, लोकतांत्रिक प्रणाली, अधिकारों स्वतंत्रताओं व न्याय की व्यवस्था आदि उदारवादी विचारधारा के कुछ अन्य लक्षण है।

1.3 उदारवाद की प्रकृति (Nature of Liberalism) –

उदारवाद के प्रकृति उसके उदय व विकास के चरणों से जुड़ी हुई है। 1688 की गौरवपूर्ण अंग्रेजी क्रान्ति ने शासकों के दैवी सिद्धान्तों का तिरस्कार कर राज्य को एक मानवीय संस्था बताने का प्रयत्न किया था। उदारवाद व्यक्ति से जुड़ी विचारधारा है। 1789 की फ्रांसिसी क्रान्ति ने पश्चिमी समाज को स्वतंत्रता, समानता व बंधुत्व के विचार देकर मध्ययुगीन निरंकुश शासन को त्याग दिया था। उदारवाद स्वतंत्रता से जुड़ी विचारधारा है। अमेरीकी स्वतंत्रता संग्राम तथा बाद के अमेरीकी संविधान ने व्यक्ति के अधिकारों की आवाज उठायी थी। उदारवाद व्यक्तियों के अधिकारों से जुड़ी विचारधारा है। उदारवाद निरंकुशवाद के विरुद्ध संविधानवाद पर बल देता है। माण्टेस्क्यू ने शासन–कार्यों को अलग–अलग संस्थाओं को देकर शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त प्रतिस्थापित किया था।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

उदारवाद सीमित कार्यों को करने वाले सीमित शक्तियों वाले राज्य की बात करता है। जॉन लॉक की धारणा थी कि राजनीतिक कार्य सीमित होते हैं अतः राजनीतिक शक्ति भी सीमित होनी चाहिए।

एडम स्मिथ व बेंथम अहस्तक्षेपी राज्य के समर्थक थे। राज्य आवश्यक तो है, परन्तु वह एक अनिवार्य बुराई है। पुनर्जागरण ने राज्य को ईश्वर–कृत छोड़ मानवकृत संस्था बना दिया।

1.4 उदारवाद के दो रूप (Forms of Liberalism)–

1. परम्परागत या शास्त्रीय उदारवाद
2. आधुनिक उदारवाद

1. **परम्परागत या शास्त्रीय उदारवाद (Traditional or Classical Liberalism) –** परम्परागत उदारवादी सिद्धान्त धर्म को व्यक्ति का आन्तरिक और निजी मामला मानता है। यह व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर बल देता है। सीमित राज्य के अस्तित्व को स्वीकार कर उसका समर्थन करता है। सामाजिक प्रतिमान में एकता की बात करता है। कालांतर में उदारवाद एक क्रान्तिकारी विचारधारा न होकर एक वर्ग विशेष (पूँजीवादी) की विचारधारा बन जाती है। यह रूप निजी सम्पति का समर्थन करता है। इसके कारण मानवीय जीवन में असमानता का आगमन शुरु हो जाता है। उदारवाद अब पूँजीवाद का पर्याय बन जाता है। इसी उदारवाद समर्थित पूँजीवादी व्यवस्था के विरोध में वैज्ञानिक मार्क्सवादी क्रान्ति की शुरुआत होती है। मानवीय जीवन में असमानता को मिटाकर समानता लाने के लिए संघर्ष की बात मार्क्स करता है। जिसके फलस्वरूप उदारवाद अपना स्वरूप बदल देता है।
2. **आधुनिक उदारवाद (Modern Liberalism)–** यह सिद्धान्त लोक कल्याण कारी राज्य का समर्थन करता है। निजी सम्पति पर अंकुश लगाने व पूँजीपतियों पर कर की वकालात की जाती है।

लॉक के पश्चात् बेंथम, टॉमस पेन, मॉण्टेस्क्यू तथा कई विचारकों ने उदारवादी दर्शन को आगे बढ़ाया, उन्होंने न केवल शक्ति, विवेकशीलता, तर्कशीलता, और योग्यता पर पक्का विश्वास अभिव्यक्त किया, बल्कि व्यक्ति के कार्यों में शासन हस्तक्षेप न करे इस पर भी जोर दिया। उदारवादी दर्शन के फलस्वरूप ही ' अमेरीका की स्वतंत्रता की घोषणा 1776 व फ्राँस में 1779 ई में मानव अधिकारों की घोषणा हुई।

17वीं व 18वीं शताब्दी के उदारवाद को परम्परागत या शास्त्रीय या उदान्त उदारवाद भी कहा जाता है। यह उदारवाद नकारात्मक चरित्र का था। इस उदारवाद को मानव प्रतिष्ठा, तर्कशीलता, स्वतंत्रता तथा मानव के व्यक्तिवाद पर बल देने के बावजूद इसका मौलिक चरित्र नकारात्मक था। इस दृष्टिकोण में स्वतंत्रता को बंधनों का अभाव माना गया और पूँजीवादी वर्ग के लिए आवश्यक बुराई के रूप में स्वीकार कर लिया गया। जो राज्य कम से कम कार्य करे वहीं सर्वोत्तम है। आर्थिक क्षेत्र में इसने सम्पति के अधिकार एवं मुक्त व्यापार का समर्थन किया।

1.5 नकारात्मक उदारवाद की विशेषताएँ (Characteristics of Negative Liberalism)

1. व्यक्तिवाद पर अत्यधिक बल
2. मानव की मध्ययुग की धार्मिक तथा सांस्कृतिक जंजीरों से मुक्ति पर बल।
3. मानव व्यक्तित्व के असीम मूल्य तथा व्यक्तियों की आध्यात्मिक समानता में विश्वास।
4. व्यक्ति की स्वतंत्र इच्छा में विश्वास।
5. मानव की विवेकशीलता और अच्छाई, मानव की मानवता के लिए कुछ प्राकृतिक अदेय अधिकारों, जीवन, स्वतंत्रता तथा सम्पति में विश्वास पर बल।

1.6 उदारवाद व लॉक का दर्शन (Liberalism & Philosophy of Locke) –

राजनीतिक आधार पर समझौता सिद्धान्त और उदारवाद दोनों जॉन लॉक के दर्शन है। इसकी मुख्य बातें इस प्रकार है–

1. राज्य की उत्पति व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा के लिए सामाजिक समझौते के द्वारा हुई।
2. राज्य एवं व्यक्ति दोनों के सम्बन्ध आपसी समझौते पर आधारित है जब कभी भी राज्य समझौते की आवश्यक शर्तों का उल्लंघन करेगा तो व्यक्ति को राज्य के विरुद्ध विद्रोह करने का अधिकार है।
3. कानूनों का आधार विवेक है न कि आदेश।
4. वहीं सरकार सर्वश्रेष्ठ है, जो कम से कम शासन करें।
5. राज्य एक आवश्यक बुराई है।
6. मानव को राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, बौद्धिक सभी क्षेत्रों में स्वतंत्रता प्राप्त हो।
7. स्वतंत्रता से तात्पर्य सभी सत्ताओं से मुक्ति या नकारात्मक स्वतंत्रता माना गया जो बंधनों का अभाव है।

सामाजिक आधार पर उदारवाद समाज को एक कृत्रिम संस्था मानता है। जिसका उद्देश्य व्यक्ति के हितों को पूरा करना था। समाज का उद्देश्य व्यक्तिगत स्वार्थ की सिद्धि था। व्यक्ति के हित के द्वारा समाज के हित को सम्भव बनाया गया। आर्थिक क्षेत्र में उदारवाद मुक्त व्यापार तथा समझौते पर आधारित पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की बात करता है। इसे नकारात्मक उदारवाद इसलिए भी कहा जाता है क्योंकि यह स्वरूप राज्य में पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में किसी प्रकार के हस्तक्षेप तथा नियंत्रण पर प्रतिबंध लगाता है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

1.6 नकारात्मक उदारवाद की आलोचना (Criticism of Negative Liberalism)–

1. सामाजिक क्षेत्र में उदारवाद का अत्यधिक खुलापन नैतिकता के विरुद्ध है।
2. सीमित राज्य, जन कल्याण विरोधी अवधारणा है।
3. उदारवाद का आर्थिक समाज " बाजारु समाज है जो केवल बुर्जुआ वर्ग के हितों का ध्यान रखता है, सामान्य व्यक्ति के हितों की अनदेखी करता है।"
4. सांस्कृतिक क्षेत्र में नकारात्मक उदारवाद व्यक्ति को उच्छृँखल बनाती है जो समाज के हितों के विपरीत है।

1.7 आधुनिक व समसामयिक उदारवाद (Modern & Contemporary Liberalism)–

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद परिवर्तित आर्थिक, राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों में उदारवाद में भी व्यापक बदलाव आया। मार्क्सवाद व समाजवाद के डर से उदारवाद में सुधार कर सकारात्मक धारणा का जन्म हुआ।

यह उदारवाद निम्नलिखित बातों पर बल देता है –

1. कल्याणकारी राज्य की स्थापना पर बल।
2. व्यक्ति को सभी क्षेत्रों में सम्पूर्ण स्वतंत्रता देकर सर्वांगीण विकास पर बल।
3. सभी व्यक्तियों को समान अवसर व अधिकार प्रदान करने पर बल।
4. व्यक्तियों की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति कर बल।
5. जनता के विकास तथा उसकी वैज्ञानिक प्रगति की धारणा में विश्वास।
6. सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार, निष्पक्ष चुनाव व व्यापक राजनीतिक सहभागिता पर बल।
7. राज्य, सामाजिक हित की पूर्ति का सकारात्मक साधन।
8. समाज में व्याप्त साम्प्रदायिकता व वर्गगत असंतोष कम करने पर बल।
9. लोकतांत्रिक समाज की राजनीतिक संस्कृति पर बल।
10. उदारवाद का यह स्वरूप क्रान्तिकारी तरीकों के विपरीत सुधारवादी, शान्तिपूर्ण और क्रमिक सामाजिक परिवर्तन में विश्वास रखता है।
11. यह स्वरूप अल्पसंख्यकों, वृद्धों व दलितों के विशेष हितों के सम्वर्द्धन करने पर बल।
12. आधुनिक उदारवाद ' बाजार व्यवस्था ' के स्थान पर मिश्रित एवं नियंत्रित अर्थव्यवस्था पर बल।
13. सामूहिक हित पर बल।
14. पूँजीवादी अर्थव्यवस्था को लचीला बनाने व नियंत्रित अर्थव्यवस्था के उद्देश्यों पर बल।
15. लोकतंत्र की समस्याओं पर नये ढंग से विचार करने पर बल।

1.8 आलोचना –

1. उदारवाद का यह स्वरूप भी बुर्जुआ वर्ग का ही दर्शन है। यह मूलतः पूँजीवादी तथा यथास्थितिवादिता पर बल देता है।
2. यह स्वरूप गरीबों की क्रान्तिकारी आवाज को दबाने का प्रपंच है।
3. यह राज्य को शक्तिशाली बनाने पर बल देता है ताकि गरीबों को राजनीतिक वैधता के नाम पर दबा सके।
4. यह पूँजीवादी वर्ग से सम्बन्धित धारणा है।
5. इसका सामाजिक न्याय मात्र ढकोसला है।
6. यह स्वतंत्रता के लिए आवश्यक सामाजिक परिस्थितियों का बनाया जाना राज्य पर छोड़ता है व पूँजीवादी व्यवस्था को समाप्त नहीं करता।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- उदारवाद पुनर्जागरण तथा धार्मिक सुधार आन्दोलन का शिशु है।
- उदारवाद का 16वीं व 17वीं शताब्दी में सूत्रपात हुआ।
- लिबरेलिज्म की उत्पति लैटिन भाषा के शब्द ' लीबर ' से हुई है, जिसका अर्थ स्वतंत्रता होता है।
- उदारवाद का जन्म बाजार अर्थ व्यवस्था को पनपाने के लिए हुआ।
- उदारवाद अपने आप में एक दर्शन है।
- यह शासन की एक विधि तथा नीति के रूप में स्वतंत्रता के प्रति प्रतिबद्ध धारणा है।
- यह मानवीय बुद्धि तथा विवेक में आस्था पर बल देता है।
- यह व्यक्ति के स्वहित और सामान्य हित को एक समान मानता है।
- यह अन्धविश्वासों, रुढिवादियों तथा परम्पराओं का विरोध करता है।
- उदारवाद के प्रभाव स्वरूप ही इंग्लैण्ड, अमेरिका और फ्रांस की क्रान्तियों का शंखनाद हुआ।
- उदारवाद स्वतंत्रता पर बल देता है व व्यक्ति को साध्य और राज्य को साधन मानता है।
- यह लोकतंत्र, लोकप्रिय प्रभुसत्ता, निर्वाचित सरकार, वयस्क मताधिकार, निष्पक्ष चुनाव तथा स्वतंत्र न्यायपालिका में आस्था प्रकट करता है।
- उदारवाद धर्म निरपेक्ष राज्य की स्थापना व धार्मिक स्वतंत्रता पर बल देता है।
- जॉन लॉक उदारवाद के जनक माने जाते हैं।

  आर्थिक क्षेत्र में उदारवाद व्यक्ति को उत्पादन, विनिमय तथा वितरण करने, कोई भी व्यापार व व्यवसाय करने, सम्पति संग्रह करने तथा विनियमित करने पर बल देता है।

  उदारवाद अहस्तक्षेप नीति का समर्थन करता है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

- हरबर्ट स्पेन्सर ने न्यूनतम शासन व सीमित राज्य पर बल दिया।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. सकारात्मक उदारवाद इनमें से किसमें आस्था नहीं रखता है –
   (अ) सीमित राज्य (ब) नैतिक माध्यम के रूप में राज्य
   (स) कल्याणकारी राज्य(द) सूक्ष्म राज्य ( )
2. 'उदारवाद' शब्द का सबसे पहले प्रयोग कब और कहाँ हुआ था –
   (अ) 1815 में इंग्लैण्ड में
   (ब) 1776 में संयुक्त राज्य अमेरीका
   (स) 1917 में सोवियत संघ में
   (द) 1885 में जर्मनी में ( )
3. निम्नलिखित में से कौनसा वक्तव्य गलत है –
   (अ) 'उदारवाद' पद स्वाधीन व्यक्तियों के उस वर्ग को सन्दर्भित करता है जो न तो कृषक है और न ही दास है।
   (ब) 'उदारवाद' शब्द का प्रथम प्रयोग 1812 में स्पेन में हुआ।
   (स) शास्त्रीय उदारवाद तथा आधुनिक उदारवाद में भिन्नता है।
   (द) बाजार–विरोधियों की नैतिक कमियाँ बाजार–समर्थकों की भी नैतिक कमियाँ है। ( )
4. निम्नलिखित में से कौनसी उदारवाद की देन है –
   (अ) पूँजीवाद (ब) साम्यवाद
   (स) गाँधीवाद (द) संविधानवाद ( )
5. समकालीन समाज में शक्तिशाली विचारधारा नहीं है –
   (अ) समाजवाद (ब) साम्यवाद
   (स) राजतंत्रवाद (द) उदारवाद ( )
6. निम्न में से कौनसा विचारक उदारवाद का समर्थक नहीं है –
   (अ) कार्ल मार्क्स(ब) जॉन लॉक
   (स) जेरेमी बेंथम (द) स्पेंसर ( )
7. परम्परागत उदारवाद एक राजनीतिक सिद्धान्त था जिसने –
   (अ) पूँजीवाद का समर्थन किया
   (ब) समाज में सामाजिक असमानता को समाप्त करने की बात की
   (स) निरंकुश राजतंत्रों का समर्थन किया
   (द) सर्वहारा वर्ग की तानाशाही का समर्थन किया। ( )
8. उदारवाद का जनक किस विचारक को माना जाता है–
   (अ) जॉन लॉक (ब) रिकार्डो
   (स) एडम स्मिथ (द) हाब्स ( )

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. उदारवाद की आर्थिक क्षेत्र में प्रमुख मांग क्या थी ?
2. उदारवाद की राजनीतिक क्षेत्र में प्रमुख मांग क्या थी ?
3. उदारवाद की सामाजिक क्षेत्र में प्रमुख मांग क्या थी ?
4. उदारवाद की उत्पति किस प्रकार हुई ?
5. उदारवाद के प्रमुख विचारक कौन–कौन है ?
6. नकारात्मक उदारवाद से क्या अभिप्राय: है ?
7. सकारात्मक उदारवाद से क्या तात्पर्य है ?
8. परम्परागत उदारवाद का अर्थ बताइए ?
9. आधुनिक उदारवाद के प्रवर्तक कौन–कौन है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. उदारवादी विचारधारा के राजनीतिक उद्देश्यों को बताइए।
2. परम्परागत उदारवाद के पाँच गुण बताइए।
3. "उदारवाद मार्क्सवाद के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया है।" समझाइये।
4. आधुनिक उदारवाद परम्परागत उदारवाद से किस प्रकार भिन्न है? उल्लेख कीजिये।
5. उदारवाद ने लोककल्याण कारी राज्य की अवधारणा को स्थापित करने में किस प्रकार सहायता की।
6. उदारवाद की आलोचना के मुख्य बिन्दु क्या–क्या है।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. परम्परागत व आधुनिक उदारवाद की समीक्षात्मक तुलना कीजिए।
2. "उदारवाद मूलतः पूँजीवाद का पोषण करने वाली विचारधारा है।" स्पष्ट कीजिए।
3. उदारवाद के प्रमुख सिद्धान्तों की व्याख्या कीजिए।

बहुचयनात्मक प्रश्नों के उत्तर

1. ब	2. अ	3. ब	4. ब
5. स	6. अ	7. अ	8. अ

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

2. समाजवाद (Socialism)

समाजवाद, आधुनिक राजनीतिक युग में दोनों ही विपरीत विचारधाराओं मार्क्सवाद और कल्याणकारी उदारवाद का प्रमुख उद्देश्य रहा है। समाजवाद जो की पाश्चात्य चिंतन में 19वी और 20वी शताब्दी में विकसित हुआ, को सामान्यतः पूँजीवाद के विपरीत विचारधारा माना जाता है। तत्पश्चात् समाजवादी विचारधारा समस्त विश्व में तेजी से लोकप्रिय होने लगी। समाजवाद का अर्थ शोषण से रहित समतामूलक समाज और राज्य की स्थापना करना है। भारत सहित अनेक लोकतांत्रिक देशों ने समाजवादी लक्ष्यों को सांविधानिक मान्यता प्रदान की है।

2.1 समाजवादी अवधारणा का विकास (Evolution of Socialism) –

प्राचीन काल में यूनान के स्टॉइक दर्शन ने आर्थिक समानता और सामाजिक न्याय का सिद्धान्त दिया। मध्यकाल में थोमस मूर की प्रसिद्ध कृति यूटोपिया (1516) में एक आदर्श समाजवादी राज्य की परिकल्पना प्रस्तुत की गई। 17वीं शताब्दी में बेकन ने अपनी पुस्तक ''न्यू अटलांटिस'' में समाजवादी विचारों का उल्लेख किया। परन्तु समाजवाद की प्रगति की दिशा में फ्राँस की राज्य क्रान्ति (1789) एक मील का पत्थर साबित हुई जब क्रान्ति के ''ध्येय वाक्य'' में ''समानता स्वतंत्रता और बन्धुत्व'' को शामिल किया गया। इसी दौर में फ्राँस के बेबियफ ने समाजवादी सिद्धान्तों की वकालत की। बेबियफ के विचारों को बाद में ब्लैंकी ने प्रसारित किया। 19वीं शताब्दी में सन्त साईमन, चार्ल्स फूरियर, रॉबर्ट ओवन जैसे विचारकों ने पूँजीवाद के दोषों को मानवीय स्वचेतना के आधार पर दूर कर सामाजिक एवं आर्थिक कल्याण की बात की। प्रूधों ने अपनी पुस्तक ''वॉट इज प्रोपर्टी'' (What is property) में निजी सम्पत्ति को चोरी की संज्ञा दी। राज्य को समाप्त करने की बात कहकर बेकुनिन तथा अन्य अराजकतावादियों ने एक नई समाजवादी परम्परा की शुरुआत कर दी। इसके पश्चात् समाजवाद की अनेक धाराएँ यथा फेबियनवाद, श्रेणी समाजवाद, श्रमिक संघवाद इत्यादि विकसित हुए। जॉर्ज बर्नाड शॉ, जी.डी.एच. कोल, जॉर्ज सोरेल जैसे विचारकों ने समाजवाद की उक्त धाराओं के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। 19वीं सदी में साम्यवाद व मार्क्सवादी समाजवाद का प्रादुर्भाव हुआ। इसका विधिवत् सैद्धान्तिक सूत्रपात 1848 में कार्ल मार्क्स द्वारा लिखित पुस्तक "साम्यवादी घोषणा–पत्र'' के साथ हुआ।

औद्योगिक क्रान्ति, जिसने शहरी श्रमिक वर्ग को जन्म दिया और समाजवादी क्रान्ति को सम्भव बनाया, सबसे पहले इंग्लैण्ड में हुई थी और इस कारण इंग्लैण्ड को समाजवादी विचारधारा का घर कहा जाता है। ब्रिटिश लोगों ने अपने स्वभाव और जीवन मूल्यों के अनुरूप ही समाजवाद के विचार को अपनाया गया। ईसाई धर्म के एक ग्रन्थ "बाइबल" या साम्यवाद के एक विचारक कार्ल मार्क्स या उनकी रचना 'साम्यवादी घोषणा पत्र' की भाँति समाजवाद का कोई एक विचारक या कोई एक ग्रन्थ प्रेरणा स्त्रोत के रूप में नहीं है। विलियम इबन्स्टीन के शब्दों में, "इंग्लैण्ड में अधिकांश वे प्रभावशाली समाजवादी विचारक रहे हैं, जिन्हें राजनीतिक दलों या शासन में कोई महत्त्वपूर्ण स्थिति प्राप्त नहीं थी। किन्तु उनका प्रभाव मुख्यतया उनकी नैतिक शक्ति और उनके लेखन की शैली के कारण था।"

जिन विचारकों ने समाजवाद की सामान्य व्याख्या की है उनमें आर.एच. टॉनी, रैम्जे मैकडोनल्ड, सिडनी और बेट्रिस वैब, हेरल्ड लॉस्की, क्लेमेण्ट एटली, डर्विन, अमेरीका में नार्मन थामस और भारत में पं. जवाहर लाल नेहरू, राममनोहर लोहिया और पं. दीनदयाल उपाध्याय का नाम प्रमुख रूप से लिया जा सकता है।

2.2 समाजवाद का आशय (Meaning of Socialism)–

समाजवाद एक आर्थिक सामाजिक दर्शन है। समाजवादी व्यवस्था में धन – सम्पत्ति का स्वामित्व व वितरण समाज के नियंत्रण के अधीन रहते हैं। समाजवाद प्रजातांत्रिक मार्ग को अपनाते हुए समतामूलक समाज की स्थापना पर बल देता है। राजनीतिक क्षेत्रों में इसकी आस्था मानवीय स्वतंत्रता पर आधारित उदारवादी दर्शन में है, लेकिन राज्य के कार्यक्षेत्र के संदर्भ में यह लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना पर बल देता है।

2.3 समाजवाद की परिभाषाऐं (Definitions of Socialism)–

बर्नार्ड शॉ के अनुसार ''समाजवाद का अभिप्राय सम्पत्ति के सभी आधारभूत साधनों पर नियंत्रण से है। यह नियंत्रण समाजवाद के किसी एक वर्ग द्वारा न होकर स्वयं समाज के द्वारा होगा और धीरे–धीरे व्यवस्थित ढंग से स्थापित किया जायेगा।''

"राजनीतिक और आर्थिक शक्तियों का विकेन्द्रीकरण तथा जन सहमति के तरीकों से न कि बल द्वारा स्थापित की जाने वाली न्यायपूर्ण व्यवस्था ही लोकतान्त्रिक समाजवाद है।" – जवाहर लाल नेहरू

"समाजवाद ने साम्यवाद के आर्थिक लक्ष्य (उत्पादन के साधनों पर समाज का स्वामित्व, बड़े पैमाने पर उत्पादन तथा योजनाबद्ध आर्थिक विकास) तथा पूँजीवाद के सामान्य लक्ष्यों (राष्ट्रीय स्वतन्त्रता, लोकतन्त्र तथा मानव अधिकार) को अपना लिया हैं प्रजातान्त्रिक समाजवाद का लक्ष्य दोनों में सामंजस्य स्थापित करना है।" – डॉ. राम मनोहर लाल लोहिया।

न्यायमूर्ति गजेन्द्र गड़कर के अनुसार – "प्रजातान्त्रिक समाजवाद लोक कल्याणकारी राज्य के सिद्धान्तों को व्यवहार में लाने की व्यवस्था है। इसका आधार उदारवादी सामाजिक

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

दर्शन है। इसकी मुख्य भावना यह है कि व्यक्ति को सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करना चाहिए।"

इस प्रकार समाजवाद का अर्थ है: लोकतान्त्रिक मार्ग को अपनाकर आर्थिक, सामाजिक न्याय की स्थापना, व्यक्ति की गरिमा और सामाजिक न्याय की स्थापना करना।

2.4 भारत में समाजवाद का विकास (Evolution of Socialism in India) –

भारत में समाजवाद का प्रारम्भ ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध किये जाने वाले राष्ट्रीय संघर्ष में ही हो गया था। सर्वप्रथम सन् 1929 के लाहौर अधिवेशन में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की कार्य समिति ने घोषित किया था। ''भारत में ब्रिटिश शासन ने न केवल भारतीय लोगों को उनकी स्वतंत्रता से वंचित किया है बल्कि शासन का आधार ही लोगों का शोषण करना है जिसने भारत को आर्थिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक रूप से नष्ट कर दिया है। अतः भारत को हमेशा के लिए ब्रिटिश सम्बन्ध तोड़ने होंगे और पूर्ण स्वराज्य को प्राप्त करना होगा।''

इसी प्रकार सन् 1931 में कराँची अधिवेशन में काँग्रेस द्वारा पारित प्रसिद्ध प्रस्ताव के प्राक्कथन में कहा गया था, "यदि हम सर्वसाधारण के लिए स्वराज्य को वास्तविक स्वराज्य बनाना चाहते हैं तो इसका अर्थ केवल देश की राजनीतिक स्वतन्त्रता से ही नहीं, वरन् सर्वसाधारण की आर्थिक स्वतन्त्रता से भी है।" गाँधीजी ने भारतीय आदर्शों और परिस्थितियों के अनुकूल समाजवाद का प्रतिपादन किया। स्वातन्त्र्य आन्दोलन के काल में और बाद में पं. जवाहरलाल नेहरू, सुभाष चन्द्र बोस, मानवेन्द्र राय, आचार्य नरेन्द्र देव, जयप्रकाश नारायण, राममनोहर लोहिया आदि नेताओं ने समाजवादी विचारधारा को लोकप्रिय बनाने में और मानव गरिमा की स्थापना में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया था।

स्वतन्त्रता प्राप्ति से लेकर अब तक केन्द्र के शासक दल और विपक्ष सभी के द्वारा अपने आपको समाजवाद का पक्षधर घोषित किया जाता रहा है, लेकिन व्यवहार में अब तक इस दिशा में जो कुछ किया गया है, वह निश्चत रूप से अपूर्ण माना जाएगा क्योंकि आर्थिक आधार पर समाज में खाई अब तक काफी बड़ी हो गई है।

2.5 समाजवाद के प्रमुख तत्त्व (The Main Elements of Socialism) –

समाजवाद के कुछ सामान्य लक्षण बताये जा सकते हैं, जो इस प्रकार है –

1. **पूँजीवाद और साम्यवाद दोनों ही अतिवादी हैं** – प्रजातान्त्रिक समाजवाद, पूँजीवाद और साम्यवाद दोनों विचाराधाराओं का समान रूप से विरोधी है। उसके अनुसार पूँजीवाद असमानता और सामान्य जनता के शोषण पर आधारित है और ऐसी व्यवस्था कभी भी समस्त जनता के कल्याण में नहीं हो सकती। इसके साथ ही साम्यवाद से उसका विरोध भी उतना ही आधारभूत है जितना कि पूँजीवाद से उसका विरोध। प्रजातान्त्रिक समाजवाद साम्यवाद का विरोध इसलिए करता है कि साम्यवाद, धर्म और नैतिकता के विरोध पर टिका हुआ है, वर्ग संघर्ष और हिंसक क्रान्ति की धारणा में विश्वास करता है और उसके अन्तर्गत अधिनायकवाद (सर्वहारावर्ग के अधिनायकवाद) को अपनाया गया हैं। प्रजातान्त्रिक समाजवाद के अनुसार वे ऐसे विचार हैं, जो कभी भी मानव जीवन के लिए श्रेयस्कर नहीं हो सकते हैं। इसी कारण वह साम्यवाद को अपना प्रथम शत्रु मानता है और "नवीन साम्राज्यवाद का यन्त्र" कहकर उसकी भर्त्सना करता है। प्रजातान्त्रिक समाजवाद पूँजीवाद और साम्यवाद, इन दोनों का विरोध करते हुए आर्थिक और सामाजिक जीवन के क्षेत्र में एक नया मार्ग प्रशस्त करता है।

2. **जनतान्त्रिक व्यवस्था में विश्वास** – समाजवाद का यह सबसे प्रमुख लक्षण बताया जा सकता है कि वह सर्वसत्तावाद के सभी रूपों का घोर विरोधी है क्योंकि सर्वाधिकारवाद में मानवीय व्यक्तित्व, उसकी स्वतन्त्रता और गरिमा को कोई महत्त्व प्राप्त नहीं होता। सर्वाधिकारवाद के विपरीत, यह समाजवाद का पूर्ण उपासक है और उसके द्वारा समाजवाद का मार्ग प्रजातन्त्र के पूरक रूप में ही अपनाया गया है। नार्मन थॉमस के शब्दों में "समाजवाद प्रजातन्त्र की ही पूर्ण सिद्धि है।" प्रजातान्त्रिक समाजवाद का यह दृढ़ विश्वास है कि आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में जो भी परिवर्तन किये जाने हों उनके लिए प्रजातान्त्रिक पद्धति को ही अपनाया जाना चाहिए।

3. **मानवता में विश्वास** – पूँजीवाद और साम्यवाद दोनों विचारधाराओं के अन्तर्गत मानव को एक आर्थिक प्राणी माना गया है, किन्तु समाजवाद मानव को एक नैतिक प्राणी मानता है। पूँजीवाद इस गलत धारणा पर आधारित है कि व्यक्ति केवल लाभ या दण्ड के भय से ही क्रियाशील होता है, साम्यवादी मानते हैं कि हिंसा, भय या आतंक जैसे अमानवीय तत्वों के आधार पर ही कोई कार्य किया जा सकता है, किन्तु वस्तुतः मनुष्य एक भौतिक या आर्थिक प्राणी नहीं, वरन् एक नैतिक प्राणी है। यह केवल भौतिक विचारों से ही नहीं वरन् आदर्शों और आशाओं से प्रभावित होता है तथा सहयोग, सामाजिकता और भ्रातृत्व की भावनाओं के आधार पर कार्य करता है। समाजवाद मानवीय प्रकृति के सम्बन्ध में इसी आशावादी दृष्टिकोण को अपनाता है और मनुष्यों के नैतिक विकास पर बल देता है।

4. **आध्यात्मिक व नैतिक मूल्यों का समर्थक** – समाजवाद का विचार है कि समस्त सामाजिक व्यवस्था धर्म और नैतिकता पर टिकी हुई है और यदि इस आधार को मिटाने का प्रयत्न किया गया तो समस्त व्यवस्था ढह जायेगी। समाजवाद के अधिकांश प्रतिपादकों द्वारा

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

समाजवाद की प्रेरणा धर्म से ही प्राप्त की गयी है, लेकिन धर्म और नैतिकता से समाजवाद का आशय कर्मकाण्ड, भाग्यवाद या धार्मिक जीवन की अन्य कुप्रवृत्तियों को अपनाने से नहीं है अपितु मानवता को गरिमा देने से है। इसके साथ ही समाजवाद अपने आपको किसी एक विशेष धर्म से ही नहीं, वरन् सभी धर्मों में समान रूप से प्रतिपादित नैतिकता और आध्यात्मिकता के सामान्य सिद्धान्तों से ही सम्बद्ध करता है।

5. **वर्ग संघर्ष के स्थान पर वर्ग सहयोग पर बल** – समाजवादी दर्शन में पूँजीपतियों और श्रमिकों की विद्यमानता को स्वीकार करते हुए भी वर्ग संघर्ष को नहीं मानता है। वर्ग संघर्ष की भावना दूषित और हिंसात्मक वातावरण को जन्म देती है और औद्योगिक क्षेत्र में उत्पादन बढ़ाने के बजाय गतिरोध का कारण बनती है। समाजवाद के अनुसार पूँजीपति और मजदूर वर्ग के हितों में एकता स्थापित की जा सकती है और समाजवाद का मूल मन्त्र वर्ग संघर्ष की अपेक्षा सामंजस्य और सहयोग पर आधारित है।

6. **आर्थिक व राजनीतिक स्वतंत्रता का पक्षधर** – साम्यवादी, आर्थिक स्वतन्त्रता को ही व्यक्तियों के लिए अति आवश्यक मानता है। उनके अनुसार काम का अधिकार, उचित पारिश्रमिक और अवकाश का अधिकार ही व्यक्तियों के लिए सब कुछ है। दूसरी ओर पूँजीवाद, नागरिकों की राजनीतिक स्वतन्त्रता पर बल देता है, लेकिन यहाँ आर्थिक स्वतन्त्रता के महत्त्व को स्वीकार नहीं किया जाता। लेकिन समाजवादी व्यवस्था व्यक्ति के लिए विचार, भाषण, संगठन और सम्मेलन, आदि की राजनीतिक स्वतन्त्रताऐं तो आवश्यक मानता ही है साथ ही यह भी मानता है कि राजनीतिक और नागरिक स्वतन्त्रता के साथ–साथ आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त होनी चाहिए।

7. **उत्पादन और वितरण पर जनतान्त्रिक नियन्त्रण** – पूँजीवादी व्यवस्था में सामान्य जनता को राजनीतिक प्रश्नों के सम्बन्ध में निर्णय की शक्ति तो प्राप्त होती है, लेकिन सामान्य जनता को आर्थिक क्षेत्र को प्रभावित करने की क्षमता नहीं होती है। समाजवाद इस व्यवस्था को दोषपूर्ण मानता है। उसकी धारणा है कि अर्थव्यवस्था पर जनतान्त्रिक सरकार का नियन्त्रण होना चाहिए अर्थात् सामान्य जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित संसद द्वारा अर्थव्यवस्था पर नियन्त्रण रखा जाना चाहिए। ब्रिटिश विचारक आर.एच.एस. क्रॉसमैन के शब्दों में, "समाजवाद के द्वारा उस समस्त सत्ता को चुनौती दी जानी चाहिए, चाहे वह किन्हीं भी हाथों में निहित हो जो अनुत्तरदायी या अर्द्ध–उत्तरदायी है। जिस प्रकार नगरपालिका की व्यापारिक एजेन्सियाँ नगरपालिका परिषद के प्रति उत्तरदायी होती हैं, उसी प्रकार से प्रत्येक राष्ट्रीयकृत उद्योग पूर्ण रूप से संसद के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए।"

8. **उत्पादन का लक्ष्य समाजीकरण** – समाजवाद के द्वारा प्रारम्भ में हर क्षेत्र में राष्ट्रीयकरण पर अधिक बल दिया गया था, किन्तु शीघ्र ही यह अनुभव किया गया कि राष्ट्रीयकरण आर्थिक क्षेत्र की सभी समस्याओं का समाधान नहीं है। अतः संशोधित व्यवस्था में समाजवाद द्वारा राष्ट्रीयकरण के स्थान पर समाजीकरण पर बल दिया गया। राष्ट्रीयकरण का तात्पर्य उद्योगों पर सार्वजनिक स्वामित्व से है, लेकिन समाजीकरण का तात्पर्य यह है कि उद्योग चाहे सार्वजनिक क्षेत्र में हो या निजी क्षेत्र में, उन पर नियन्त्रण की व्यवस्था राज्य के निर्देशानुसार होनी चाहिए और उनका संचालन लाभ प्राप्ति के लिए नहीं, वरन् सामाजिक हितों की दृष्टि से किया जाना चाहिए। समाजीकरण इस धारणा पर आधारित है कि उद्योग के स्वामित्व से अधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न उद्योग के संचालन के उद्देश्य का है।

9. **सम्पत्ति के असीमित संग्रह के विरुद्ध** – समाजवाद निजी सम्पत्ति को समाप्त करने के स्थान पर उसे सीमित करने का ही समर्थक है। समाजवाद के अनुसार जो सम्पत्ति शोषण को जन्म देती है, उसे समाप्त कर दिया जाना चाहिए। उदाहरणार्थ, बड़े–बड़े उद्योग–धन्धों पर अन्तिम नियन्त्रण राज्य का होना चाहिए, निजी पूँजीपतियों का नहीं, क्योंकि पूँजीपति इन उद्योग–धन्धों के आधार पर सामान्य जनता को अपना दास बना सकते हैं, लेकिन जो निजी सम्पत्ति समाज के लिए उपयोगी भूमिका अदा करती है उसे बनाये रखा जाना चाहिए अर्थात् निजी घर, जीवनोपयोगी निजी चीजें, कृषि, हस्तशिल्प, खुदरा व्यापार और मध्यम श्रेणी के उद्योगों को निजी क्षेत्र में बनाये रखा जा सकता है। समाजवाद निजी सम्पत्ति को पूर्णतया समाप्त करने की बात नहीं करता, लेकिन इस बात का अवश्य ध्यान रखता है कि निजी सम्पत्ति स्वयं राज्य को अपना दास न बना ले अर्थात् व्यक्ति के हाथ में असीमित पूँजी जमा न हो जाए।

10. **श्रेष्ठ मानव जीवन का लक्ष्य** – समाजवाद राज्य को एक बुराई या शोषण का एक यन्त्र न मानकर उसे सामाजिक सद्गुणों को विकसित करने वाली संस्था मानता है और इस बात का प्रतिपादन करता है कि राज्य का कार्यक्षेत्र अधिकाधिक व्यापक होना चाहिए। सभी समाजवादी इस बात को स्वीकार करते हैं कि समाज की सामूहिक शक्ति ही शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा, मनोरंजन और श्रेष्ठ सांस्कृतिक जीवन की सुविधाऐं जुटा सकती है। अतः राज्य के द्वारा अस्पतालों, शोध केन्द्रों, पार्कों और सार्वजनिक मार्गों की अधिकाधिक व्यवस्था की जानी चाहिए। संक्षेप में, राज्य के द्वारा मानव कल्याण

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

हेतु अधिकाधिक सम्भव कार्य किये जाने चाहिए।

2.6 समाज – समाजवाद का प्रमुख अवयव (Society - Main Components of Socialism) –

समाजवाद समाज को एक ऐसा तत्व मानता है, जिसका धीरे–धीरे विकास होना चाहिए और जिसमें विकास की प्रक्रिया द्वारा स्वयं को परिवर्तित करने की क्षमता होती है। समाजवाद केवल समाज के सभी वर्गों के सहयोग से विकास को बढ़ाना चाहता है। उनका विचार है कि समाजवाद न केवल श्रमिक वरन् समाज के सभी वर्गों के लिए हितकारी है और व्यक्तियों को उच्च आदर्शों तथा नैतिकता की अपील कर जनता के बहुत बड़े भाग को इसमें सम्मिलित किया जा सकता है। धैर्य, सावधानी और बुद्धिमता के साथ समाजवाद का प्रचार जनता को विकास के रास्ते पर ले जायेगा और क्रान्ति की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी। विचार और भाषण, प्रेस, मंच, साहित्य के प्रकाशन और अन्य प्रचार साधनों के आधार पर समाजवाद अपना विस्तार करता है। समाजवाद हमेशा ही वैधानिक साधनों से सत्ता प्राप्त करने में विश्वास करता है।

2.7 समाजवाद के प्रमुख तत्त्व (Main Elements of Socialism)

1. धनवानों की बढ़ती हुई आय पर आयकर लगाना जाना चाहिए और प्राप्त राशि का उपयोग निर्धनों के हित में किया जाना चाहिए।
2. कालेधन का संग्रहण हर हालत में रोका जाए।
3. कृषि भूमि पर जोतने वाले का अधिकार होना चाहिए।
4. उद्योगों एवम् बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया जाना चाहिए जिससे अर्थव्यवस्था पर राज्य का प्रभावी नियन्त्रण हो।
5. निजी उद्योगों का राज्य द्वारा निर्देशन किया जाना चाहिए जिससे उनका संचालन सामाजिक हित की दृष्टि से हों।
6. आर्थिक असमानता तत्काल दूर की जानी चाहिए।
7. सभी व्यक्तियों के लिए उनकी योग्यता के अनुसार रोजगार, उचित पारिश्रमिक व अवकाश की व्यवस्था की जानी चाहिए।
8. राज्य के द्वारा अधिकाधिक कल्याणकारी सेवाओं की व्यवस्था की जानी चाहिए जिससे नागरिक सुखी जीवन व्यतीत कर सकें।
9. आर्थिक विकास हेतु नियोजन की पद्धति को अपनाया जाना चाहिए।

2.8 समाजवाद के गुण (Characteristics of Socialism)–

समाजवाद के अपने कुछ गुण हैं, जिन्होंने इसे आज विश्व की सर्वाधिक लोकप्रिय विचारधारा बना दिया है, पूँजीवाद और साम्यवाद जीवन की दो परस्पर नितान्त विरोधी विचारधाराएँ हैं और इन दोनों ने अतिवादी दर्शन को ग्रहण किया गया है। समाजवाद में पूँजीवाद और साम्यवाद इन दोनों ही व्यवस्थाओं के गुणों को ग्रहण करने का प्रयत्न किया गया है। समाजवाद के प्रमुख गुण इस प्रकार बताये जा सकते हैं –

1. यह व्यक्ति और समाज दोनों के हितों का समान रूप से ध्यान रखता है।
2. यह पूँजीवाद और साम्यवाद दोनों के ही दोषों से परिचित और अपने को उनसे दूर रखने के लिए प्रयत्नशील है।
3. समाजवाद व्यक्तियों के व्यक्तित्व के पूर्ण विकास में विश्वास करता है और इस दृष्टि से अधिक–से–अधिक सम्भव सीमा तक व्यक्तियों को नागरिक, राजनीतिक और आर्थिक स्वतन्त्रता प्रदान करता है।
4. यह निजी सम्पत्ति की समाप्ति नहीं चाहता, वरन् सामाजिक हित में उसे केवल सीमित करने के पक्ष में है।
5. समाजवाद मानवीय जीवन को व्यवस्थित रखने में धर्म और नैतिकता के महत्त्व को स्वीकार करता है और सभी धर्मों के सार, मानव धर्म पर आधारित है।
6. यह आर्थिक और राजनीतिक सत्ता के विकेन्द्रीकरण का मार्ग अपनाता है।
7. सत्ता जनता द्वारा निर्वाचित संसद के प्रति उत्तरदायी होनी चाहिए।
8. यह समानता पर आधारित सामाजिक व्यवस्था की स्थापना में सहायक है।

2.9 समाजवाद के दोष (Defects of Socialism) –

समाजवाद को सबसे अधिक उपयोगी और व्यावहारिक विचारधारा बताया जाता है तो दूसरी ओर इसके आलोचकों की भी कमी नहीं है। इसके प्रमुख दोष निम्न प्रकार है –

1. **कोई स्पष्ट विचारधारा नहीं** – समाजवाद में अस्पष्टता और अनिश्चितता है। उदाहरण के लिए, कुछ समाजवादी राष्ट्रीयकरण पर बल देते हैं तो कुछ अन्य समाजीकरण पर। निजी सम्पत्ति पर किस सीमा तक नियन्त्रण रखा जाए, इस सम्बन्ध में भी समाजवादियों में व्यापक मत भेद हैं।
2. **एक–दूसरे के विरोधी तत्वों को स्थान** –जनतन्त्र स्वतन्त्रता में विश्वास करता है जबकि समाजवाद नियन्त्रणों की व्यवस्था में। जनतन्त्र और समाजवाद के परस्पर विरोध के कारण समाजवादियों की विचारधारा में भी विरोधाभास है।
3. **प्राकृतिक सम्भावनाओं के विरुद्ध** – यह विचारधारा समानता की धारणा पर आधारित है, किन्तु प्रकृति की दृष्टि से मनुष्य समान नहीं वरन् उसमें शारीरिक शक्ति, बुद्धि और चरित्रबल का भेद होता है। ऐसी स्थिति में जिन व्यक्तियों ने अपनी योग्यता, परिश्रम और मितव्ययता के बल पर अन्य व्यक्तियों से अधिक सम्पत्ति अर्जित करली है, उन्हें अपनी इच्छानुसार सम्पत्ति के

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

प्रयोग का अधिकार भी प्राप्त होना चाहिए, लेकिन समाजवाद परिश्रमी और योग्य व्यक्तियों की सम्पत्ति आलसी और अकर्मण्य व्यक्तियों में बाँटना चाहता है।

4. **भ्रष्ट व्यवस्था को संरक्षण** – समाजवाद में राज्य की शक्तियाँ बहुत अधिक बढ़ जाती हैं और व्यवहार में राज्य की इन शक्तियों का प्रयोग नौकरशाही के द्वारा ही किया जायेगा। यह एक सर्वविदित बात है कि भाई भतीजावाद, भ्रष्टाचार और लालफीताशाही नौकरशाही की कार्यविधि के अनिवार्य अंग है।
5. **उपभोक्ताओं के हितों को नुकसान** – समाजवाद में उत्पादन पर राज्य का अधिकार स्थापित हो जाने से उपभोक्ता की सम्प्रभुता समाप्त हो जाती है। उपभोक्ता को अपनी आवश्यकताएं, जो कुछ उत्पादित हो चुका है उसके अनुसार ही पूरी करनी होंगी और इसके परिणामस्वरूप स्वाभाविक रूप से उनके हितों को नुकसान होगा।

निष्कर्ष (Conclusion) –

समाजवाद की उपर्युक्त प्रकार से आलोचनाऐं की जाती हैं, लेकिन इन सभी आलोचनाओं के बावजूद यह कहा जा सकता है कि इन आलोचनाओं का सैद्धान्तिक दृष्टि से ही कुछ महत्त्व हो सकता है। जहाँ तक व्यवहार का सम्बन्ध है, हमारे सम्मुख प्रजातन्त्र के समान ही समाजवाद का कोई विकल्प नहीं है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- समाजवाद, लोकतांत्रिक मार्ग को अपनाकर आर्थिक, सामाजिक, न्याय की स्थापना तथा व्यक्ति की गरिमा और सामाजिक न्याय की स्थापना करने वाली विचारधारा है।
- समाजवाद के प्रमुख तत्व –
  - पूँजीवाद व साम्यवाद दोनों ही अतिवादी है।
  - जनतांत्रिक व्यवस्था में विश्वास।
  - मानवता में विश्वास।
  - आध्यात्मिक व नैतिक मूल्यों में विश्वास।
  - वर्ग संघर्ष के स्थान पर वर्ग सहयोग पर बल।
  - आर्थिक व राजनीतिक स्वतंत्रता का पक्षधर।
  - उत्पादन व वितरण पर जनतांत्रिक नियंत्रण
  - उत्पादन का लक्ष्य समाजीकरण।
  - सम्पति के असीमित संग्रह के विरुद्ध।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. भारतीय समाजवादी विचारक कौनसी अवधारणा के पक्षधर है –
   (अ) मानव गरिमा की स्थापना।
   (ब) वर्ग संघर्ष।
   (स) असीमित धन संग्रह।
   (द) नैतिक मूल्यों में दूरी। ( )
2. समाजवादी विचारधारा का घर कौनसा देश कहलाता है –
   (अ) भारत (ब) सोवियत संघ
   (स) इंग्लैण्ड (द) अमेरीका ( )
3. ''धनवानो की आय पर अतिरिक्त कर लगाना व इस राशि का उपयोग निर्धन कल्याण में करना'' कौनसी विचारधारा का लक्ष्य है –
   (अ) पूँजीवादी (ब) समाजवादी
   (स) आतिवादी (द) व्यक्तिवादी ( )
4. इनमें से कौन समाजवादी विचारक नहीं है –
   (अ) राम मनोहर लौहिया (ब) सुभाष चंद्र बोस
   (स) लार्ड मैकाले (द) हेराल्ड लास्की ( )
5. भारतीय समाजवाद की गणना किस रूप में की जाती है –
   (अ) लोकतांत्रिक समाजवाद
   (ब) श्रेणी समाजवाद
   (स) साम्यवाद
   (द) धार्मिक समाजवाद ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. समाजवाद का आरम्भ कहाँ हुआ था?
2. समाजवाद का एक प्रमुख तत्व क्या है।
3. भ्रष्ट व्यवस्था कहाँ अधिक पनपने की सम्भावना है।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. भारत में समाजवाद का सबसे प्रमुख प्रतिपादक कौन–कौन हैं?
2. समाजवाद के चार प्रमुख सिद्धान्त बतलाइये।
3. समाजवाद के चार गुण बतलाइए।
4. समाजवाद के विरुद्ध चार तर्क दीजिए।
5. समाजवाद का आशय क्या है?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. समाजवाद से आप क्या समझते हैं?इसके गुण–दोषों पर प्रकाश डालिए।
2. समाजवाद के प्रमुख तत्त्व बताइए।
3. लोकतान्त्रिक समाजवाद के मुख्य सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।

बहुचयनात्मक प्रश्नों की उत्तरमाला

1. अ 2. स 3. ब 4. स 5. अ

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

3. मार्क्सवाद (Marxism)

मार्क्सवाद कार्ल मार्क्स एवं फ्रेडरिक एंगेल्स तथा लेनिन माओ ग्राम्शी आदि के विचारों की व्यवस्थित श्रृंखला है। मार्क्स समाजवादी विचारधारा के प्रतिपादक या सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन की बात कहने वाला प्रथम विचारक नहीं है। मार्क्स से पहले ब्रिटेन व फ्राँस के विचारकों द्वारा समाजवादी विचार व्यक्त किये जा चुके थे। फ्राँस में नायेल बावेफ, सेण्ट साइमन चार्ल्स फोरियर व लुई ब्लांक तथा इग्लैण्ड में जॉन डी सिलमेण्डी, डॉ. हॉल, थाम्पसन और राबर्ट ओवन थे। ये विचारक पूँजीवादी व्यवस्था में विद्यमान धन की विषमता, स्वतंत्र प्रतियोगिता और आर्थिक क्षेत्र में राज्य की नीति के कटु आलोचक थे। लेकिन उन्होंने यह नहीं बताया कि विषमता किन कारणों से उत्पन्न होती है तथा न ही विषमता निवारण का घटना चक्र प्रस्तुत किया। मार्क्स ने सर्वप्रथम वैज्ञानिक समाजवाद का प्रतिपादन कर समाजवाद(साम्यवादी) की स्थापना हेतु विश्लेषण पर आधारित एक व्यावहारिक योजना प्रस्तुत की।

3.1 मार्क्सवाद का अभिप्राय (Meaning of Marxism)

मार्क्सवाद वह विचारधारा है जिसका आधार मार्क्स एवं एंगेल्स के विचार है। 19वीं शताब्दी में जर्मनी में कार्ल मार्क्स (1818–1883) और फ्रेडरिक एंगेल्स नाम के दो महान विचारक हुए थे। इन दोनों ने मिलकर दर्शन, इतिहास, समाजशास्त्र, विज्ञान, अर्थशास्त्र की विविध समस्याओं पर अत्यन्त गम्भीर व विशद रूप से विवेचन करते हुए सभी समस्याओं के सम्बन्ध में एक सुनिश्चित विचारधारा और एक नवीन दृष्टिकोण विश्व के सामने रखा तथा इसी दृष्टिकोण व विचारधारा को विश्व में मार्क्सवाद के नाम से जाना जाता है। इस विचारधारा में एंगेल्स का योगदान भी महत्त्वपूर्ण रहा।

इस प्रकार से मार्क्सवाद का प्रमुख प्रतिपादक जर्मन दार्शनिक कार्ल मार्क्स है। उसने ऐतिहासिक अध्ययन के आधार पर समाजवाद का प्रतिपादन किया है। अतः इसे वैज्ञानिक समाजवादी कहा जाता है। मार्क्स के अतिरिक्त एंजिल्स, लेनिन, स्टालिन, कॉटसी रोजा लक्जमबर्ग, डॉहस्की, माओ, ग्राम्शी, जार्ज ल्यूकाज आदि इस विचारधारा के प्रमुख मार्क्सवादी है।

3.2 कार्ल मार्क्स – जीवन परिचय (Karl Marx – The Life Story)

क्रान्तिकारी तथा वैज्ञानिक समाजवाद के प्रवर्तक कार्ल मार्क्स का जन्म 1818 ई. में एक यहूदी परिवार में हुआ। इनके पिता हेनरिक मार्क्स जो पेशे से वकील थे। कार्ल जब छोटा बालक था तो इनके पिता ने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया। इन्होंने बर्लिन विश्वविद्यालय में अध्ययन किया तथा यहाँ पर मार्क्स का परिचय हीगल के द्वन्दात्मक दर्शन से हुआ। मार्क्स विश्वविद्यालय का शिक्षक बनना चाहता था लेकिन नास्तिक विचारों के कारण ऐसा नहीं हो सका। 1841 ई में मार्क्स ने जेना विश्वविद्यालय से डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त की व 1843 में 25 वर्ष की आयु में जैनी से विवाह हुआ तथा 14 मार्च 1883 ई में मार्क्स का लन्दन में देहान्त हो गया इनकी फ्रेडरिक ऐन्जिल्स से मित्रता इतिहास प्रसिद्ध है।

3.3 मार्क्स के दर्शन के स्रोत (Sources of Marxism)

ऐबेन्सटीन के अनुसार " अपनी स्वयं की कष्टपूर्ण और लम्बी खोज में मार्क्स को अपना दर्शन किसी विचारक से बना बनाया तैयार नहीं मिला वरन् उसने उसे विभिन्न स्त्रोतों से एकत्र किया।"

गैटल ने लिखा है " मार्क्सवाद का मुख्य आधार ऐतिहासिक भौतिकवाद और वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त है इन दोनों का हीगल के दर्शन से निकट का सम्बन्ध है। दूसरे यह मार्क्स के अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त पर निर्भर है जिसका आधार इग्लैण्ड का अर्थशास्त्र है। तीसरे इसमें फ्राँसीसी क्रान्ति व फ्राँसीसी समाजवाद के तत्व भी सम्मिलित है इनसे उसने क्रान्ति के द्वारा प्रगति का सिद्धान्त और राज्य के विलीन होने की धारणा ग्रहण की।

1. **जर्मन विद्वानों का प्रभाव** – मार्क्स ने समाज के विकास के लिए हीगल की द्वन्द्वात्मक पद्धति को अपनाया उन्होंने युवा हीगलवादी फायरबाख से भौतिकवाद का विचार लिया।
2. **ब्रिटिश अर्थशास्त्रियों का चिन्तन** – मार्क्स ने ब्रिटिश अर्थशास्त्रियों एडम स्मिथ व रिकार्डो आदि से श्रम के मुख्य सिद्धान्त को अपनाया इसी सिद्धान्त के आधार पर उन्होंने अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त प्रतिपादित किया।
3. **फ्रेंच समाजवादियों का चिन्तन** – फ्राँस में सेण्टसाइमन, चार्ल्स फोरियर आदि चिन्तको ने समाजवाद का प्रतिपादन किया था। उसका स्वरूप यद्यपि काल्पनिक था तथापि वह अपने चरित्र से क्रान्तिकारी था। उत्पादन के साधनो पर स्वामित्व का सिद्धान्त श्रमिको का उत्पादन और उनका शोषण करने वाले वर्ग का विनाश का सिद्धान्त और वर्ग विहीन समाज की स्थापना का विचार आदि मार्क्स ने फ्राँसीसी चिन्तन से प्राप्त किया।
4. **सामाजिक आर्थिक परिस्थितियाँ** – तत्कालीन पूँजीवादी समाज के शोषणवादी चरित्र ने भी मार्क्स को क्रान्तिकारी विचार प्रस्तुत करने के लिए प्रेरित किया था।

संक्षेप में, मार्क्स ने चाहे ईंटों को बहुत से स्थानों से एकत्र

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

किया हो परन्तु उसने साम्यवाद का जो विशाल भवन बनाया वह सर्वथा मौलिक है। उसने सर्वहारा वर्ग को तार्किकता देकर महान गति और शक्ति प्रदान की। उसने समाजवाद (साम्यवाद) को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया। इसी कारण उसे वैज्ञानिक समाजवाद का जनक कहते हैं। इसका वैज्ञानिक समाजवाद द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या, वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त व अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त इन चार स्तम्भों पर आधारित है।

3.4 मार्क्सवाद की प्रमुख रचनाएँ (Works of Marxism)

1. द पावर्टी ऑफ फिलोसॉफी (1847) –मार्क्स
2. द इकोनॉमिक एण्ड फिलोसॉफिकल मेन्यूसिक्रिप्ट (1844) –मार्क्स
3. थीसीस ऑन फायरबाख –मार्क्स
4. क्लास स्ट्रगल इन फ्राँस –मार्क्स
5. द क्रिटिक ऑफ पॉलिटीकल इकोनॉमी –मार्क्स
6. वेल्यू, प्राइज एण्ड प्रॉफिट –मार्क्स
7. द कैपिटल (वोल्यूम I, II, III) (1894) –मार्क्स
8. द सिविल वार इन फ्रांस (1871) –मार्क्स
9. द गोथा प्रोग्राम –मार्क्स
10. 'द होली फैमिली (1875), जर्मन आइडिओ लॉजी, द कम्युनिस्ट मैनिफैस्टो –मार्क्स एवं एंगेल्स
11. द ओरिजन ऑफ फेमिली. प्राइवेट प्रोर्पटी एवं द स्टेट –एंगेल्स
12. स्टेट एंड रेवोल्यूशन –लेनिन
13. ऑन कांन्ट्रेडिक्शंस –माओत्से तुंग
14. द प्रिजन नोट बुक्स –ग्राम्शी

3.5 मार्क्स की रचनाओं से सम्बन्धित कुछ तथ्य

1. The Capital (1867) में मार्क्स ने मूल आर्थिक नियमों का विश्लेषण किया।
2. The Capital (1867) का पूरा नाम – " The Critique of Political Economy" है।
   द कैपिटल का पहला खण्ड मार्क्स ने तथा बाकी दो खण्ड मार्क्स की मृत्यु के पश्चात् एंगेल्स ने संपादित किए।
3. प्रूधों ने "The Philosophy of Poverty" (1847) नामक पुस्तक लिखी, जिसके जवाब में मार्क्स ने "The Poverty of Philosophy " (1847) नामक रचना लिखी इसमें मार्क्स ने वर्ग की सकारात्मक परिभाषा दी।
4. The Civil War in France (1871) में राज्य पर विचार दिया तथा इन्होंने The Communist Manifesto (1848) के विचारों को संशोधित किया।
5. The German Ideology (1845) में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का सिद्धान्त दिया।
6. टेलर ने मार्क्स की रचना "The Communist Manifesto" (1848) को बाइबिल या कुरान की भाँति पवित्र कहा।

3.6 मार्क्स के प्रमुख विचार अथवा मार्क्सवाद की मूल मान्यताएँ (Ideas of Marx & Foundations of Marxism)

1. द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद
2. इतिहास की भौतिकवादी या आर्थिक व्याख्या
3. वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त
4. अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त
5. मार्क्स का राज्य सिद्धान्त
6. प्रजातन्त्र, धर्म व राष्ट्र के सम्बन्ध में धारणा
7. मार्क्सवादी पद्धति, कार्यक्रम (क्रान्ति)

परन्तु मार्क्सवाद को जानने के तीन आधार है –

1. उत्पादन प्रणाली
2. उत्पादन के साधन
3. उत्पादन सम्बन्ध

उत्पादन प्रणाली से दो बातों का संकेत मिलता है –

(अ) उत्पादन के तरीके या तकनीकी स्वरूप क्या है जैसे की क्या वह हस्तशिल्प, कृषकीय या औद्योगिक तरीके से होता है।

(ब) उत्पादन किस तरह की समाज व्यवस्था के अन्तर्गत होता है ? अर्थात् क्या वह दास प्रथा वाली व्यवस्था में, पूँजीवादी या समाजवादी व्यवस्था के अन्तर्गत सम्पन्न होता है।

उत्पादन की शक्तियों से भी दो बातों का संकेत मिलता है –

(अ) उत्पादन के साधन, उपकरण, यन्त्र इत्यादि क्या है ?

(ब) श्रम शक्ति अर्थात् उत्पादन करने वाले मनुष्यों के ज्ञान, अनुभव, निपुणता और क्षमताओं का स्तर क्या है?

उत्पादन सम्बन्धों से तात्पर्य है कि मनुष्य किन सम्बन्धों से बन्ध जाते हैं। ये सम्बन्ध इस बात पर निर्भर है कि कौनसा वर्ग उत्पादन के साधनों का स्वामी है और इसलिए प्रभुत्वशाली वर्ग है और कौनसा वर्ग इनसे वंचित होने के कारण पराधीन वर्ग की स्थिति में है।

1. द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद (Dialectical Materialism) –

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का सिद्धान्त मार्क्स के सम्पूर्ण चिन्तन का मूलाधार है। यह सिद्धान्त भौतिकवाद की मान्यताओं को द्वन्द्वात्मक पद्धति के साथ मिलाकर सामाजिक परिवर्तन की व्याख्या देने का प्रयत्न करता है। इस सिद्धान्त के प्रतिपादन में मार्क्स के द्वन्द्ववाद का विचार हीगल की द्वन्द्वात्मक पद्धति से ग्रहण किया और भौतिकवाद का दृष्टिकोण फायरबाख से। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद में दो शब्द है– इनमें प्रथम शब्द द्वन्द्वात्मक उस प्रक्रिया को स्पष्ट करता है जिसके अनुसार सृष्टि का विकास हो रहा है और दूसरा शब्द भौतिकवाद सृष्टि के मूल तत्व को सूचित करता है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

2. **द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया (Dialectical Process)** – मार्क्स के विचार द्वन्द्वात्मक पद्धति पर आधारित है। हीगल यह मानकर चलता है कि समाज की प्रगति प्रत्यक्ष न होकर एक टेढ़े–मेढ़े तरीके से हुई है जिसके तीन अंग है वाद, प्रतिवाद, और संवाद मार्क्स की पद्धति का आधार हींगल का यही द्वन्द्ववादी दर्शन है।

मार्क्स तथा उसके अनुयायियों ने द्वन्द्वातमक प्रक्रिया को गेहूँ के पौधे के उदाहरण से समझाया है गेहूँ का दाना वाद है। भूमि में बो देने के बाद जब पौधा निकलता है तो दूसरा चरण प्रतिवाद है। तीसरा चरण पौधे में बाली का आना इसके पकने पर गेहूँ का दाना बनना तथा पौधे का सुखकर नष्ट होना यह तीसरा चरण संवाद है।

भौतिकवाद (Materialism) – जहाँ हीगल सृष्टि का मूल तत्व चेतना या विश्वात्मा को मानता है वहीं मार्क्स सृष्टि का मूल तत्व जड़ को मानता है।

3.7 द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की विशेषताएँ (Characteristics of Dialectical Materialism) –

1. द्वन्द्ववाद के अनुसार विश्व स्वतंत्र है और यह असम्बद्ध वस्तुओं का ढेर या संग्रह मात्र नहीं है वरन् समग्र इकाई है जिसकी समस्त वस्तुएँ परस्पर निर्भर है।
2. द्वन्द्ववाद के अनुसार प्रकृति अस्थिर, गतिशील और निरन्तर परिवर्तनशील है।
3. द्वन्द्ववाद के अनुसार वस्तुओं में विकास और परिवर्तन की प्रक्रिया सरल है।
4. वस्तुओं में गुणात्मक परिवर्तन धीरे–धीरे न होकर शीघ्रता के साथ अचानक होते हैं
5. वस्तुओं में गुणात्मक परिवर्तन क्यों होते हैं इसका उत्तर मार्क्स हीगल की विचारधारा के आधार पर ही देता है।
6. द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद प्राकृतिक जगत की आर्थिक तत्वों के आधार पर व्याख्या करता है और पदार्थ को समस्त विश्व की नियन्त्रक शक्ति के रूप में।

3.8 द्वन्द्वात्मक विकास के नियम (Principles of Dialectical Evolution) –

1. **विपरीत की एकता और संघर्ष का नियम**
2. **परिमाण से गुण की ओर परिवर्तन** – मात्रा में भारी परिवर्तन से गुण में भी परिवर्तन हो जाता है जैसे जल गर्म होकर भाप में परिवर्तित हो जाता है।
3. **निषेध का निषेध नियम** – इस प्रक्रिया में कोई तत्व अपने विरोधी तत्व से टकराकर अपनी आरम्भिक अवस्था में नहीं आता है अपितु उच्च अवस्था में पहुँच जाता है।

अतः वाद प्रतिवाद के संघर्ष के फलस्वरूप बना संवाद नहीं है अपितु उच्च अवस्था का प्रतिनिधित्व करता है।

3.9 ऐतिहासिक भौतिकवाद (Historical Materialism) –

मार्क्सवाद के अन्तर्गत ऐतिहासिक भौतिकवाद को द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के पूरक सिद्धान्त के रूप में मान्यता प्राप्त है। इसे इतिहास की आर्थिक व्याख्या या इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या भी कहा जाता है। मार्क्सवादी विचारधारा में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की भाँति ही इतिहास की आर्थिक व्याख्या का सिद्धान्त महत्त्वपूर्ण है। मार्क्स की धारणा है कि मानव इतिहास में होने वाले विभिन्न परिवर्तन और घटनाएँ भौतिक व आर्थिक कारणों से होती है। अतः मार्क्स इस बात से सहमत नहीं है कि इतिहास कुछ विशेष व महान व्यक्तियों के कार्यों का परिणाम हैं।

मार्क्स ने मानव इतिहास के विकास पर आर्थिक कारणों का प्रभाव स्पष्ट करने के लिए इतिहास को छः अवस्थाओं में विभाजित किया है। इसमें प्रथम तीन अवस्थाएँ गुजर चुकी है। चौथी अवस्था चल रही है दो अवस्थाएँ अभी आनी है।

1. आदिम साम्यवादी अवस्था
2. दास अवस्था
3. सामन्ती अवस्था
4. पूँजीवादी अवस्था
5. सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व एवं समाजवाद
6. साम्यवादी अवस्था

मार्क्स के अनुसार समाज के दो भाग होते हैं–

1. आधार
2. अधिरचना

आधार में वह अर्थव्यवस्था व उत्पादन प्रणाली को सम्मिलित करता है अधिरचना में सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक अवस्था को सम्मिलित करता है।

मार्क्स के अनुसार आधार अर्थात् अर्थव्यवस्था व प्रणाली पर जिसका नियन्त्रण होता है उसे शोषक वर्ग कहते हैं और जो वर्ग शोषक वर्ग के अधीन कार्य करता है उसे शोषित वर्ग कहते हैं।

3.10 इतिहास के आर्थिक व्याख्या के निष्कर्ष (The Deductions of Economic Analysis of History)–

1. मानव जीवन व सभ्यता का विकास ईश्वर या महापुरुष के विचारों व कार्यों का परिणाम नहीं होते हैं सामाजिक परिवर्तन के निश्चित नियम है और इस प्रक्रिया का

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

संचालक आर्थिक तत्व है।

2. प्रत्येक युग में सामाजिक व राजनीतिक व्यवस्था पर उसी का नियन्त्रण रहता है जिसका आर्थिक व्यवस्था पर नियन्त्रण होता है।
3. आर्थिक परिवर्तनों से राजनीतिक व सामाजिक परिवर्तन होता है।
4. आदिम साम्यवाद को छोड़कर पूँजीवाद तक वर्ग संघर्ष विद्यमान रहता है।
5. इतिहास की आर्थिक व्याख्या से मार्क्स पूँजीवाद के अन्त व साम्यवाद के आगमन की घोषणा करता है।

3.11 इतिहास की आर्थिक व्याख्या की आलोचना (The Criticism of Economic Analysis of History)–

1. आर्थिक तत्व पर अधिक व अनावश्यक बल
2. आर्थिक आधार पर सभी ऐतिहासिक घटनाओं की व्याख्या संभव नहीं
3. इतिहास निर्धारण में संयोग तत्व की उपेक्षा
4. मानवीय इतिहास के कार्यक्रम का निर्धारण संभव नहीं
5. राजनीतिक सत्ता का एकमात्र आधार आर्थिक सता नहीं
6. आर्थिक सम्बन्धों को राजनीतिक शक्ति द्वारा बदला जाता है।
7. इतिहास की धारणा का राज्य विहीन समाज पर आकर रुकना संभव नहीं।

3.12 वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त (Theory of Class Struggle) –

कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो (1848) मार्क्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, ऐतिहासिक भौतिकवाद व अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त पर आधारित है मार्क्स अपनी पुस्तक कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो (1848) के प्रथम वाक्यांश में कहता है कि अब तक का समाज का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है।

एंगेल्स अपनी पुस्तक (Origin of Family Private Property & State) में लिखता है कि पहली शोषक संस्था परिवार है और पीड़ित वर्ग महिला है। एंगेल्स के अनुसार हल के साथ निजी सम्पति का उदय हुआ। निजी सम्पति के उद्‌भव के साथ वर्ग संघर्ष का उदय हुआ और वर्ग संघर्ष को दबाने के लिए राज्य का उदय हुआ।

वर्ग (Class) – मार्क्स के अनुसार जिस समूह के एक समान आर्थिक हित होते हैं उसे वर्ग कहते हैं। श्रमिक, पूँजीपति इत्यादि।

संघर्ष (Struggle) – संघर्ष का व्यापक अर्थ असन्तोष, रोष व असहयोग है।

3.13 वर्ग संघर्ष की आलोचना –

1. एकांगी व दोषपूर्ण।
2. सामाजिक जीवन का मूल तत्व सहयोग है संघर्ष नहीं।
3. समाज में केवल दो वर्ग ही नहीं होते हैं
4. सामाजिक व आर्थिक वर्ग में अन्तर होता हैं।
5. क्रान्ति श्रमिक वर्ग की बजाय बुद्धिजीवी वर्ग से सम्भव।
6. समस्त इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास नहीं।

मार्क्स के इस सिद्धान्त ने श्रमिक वर्ग में जागृति उत्पन्न की।

3.14 अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त (Theory of Surplus Value) –

मार्क्स अपनी पुस्तक में रिकार्डो से प्रभावित होकर अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त देता है। रिकार्डो एक पूँजीपति विचारक है जो श्रम मूल्य का सिद्धान्त प्रस्तुत करता है। रिकार्डो का कहना था कि किसी वस्तु की कीमत का निर्धारण श्रम द्वारा होता है।

मार्क्स के अनुसार बाजार में माल–परिचालन का सामान्य सूत्र C-M-C है अर्थात् एक वस्तु के साथ बाजार में आना, उसे बेचकर मुद्रा कमाना तथा मुद्रा से मनवांछित दूसरी वस्तु खरीदकर बाजार छोड़ देना। माल–उत्पादन की एक खास मंजिल पर मुद्रा पूंजी में बदल जाती है। पूंजी के परिचलन का सूत्र है M-C-M' अर्थात् पूंजीपति मुद्रा (M) के साथ बाजार में आता है, श्रम शक्ति नामक माल खरीद कर उससे ऐसा नया माल बनाता है जिसे बेचकर अधिक मुद्रा (M') कमा लेता है। इस M'-M को मार्क्स अतिरिक्त मूल्य कहता है जो परिचलन में डाली गई मुद्रा के आरम्भिक मूल्य में वृद्धि है। मुद्रा जब अतिरिक्त मूल्य का सृजन करने लगती है तो पूंजी बन जाती है। पूंजीपति निर्वाह मजदूरी पर मजदूर की पूरी श्रम शक्ति खरीद लेता है। इस तरह मजदूर अपनी निर्वाह मजदूरी यानि अपने विनिमय मूल्य के अतिरिक्त जो श्रम करने को बाध्य होता है, उससे पैदा होने वाला मूल्य अतिरिक्त मूल्य है। यह मजदूर को नहीं मिलता बल्कि सीधे पूंजीपति द्वारा हड़प लिया जाता है। उल्लेखनीय है कि अतिरिक्त मूल्य माल के विनिमय मूल्य में अन्तर्निहित होता है। बाजार में मांग–पूर्ति से तय होने वाली अल्पकालिक कीमत से पूंजीपति जो मुनाफा कमाता है, वह इसके अलावा है।

मार्क्स के अनुसार इस अतिरिक्त मूल्य के समाज पर निम्न प्रभाव दृष्टिगोचर होते हैं –

1. श्रमिकों की दयनीय दशा
2. सर्वहारा क्रान्ति का कारण
3. अतिरिक्त जनसंख्या का कारण

आलोचना –

1. श्रम एकमात्र उत्पादन का साधन नहीं।
2. इसमें पूँजी लागत मानसिक श्रम की अवहेलना की गई है।
3. इसमें मौलिकता का अभाव है यह रिकार्डो से प्रभावित है।
4. सिद्धान्त विरोधाभास से युक्त है।

महत्त्व – समाजवाद के प्रचार में सबसे अधिक सहायक रहा है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

3.15 अलगाव का सिद्धान्त (Theory of Aleivation) –

अलगाववादी विचार नव मार्क्सवाद या तरूण मार्क्स के विचार का आधार है। मार्क्स अपनी अपनी रचना मेन्यू स्क्रिप्ट 1844 में यह सिद्धान्त प्रस्तुत करता है। इस पुस्तक में वह पूँजीवाद की तुलना में सामंतवाद को अच्छा बताता है। वह कहता है कि पूँजीवाद के कारण मनुष्य अलगाव का शिकार हो गया है। यह अलगाव निम्न चार प्रकार से देखा जा सकता है –

1. उत्पादन प्रणाली से अलगाव
2. पर्यावरण से अलगाव
3. साथियों से अलगाव
4. स्वयं से अलगाव

नव मार्क्सवाद भी इसी अलगाव के सिद्धान्त से प्रभावित है। यह जार्ज ल्यूकाज के द्वारा 1923–24 में सर्वप्रथम सामने लाया गया जब मार्क्स द्वारा लिखे गए विचार आर्थिक एवं दार्शनिक पाडूँलिपियों (1844) का 1932 ई. में प्रकाशन किया गया।

3.16 पूँजीवाद का विश्लेषण व भविष्य सम्बन्धी धारणा (Anaylsis of Capitalism & Its Future) –

मार्क्स पूँजीवादी व्यवस्था का विश्लेषण करता है तथा उसके भविष्य की धारणा को स्पष्ट करता है। पूँजीवाद लाभ के लिए उत्पादन करता है व इसमें परस्पर दो विरोधी वर्गों का हित पाया जाता है। पूँजीपतियों की पूँजी में निरन्तर वृद्धि होती जाती है जिससे अति उत्पादन संकट उत्पन्न हो जाता है। इसके बाद पूँजीपतियों के प्रतियोगिता तत्व का अन्त हो जाता है व पूँजीवाद की समाप्ति होती है।

3.17 राज्य व शासन सम्बन्धी धारणा (The Marxist View of State & Government) –

मार्क्स की राज्य व शासन सम्बन्धी धारणा अन्य सभी विचारधाराओं से पृथक् है। कार्ल मार्क्स राज्य को एक वर्गीय संस्था के रूप में मानते हैं। मार्क्स के अनुसार राज्य की उत्पति ही वर्ग विभेद है। राज्य शोषण का यन्त्र रहा है।

कार्ल मार्क्स के राज्य व शासन सम्बन्धी विचारों को निम्न बिन्दुओं के आधार पर समझा जा सकता है –

1. राज्य की उत्पति का कारण वर्ग विभेद है व राज्य शोषक वर्ग के हितों की सुरक्षा करता है।
2. राज्य व शासन शोषण का यंत्र है अर्थात् राज्य व शासन शोषक वर्ग की शोषित वर्ग के शोषण में सहायता करता है।
3. संक्रमण काल में सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व – राज्य की समाप्ति या शोषक वर्ग की समाप्ति हेतु कुछ समय के लिए सर्वहारा वर्ग अर्थात् श्रमिक व कृषक वर्ग का अधिनायकत्व रहेगा जिससे राज्य व पूँजीवाद(बुर्जुआ वर्ग) के बचे हुए अवशेषों को समाप्त किया जा सके।
4. राज्य विहीन तथा वर्ग विहीन समाज की स्थापना का आधार प्रस्तुत करता है।

आलोचना –

1. राज्य एक वर्गीय संगठन नहीं है वरन् यह एक नैतिक संगठन है।
2. वर्तमान में राज्य सर्वहारा वर्ग का शत्रु न होकर मित्र है जो सर्वहारा के कल्याण हेतु कार्य करता है।
3. राज्य अस्थायी नहीं वरन् स्थायी है।
4. मार्क्स द्वारा राज्य के विलुप्त होने की धारणा कपोल–कल्पित है।

3.18 लोकतंत्र, धर्म और राष्ट्रवाद के सम्बन्ध में मार्क्सवाद की धारणा (Marxist View of Democracy, Religion & Nationalim) –

मार्क्स लोकतंत्र, धर्म और राष्ट्रवाद तीनों को शोषित वर्ग के शोषण का साधन मानता है तथा धर्म को अफीम की संज्ञा देता है। धर्म श्रमिकों का शोषण करता है मार्क्स कहता है कि मजदूरों का कोई देश नहीं होता है इसलिए वह विश्व के सम्पूर्ण मजदूरों को एक होने का संदेश देता है। इस प्रकार वह राष्ट्रवाद की अवधारणा को भी व्यर्थ बताता है।

मार्क्सवादी कार्यक्रम – मार्क्सवादी कार्यक्रम के तीन चरण है

1. पूँजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध क्रान्ति
2. संक्रमण काल के लिए सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व
3. राज्य विहीन व वर्ग विहीन समाज की स्थापना अर्थात् पूर्ण साम्यवाद की स्थापना
4. साम्यवादी समाज तकनीकी दृष्टि से प्रगतिशील व उन्नत समाज होगा।

3.19 मार्क्सवाद की आलोचना (Criticism of Marxism) –

मार्क्सवाद की कई विचारकों ने कटु आलोचना की है। उदारवादियों ने सर्वहारा की तानाशाही को सोवियत संघ के स्टालिनवादी शासन और चीन के माओवादी सर्वाधिकारवाद के परिप्रेक्ष्य में लोकतंत्र विरोधी तानाशाही माना है। वास्तव में सर्वहारा की तानाशाही सोवियत संघ में सर्वहारा पर तानाशाही थी। कार्लपॉपर ने मार्क्सवाद की तुलना एक ऐसे बन्द समाज से की है जहाँ लोकतंत्र और स्वतंत्रता दोनों का ही अभाव रहता है। बर्नस्टीन ने अपनी पुस्तक ' विकासवादी समाज ' (1899) तथा कॉटस्की ने अपनी पुस्तक ''सर्वहारा की तानाशाही'' में मार्क्सवाद के वर्ग संघर्ष, क्रान्ति तथा सर्वहारा की तानाशाही के सिद्धान्तों को शान्तिपूर्ण एवं संविधानिक सुधार के आधारों पर अनुचित बताया है। रोजा लक्जेमबर्ग ने अपनी पुस्तक 'रुसी क्रान्ति' (1940) में शासन पर जन नियन्त्रण के अभाव और प्रेस की स्वतंत्रता के अभाव के कारण मार्क्सवाद की आलोचना की है। वस्तुतः मार्क्सवाद के वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त समाज में निरन्तर संघर्ष की बात करते हुए सभी प्रकार के सहयोग एवं

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

समन्वय की संभावना को समाप्त कर देता है। ऐसे में सतत् सामाजिक हिंसा और बाधा की स्थिति बनी रहती है।

मार्क्सवाद के अन्तर्गत समाज के लिए आर्थिक आधार पर वर्ग विभाजन भी सत्य से परे है। वस्तुतः अन्य सामाजिक कारकों यथा धर्म, नस्ल, जाति, प्रजाति इत्यादि के आधार पर भी कई विभाजन और विभेद की स्थिति बनती है इसलिए पदार्थ पर अधिक महत्त्व व्यर्थ है। व्यवहार में मार्क्सवादी अनुभव अत्यधिक पीड़ादायक रहा है। सोवियत संघ, पूर्वी यूरोप, चीन, कम्बोडिया, क्यूबा व उत्तर कोरिया मार्क्सवादी हिंसा, लोकतंत्र के दमन तथा बाधित विकास के पर्याय के रूप में ही सामने आये है।

मार्क्सवाद की आलोचना निम्न आधारों पर की जा सकती है–

एलेक्जेंडर ग्रे के अनुसार " निसन्देह मार्क्स ने अपने विचारों का निर्माण करने वाले तत्व अनेक स्त्रोतों से लिए है लेकिन उसने उन सबका प्रयोग एक ऐसी इमारत के निर्माण हेतु किया है जो स्वयं उसके अपने नमूने की है। "

1. जड़ तत्व एवं चेतना तत्व को पूर्ण रूपेण अलग कर पाने में असमर्थ रहा है।
2. जड़ तत्व में स्वतः परिवर्तन सम्भव नहीं है।
3. इस सिद्धान्त में मौलिकता का अभाव है।
4. मार्क्सवाद हिंसा व क्रान्ति को प्रोत्साहन देता है।
5. व्यक्तिगत स्वतंत्रता के लिए घातक है।
6. द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद व इतिहास की आर्थिक व्याख्या एकपक्षीय व काल्पनिक है।
7. राज्य की विलुप्त होने की धारणा काल्पनिक है।
8. मार्क्सवाद राज्य को शोषण का यंत्र मानता है, जो अनुचित है।
9. लोकतंत्र, राष्ट्रवाद और धर्म के सम्बन्ध में मार्क्सवादी दृष्टिकोण अनुचित है।
10. मार्क्स का दो वर्गों का विचार अव्यवहारिक है।

3.20 राजनीतिक चिन्तन में मार्क्सवाद का योगदान (Contribution of Marxism in Political Thought)

राजनीतिक चिन्तन में मार्क्सवाद ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इसने विश्व को समझने का एक नवीन दृष्टिकोण प्रदान किया।

1. मार्क्सवाद विभिन्न विचारधाराओं को आधार प्रदान करता है।
2. उदारवाद को चुनौती।
3. मार्क्सवाद समाजवाद की एक व्यवहारिक व वैज्ञानिक योजना प्रस्तुत करता है।
4. मार्क्सवाद ने श्रमिक वर्ग में एक नवीन जागृति उत्पन्न की।
5. मार्क्स समाज का यथार्थवादी चित्रण प्रस्तुत करता है।

निष्कर्ष (Conclusion)

मार्क्स द्वारा समाजवाद लाने का एक ठोस एवं सुसंगत कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया जिसने विश्व में एक नई हलचल उत्पन्न कर दी। मार्क्स के विचारों को आधार बनाकर लेनिन ने 1917 ई में सोवियत संघ में साम्यवादी शासन की स्थापना कर मार्क्स के विचारों को व्यवहारिक आधार प्रदान किया।

इसी विचारधारा के आधार पर माओत्से तुंग ने चीन में क्रान्ति के माध्यम से 1949 ई. साम्यवादी शासन की स्थापना की मार्क्सवाद के कारण पूँजीवाद ने अपने आप को सुधारने का प्रयास किया व लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा का उदय हुआ।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- कार्ल मार्क्स का जन्म 5 मई 1818 को जर्मनी में तथा मृत्यु 18 मार्च 1883 को लन्दन में हुई।
- मार्क्स समाजवाद की अवधारणा को व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करने वाला विचारक व प्रणेता।
- दास कैपिटल एवं कम्यूनिस्ट मेनिफेस्टो कार्ल मार्क्स की दो प्रसिद्ध रचनाएँ है।
- मार्क्स के प्रमुख विचार – द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, इतिहास की भौतिकवादी या आर्थिक व्याख्या, वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त, अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त, राज्य की अवधारणा, अलगाववाद का सिद्धान्त।
- मार्क्स, मानव इतिहास की छः अवस्थाएँ मानता है आदिम साम्यवादी अवस्था, दास अवस्था, सामंती अवस्था, पूँजीवादी अवस्था, सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व व साम्यवादी अवस्था।

मार्क्स का योगदान –

- स्वप्नलोकीय समाजवाद को वैज्ञानिक स्वरूप दिया।
- श्रमिक व सर्वहारा वर्ग में चेतना जागृत की।
- उदारवाद को चुनौती व निर्णयवाद का समर्थन।
- विचारों का व्यावहारिक स्वरूप प्रस्तुत किया।

मार्क्सवाद की आलोचना के आधार –

- प्रजातंत्र का विरोधी
- समाज में हिंसा व संघर्ष को प्रोत्साहन
- राज्य विहीन समाज अर्थात् अराजकता का समर्थन
- व्यक्तिगत स्वतंत्रता का विरोधी
- इतिहास की आर्थिक व्याख्या एकपक्षीय व अव्यावहारिक

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. मार्क्सवाद का प्रमुख प्रवर्तक विचारक किसे माना जाता है ?

(अ) फोरियर (ब) कार्ल मार्क्स
(स) एम. एम राय (द) लुई ब्लाक ( )

2. समाजवाद की विश्लेषण आधारित व्यावहारिक योजना के प्रतिपादक है –

(अ) जैनी (ब) राम मनोहर लोहिया

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

(स) कार्ल मार्क्स (द) टेलर ( )

3. द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का विचार मार्क्स ने किस विचारक से प्रभावित होकर लिया –

(अ) एंजिल (ब) जॉन सिलमेण्डी

(स) साइमन (द) हीगल ( )

4. नीचे कुछ विचार दिए गए है इनमें से कौनसा मार्क्सवाद से मेल नहीं खाता है –

(अ) केन्द्रीकृत संगठित राज्य

(ब) वर्ग संघर्ष की अवधारणा

(स) अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त

(द) इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या ( )

5. कार्ल मार्क्स ने समाज में कौनसे वर्ग का अस्तित्व स्वीकार किया –

(अ) मध्यम व पूँजीपति (ब) सर्वहारा व पूँजीपति

(स) निम्न व मध्यम (द) शोषित वर्ग ( )

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. कार्ल मार्क्स का सबसे घनिष्ठ मित्र कौन था ?
2. मार्क्स की किन्हीं दो रचनाओं के नाम बताइए ?
3. धर्म को अफीम के समान कौनसा विचारक मानता है ?
4. मार्क्स राज्य को किस वर्ग का हित संरक्षक मानता है ?
5. वर्तमान विश्व व्यवस्था में मार्क्स के विचारों का सर्वाधिक प्रभाव किस देश में देखा गया ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. वर्ग संघर्ष की अवधारणा क्या है ?
2. मार्क्स मानव इतिहास की कितनी अवस्थाएँ बताता है ? नाम बताइये।
3. मार्क्स को व्यवस्थित वैज्ञानिक समाजवाद का प्रवर्तक क्यों माना गया है ?
4. मार्क्सवादी दर्शन के प्रमुख स्त्रोत क्या है ?
5. मार्क्स के अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त का सारांश लिखिए ?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. मार्क्सवादी अवधारणा राजनीतिक चिन्तन को एक नई दिशा देती है। क्या आप इससे सहमत है ? विस्तृत टिप्पणी दीजिए।
2. मार्क्स का अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त वर्तमान परिप्रेक्ष्य में कितना प्रासंगिक है?समीक्षा कीजिए।
3. द्वन्दात्मक भौतिक अवधारणा की व्याख्या कीजिए।
4. वर्तमान परिप्रेक्ष्य में मार्क्सवादी अवधारणा की प्रासंगिकता बताइए।

बहुचयनात्मक प्रश्नों के उत्तर

1. ब 2. स 3. द

4. अ 5. ब

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

4. गाँधीवाद (Gandhism)

गाँधीजी के विचारों और आदर्शों का ही दूसरा नाम गाँधीवाद है। वर्तमान में, गाँधीजी के इन्हीं विचारों तथा आदर्शों को "गाँधी दर्शन", "गाँधी मार्ग", "गाँधीवादी राजनीतिक दर्शन" तथा "गाँधीवाद" इत्यादि नामों से जाना जाता है। इन विचारों तथा आदर्शों को भिन्न–भिन्न नाम इसलिये दिये गये हैं कि गाँधी स्वयं किसी 'वाद', सम्प्रदाय या सिद्धान्त में विश्वास नहीं करते थे और न ही अपने पीछे किसी प्रकार का 'वाद' छोड़ना चाहते थे। उनका तरीका प्रयोगात्मक, अनुभववादी तथा वैज्ञानिक था। गाँधीजी कार्य में विश्वास करते थे; वह कर्मयोगी थे, यदि इन विचारों को सिद्धान्त कहा जाए, तो उचित रहेगा।

4.1 गाँधी व उनके जीवन मूल्य (Gandhi & His Human Values) –

गाँधी सत्य, अहिंसा, प्रेम, भ्रातृभाव आदि के पुजारी थे। इनकी व्याख्या कर वह व्यक्ति को उसकी विकृत प्रवृत्तियों से हटाना चाहते थे। वे राजनीति को पवित्र करना चाहते थे तथा उसे धर्म और न्याय पर आधारित करना चाहते थे। गाँधी व्यक्ति में प्रेम और स्वतन्त्रता का संचार करना चाहते थे; व्यक्ति को पुरूषार्थ का महत्त्व समझाना चाहते थे। इस प्रकार गाँधीवाद जीवन शैली या जीवन दर्शन से सम्बन्धित है किसी सिद्धान्त से नहीं। बी.पी. सीतारमैया के शब्दों में, "गाँधीवाद सिद्धान्तों का, मतों का, नियमों का, विनियमों का और आदेशों का समूह नहीं है। वह जीवन शैली या जीवन दर्शन है।" यह एक नई दिशा की ओर संकेत करता है तथा मनुष्य के जीवन तथा समस्याओं के लिए प्राचीन समाधान प्रस्तुत करता है। गाँधीवाद एक ऐसा दर्शन है जो सबके कल्याण की बात करता है; हिंसक शस्त्रों के स्थान पर अहिंसक साधनों को अधिक श्रेष्ठ मानता है; शत्रुता के स्थान पर मित्रता और घृणा के स्थान पर प्रेम का भाव सिखाता है; इसमें कार्य की प्रेरणा का स्त्रोत सत्य, धर्म और ईश्वर है। इसमें छल, कपट, स्वार्थ, क्रूरता, हिंसा, द्वेष इत्यादि विकृत प्रवृत्तियों का स्थान नहीं। गाँधीवाद साध्य व साधन की पवित्रता पर बल देता है।

4.2 गाँधीवाद विचारों का एक समूह मात्र (Gandhism – A Pool of Ideas)–

गाँधीजी ने जीवन की भिन्न–भिन्न समस्याओं पर परिस्थितिजन्य विचार व्यक्त किये है। उनका नाम किसी एक विचार से सम्बन्धित नहीं किया जा सकता है। गाँधीजी के आदर्शों के जो आधार थे – सत्य, अहिंसा, प्रेम, भ्रातृभाव। वे किसी व्यक्ति, देश या समय के लिए नहीं थे बल्कि वे मानवता के लिए और सार्वदेशिक तथा सार्वभौमिक हैं। गाँधीजी ने इस सन्दर्भ में एक बार कहा था कि "गाँधी मर सकता है परन्तु सत्य, अहिंसा सर्वदा जीवित रहेंगें।" गाँधीजी एक सिद्धान्त या पद्धति से चिपके नहीं रहते थे। आवश्यकता पड़ने पर परिवर्तन में विश्वास रखते थे।

गाँधीजी विचारशील होने के साथ–साथ आचारवान् व्यक्ति थे। जिस विचार को वह आचार में नहीं ला सकते थे उसे वह बहुत गौण समझते थे। वह ऐसे व्यक्ति थे जो ईश्वर पर अटल विश्वास रखते हुए और अहिंसा के मार्ग को अपनाते हुए, अपने कार्यों को विश्वास के आधार पर करते थे। गाँधीजी के विचार व्यापक, बहुमार्गी और बहुआयामी थे। वह जहाँ, एक ओर व्यक्तिवादी, व्यावहारिक, आदर्शवादी, समाजवादी, उदारवादी, अनुदारवादी, राष्ट्रवादी, अन्तर्राष्ट्रवादी तथा सर्वोदयवादी थे। वह ये सब और इन सबसे भी अधिक मानवतावादी थे। गाँधीजी समूहवादी विचारक थे उनके विचारों में भारतीय व पाश्चात्य दोनों श्रेणी के विचारकों के विचारों का प्रभाव दिखाई देता है। वह महावीर स्वामी, गौतम बुद्ध, सुकरात, थोरो, क्रोपोटकिन एवं रस्किन के विचारों से प्रभावित थे। उनके विचारों में भगवत् गीता व उपनिषदों का प्रभाव स्पष्ट झलकता है।

गाँधीजी का पूरा जीवन दर्शन अध्यात्म पर आधारित था। उन्होंने पूँजी की अपेक्षा धर्म पर कहीं अधिक बल दिया। गाँधीजी ने मार्क्स की इतिहास की भौतिकवादी या आर्थिक व्याख्या को भी नकार दिया है क्योंकि वह हिंसा पर आधारित थी। उन्होंने मार्क्स के समाजवाद को भी हिंसा पर आधारित होने के कारण अस्वीकार कर दिया। वह मार्क्स के वर्ग संघर्ष संबंधी विचारों से सहमत नहीं थे। उसके स्थान पर वह वर्ग समन्वय व वर्ग सामंजस्य जैसी समाज को बाँधकर रखने वाली विचारधारा के पक्षधर थे। "हरिजन सेवक" में 20.03.1937 को उन्होंने स्वंय लिखा है कि "मनुष्य –मनुष्य के बीच असमानता का, ऊँच–नीचपन का विचार बुरा है पर इस बुराई को मैं मनुष्य के हृदय से तलवार के बल नहीं निकालना चाहता।"

गाँधीजी ने आध्यात्मिकता से आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में प्रगति का विचार रखा। वह आध्यात्मिक समाजवाद के प्रतिपादक थे, इसलिए उन्होंने इतिहास की आध्यात्मिक व्याख्या की थी। उन्होंने केवल भौतिक कार्यकलापों या भौतिकवाद को सभ्यता व सँस्कृति का वाहक नहीं माना। उन्होंने गहन आन्तरिक विकास पर बल दिया। गाँधीजी की धारणा है कि मानवजाति की ऊर्जा के प्रमुख स्त्रोत सत्य, अहिंसा और प्रेम है। गाँधीजी ने मार्क्स के समाजवाद व वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त के विपरीत वर्ग सहयोग व आध्यात्मिक समाजवाद की वकालात की। गाँधीजी का समाजवाद नैतिकता, हिन्दुत्व, ग्राम्य मानवतावादी ओर प्रजातंत्र पर खड़ा था, जिसे केवल राजनीतिक सत्ता प्राप्त कर, कत्ल या रक्तपात से स्थापित नहीं किया जा सकता। सच्चा समाजवाद अनुग्रह, सद्भावना और प्रेम पर आधारित होता है।

जहाँ वह निरपेक्ष प्रभुता व सत्ता के विरोधी थे वहाँ, गाँव

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

रूपी संघों (Village Republics) में समन्वय स्थापित करने तथा व्यवस्था के लिए राज्य को आवश्यक समझते थे। वे राजनीतिक और आर्थिक विकेन्द्रीकरण में विश्वास करते थे, दूसरी ओर सर्वोदय के लिए यदि आवश्यक हो तो ओद्योगीकरण और राष्ट्रीयकरण से भी नहीं हिचकिचाते थे। वह कार्ल मार्क्स के राज्य विहिन, वर्ग विहिन समाज के समर्थक थे वहीं, दूसरी ओर मार्क्स की इतिहास की भौतिक व्याख्या, वर्ग–संघर्ष और हिंसा के प्रयोग के घोर विरोधी थे, वे केवल कार्यों में बल्कि विचारों और भावनाओं में भी हिंसा को स्वीकार नहीं करते थे। गाँधीजी उदारवादी और नैतिकतावादी भी थे। वह जीवन में स्वनियन्त्रण और संयम को बहुत महत्त्व देते थे, वह जीवन में अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य को महत्त्व देते थे। उनके लिये जो व्यक्ति "अपनी आवश्यकताओं से अधिक उपभोग करता है" वह गरीबों का शोषण करता है तथा उन पर अन्याय करता है।

गाँधीजी ने अपने विचारों की व्याख्या अपनी रचनाओं विशेषकर हिन्द स्वराज्य, आत्मकथा और पत्रिकाओं विशेषकर हरिजन, यंग इण्डिया, इण्डियन ओपीनियन, नवजीवन, आर्यन पथ और अनेक भाषणों में की है। बाद में चिन्तकों ने इन्हीं का संग्रह करके इसे गाँधीवाद के नाम से सामने रखा।

4.3 गाँधीवाद के स्रोत (Sources of Gandhism) –

गाँधीजी के विचारों पर चार प्रकार के प्रभाव नजर आते हैं – (1) धार्मिक ग्रन्थों का प्रभाव, (2) दर्शन का प्रभाव, (3) सुधारवादी आन्दोलनों का प्रभाव और (4) सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियों का प्रभाव।

1. धार्मिक ग्रन्थों का प्रभाव –

(अ) **सनातन धर्म ग्रन्थों का प्रभाव** – गाँधीजी पूर्ण धार्मिक व्यक्ति थे, अध्यात्म उनका प्रिय विषय था। इसी कारण उनके विचार, भावनायें तथा कार्य धार्मिक भावनाओं से ओत–प्रोत थे। उनमें इन धार्मिक भावनाओं का विकास पूर्व व पश्चिम के ग्रन्थों के अध्ययन से हुआ। पातंजली के योग सूत्र का अध्ययन तो उन्होने सन् 1903 में अफ्रीका के जोहन्सबर्ग जेल में ही कर लिया था। उपनिषदों का उन्होने गहरा अध्ययन किया था। अपरिग्रह (किसी वस्तु को आवश्यकता से अधिक एकत्रित न करना) तथा त्याग (किसी का मोह न करना) जैसे व्रतों को उन्होने उपनिषदों से प्राप्त किया। वेदों तथा रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्यों का प्रभाव भी उन पर अत्यधिक था। गाँधीजी रामायण को भक्ति मार्ग का सर्वोत्तम ग्रन्थ मानते थे। भगवत् गीता के तो गाँधीजी भक्त ही थे। यह पुस्तक उनकी 'पथ–प्रदर्शक', 'आध्यात्मिक निर्देशक' तथा 'आध्यात्मिक माता' ही थी। यह उनका 'धार्मिक कोष' थी। यह उन्हें अंधेरे में उजाला, सन्देह में विश्वास, हतोत्साह में आशा की किरण दिखाती थी। गाँधीजी ने जो कर्म पर बल दिया वह गीता की देन है। गीता का यह वाक्य कि "कर्म करो, फल की चिन्ता मत करो।" उनके जीवन क्रियाओं का आधार बन गया।

(ब) जैन और बौद्ध धर्म का प्रभाव गाँधीजी के अहिंसा नामी पथ प्रदर्शन से स्पष्ट हो जाता है। यह जैन साधु बेचारजी थे जिन्होने गाँधीजी से इग्लैण्ड जाते समय तीन प्रतिज्ञाएँ लीं कि वह कभी मदिरा, पराई स्त्री और माँस को नहीं छुएँगे।

(स) बाईबिल का प्रभाव तो इतना प्रत्यक्ष था कि उसने गाँधीजी के हृदय में तत्काल स्थान प्राप्त कर लिया। "बुराई को भलाई से", "शत्रुता को मित्रता से", "हिंसा को अहिंसा से", "बद्दुआ को दुआ से", "घृणा को प्रेम से", "अत्याचार को प्रार्थना से", जीतने का मार्ग गाँधीजी ने इस धर्मग्रंथ से सीखा।

गाँधीजी पर चीनी विचारक लाओ त्से और कन्फ्यूशियस की विचारधाराओं का भी प्रभाव पड़ा। नम्रता, अच्छाई, शुद्धता और न अड़ने के विचार गाँधीजी ने इन्हीं की विचारधाराओं से प्राप्त किये। इस्लाम की शान्तिवादी शिक्षाओं का प्रभाव भी गाँधीजी पर पड़ा। जिस प्रकार हिन्दू धर्म, बौद्ध धर्म और ईसाई धर्म को गाँधीजी शान्ति के धर्म मानते थे उसी प्रकार इस्लाम धर्म को भी वह शान्ति का धर्म मानते थे। इन धार्मिक ग्रंथों के प्रभाव के कारण ही गाँधीजी ने अपने जीवन में निम्न विचारों को अपनाया – (1) सत्य; (2) अहिंसा; (3) ब्रह्मचर्य; (4) अस्वाद; (5) अस्तेय; (6) अपरिग्रह; (7) अभय; (8) अस्पृश्यता निवारण; (9) शारीरिक श्रम; (10) सर्वधर्म; समभाव; (11) स्वदेशी। धार्मिक ग्रन्थों का गाँधीजी के जीवन और विचारों पर अत्यधिक प्रभाव होते हुए भी वह उन पर अन्धविश्वास नहीं करते थे बल्कि जो धार्मिक तथ्य उनकी तर्क बुद्धि पर खरे उतरते थे उन्हें ही स्वीकार करते थे। गाँधीजी के शब्दों में, "धार्मिक पुस्तक की किसी बात को मैं तर्क बुद्धि से अधिक महत्त्व नहीं देता।"

2. **दार्शनिकों का प्रभाव** – गाँधीजी के विचारों पर अनेक दार्शनिकों का प्रभाव था जिनमें से मुख्य हैं – जॉन रस्किन, हेनरी डेविड थोरो, लियो टॉलस्टाय व सुकरात।

3. **सुधारवादी आन्दोलनों का प्रभाव** – भारत में चल रहे सांस्कृतिक, दार्शनिक एवम् धार्मिक सुधारावादी आन्दोलनों का प्रभाव भी गाँधीजी पर पड़ा, राम कृष्ण और विवेकानन्द का प्रभाव तो विशेषकर उन पर था। स्वदेश प्रेम और स्वदेशी की भावना तो गाँधीजी ने इन्हीं से सीखी।

4. **सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियों का प्रभाव** – भारतीयों की असहाय अवस्था और गरीबी का प्रभाव भी गाँधीजी के विचारों पर पड़ा जो उनके समाजवादी विचारों का आधार था।

4.4 दक्षिण अफ्रीका गाँधीजी के प्रयोगों की प्रयोगशाला (South Africa As A Laboratory of Gandhi's Experiments) –

दक्षिण अफ्रीका गाँधीजी के प्रयोग की प्रयोगशाला थी; वहीं पर उनकी धार्मिक चेतना का विकास हुआ; वहीं पर उन्होने पश्चिम के लेखकों की विचारधाराओं का अध्ययन किया। वहीं पर उनके राजनीतिक दर्शन सत्याग्रह का विकास, श्वेत

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

जातिवाद के प्रतिरोध में हुआ तथा उसके प्रारम्भिक प्रयोग भी वहीं किये। वहीं पर उनमें निःस्वार्थ मानव सेवा की भावना पैदा हुई तथा अपने समाज के प्रति कर्त्तव्यों की अनुभूति हुई। वहीं पर उनके प्रमुख राष्ट्रवादी विचार बने तथा श्रमिकों के कार्य के महत्त्व को भी उन्होंने वहीं समझा।

4.5 राजनीति का आध्यात्मीकरण (Spiritualisation of Politics)–

गाँधीजी के लिए धर्म और राजनीति एक ही कार्य के दो नाम है। उनका विश्वास है कि राजनीति का उद्देश्य, धर्म के उद्देश्य की तरह, उन सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तन लाना है जो अन्याय, अत्याचार तथा शोषण पर आधारित है तथा समाज में न्याय तथा न्यायपरायणता की व्यवस्था करना है। मानव का प्रत्येक कार्य आदर्श न्याय से सम्बन्धित है। इस लिए मानवीय कृति का कोई भी पहलू दोनों के क्षेत्र से बाहर नहीं। इसके अतिरिक्त सच्चा धर्म और सच्ची राजनीति का सम्बन्ध मुख्य रूप से मानव जीवन और मानव क्रियाओं से है क्योंकि "मानव क्रियाओं से पृथक कोई धर्म नहीं है।" गाँधीजी के लिए इन दोनों का आधार भी सामान्य है जो नैतिकता के सामान्य मूल्यों द्वारा निर्धारित होता है।

इस प्रकार गांधी ने राजनीति को नैतिक और मानवतावादी धर्म पर आधारित करने का विचार रखा। किन्तु यहां यह भी स्पष्ट होना आवश्यक है कि गांधी राज्य–व्यवस्था को किसी धार्मिक समुदाय अथवा सम्प्रदाय की मान्यताओं पर संचालित नहीं करना चाहते थे। उनके अनुसार लोकतंत्र बहुसंख्यकवाद का पर्याय नहीं है और राज्य बहुसंख्यकों की तानाशाही का संरक्षक नहीं होना चाहिए अपितु उसे अल्पसंख्यकों की आस्थाओं का भी आदर करना होगा। राज्य किसी धार्मिक समुदाय विशेष का पक्ष पोषक नहीं होकर मानवतावादी व नैतिक धर्म का संरक्षक होना चाहिए।

4.6 साध्य और साधनों की पवित्रता (Purity of Means & Ends)–

गाँधीजी के विचारों की यह विशेषता है कि इनमें साध्य और साधन में कोई भिन्नता नहीं। वह कहा करते थे, "मेरे जीवन दर्शन में साधन और साध्य संपरिवर्तनीय शब्द है" न केवल साध्य ही नैतिक, पवित्र, शुद्ध और उच्च होने चाहिए बल्कि साधन भी उसी मात्रा में नैतिक, पवित्र और शुद्ध होने चाहिए। वह दोनों को अविभाज्य समझते थे। उनके लिए "साधन एक बीज की तरह है और साध्य एक पेड़, साधन और साध्य में वहीं सम्बन्ध है जो बीज और पेड़ में है" अगर "कोई व्यक्ति साधनों का ध्यान रखता है तो साध्य स्वयं अपना ध्यान रखेगा।" गाँधीजी ने भारत की राजनीतिक स्वतन्त्रता की लड़ाई में किसी भी पहलू पर अपवित्र (हिंसक) साधनों का समर्थन नहीं किया, उस समय भी नहीं जब उत्तेजना सरकार द्वारा प्रोत्साहित होती थी। गाँधीजी के लिए अपवित्र साधनों का प्रयोग तो दूर उनकी कल्पना भी त्याज्य थी। गाँधीजी छल, कपट, हत्या और पशु बल के द्वारा स्वराज्य प्राप्त करने के इच्छुक नहीं थे। उनके शब्दों में, "मैं तो अहिंसा और सत्य हेतु देश को होमने के लिए तैयार हूँ, देश के लिए अहिंसा और सत्य को नहीं।" साधन और साध्य दोनों की पवित्रता पर बल देकर गाँधीजी ने राजनीति में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन ला दिया है।

मानव प्रकृति – प्रत्येक दर्शन, धर्म या राजनीतिक प्रणाली में मूल प्रश्न "मानव प्रकृति" का होता है। यद्यपि दार्शनिक मानव प्रकृति के बारे में भिन्न–भिन्न विचार रखते हैं परन्तु प्रत्येक दर्शन मानव की परिभाषा या मानव प्रकृति के विश्लेषण से ही आरम्भ होता है। कुछ के लिए, जैसे मैकियावली तथा हाब्स, मानव को झगड़ालू, स्वार्थी तथा ईष्यालु तथा वहीं रूसो ने शान्त एवम् न्यायप्रिय माना।

अहिंसा – अहिंसा का अर्थ है मन, वचन और कर्म से किसी को कष्ट न देना अर्थात् किसी का दिल न दुखाना। अहिंसक व्यक्ति प्रेम, दया, क्षमा, सहानुभूति और सत्य की मूर्ति होता है। उसका कोई शत्रु नहीं होता। विश्व प्रेम, जीव मात्र पर करूणा और उससे प्रकट होने वाली, अपनी देह को ही होम देने वाली, शक्ति का नाम अहिंसा है। अहिंसा प्रेम की एक जड़ी–बूटी है जो कट्टर शत्रु को भी मित्र बना सकती है, शक्ति से शक्तिशाली अस्त्र को परास्त कर सकती है। यह वह शक्ति है जो अजय है। यह "आत्मा का गुण है" जो चिरंजीवी है।

सत्याग्रह की उत्पत्ति – सत्याग्रह शब्द की उत्पत्ति गाँधीजी ने दक्षिण अफ्रीका में की थी। इंग्लैण्ड़ और दक्षिण अफ्रीका में चल रहे निष्क्रिय प्रतिरोध में भेद दिखाने के लिए भी इस शब्द की उत्पत्ति की गई थी। विन्सेन्ट शीयन के शब्दों में वह "सर्वोच्च आविष्कार या उत्पत्ति थी" इसके द्वारा गाँधीजी ने हिंसक जगत को अहिंसा की शिक्षा दी।

सत्याग्रह का अर्थ – साधारण भाषा में सत्याग्रह बुराई को दूर करने अथवा विवादों को अहिंसक तरीकों से दूर करने का तरीका है। साधारण भारतीय नागरिक के लिए यह भारतीयों की अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध स्वतन्त्रता की लड़ाई का तरीका था। प्रो. एन.के. बोस के शब्दों में, "सत्याग्रह अहिंसक तरीकों द्वारा युद्ध का संचालन करने का तरीका है।" वस्तुतः, सत्याग्रह "अहिंसक सीधी कार्यवाही है।"

साहित्यिक दृष्टि से सत्याग्रह एक संयुक्त शब्द है जो सत्य + आग्रह को मिलाकर बना है। इसका अर्थ है सत्य के लिए आग्रह करना अर्थात् जिसे व्यक्ति सत्य समझता है उस पर जीवन पर्यन्त दृढ़ या डटा रहना। यह सत्य पर आरूढ़ रह कर बुराई का विरोध है। जो कुछ असत्य है उसका विरोध सत्याग्रह है। हर स्थिति में सत्य की राह पकड़े रहना सत्याग्रह है। हिंसा, भय और मृत्यु उसे इस पथ से विचलित नहीं कर सकते। सत्य के लिए अपने जीवन की बाजी लगा देना ही सत्याग्रही के कार्यक्रम का केन्द्र बिन्दु है। यह "सत्य के लिए तपस्या है।"

इन विशेषताओं के बिना सत्याग्रह अधूरा है –

(1) ईश्वर में श्रद्धा (2) सत्य–अहिंसा पर अटल विश्वास (3) चरित्र (4) निर्व्यसनी (5) शुद्ध ध्येय (6) हिंसा का त्याग (7) उत्साह, धैर्य और सहिष्णुता

सत्याग्रह सर्वव्यापी हो सकता है। यह सबके विरुद्ध हो

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

सकता है – सरकार, कौम, जाति, व्यक्ति विशेष, समूह – यदि वे दूषित है। यह केवल शासकों और शासितों के बीच की वस्तु नहीं। जितना इसका प्रयोग शासन की अत्याचारी नीतियों या अन्याय के विरुद्ध किया जा सकता है, उतना ही इसका प्रयोग सामाजिक कुरीतियों जैसे सामाजिक बुराईयों (अस्पृश्यता), साम्प्रदायिक झगड़ों, इत्यादि को दूर करने के लिए भी किया जा सकता है। गाँधीजी ने अनेक बार इसके सफल प्रयोग किए भी थे।

सत्याग्रह के स्वरूप – सत्याग्रह के मुख्य रूप निम्न प्रकार से हैं–

1. **असहयोग तथा उसके स्वरूप** – सत्याग्रह की प्रविधियों में असहयोग प्रथम प्रविधि है। गाँधीजी इसे "सन्तृप्त प्रेम की अभिव्यक्ति" कहते थे। इसका अभिप्राय यह है कि जिसे व्यक्ति 'असत्य', 'अवैध, 'अनैतिक', या 'अहितकर' समझता है अर्थात् जिसे व्यक्ति बुराई समझता है उसके साथ सहयोग नहीं करता। गाँधीजी के लिए बुराई के साथ असहयोग करना न केवल व्यक्ति का कर्त्तव्य है बल्कि उसका धर्म भी है। गाँधीजी की यह धारणा थी कि जब लिखा–पढ़ी, याचिकाएँ असफल हो जाती है तो बुराई के साथ असहयोग करके सफलता प्राप्त की जा सकती है।

असहयोग कई प्रकार का रूप धारण कर सकता है –

(अ) हड़ताल (ब) सामाजिक बहिष्कार (स) धरना

(अ) **हड़ताल** – विरोध स्वरूप कार्य को स्वेच्छापूर्वक बन्द करने को हड़ताल कहते हैं। "हड़ताल स्वेच्छापूर्वक तथा अन्तःशुद्धि के लिए आत्मोत्सर्ग है जो अनुचित मार्ग पर जाने वाले विरोधी का हृदय परिवर्तन करने वाली होती है।" हड़ताल एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा व्यक्तियों का समूह या समाज अपने भावों को प्रकट कर सकता है।

(ब) **सामाजिक बहिष्कार** – सामाजिक बहिष्कार एक बहुत पुरानी परम्परा है जिसका जन्म जातियों के उदय के साथ हुआ। यह निषेधात्मक है और एक ऐसा भयंकर दण्ड है जिसका प्रयोग बड़े प्रभावशाली ढ़ंग से किया जा सकता है। जिस व्यक्ति का बहिष्कार किया जाता है उसे समाज द्वारा एक प्रकार का दण्ड दिया जाता है क्योंकि उस समाज के अन्य सदस्यों से मेलजोल बढ़ाने का उसे कोई अवसर नहीं दिया जाता और व्यक्ति को सबसे बड़ा दण्ड उसे समाज से अलग करना है। इसी तरह जिस वस्तु का बहिष्कार किया जाता है उसके उत्पादन और खपत पर प्रहार करके बहिष्कार न केवल उस वस्तु को समाप्त करने का प्रयास करता है बल्कि अप्रत्यक्ष रूप से उसके उत्पादकों को हानि पहुँचाकर उन्हें भी दण्डित करता है। इसलिए गाँधीजी ने बहिष्कार को घेरेबन्दी की संज्ञा दी है।

(स) **धरना** – धरना देने का उद्देश्य "विचारों को बदलने" से है। यह अनिवार्य रूप से शान्तिमय होना चाहिए। इसमें "असभ्यता का व्यवहार", "जोर जबर्दस्ती", "धमकी", का प्रयोग नहीं होना चाहिए। गाँधीजी के शब्दों में, "शान्तिमय धरना उस व्यसन के खिलाफ एक दोस्ताना चेतावनी है जिसे सुधारक बुरा समझता है।"

2. **हिजरत** – हिजरत वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने निवास स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान पर चला जाता है। इसका सहारा तब लिया जाता है वह व्यक्ति या जन समूह अपने आत्म–सम्मान को छोड़े बिना घरों या गाँव या देश में नहीं रह सकता तथा यह व्यक्ति या जन समूह अहिंसात्मक ढ़ंग से या हिंसात्मक ढ़ंग से अपनी रक्षा करने में असमर्थ है। दूसरे शब्दों में, जब व्यक्ति या जन समूह के पास न तो आत्मा की शक्ति हो और न उसके पास हिंसा की शक्ति (अस्त्र–शस्त्रों की शक्ति) हो तो उस समय हिजरत की क्रिया की जाती है। गाँधीजी ने आत्म–सम्मान को बचाने के लिए सन् 1928 में बारदोली और सन् 1939 में लिम्बड़ी, जूनागढ़ और विट्ठलगढ़ के सत्याग्रहियों को अपने घर छोड़ने की सलाह दी थी।

3. **सविनय अवज्ञा** – सविनय अवज्ञा सत्याग्रह की महत्त्वपूर्ण शाखा है। इसका अभिप्राय "अनैतिक अधिनियमित कानून को भंग करना है।" यह एक प्रकार की "अहिंसक क्रान्ति है।" गाँधीजी ने इसे "पूर्ण प्रभावी और सशस्त्र क्रान्ति का रक्तहीन स्थापन्न कहा है। यह प्रतिरोधी के विद्रोह को अहिंसक ढ़ंग से प्रकट करता है। यह कई रूप ले सकता है जैसे करों को देने से इन्कार करना, राज्य सत्ता को ही मानने से इनकार करना या एक–एक करके सारे अनैतिक कानूनों का विरोध कर सरकार के ढाँचे को ठप्प करना इत्यादि।

4. **उपवास** – उपवास ऐसा कष्ट है जिसे व्यक्ति अपने ऊपर स्वयं लागू करता है। यह सत्याग्रह के शस्त्रागार में सबसे शक्तिशाली अस्त्र है। उपवास को गाँधीजी ने "आध्यात्मिक औषधि" की संज्ञा दी है जिसका प्रयोग इसमें निपुण वैद्य ही कर सकता है। यह चिकित्सा विशिष्ट रोगों में ही फलदायी होती है। गलत जगहों पर प्रयोग करने से इसमें भारी जोखिम होता है। इस तरह अनुकूल परिस्थितियों में ही उपवास परम श्रेष्ठ अपील है।

4.7 गाँधीजी के आर्थिक विचार (Economic Views of Gandhi) –

गाँधीजी अर्थशास्त्री नहीं थे। इसलिए उनके आर्थिक विचार किसी अर्थशास्त्र के सिद्धान्त पर आधारित नहीं थे। अपने आर्थिक विचारों में उन्होने अर्थशास्त्र के नियमों का पालन भी नहीं किया। उन्होने स्वयं किसी आर्थिक सिद्धान्त की रूप रेखा को स्पष्ट रूप से तैयार भी नहीं किया।

गाँधीजी का आर्थिक समस्याओं पर दृष्टिकोण उद्धारक था और उनके सुझाव समय, आवश्यकता और मानवता की दृष्टि से प्रेरित होते थे। उनके ये सुझाव वास्तविकता और स्वयं के अनुभव पर आधारित थे। यही कारण है कि गाँधीजी के आर्थिक विचार बदलते रहे। जहाँ हिन्द स्वराज में गाँधीजी के विचार "वर्तमान सभ्यता विरोधी", "यन्त्र विरोधी" और "पूँजी विरोधी" प्रतीत होते हैं वहाँ बाद में उनके विचार व्यवहारोपयोगी और यन्त्रों से समझौता करने वाले दिखाई देते हैं। यह भी हो सकता है कि उनके विचार उपनिवेश शासन से भी प्रभावित हुए हों।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

4.8 वर्तमान समय और गाँधी
(Present Time & Gandhi)–

1. **यन्त्रों पर निर्भरता दुःखदायी** – गाँधीजी ने अपनी पुस्तक हिन्द स्वराज में वर्तमान सभ्यता की भर्त्सना की है। यन्त्र के बारे में गाँधीजी के विचार रस्किन, टॉलस्टॉय और आर. सी. दत्ता के विचारों से प्रभावित थे। यन्त्र की तुलना गाँधीजी ने उस "साधन से की है जो मानव या पशु श्रम का पूरक या उसकी कुशलता बढ़ाने वाला नहीं बल्कि उसका ही स्थान प्राप्त करने वाला है।" यन्त्र में बुराइयाँ विद्यमान होने से गाँधी उसे अवांछनीय मानते हैं। उनके लिए यन्त्र में मुख्य तीन बुराइयाँ हैं – (क) इसकी नकल हो सकती है; (ख) इसके विकास की कोई सीमा नहीं; (ग) यह मानव श्रम का स्थान ले लेता है। इन बुराइयों के अतिरिक्त यन्त्रों में नैतिक और आर्थिक बुराइयाँ पाई जाती है।

2. **पूँजीवाद का विरोध** – गाँधीजी ने पूँजीवाद की भर्त्सना कड़े शब्दों में की है। उनका विश्वास है कि पूँजीवाद ने दरिद्रता, बेरोजगारी, शोषण और साम्राज्यवाद की भावनाओं को बढ़ावा दिया है। उनके लिए पूँजी का एकत्रीकरण अनैतिक है। पूँजीवाद के विरोध से यह नहीं समझना चाहिए कि गाँधीजी मार्क्स की भाँति पूँजीवाद का विरोध करते हैं। जहाँ मार्क्स "अतिरिक्त मूल्य" के पूँजीपति द्वारा हड़पने के आधार पर पूँजीवाद का विरोध करता है वहाँ गाँधीजी पूँजीवाद द्वारा उत्पन्न असमानताओं के आधार पर उसका विरोध करते हैं। गाँधीजी का विरोध पूँजी से नहीं उसके द्वारा उत्पन्न असमानताओं से है।

4.9 आर्थिक–सामाजिक विषमताओं को दूर करने के गाँधीजी के सुझाव
(Gandhi's Suggestions to Alleviate Social & Economic Inequalities)–

1. **अस्तेय और अपरिग्रह** – गाँधीजी ने अस्तेय को अहिंसा तथा सत्य के सहायक व्रत के रूप में स्वीकार किया है। अस्तेय का सामान्य अर्थ है चोरी न करना – अर्थात कोई वस्तु अथवा धन उसके स्वामी की बिना आज्ञा न लेना। उन्होंने शारीरिक, मानसिक, वैचारिक व आर्थिक सभी प्रकार की चोरी से सदा दूर रहने को ही अस्तेय माना। गाँधीजी ने अस्तेय की भांति अपरिग्रह के निष्ठापूर्वक पालन को भी आवश्यक माना। उन्होंने अपरिग्रह को केवल धन संचय न करने तक ही सीमित नहीं रखा है, प्रत्युत भविष्य के लिए किसी भी रूप में किसी भी प्रकार का संचय न करने को ही अपरिग्रह माना है। गाँधीजी की दृष्टि में अपनी अनिवार्य आवश्यकता से अधिक किसी भी वस्तु को ग्रहण करके उसे भविष्य के लिए संचित करना अपरिग्रह का उल्लंघन है। प्रत्येक मनुष्य को निरन्तर श्रम करते हुए ही समाज से केवल उतना ही ग्रहण करना चाहिए, जितना उसके जीवन के लिए अनिवार्य हो; शेष सब कुछ उसे समाज के कल्याण के लिए समर्पित कर देना चाहिए। अपरिग्रह के दृढ़ता पूर्वक पालन से प्रत्येक मनुष्य की आवश्यकताएं सीमित रहेंगी तथा समाज में व्याप्त आर्थिक विषमता का अंत संभव हो सकेगा। उनके लिए तो किसी प्रकार का शोषण तथा आवश्यकता से अधिक वस्तुओं को अपने पास रखना या आवश्यकता से अधिक उनका प्रयोग करना मात्र भी चोरी है। गाँधीजी कहते हैं कि जीवन में निरपेक्ष अपरिग्रह सम्भव नहीं। इसलिए मानव को अनिवार्य न्यूनतम आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए ही सम्पत्ति रखने का अधिकार है बाकी अपेक्षाधिक सम्पत्ति सर्वोदय अर्थात् सामान्य कल्याण के प्रयोग में लानी चाहिए।

2. **ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त** – वर्तमान आर्थिक असन्तोष को समाप्त करने के लिए गाँधीजी न तो पश्चिमी अर्थ–व्यवस्था को पसन्द करते थे, क्योंकि यह व्यवस्था पूँजीवाद पर आधारित होने से शोषण, प्रतिद्वन्द्विता और संघर्ष को जन्म देती है और न ही पूर्वी समष्टिवादी अर्थ व्यवस्था को पसन्द करते थे, क्योंकि यह हिंसा पर आधारित है, इसमें केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति अधिक है और यह राज्य सत्ता के बढ़ाने में विश्वास रखती है। गाँधीजी के ट्रस्टीशिप सिद्धान्त के अनुसार पूंजीपति (जिसके पास आवश्यकता से अधिक सम्पत्ति है) अपना आवश्यकतानुसार ही सम्पत्ति का प्रयोग करे व शेष सम्पत्ति का वह ट्रस्टी बन जाए व उसे जनकल्याण के कार्यों में लगाए।

गाँधीजी की ट्रस्टीशिप व्यवस्था में निम्न तत्व विद्यमान हैं–

1. यह वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्था को समतावादी समाज में परिवर्तित करने का साधन है।
2. इसमें पूँजीवाद का स्थान नहीं। परन्तु धन के वर्तमान स्वामियों को अपने आपको सुधार लेने का यह उन्हें अवसर प्रदान करता है।
3. यह हृदय परिवर्तन में विश्वास रखता है; इसकी धारणा है कि मानव को धन तथा लोभ की वृत्ति से मुक्ति दिलाई जा सकती है।
4. यह सम्पत्ति के निजी स्वामित्व के अधिकार को स्वीकार नहीं करता; यह केवल व्यक्ति की उचित आवश्यकताओं को स्वीकार करता है, जिन्हें समाज स्वीकार करता है।
5. आवश्यकता पड़ने पर यह सम्पत्ति को राज्य कानून द्वारा नियन्त्रित करने के पक्ष में है।
6. इसमें सम्पत्ति को स्वार्थ हित की सिद्धि के लिये न तो अपने पास रखा जा सकता है और न समाज के हितों के विरुद्ध प्रयोग किया जा सकता है।
7. इसका सम्बन्ध वस्तु या धन के स्वामित्व से अधिक न होकर समाज कल्याण से अधिक है।
8. इसमें आय की न्यूनतम और अधिकतम सीमाऐं निर्धारित की जायेगी; इस न्यूनतम और अधिकतम आय में भिन्नताऐं उचित और साम्यिक होंगी; समय पर इनमें परिवर्तन होता रहेगा जिसका उद्देश्य इन भिन्नताओं को समाप्त करना होगा।
9. इसमें उत्पादन 'लाभ' द्वारा निर्धारित नहीं होगा बल्कि "सामाजिक आवश्यकता" द्वारा निर्धारित होगा।

3. **स्वदेशी** – स्वदेशी की परिभाषा गाँधीजी ने इस प्रकार दी – "इंसान में ऐसी प्रेरणा है, जो हमें इस बात के लिए प्रेरित करती है कि हम अपने नजदीक के वातावरण का प्रयोग करें

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

और दूर के वातावरण को छोड़ दें; जैसे धर्म में, हम अपने धर्म का पालन करें; राजनीति में, हम भारतीय राजनीतिक संस्थाओं का प्रयोग करें; आर्थिक क्षेत्र में, हम अपने पड़ोसी द्वारा बनाई गई वस्तुओं का प्रयोग करें और उन भारतीय उद्योगों को कुशल एवम् पूर्ण बनाये जिनमें हमें कमजोरियाँ नजर आती है।" स्वदेशी की इस परिभाषा से यह नहीं समझना चाहिए कि गाँधीजी सभी विदेशी वस्तुओं को वर्जित करना चाहते थे; उनकी स्वदेशी की परिभाषा किसी रूप में संकीर्ण नहीं थी। वह केवल उन विदेशी वस्तुओं को स्वीकार करते थे जो घरेलू या भारतीय उद्योगो को अधिक कुशल बनाने में अनिवार्य है। वह वस्तुओं के विनिमय और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में विश्वास करते थे। गाँधीजी भारत को विश्व से अलग नहीं करना चाहते थे, वह तो केवल स्वावलम्बन पर बल देते थे। वह विदेशी पूँजी और तकनीकी ज्ञान से भी समझौता कर सकते थे यदि उन्हें भारतीय नियन्त्रण में रखा जाए।

4. **खादी का अर्थशास्त्र** – भारत के आर्थिक पुनर्निर्माण की गाँधीवादी योजना में खादी के अर्थशास्त्र का मुख्य स्थान है। गाँधीजी का विश्वास था कि आर्थिक संकट की समस्या को हल करने के लिए खादी अर्थात् चरखा बहुत ही प्राकृतिक, सरल, सस्ता और व्यावहारिक तरीका है। गाँधीजी का पूर्ण विश्वास था कि पूँजी और सत्ता के केन्द्रीकरण से उत्पन्न होने वाली समस्याओं का तथा उत्पादन और वितरण की समस्याएं खादी के पुनरूद्धार से हल की जा सकती है। खादी के अर्थशास्त्र में भी गाँधीजी एक जीवन दर्शन की झलक देखते थे। जहाँ खादी, एक ओर, जीवन की आवश्यकताओं को देश में ही पूरा करने की प्रेरणा देती है वहाँ, दूसरी ओर, ग्रामों को स्वावलम्बी बनाने का तरीका भी है ताकि कुल गिने चुन शहर ग्रामों का शोषण न कर सके। यह मिल व्यवस्था के अति केन्द्रीकरण का विकल्प है। इसके अतिरिक्त, राजनीतिक दृष्टिकोण से यह संगठन और जन–सम्पर्क का आन्दोलन भी था, स्वतन्त्रता संग्राम में तो यह राष्ट्रवादियों के लिए एकता प्रदर्शन का प्रतीक बन गया जिसे प्रत्येक भारतीय आसानी से समझ सकता था। यद्यपि खादी का अर्थशास्त्र अमीर बनने के अर्थशास्त्र की माँगों को सन्तुष्ट नहीं करता परन्तु यह आलस्य और बेकारी की समस्या का तत्काल और स्थायी हल है। यह कृषि का पूरक भी है क्योंकि यह अन्य कुटीर उद्योगों का विकास करता है।

4.10 गाँधीजी के आर्थिक विचारों का मूल्याँकन (Evaluvation of Gandhi's Economic Views)–

गाँधीजी के आर्थिक विचारों की यह कह कर आलोचना की गई है कि वे अव्यावहारिक है; ये मानव समाज की उसकी प्रारम्भिक स्थिति में ले जाने वाले है; ये मानव प्रकृति के एक पहलू पर ही बल देते है तथा उसकी भौतिक आवश्यकताओं की उपेक्षा करते हैं। उन्होने यन्त्रों की अनावश्यक भर्त्सना की है तथा वर्तमान सभ्यता और उसकी देन का सही मूल्याँकन नहीं किया। खादी का सिद्धान्त न केवल वर्तमान परिस्थितियों में गलत है बल्कि यह तकनीकी ज्ञान की उपलब्धियों की उपेक्षा भी करता है। ये विचार इतिहास की गति से अनभिज्ञ भी है।

गाँधीजी का ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त अव्यावहारिक है क्योंकि यह सिद्धान्त वस्तुनिष्ठ क्षेत्र में परिवर्तन लाने के स्थान पर व्यक्तिनिष्ठ क्षेत्र में परिवर्तन लाने पर बल देता है। यह हृदय और मस्तिष्क में परिवर्तन लाना चाहता है परन्तु यथा पूर्व स्थिति की स्थाई रखना चाहता है। एम.एन. राय के शब्दों में, "गाँधीजी पूँजीवाद की निन्दा तो करते हैं परन्तु उसे समाप्त करने को नहीं कहते" "डिजरैली की भाँति वह उन्हें चीनी चढ़ा कर कड़वी गोली निगलने को कहते हैं।"

ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त एक ऐसा "काल्पनिक यन्त्र है जो मानव को स्वार्थपरता और अगाध प्रेरणाओं को ठीक प्रकार से नहीं आँक सका। दूसरे शब्दों में, यह सिद्धान्त मानव की नैतिक शक्तियों पर जरूरत से ज्यादा विश्वास करता है। गाँधीजी ने सामाजिक संघर्ष की जटिलताओं को बहुत सरल समझा जो वास्तव में सरल नहीं। इसके अतिरिक्त उन्होने समाज को ऐसे नैतिक तत्त्वों से संगठित करने का प्रयास किया जो वर्तमान में विद्यमान नहीं। यही कारण है कि भारत में ही ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त को स्वीकार या अस्वीकार करना तो दूर, अभी यह शैक्षणिक रुचि का विषय ही है।

गाँधीजी, एक ओर, राज्य की सत्ता और शक्ति को शंका की दृष्टि से देखते हैं और, दूसरी ओर, वह राज्य के हाथों में वे उद्योग रखना चाहते हैं जो सार्वजनिक कल्याण के लिए अनिवार्य है। इस तरह दो सिद्धान्तों की सेवा करने की इच्छा रखने से वह एक की भी सेवा करने में सफल नहीं हुए, न तो वह अराजकतावादियों की तरह राज्य को अस्वीकार करते हैं और न ही समाजवादियों की तरह (कम से कम संक्रान्ति काल में – यद्यपि समाजवाद भी इस काल की सीमा निर्धारित करने में असमर्थ है) राज्य के यन्त्र को स्वीकार करते हैं।

गाँधीजी ने यन्त्रों की भर्त्सना की है। परन्तु यन्त्रों का अस्वीकार करना "उत्पत्ति के नियम की भर्त्सना है।" यन्त्रों के खराब होने वाली जिन आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा नैतिक समस्याओं का वर्णन गाँधीजी ने किया है, वे वास्तव में यन्त्रों के कारण पैदा नहीं होती बल्कि "यन्त्रों की गलत व्यवस्था", "उत्पादन और वितरण की गलत प्रणालियों" और नगरों की गलत योजनाओं से पैदा होती है। इन बुराइयों को इन व्यवस्थाओं में सुधार करके दूर किया जा सकता है और गाँधीजी ने स्वयं भी तो सार्वजनिक उपयोगिता वाले यन्त्रों को स्वीकार किया है।

4.11 गाँधीजी के राजनीतिक विचार (Political Views of Gandhi Ji) –

गाँधीजी ने अपने आदर्श अहिंसक समाज की रूपरेखा स्पष्ट रूप से तैयार नहीं की थी जिस प्रकार कि प्लेटो, रूसो तथा कार्ल मार्क्स ने अपने आदर्श समाज की रूप रेखा तैयार की थी। जॉन बी. बन्दुराँ के शब्दों में, "वह राजनीतिक कार्यकर्त्ता और व्यावहारिक दार्शनिक थे, वह सिद्धान्त निर्माता

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

नहीं थे।" गाँधीजी ने स्पष्ट लिखा है कि "मैं पहले से ही यह नहीं बता सकता कि पूर्णतया अहिंसा पर आधारित शासन कैसा होगा।" फिर भी उनकी पुस्तक हिन्द स्वराज्य से और उनके द्वारा समय–समय पर भाषणों, लेखों, वक्तव्यों, भेंटों में व्यक्त किये गये विचारों से उनके आदर्श समाज की कल्पना की जा सकती है।

यहाँ यह भी समझ लेना आवश्यक है कि गाँधीजी का निरन्तर विकसित होने वाला व्यक्तित्व था और उनका तरीका "निगमनात्मक, प्रयोगात्मक, व्यावहारिक और संकलनवादी" था। गाँधीजी के विचारों में आध्यात्म शास्त्र, नैतिक शास्त्र, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र और राजनीति शास्त्र के विचारों का सम्मिश्रण था। वह इन्हें पृथक् नहीं समझते थे। वह राजनीति का आध्यात्मीकरण चाहते थे।

गाँधीजी अपनी आदर्श शासन अवस्था में राज्य के हिंसक और बल पर आधारित किसी भी स्वरूप को अस्वीकार करते हैं। गाँधीजी अत्यंत शक्तिशाली राज्य को निम्न दो कारणों से अस्वीकार करते हैं। गाँधीजी की मान्यता है कि केन्द्रित रूप में राज्य हिंसा का प्रतिनिधित्व करता है। उनका यह भी मानना है कि– क्योंकि सभी मनुष्य मूल रूप से सामाजिक प्राणी होते हैं और प्रत्येक स्थिति में वे नैतिक व्यवहार नहीं कर पाते हैं और न ही सदैव समाज के प्रति अपने वांछित नैतिक उत्तरदायित्व का निर्वहन करते हैं। इसी बात को ध्यान में रखते हुए गाँधीजी ने मर्यादित राज्य की आवश्यकता को स्वीकार किया। गाँधीजी ने ऐसे राज्य का विरोध किया जो विशुद्ध रूप से राजनीति व सत्ता का प्रतिनिधित्व करता है। यदि राज्य संगठित हिंसा का प्रतिनिधित्व करता है तो ऐसा राज्य गाँधीजी के लिए राज्य एक अनैतिक संस्था है। उनकी धारणा है कि निरंकुश सत्ता व्यक्ति की स्वतन्त्रता और समाज के कल्याण के लिए घातक सिद्ध हो सकती है। गाँधीजी ऑस्टिनवादी निरपेक्ष सम्प्रभुता पर आधारित राज्य के पक्षधर नहीं है। गाँधीजी ने "सीमित राज्य" की स्थापना पर बल दिया है। उनकी दृष्टि में राज्य का कार्य केवल विशुद्ध राजनीति करना ही नहीं है अपितु इससे भी कहीं अधिक उच्च, श्रेष्ठ व कल्याणकारी होता है। गाँधीजी राज्य की शक्ति में अत्यधिक अभिवृद्धि के पक्षधर नहीं है। राज्य को व्यक्ति के विकास के लिए कार्य करना चाहिए और व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास को अवरूद्ध करने वाले सभी अवरोधों को दूर करने का कार्य करना चाहिए। राज्य शक्ति की बाध्यता न केवल व्यक्ति के कार्य के नैतिक मूल्यों को नष्ट कर देती है बल्कि उसके विकास को भी कुंठित करती है। कार्य तभी तक नैतिक है जब तक स्वैच्छिक है; स्वतन्त्र वातावरण में ही विकास सम्भव है। जब व्यक्ति राज्य रूपी यन्त्र में पुर्जे की तरह कार्य करता है तो उसमें नैतिकता का लोप हो जाता है। कोई भी कार्य तभी नैतिक होता है जब उसे ज्ञान पूर्वक और कर्त्तव्य समझ कर किया जाए। गाँधीजी राज्य शक्ति में वृद्धि को शंका की दृष्टि से देखते हैं।

गाँधीजी राज्य को आम आदमी के दैनिक जीवन से बाहर की संस्था मानते हैं व व्यक्तिगत पहल और स्वैच्छिक नैतिकता को व्यक्ति, समाज व सम्पूर्ण मानवता के लिए श्रेष्ठ मानते हैं। गाँधीजी एक ऐसे विकेन्द्रीकृत आदर्श समाज की स्थापना करने पर बल देते हैं जिसमें व्यक्ति के सर्वांगीण विकास की सर्वाधिक सम्भावनाएँ निहित हों। गाँधीजी व्यक्ति को राज्य से प्राथमिक मानते हैं और इसी आधार पर एक आदर्श अहिंसक राज्य की स्थापना करना चाहते हैं जिसे बहुमत पर आधारित स्वराज्य की संज्ञा दी जा सकती है। गाँधीजी ने आत्मनिर्भर ग्रामीण समुदायों से निर्मित शासन की वकालत की है। बहुमत की निरंकुशता व मनमानी उनको अस्वीकार्य है। गाँधीजी के आदर्श राज्य के हर नागरिक को अपनी अन्तरात्मा की आवाज से प्रवृत्त होना चाहिए। गाँधीजी ने अपराध को एक रोग मानते हुए उसके इलाज के लिए नैतिक समझाईश को दण्ड से कहीं अधिक श्रेष्ठ व उपयोगी माना है। गाँधीजी ने ऐसे समाज की परिकल्पना की जो शोषण विहीन हो, जिसमें मजदूरों और पूंजीपतियों व किसानों और जमींदारों के मध्य संघर्ष न हो। गाँधीजी ने व्यक्तियों के व गांवों और शहरों के आपसी संबंधों को निष्क्रिय प्रतिरोध और न्यासिता के सिद्धान्त से हल करने पर बल दिया।

4.12 गाँधीजी की देन (Contributions of Gandhi Ji) –

राजनीति शास्त्र को गाँधीवाद की देन अत्यधिक है। जिसे निम्न रूप से स्पष्ट किया जा सकता है –

1. **नए विचारों का स्वागत** – गाँधी दर्शन में सभी विचार संश्लिष्ट है – अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, राजनीति शास्त्र, धर्म सभी एक दूसरे से सम्बद्ध है और नये विचारों से सामंजस्य का द्वार इसमें सर्वदा खुला है।
2. **राजनीति में नैतिकता आदर्शवाद का समावेश** – गाँधीजी ने राजनीति का आध्यात्मीकरण किया और राजनीतिक शब्द में नीति अर्थात् धर्म पर बल दिया।
3. **अहिंसा एक सशक्त उपाय** – यह गाँधीजी की राजनीति शास्त्र की सबसे बड़ी देन है। सत्याग्रह का पूर्ण सिद्धान्त अहिंसा पर आधारित है। जहाँ अब तक विश्व के पास अन्याय को दूर करने का युद्ध के रूप में एक ही विकल्प था वहाँ गाँधीजी ने युद्ध के विकल्प के रूप में सत्याग्रह के सिद्धान्त को प्रस्तुत किया। नैतिक आधारों पर अन्याय का प्रतिरोध करने का व्यक्ति को अधिकार देने का श्रेय गाँधीजी को है।
4. साधन व साध्य की पवित्रता में आस्था।

4.13 गाँधीजी के विचारों का मूल्याँकन (Appreciation of Gandhism) –

गाँधीजी के विचार नैतिक नियमों – सत्य, अहिंसा, प्रेम, सहानुभूति, सहयोग इत्यादि – पर आधारित है। इन नियमों को अस्वीकार करते ही गाँधीजी के विचारों की आलोचना की जा सकती है। वास्तव में नियम इतने शाश्वत् है कि इनके अनुकरण करने में ही विश्व में स्थाई शान्ति रह सकती है, तनाव का वातावरण समाप्त हो सकता है और घृणा को प्रेम में परिवर्तित किया जा सकता है। हिंसक उपायों द्वारा – आक्रमण, युद्ध, क्रान्ति, उपद्रव, दमन – कभी भी स्थाई शान्ति

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

स्थापित नहीं हो सकती। युद्ध ने केवल युद्ध को ही जन्म दिया है, शान्ति को नहीं। यही कारण है कि गाँधीजी के विचारों का समर्थन करने वाले उनके विचारों को न केवल सर्वकालिक बल्कि सर्वदेशीय भी मानते हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से ये विचार क्रान्तिकारी है क्योंकि यह मानव की मूल भावनाओं में ही परिवर्तन लाना चाहते हैं, नैतिक दृष्टि में ये विचार मानव सौहार्द्र के जनक और प्रेरक होने के कारण श्रेष्ठ है, राजनीतिक दृष्टि से ये अधिक सरल, व्यापक और व्यावहारिक होने से सम्भव है, सामाजिक दृष्टि से ये अधिक सरल, व्यापक और व्यावहारिक होने से अधिक मानवीय व सहयोग उत्पन्न करने वाले है; ये समाजवाद के ऐसे विस्तृत निर्दोष रूप है जिनमें व्यक्ति और समाज, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय हित सुरक्षित है, ये न केवल पूँजीपतियों की क्रूरता से जनता की सुरक्षा करते हैं बल्कि उन्हें भी आध्यात्मिक और नैतिक बनाने का प्रयास करते हैं। इस तरह कोई ऐसा क्षेत्र नहीं – व्यक्ति, समाज, राष्ट्र, अन्तर्राष्ट्रीयता – जहाँ गाँधीजी के विचारों ने सत्य, अहिंसा, प्रेम, सहयोग, सहानुभूति, बलिदान और त्याग का पाठ नहीं सिखाया। दूसरी ओर, जो लेखक गाँधीजी के विचारों की आलोचना करते हैं वे इन्हें अव्यावहारिक, अवैज्ञानिक, एक पक्षीय, मौलिकता रहित, काल्पनिक, कोरे आदर्शवाद, समाज को पीछे धकेलने वाले पूँजीवाद के समर्थक, वर्ग भेद को स्थाई रखने वाले, इत्यादि बताते हैं।

निष्कर्ष (Conclusion) –

अन्त में यही कहा जा सकता है कि महात्मा गाँधी के विचार पूर्णतः मानवता, जीवन मूल्य और राष्ट्रीय अस्मिता से ओत–प्रोत रहे हैं, जो हर युग और समय के सापेक्ष में अपनी अनुकूलता सिद्ध करते हैं। आज भी विश्व के समस्त शासक शान्ति और अहिंसा में विश्वास रखने वाले गाँधी के विचारों में ही अपनी समस्याओं का मार्ग खोज पाने में सफल हो रहे हैं। यही गाँधीवाद का सार भी है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- **गाँधी सत्य, अहिंसा, प्रेम और मातृभाव** को जीवन मूल्य मानते हैं।
- **गाँधीवाद के प्रमुख स्त्रोत** – धार्मिक ग्रंथ, दर्शन, सुधारवादी आंदोलन व सामाजिक –आर्थिक परिस्थितियाँ।
- **गाँधी के प्रमुख विचार** – राजनीति का आध्यात्मीकरण, साध्य व साधनों की पवित्रता, मानव प्रकृति का विश्लेषण, अहिंसा, सत्याग्रह।
- **सत्याग्रह के स्वरूप** – असहयोग, हिजरत, सविनय अवज्ञा, उपवास, अपरिग्रह।
- **सामाजिक व आर्थिक असमानता दूर करने के गाँधी के उपाय**– अस्तेय व अपरिग्रह, ट्रस्टीशिप, स्वदेशी खादी व चरखा।
- **गाँधी की देन** – नए विचारों का स्वागत, राजनीति में नैतिकता व आदर्शवाद का समावेश, अहिंसा का प्रयोग, साधन व साध्य की पवित्रता पर बल।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. गाँधीजी इनमें से किसे जीवन मूल्य नहीं मानते थे –
   (अ) अहिंसा (ब) सत्य
   (स) प्रेम (द) धन संग्रह ( )
2. गाँधी ने कार्ल मार्क्स के किस विचार का समर्थन किया–
   (अ) वर्ग संघर्ष
   (ब) इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या
   (स) राज्य विहीन व वर्गविहीन समाज
   (द) अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त ( )
3. गाँधी की प्रमुख पुस्तक, जिसमें राजनीतिक दर्शन की झलक मिलती है – का नाम है।
   (अ) हिन्द स्वराज (ब) डिस्कवरी ऑफ इण्डिया
   (स) गीताजंली (द) लेवियाथन ( )
4. हिजरत का तात्पर्य है –
   (अ) हज करना
   (ब) अपना निवास स्थान छोड़, अन्यत्र जाना
   (स) अहिंसात्मक आन्दोलन
   (द) सामाजिक बहिष्कार ( )
5. ट्रस्टीशिप सिद्धान्त का अर्थ है कि व्यक्ति –
   (अ) सार्वजनिक सम्पति का मालिक है।
   (ब) सार्वजनिक सम्पति का ट्रस्टी है।
   (स) निजी सम्पति नहीं रख सकता है।
   (द) सम्पतियों का त्याग कर दें। ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. गाँधीजी के चार प्रमुख जीवन मूल्य क्या हैं?
2. गाँधीवाद क्या है?
3. गाँधीजी पर किन धर्मग्रन्थों का प्रभाव पड़ा था?
4. गाँधीजी की प्रथम प्रयोगशाला कहाँ थी?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. गाँधीजी किन समाज–सुधार आन्दोलनों से प्रभावित हुए थे?
2. राजनीति के आध्यात्मिकरण से क्या आशय है?
3. गाँधीजी के सत्याग्रह की सात प्रमुख विशेषताएें बताइए।
4. उपवास की अवधारणा पर टिप्पणी लिखिए ?
5. राजनीति शास्त्र की गाँधी की प्रमुख देन बताइए।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. गाँधीवाद के मूल तत्व क्या हैं?क्या यह आज भी सार्थक हैं?सिद्ध कीजिए।
2. गाँधीवाद आधुनिक सभ्यता को कैसे प्रभावित करता है?
3. गाँधीवाद राज्य को कम से कम कार्य क्यों सौंपना चाहता है?
4. '' आर्थिक समता का स्त्रोत ट्रस्टीशिप से गुजरता है। '' सिद्ध कीजिए।

बहुचयनात्मक प्रश्नों के उत्तर

1. द 2. स 3. अ 4. ब 5. ब

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

इकाई–IV

भारतीय राजनीति के उभरते आयाम

1. नियोजन और विकास नीति आयोग

(Planning and Development : NITI Commission)

सभी मनुष्य आने वाले कल के बारे में चिंतित रहते हैं। इस चिन्ता के समाधान हेतु वह चिंतन करते हैं तथा इसी चिंतन में उसके भविष्य की योजनाएँ निहित है। भविष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति इस दिशा में कुछ व्यवस्थित प्रयास इन चिन्ताओं का उचित निदान है। राष्ट्रों को भी अपनी वर्तमान व भविष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति के कदम उठाने होते हैं। 1928 में सर्वप्रथम सोवियत रुस ने अर्थव्यवस्था के विकास व वृद्धि हेतु इस प्रक्रिया के तहत नियोजन को स्वीकार किया। देश की समस्याओं के समाधान हेतु कुछ योजनाबद्ध कदम उठाए गए। रुस के ये प्रयास उस अवधि में काफी सफल हुए। फलस्वरूप अन्य राष्ट्रों ने भी विकास के इस मॉडल को स्वीकार किया। हमारे देश में भी 1950 में योजना आयोग के गठन के साथ ही नियोजन के इस स्वरूप को स्वीकारा गया। देश में विद्यमान आर्थिक समस्याओं– गरीबी, बेरोजगारी, आथि विषमता, उद्योगों व कल–कारखानों का विकास करने तथा सूचना प्रौद्योगिकी को गति देने हेतु आर्थिक नियोजन आवश्यक है।

भारत में 1950 में सरकार द्वारा योजना आयोग का गठन किया गया।

1.1 नियोजन क्या है (What is Planning)

सोच–समझकर सही दिशा में उठाया गया प्रथम कदम ही नियोजन है। नियोजन के लिए आवश्यक है कि उद्देश्य स्पष्ट हो, उसे प्राप्त करने के साधन व प्रयास व्यवस्थित हो तथा अवधि निश्चित हो। हमारे योजना आयोग ने इसे परिभाषित करते हुए बताया कि –

" नियोजन, संसाधनों के संगठन की एक ऐसी विधि है जिसके माध्यम से साधनों का अधिकतम लाभप्रद उपयोग निश्चित सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किया जाता है। "

योजना आयोग विधि द्वारा निर्मित एक गैर संवैधानिक निकाय था जिसका गठन 1950 में किया गया।

भारत में नियोजन तथा विकास की दिशा में प्रथम प्रयास 1934 में एम. विश्वेश्वरैया की पुस्तक 'प्लान्ड इकोनोमी फोर इंडिया' **(Planned Economy for India)** द्वारा किया गया। इस पुस्तक में उन्होंने आशा प्रकट की कि प्रस्तुत योजना से आगामी दस वर्षों में राष्ट्रीय आय दुगुनी की जा सकती है।

कालान्तर में 1944 में बम्बई योजना, श्रीमन्नारायण की गाँधीवादी योजना, एम.एन. राय की जन योजना, 1950 में जयप्रकाश नारायण की सर्वोदय योजना भी इस दिशा में किए गए सार्थक प्रयास थे।

1.2 नियोजन क्यों (Why Planning)

हमारे देश में सामाजिक एवं आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु नियोजन अपनाया गया। प्रारम्भ में इसके उद्देश्यों में तत्कालीन आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए ही व्यवस्थित प्रयास किए गए। आज हमारी आवश्यकताएँ एवं चुनौतियाँ भिन्न है। अतः नियोजन के प्रयास भी परिवर्तित रूप में हमने प्रारम्भ कर दिए है। इनके उद्देश्यों को हम इन बिन्दुओं से जान सकते हैं–

1. संसाधनों का समुचित उपयोग जिससे इनके अपव्यय को रोककर राष्ट्रीय विकास किया जा सके।
2. देश में व्याप्त बेरोजगारी दूर कर, लोगों को सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र में अधिकाधिक रोजगार के अवसर सृजित करना।
3. कौशल विकास देश के नागरिकों की सुषुप्त प्रतिभा को जागृत कर उन्हें परम्परागत कौशलों को नवीनीकृत रूप में विकसित करना।
4. आर्थिक असमानता कम करना भी नियोजित विकास का प्रमुख हिस्सा है। गरीब व अमीर के मध्य आर्थिक आधार पर दूरिया कम करना नियोजन का उद्देश्य है।
5. सम्पूर्ण राष्ट्र का विकास – नियोजन के माध्यम से सभी प्रान्तों व क्षेत्रों का संतुलित विकास किया जाना ही प्रमुख लक्ष्य है।
6. आय में वृद्धि, नियोजित प्रयासों से उत्पादन के अवसर बढ़ेगे, लोगों को रोजगार मिलेगा, उनकी आय में वृद्धि होगी जिससे राष्ट्रीय आय में स्वाभाविक वृद्धि संभव होगी।
7. सामाजिक उन्नति भी नियोजन का प्रमुख उद्देश्य है। व्यवस्थित विकास से लोगों का जीवन स्तर सुधरेगा व यह प्रक्रिया सम्पूर्ण समाज को प्रगति की राह पर ले जाएगी।
8. राष्ट्रीय आत्म निर्भरता को संभव बनाने में नियोजन का महत्त्वपूर्ण योगदान है। जीवन के हर क्षेत्र में व्यवस्थित प्रयासों से उन्नति स्वाभाविक है, जो आगे चलकर राष्ट्रीय उन्नति व आत्म निर्भरता में परिवर्तित होगी।
9. सत्ताधारी दल द्वारा जनता से किए गए वादों को पूर्ण करने के नियोजित प्रयासों के लिए भी योजना निर्माण किया जाना आवश्यक है।
10. आर्थिक मामलों में सरकार की भूमिकाओं को स्पष्ट करने व संसाधनों के समुचित उपयोग के उद्देश्य से नियोजन एक स्वाभाविक प्रक्रिया है।
11. जनकल्याण के कार्यों को करने की क्षमताएँ भी नियोजन से ही विकसित होती हैं।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

1.3 भारत में नियोजन के लक्षण (Characteristics of Planing in India)–

भारत एक लोकतांत्रिक देश है, जहाँ केन्द्र व राज्यों में सरकारों का शान्तिपूर्ण चुनावी प्रक्रिया द्वारा बदलाव स्वाभाविक स्वरूप धारण कर चुका है। सत्ता परिवर्तन के साथ सत्ताधारी राजनीतिक दल या दलों के गठबंधन की नीतियाँ राष्ट्रीय नियोजन व उसकी प्रकृति को प्रभावित करती है। नीति निर्माण व नियोजन की इस प्रक्रिया में राष्ट्रीय हित कभी भी गौण नहीं हुआ है। संवैधानिक मूल्यों के अनुरक्षण को भी ध्यान में रखा गया है। नियोजन के स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के सात दशकों पर दृष्टिपात करें तो हमारे योजनागत ढाँचे में इन लक्षणों को हम विद्यमान पाते हैं –

अच्छा नियोजन – राष्ट्र की समृद्धि का प्रतीक

1. उपलब्ध संसाधनों का अधिकतम उपयोग।
2. औद्योगिकरण में क्रमबद्ध वृद्धि।
3. कृषि एवं पशुपालन का समानान्तर विकास।
4. इलेक्ट्रॉनिक्स एवं सम्प्रेषण क्षेत्र में तीव्र गति से आगे बढ़ना।
5. शासकीय कार्यतंत्र (नौकरशाही) में पारदर्शिता लाना।
6. भौगोलिक दृष्टि से वंचित क्षेत्रों में निवेश को प्राथमिकता देकर क्षेत्रीय असंतुलन दूर करना।
7. शिक्षा के क्षेत्र का आधुनिकीकरण व प्रसार।
8. बौद्धिक सम्पदा का समुचित उपयोग।
9. कौशल विकास पर ध्यान देने का नवीनतम लक्षण, हमारी नियोजन प्रक्रिया का हिस्सा रहे हैं।

भारत में नियोजन की प्रकृति उतार–चढ़ाव वाली रही है। नीति नियंताओं के विचारों एवं अवधारणाओं ने भी इसे प्रभावित किया है। प्रारंभिक वर्षों में जहाँ यह अति केन्द्रीकृत व्यवस्था के रूप में दृष्टिगोचर होती है, आगे चलकर उदारवादी स्वरूप धारण कर लेती है। वैश्वीकरण का प्रत्यक्ष प्रभाव हमारे नियोजन पर दिखाई देता है। राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के साथ नियोजन की प्राथमिकताओं का सम्मिलन रहा है। सामाजिक क्षेत्र के मुद्दे कृषि, पेयजल, ग्रामीण स्वास्थ्य, ऊर्जा, साक्षरता, पर्यावरण हमारे नियोजन से ओझल नहीं हुए हैं।

1.4 नियोजन का विकास से सम्बन्ध (The Interrelationship of Planning & Development) –

आर्थिक क्षेत्र में नियोजन का लक्ष्य राष्ट्रीय विकास है। सहभागी तथा उत्तरदायी प्रबन्धन विकास की प्रथम सीढ़ी है और नियोजन संसाधनों व प्रशासन को सहभागी व उत्तरदायी बनाता है। पई पणंधीकर व क्षीर सागर ने विकास के लिए नीति निर्माणकर्त्ता के दृष्टिकोण की अभिवृत्ति–परिवर्तनशील परिणाम प्रदाता, सहभागिता एवं कार्य के प्रति समर्पणवादी होना आवश्यक माना है। महात्मा गाँधी, नियोजन का लक्ष्य 'अन्तिम व्यक्ति का विकास' कर संसाधनों के विकेन्द्रीकरण को प्राथमिकता देते है। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी का 'सबका साथ सबका विकास' का नारा इसी अवधारणा को सुदृढ़ करता है। विकास के मायने, लोगों के जीवन स्तर में उन्नति से है। आज हम दुनिया के अग्रणी देशों के साथ खड़े नजर आते है तो कहीं न कहीं नियोजित विकस की हमारी रणनीति सफल नजर आ रही है। विकास के नियोजित प्रयासों में 1950 से 2015 तक योजना आयोग ने अपनी केन्द्रीय भूमिका निभाई। 2015 में योजना आयोग के स्थान पर 'नीति आयोग' विकास के नियोजित प्रयासों का नेतृत्व कर रहा है।

नीति आयोग
(National Institution for Transforming India)
(राष्ट्रीय भारत परिवर्तन संस्थान)

नीति आयोग केन्द्र सरकार द्वारा एक जनवरी 2015 को गठित किया गया। यह पूर्ववर्ती योजना आयोग का गठित किया गया। यह पूर्ववर्ती योजना आयोग का स्थान लेगा। नीति आयोग सरकार के 'थिंक टैंक' 'Think Tank' के रूप में काम करेगा तथा उसे निदेशात्मक एवं नीतिगत गतिशीलता प्रदान करेगा।

1.5 नीति आयोग गठन के आधार (Basis of Formation of NITI) –

1. विकास में राज्यों की भूमिका को सक्रिय बनाना – राष्ट्रीय विकास में राज्य सहकारी संघवाद के समान सदस्य के रूप में योगदान देंगे।
2. देश में विद्यामान बौद्धिक सम्पदा का समुचित दोहन कर उन्हें पलायन से रोकना तथा सुशासन में उनकी भागीदारी सुनिश्चित करना।
3. विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु केन्द्र एवं राज्यों का साझा मंच तैयार करना। राज्यों की आवश्यकताओं को विभिन्न मंत्रालयों के मध्य सम्प्रेषण अभाव दूर कर प्रक्रियागत स्वरूप में हल करना।

1.6 उद्देश्य (Aims) –

1. राष्ट्रीय उद्देश्यों को दृष्टिगोचर रखते हुए, राज्यों की सक्रिय भागीदारी के साथ राष्ट्रीय विकास प्राथमिकताओं, क्षेत्रों और रणनीतियों का एक साझा दृष्टिकोण विकसित करेगा। नीति अयोग का 'विजन' प्रधानमंत्री और मुख्यमंत्रियों को 'राष्ट्रीय एजेन्डा' का प्रारूप तैयार कर सौंपना है।
2. राज्यों के साथ सतत् आधार पर संरचनात्मक सहयोग की पहल और प्रशासनिक तंत्र के माध्यम से सहकारी संघवाद को बढ़ावा देना।
3. ग्राम स्तर पर विश्वसनीय योजना निर्माण के लिए ढाँचागत विकास की पहल।
4. नीति आयोग यह सुनिश्चित करेगा कि जो क्षेत्र विशेष रूप से उसे सौंपे गए है, उनकी आर्थिक कार्यनीति और नीति में राष्ट्रीय सुरक्षा के हितो को शामिल किया जाए।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

5. समाज के उन वर्गों पर विशेष ध्यान देगा जिन पर आर्थिक प्रगति से उचित प्रकार से लाभान्वित नहीं हो पाने की संभावनाएँ बनी रहती है।
6. विकास की दीर्घकालीन नीतियों तैयार की जाएगी। इन नीतियों की निरन्तर समीक्षा एवं मध्यावधि संशोधन भी किए जाएगे।
7. देश के बुद्धिजीवी एवं संस्थाओं को राष्ट्रीय विकास की भागीदारी में सक्रिय किया जाएगा। इनके परामर्श एवं योजनाओं को राष्ट्र निर्माण में प्रयुक्त किया जाएगा।
8. विकास के एजेंडे में तेजी लाने के उद्देश्य से अन्तर क्षेत्रीय एवं अन्तर विभागीय मुद्दों के समाधान के लिए एक साझा मंच प्रदान किया जाए।
9. सुशासन तथा सतत् व न्याय संगत विकास की सर्वश्रेष्ठ कार्यप्रणाली विकसित कर अनुसंधान व अध्ययन द्वारा परिणामों पर पहुँचना।
10. कार्यक्रमों तथा नीतियों के क्रियान्वयन के लिए प्रौद्योगिकी उन्नयन एवं क्षमता निर्माण पर जोर दिया जाएगा।
11. राष्ट्रीय विकास कार्यक्रम और इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अन्य आवश्यक गतिविधियाँ सम्पादित करना।

1.7 नीति आयोग का गठन –

1. **अध्यक्ष** – प्रधानमंत्री
2. **सदस्य गवर्निंग परिषद्/काउन्सिल** – समस्त राज्यों के मुख्यमंत्री, केन्द्र शासित प्रदेश जहाँ विधानसभाएँ है के मुख्यमंत्री व अन्य केन्द्र शासित प्रदेशों के उप राज्यपाल।
3. **क्षेत्रीय परिषदे** – एक से अधिक राज्यों को प्रभावित करने वाले क्षेत्रीय मसलों पर विचार व निर्णयों हेतु विशेष अवधि के लिए क्षेत्रीय परिषद् गठन का प्रावधान है। ये परिषदे भी प्रधानमंत्री के निर्देश पर कार्य करेगी तथा सम्बन्धित राज्यों के मुख्यमंत्री व केन्द्र शासित प्रदेशों के मुख्यमंत्री उप राज्यपाल बैठक में भाग लेंगे। बैठकों की अध्यक्षता नीति आयोग के उपाध्यक्षों या प्रधानमंत्री का कोई प्रतिनिधि करेगा।
4. **प्रधानमंत्री द्वारा मनोनीत सदस्य** जो अपने क्षेत्र में विशेष योग्यता व जानकारी रखते हो।
5. **पूर्ण कालिक पदाधिकारी** –
   - उपाध्यक्ष – प्रधानमंत्री द्वारा नियुक्त।
   - पूर्णकालिक सदस्य – दो।
   - आंशिक सदस्य –
   - दो (बौद्धिक सम्पदा समूह से आवश्यकतानुसार)
   - पदेन सदस्य – केन्द्रीय मंत्री परिषद् के चार सदस्य जो प्रधानमंत्री द्वारा नियुक्त किए जाते हैं।
   - मुख्य कार्यकारी अधिकारी – सचिव स्तर का अधिकारी
   - सचिवालय –

आवश्यकतानुसार वर्तमान में नीति आयोग के उपाध्यक्ष डॉ. राजीव कुमार है। दो पूर्णकालिक सदस्य डॉ. बिबेक देवरॉय व डॉ. वी.के सारस्वत है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- योजना आयोग केन्द्र सरकार द्वारा गठित और संवैधानिक निकाय था जिसका गठन केन्द्रीय मंत्रीमण्डल ने 1950 में किया।
- नियोजन के उद्देश्य – संसाधनों का समुचित उपयोग, बेरोजगारी दूर करना, कौशल विकास, राष्ट्रीय विकास, प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि, आत्म निर्भरता व जनकल्याण है।
- नीति आयोग का गठन 1 जनवरी 2015 को किया गया।
- नीति आयोग सरकार के 'थिंक टैंक' के रूप में कार्य करता है।
- बौद्धिक सम्पदा के उचित दोहन का नीति आयोग ने व्यवस्थित प्रयास प्रारम्भ कर दिया है।
- भारत के प्रधानमंत्री 'नीति आयोग' के पदेन अध्यक्ष होते हैं नीति आयोग के एक उपाध्यक्ष एवं दो पूर्णकालिक सदस्य प्रधानमंत्री द्वारा नियुक्त किए जा सकते हैं।
- गवर्निंग काउन्सिल के सदस्य सभी राज्यों व केन्द्र शासित प्रदेशों का प्रतिनिधित्व करते हैं।
- नीति आयोग के वर्तमान उपाध्यक्ष डॉ. राजीव कुमार है।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. नीति आयोग का गठन कब हुआ ?
   (अ) 1 मार्च 2015 (ब) 1 जनवरी 2015
   (स) 1 अप्रैल 2015 (द) 1 मार्च 1950 ( )
2. नीति आयोग के पदेन अध्यक्ष कौन होते हैं –
   (अ) प्रधानमंत्री (ब) राष्ट्रपति
   (स) मुख्य न्यायाधीश (द) राज्य के राज्यपाल ( )
3. 'प्लान्ड इकोनोमी फोर इण्डिया' नामक पुस्तक के लेखक थे –
   (अ) आशिर्वादम् (ब) अमर्त्यसेन
   (स) एम. विश्वेश्वरैया
   (द) डॉ. अरविन्द पनगड़िया ( )
4. इनमें से कौन नीति आयोग गवर्निंग काउन्सिल के सदस्य है –
   (अ) दिल्ली के उप राज्यपाल
   (ब) राजस्थान के मुख्यमंत्री
   (स) मध्यप्रदेश के राज्यपाल
   (द) उपरोक्त सभी ( )
5. वर्तमान में हमारे देश में नियोजन का कार्य कौनसी

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

संस्था कर रही है –
(अ) योजना आयोग (ब) वित्त आयोग
(स) संघ लोक सेवा आयोग (द) नीति आयोग ( )

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. योजना आयोग की स्थापना कब की गई ?
2. NITI (नीति) आयोग का अंग्रेजी में पूरा नाम बताइए ?
3. नीति आयोग में पूर्ण कालिक सदस्यों की वर्तमान संख्या कितनी है ?
4. क्षैत्रीय परिषदों की बैठकों की अध्यक्षता कौन करता है ?
5. 'सबका साथ, सबका विकास' नारा किसने दिया ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. नियोजन क्या है ?समझाइये
2. अच्छे नियोजन के चार लक्षण बताइए।
3. नीति आयोग के उपाध्यक्ष व स्थाई सदस्यों के नाम बताइए।
4. भारत में नियोजन के प्रमुख उद्देश्य क्या हैं?समझाइये
5. 'बौद्धिक सम्पदा' के दोहन का व्यवस्थित प्रयास नीति आयोग ने किस रूप में प्रारम्भ किया है ?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. नियोजन क्या है ?इसकी आवश्यकता व उद्देश्यों पर विस्तृत प्रकाश डालिए।
2. नीति आयोग के गठन व उद्देश्यों की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में मीमांसा कीजिए।
3. देश की वर्तमान जरुरतों के परिप्रेक्ष्य में 'नीति आयोग' के सशक्तिकरण हेतु अपने सुझाव दीजिए।

बहुचयनात्मक प्रश्नों के उत्तर

1. ब 2. अ 3. स 4. ब
5. द

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

2. पर्यावरण व प्राकृतिक संसाधन
(Environment & Natural Resources)

"माता भूमि : पुत्रोऽहम् पृथिव्या"

धरती हमारी माता है हम सब उसके पुत्र हैं।

मानवीय जीवन के आरम्भ से ही मनुष्य एवम पर्यावरण में आपसी सम्बन्ध बना हुआ है। मनुष्य का जीवन प्रकृति पर निर्भर करता है। अतः उसके अस्तित्व के लिए प्राकृतिक परिवेश अनिवार्य है। भारतीय संस्कृति में प्रकृति को माँ कहा गया है। पृथ्वी माता के रूप में सम्पूर्ण ब्रह्मांड के जीवों का पालन पोषण करती है। अतः इसका संरक्षण करना हमारा नैतिक कर्त्तव्य है। भारतीय समाज आदिकाल से ही पर्यावरण संरक्षक की भूमिका निभाता रहा है। जैन धर्म में अहिंसा को परमधर्म मानते हुए जीव संरक्षण को आवश्यक बताया गया है। राजस्थान के बिश्नोई सम्प्रदाय जो बीस+ नौ = बिश्नोई, 29 सूत्रों को मानते हैं ये सूत्र प्रकृति संरक्षण हेतु बहुमूल्य नियम हैं। 21 सितम्बर 1730 को राजस्थान के खेजड़ली गांव में बिश्नोई समाज के 363 लोगों ने अमृतादेवी के नेतृत्व में खेजड़ी वृक्षों की रक्षा हेतु अपने प्राणों की आहूति यह कहते हुए दे दी थी कि " सिर साटे रूख रहे तो भी सस्तो जाण" अर्थात हमारे सिर के बदले अगर वृक्ष जीवित रहता है, तब भी हम इसके लिए तैयार हैं।

2.1 पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता (The Need of Environmental Conservation) –

वर्तमान में मनुष्य प्रगति की ओर उन्मुख है। वह प्रतिदिन वैज्ञानिक व प्रौद्योगिक क्षेत्र में उन्नति कर विकास की ओर बढता जा रहा है दूसरी ओर यही विकास की गति हमारे लिए कष्टकारी सिद्ध हो रही है। इस विकास के कारण हमारा पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है। वनों की कटाई, वनस्पति व जीवों के संबंधों में कमी, औद्योगिकीकरण, शहरीकरण में वृद्धि, तकनीकी का अप्रत्याशित प्रसार, जनसंख्या विस्फोट, परमाणु भट्टियों में पैदा होने वाले रेडियो धर्मी ईंधन की राख, इलेक्ट्रोनिक उपकरणों से भी पर्यावरण प्रदूषण बढ रहा है। प्रकृति के दोहन के कारण जो स्थितियां उत्पन्न हो रही हैं, उसमें, प्रकृति कब तक मनुष्य का साथ दे पायेगी यह अनुमान लगाना कठिन नहीं है। धरती का तापमान निरन्तर बढते रहने से ग्लोबल वार्मिंग आज विश्व के सम्मुख सबसे बड़ी चुनौती बन चुकी है।

एक ओर जहां दुनिया की आबादी बढ़ रही है दूसरी ओर आबादी बढने से कृषि योग्य भूमि का न केवल क्षेत्रफल कम होता जा रहा है बल्कि मृदा की उर्वरा शक्ति भी कम हो रही है। पशुओं हेतु चारागाहों की कमी से दूध उत्पादन प्रभावित हो रहा है। कृषि उत्पादन में कमी से बढती जनसंख्या को खाद्यान्न उपलब्ध करवा पाना सभी देशों की सरकारों के समक्ष मुख्य चुनौती है।

संयुक्त राष्ट्र संघ की रिपोर्ट 2016 के अनुसार विकासशील देशों की एक अरब बीस करोड़ जनता को स्वच्छ जल उपलब्ध नहीं होता। यहां की दो अरब साठ करोड़ आबादी साफ सुविधा से वंचित रहने के कारण 30 लाख से अधिक बच्चे मौत का शिकार हो जाते हैं। विश्व में 97 प्रतिशत जल महासागर व समुद्रों में खारे जल के रूप में विद्यमान है जो दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनुपयुक्त है।

2.2 ग्लोबल वार्मिंग (Global Warming) –

वैश्विक तापमान यानि ग्लोबल वार्मिंग आज विश्व की सबसे बड़ी समस्या बन चुकी है। इसे कम करने हेतु दुनियाभर में प्रयास जारी हैं, किन्तु समस्या कम होने की बजाय साल दर साल निरन्तर बढ़ रही है। ग्लोबल वार्मिंग से पहले हमें ग्रीन हाऊस प्रभाव को समझना होगा। ग्रीन हाऊस उस कमरे को कहते हैं जिसमें पौधे पैदा किये जाते हैं। इस कक्ष की दीवारें उष्मारोधी पदार्थों तथा छत ऐसे कांच की दीवारों से बनी होती है जिसमें सूर्य का प्रकाश व ऊर्जा पौध घर में प्रवेश कर जाये किन्तु उष्मा बाहर नहीं निकल सके। इस से पौध घर का तापमान शीत ऋतु में भी कम नहीं होने से उसमें अधिक तापमान में वृद्धि करने वालें पौधे आसानी से उगाये जा सकते हैं। पृथ्वी के वातावरण का तापमान बढना भी इसी प्रकार से होता है। हमारी धरती प्राकृतिक तौर पर सूर्य की किरणों से उष्मा प्राप्त करती है। ये किरणें वायुमण्डल से गुजरती हुई धरती की सतह से टकराती हैं फिर परावर्तित (रिफेलेक्शन) द्वारा पुनः लौट जाती हैं। धरती का वायुमण्डल कई गैसों से मिल कर बना है। इनमें से अधिकांश गैसें धरती के ऊपर एक प्राकृतिक आवरण बना लेती है। यह आवरण लौटती किरणों के एक हिस्से को उस तरह से रोके रखता है जैसे ग्रीन हाऊस मे कांच की दीवारें। वायुमण्डल के बढते तापमान की तुलना इसीलिए ग्रीन हाऊस से की जाती है क्योंकि पृथ्वी से परावर्तित सौर किरणों के लिए ये प्रदूषणकारी वायुमण्डलीय गैसें उष्मारोधी दीवार की भूमिका निभाती हैं एवं धरती के ऊपर एक प्राकृतिक आवरण बना लेती हैं। इससे पृथ्वी एक गर्म गैस युक्त कमरे के समान हो जाती है। इस तरह की गैसों को ग्रीन हाऊस गैस के नाम से जाना जाता है। इनमें प्रमुख हैं– कार्बन डाईआक्साइड, मीथेन, नाइट्रोजन ऑक्साइड, क्लोरोफ्लोरोकार्बन इन गैसों के प्रभाव से पृथ्वी का तापमान निरन्तर बढता है। यही ग्लोबल वार्मिंग है।

2.3 ग्लोबल वार्मिंग के कारण (Causes of Global Warming)

ग्लोबल वार्मिंग के लिए सबसे ज्यादा जिम्मेदार तो मनुष्य और उसकी गतिविधियां ही हैं। अपने आप को इस धरती का सबसे बुद्धिमान प्राणी समझने वाला मनुष्य अनजाने में या जानबूझकर अपने ही रहवास (हैबिटेट, रहने का स्थान) को

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

खत्म करने पर तुला हुआ है। मनुष्य जनित इन गतिविधियों से कार्बन डाईआक्साइड, मिथेन, नाइट्रोजन आक्साइड इत्यादि ग्रीनहाउस गैसों की मात्रा में बढ़ोतरी हो रही है जिससे इन गैसों का आवरण घना होता जा रहा है। यही आवरण सूर्य की परावर्तित किरणों को रोक रहा है जिससे धरती के तापमान मे वृद्धि हो रही है। वाहनों, हवाई जहाजों, बिजली बनाने वाले संयंत्रों (प्लांटस), उद्योगों इत्यादि से अंधाधुंध होने वाले गैसीय उत्सर्जन की वजह से कार्बन डाईआक्साइड में बढ़ोतरी हो रही है। जंगलों का बडी संख्या मे हो रहा विनाश इसका दूसरा कारण है। जंगल कार्बन डाईआक्साइड की मात्रा को प्राकृतिक रूप से नियंत्रित करते हैं, लेकिन इनकी बेतहाशा कटाई से यह प्राकृतिक नियंत्रक भी हमारे हाथ से छूटता जा रहा है। इसकी एक अन्य वजह सीएफसी है जो रेफ्रिजिरेटर, अग्निशामक यंत्रों इत्यादि में प्रयोग की जाती है। यह धरती के ऊपर बने प्राकृतिक आवरण ओजोन परत को नष्ट करने का काम करती है। ओजोन परत सूर्य से निकलने वाली घातक पराबैंगनी (अल्ट्रावायलेट) किरणों को धरती पर आने से रोकती हैं। वैज्ञानिकों का कहना है कि इस ओजोन परत मे एक बड़ा छिद्र (होल) हो चुका है जिससे पराबैंगनी किरणें (अल्टा वायलेट रेज) सीधे धरती पर पहुंच रही हैं और इस तरह से उसे लगातार गर्म बना रही हैं। यह बढते तापमान का ही नतीजा है कि ध्रुवों पर सदियों से जमी बर्फ भी पिघलने लगी है। विकसित या हो अविकसित देश, हर जगह बिजली की जरूरत बढ़ती जा रही है। बिजली के उत्पादन के लिए जीवाश्म ईंधन का इस्तेमाल बड़ी मात्रा में करना पड़ता है। इसके जलने पर कार्बन डाईआक्साइड पैदा होती है जो ग्रीनहाउस गैसों के प्रभाव को बढ़ा देती है। इसका नतीजा ग्लोबल वार्मिंग के रूप में सामने आता है।

2.4 ग्लोबल वार्मिंग के प्रभाव (Effects of Global Warming) –

वातवरण का बढ़ता तापमान – पिछले दस सालों में धरती के औसत तापमान में 0.3 से 0.6 डिग्री सेल्शियस की बढ़ोतरी हुई है। आशंका यही जताई जा रही है कि आने वाले समय में ग्लोबल वार्मिंग में और बढ़ोतरी ही होगी। 1895 के बाद साल 2012 को सबसे गर्म साल के रूप में दर्ज किया गया।

समुद्र सतह में बढ़ोतरी – ग्लोबल वार्मिंग से धरती का तापमान बढ़ रहा है। इससे ग्लैशियर पर जमा बर्फ पिघल रही है। कई स्थानों पर तो यह प्रक्रिया शुरू भी हो चुकी है। ग्लैशियरों की बर्फ के पिघलने से समुद्रों में पानी की मात्रा बढ़ जाएगी जिससे साल दर साल उनकी सतह में भी बढ़ोतरी होती जाएगी। समुद्रों की सतह बढ़ने से प्राकृतिक तटों का कटाव शुरू हो जाएगा जिससे इनका एक बड़ा हिस्सा डूब जाएगा। इस प्रकार तटीय (कोस्टल) इलाकों में रहने वाले अधिकांश लोग बेघर हो जाएंगे। अभी तक समुद्री जल स्तर बढने से दुनिया के 18 द्वीप जलमग्न हो चुके हैं। भारत में ही 54 द्वीपों के समूह सुन्दर वन पर खतरा मंडरा रहा है। ऑकलैण्ड न्यूजीलैण्ड दस लाख की आबादी वाला किरिबाती द्वीप भी संकट में है। भारत के असम में ब्रह्मपुत्र नदी के बीचों बीच स्थित दुनिया का सबसे बडा द्वीप माजुली बाढ के कारण खतरे में हैं, इसका क्षेत्रफल 1287 वर्ग किमी से घटकर 557 वर्ग किमी रह गया है। ग्लोबल वार्मिंग के प्रभाव से 2020 तक 14 द्वीप पूरी तरह समाप्त होने संभावित है।

मानव स्वास्थ्य पर असर – जलवायु परिवर्तन का सबसे ज्यादा असर मनुष्य पर ही पड़ेगा और कई लोगों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ेगा। गर्मी बढने से मलेरिया, डेंगू और यलो फीवर जैसे संक्रामक रोग बढ़ेंगे। वह समय भी जल्दी ही आ सकता है जब हम में से अधिकांश को पीने के लिए स्वच्छ जल, खाने के लिए ताजा भोजन और श्वास लेने के लिए शुद्ध हवा भी नसीब नहीं हो।

पशु पक्षियो व वनस्पतियों पर असर – ग्लोबल वार्मिंग का पशु पक्षियों और वनस्पतियों पर भी गहरा असर पड़ेगा। माना जा रहा है कि गर्मी बढ़ने के साथ ही पशु पक्षी और वनस्पतियों धीरे धीरे उत्तरी और पहाड़ी इलाकों की ओर प्रस्थान (रवाना होना) करेंगे, लेकिन इस प्रक्रिया में कुछ अपना अस्तित्व ही खो देंगे।

शहरों पर असर – गर्मी में अधिक गर्मी एवं सर्दी में अधिक सर्दी पड़ने पर घरों में एयर कंडिशनर का प्रयोग बढ़ रहा है जिससे न केवल ऊर्जा की खपत बढ़ रही बल्कि वातावरण में सीएफसी गैस की मात्रा बढ़ने से ओज़ोन परत पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है।

2.5 ग्रीन हाउस गैस के मुख्य कारक (Main Contributors of Green House Gas Emission)

1.	पावर स्टेशन से	–	21.3 प्रतिशत
2.	इंडस्ट्री से	–	16.8 प्रतिशत
3.	यातायात और गाड़ियों से	–	14.4 प्रतिशत
4.	खेती–किसानी के उत्पादों से	–	12.5 प्रतिशत
5.	जीवाश्म ईंधन का इस्तेमाल से	–	11.3 प्रतिशत
6.	रहवासी क्षेत्रों से	–	10.3 प्रतिशत
7.	बॉयोमॉस जलने से	–	10.0 प्रतिशत
8.	कचरा जलाने से	–	3.4 प्रतिशत

2.6 ग्लोबल वार्मिंग रोकने के उपाय (Steps To Stop Global Warming)–

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

ग्लोबल वार्मिंग के बारे में जागरूकता बढ़ाकर ही इसे नियंत्रित कर सकते हैं। इस हेतु निम्न बिन्दुओं पर ध्यान दिया जाना चाहिए–

1. यह जरूरी है कि हम अपने आसपास का पर्यावरण हरा भरा रखें।
2. कार्बनिक ईंधन के प्रयोग में कमी लाई जाए।
3. कार्बन मुक्त ऊर्जा संसाधन जैसे सूर्य,वायु,नाभिकीय ऊर्जा संसाधनों के प्रयोग को प्रोत्साहन दिया जावें।
4. वन क्षेत्रों की कटाई रोकने के समुचित उपाय किये जाए।

2.6 जलवायु परिवर्तन पर वैश्विक चिन्तन (Global Perspective of Climate Change)

जलवायु परिवर्तन हमारे जीवन के अस्तित्व और विकास से जुड़ी एक गंभीर वैश्विक समस्या है जिसके परिणामस्वरूप सम्पूर्ण विश्व में बड़े पैमाने पर उथल–पुथल प्रत्याशित है, जलवायु परिवर्तन के कारण दुनिया के द्वीपों का अस्तित्व तो संकटग्रस्त हो ही रहा है, यह मानव जीवन पर विपरीत प्रभाव के साथ प्राकृतिक आपदाओं जैसे बाढ़,सूखा, समुद्री तूफान आदि की आवृति भी बढ़ा रहा है।

प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन के कारण कई प्रकृतिजन्य संकट हमारे समक्ष खड़े हो रहे हैं, पृथ्वी का तापमान बढ़ने से ग्लेशियर पिघल रहे हैं, ओज़ोन परत में छेद हो जाने के कारण इसकी सूर्य की पराबैंगनी किरणों को रोकने की क्षमता घट रही है। कुल मिलाकर प्रकृति के निर्मम संहार के चलते उत्पन्न जलवायु परिवर्तन आज विश्व के समक्ष ज्वलंत और मुखर चुनौती बन गई है। इस दिशा में दुनिया भर के लोगों का ध्यान आकर्षित करने के लिए पहली बार वैश्विक स्तर पर 5 से 16 जून, 1972 के मध्य स्टॉकहोम (स्वीडन) में मानवीय पर्यावरण पर संयुक्त राष्ट्र का सम्मेलन हुआ। इसमें विश्व स्तर पर जलवायु परिवर्तन के प्रभावों पर विस्तृत विचार विमर्श किया गया। इस सम्मेलन की दसवीं वर्षगांठ मनाने के लिए 10 से 18 मई, 1982 को नैरोबी (केन्या) में राष्ट्रों का सम्मेलन हुआ जिसमें पर्यावरण से जुड़ी विभिन्न कार्य योजनाओं का एक घोषणा–पत्र स्वीकृत किया गया।

स्टॉकहोम सम्मेलन की बीसवीं वर्षगांठ पर 3 से 14 जून, 1992 को रियोडिजनेरियो (ब्राजील) में संयुक्त राष्ट्र पृथ्वी शिखर सम्मेलन हुआ जिसमें पर्यावरण एवं विकास को अनिवार्यतः स्वीकार करते हुए पृथ्वी के पर्यावरण की सुरक्षा के लिए सभी देशों के सामान्य अधिकारों एवं कर्त्तव्यों को सैद्धांतिक रूप से परिभाषित किया गया। इसी सम्मेलन के दौरान जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों से निपटने के लिए सार्थक प्रयासों हेतु जलवायु परिवर्तन पर युनाईटेड नेशंस फ्रेमवर्क कन्वेंशन ऑन क्लाईमेट चेन्ज (यूएनएफसीसीसी) नामक संधि हस्ताक्षरित की गई जिसके तहत जलवायु परिवर्तन पर पहला संयुक्त सम्मेलन (Cop1) वर्ष, 1995 में बर्लिन (जर्मनी) में हुआ था तब से अब तक इसके बीस वार्षिक सम्मेलन हो चुके है।

2.7 संयुक्त राष्ट्र संघ जलवायु परिवर्तन सम्मेलन 2014

जलवायु परिवर्तन संबंधी संयुक्त राष्ट्र संघ जलवायु परिवर्तन सम्मेलन कोप–20 (20th Session of the Conference of the parties to the UNFCCC) पेरू की राजधानी लीमा में 1 से 14 दिसम्बर 2014 तक आयोजित किया गया। सम्मेलन के मुख्य बिन्दु निम्नानुसार हैं–

1. दुनिया के 194 देशों के प्रतिनिधियों सहित विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं और गैर सरकारी संगठनों के लिए 12,500 राजनीतिज्ञ, राजनयिक, जलवायु कार्यकर्त्ता एवं मीडियाकर्मियों ने भाग लिया और जलवायु परिवर्तन की समस्या एवं उसके समाधान पर गंभीर चर्चा की गई। पेरू के पर्यावरण मंत्री मैनुएल पुलगर विदाल ने इस सम्मेलन की अध्यक्षता की और सम्मेलन को सुंयक्त राष्ट्र के महासचिव 'बान–की–मून' ने भी संबोधित किया। भारत का प्रतिनिधित्व पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्री प्रकाश जावड़ेकर ने किया।
2. इस सम्मेलन की सबसे बड़ी उपलब्धि वैश्विक कार्बन उत्सर्जन में कटौती के राष्ट्रीय संकल्पों के लिए आम सहमति वाले प्रारूप की स्वीकृति रही है जिसमें भारत सहित विकासशील देशों की चिंताओं का समाधान किया गया है।
3. सम्मेलन में भारत के लिए सबसे बड़ी सफलता यह थी कि वैश्विक कार्बन उत्सर्जन में कटौती के राष्ट्रीय संकल्पों के लिए बने सहमति प्रारूप में भारत की सभी बातों को मानते हुए विकासशील देशों की चिन्ताओं का समाधान किया गया है। अमीर देशों को अधिक कठोर वित्तीय मदद की प्रतिबद्धतायें करने व 2020 में हरित जलवायु कोष बढ़ाकर 100 अरब डालर प्रतिवर्ष करने का स्पष्ट अधिकार दिया गया है।
4. समझौते के अनुसार सभी संयुक्त राष्ट्र संघ देश अपने कार्बन उत्सर्जन में कटौती के लक्ष्य को पेरिस सम्मेलन मे प्रस्तुत करेंगे।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

2.8 संयुक्त राष्ट्र संघ जलवायु परिवर्तन सम्मेलन 2015

सुंयक्त राष्ट्र संघ का जलवायु परिवर्तन सम्मेलन फ्रांस की राजधानी पैरिस में 30 नवम्बर से 12 दिसम्बर 2015 में आयोजित किया गया। जलवायु परिवर्तन पर सयुंक्त राष्ट्र संघ UNFCCC दलों का यह 21वीं वार्षिक सत्र होने के कारण इसे Cop21 के नाम से जाना जाता है। इसके मुख्य बिन्दु निम्न हैं :–

1. पृथ्वी दिवस के अवसर पर 22 अप्रेल को भारत सहित 175 देशों के प्रतिनिधियों ने पेरिस जलवायु परिवर्तन समझौते पर संयुक्त राष्ट्र संघ में हस्ताक्षर किये। भारत की ओर से पर्यावरण मंत्री ने संयुक्त राष्ट्र महासभा में हुए समारोह में इस समझौते पर हस्ताक्षर किए।
2. यह किसी एक दिन में विश्व के इतनी बड़ी संख्या में देशों की ओर से किसी समझौते पर हस्ताक्षर का रिकॉर्ड है। इससे पहले 1982 में 119 देशों ने समुद्री सुरक्षा से जुड़ी संविदा पर हस्ताक्षर किए थे।
3. पेरिस जलवायु समझौते पर हस्ताक्षर के बाद सभी देशों को अपने देश की संसद से इस समझौते का अनुमोदन कराना होगा।
4. विश्व में कम से कम 55 प्रतिशत कार्बन उत्सर्जन के जिम्मेदार 55 देशों के अनुमोदन करने के 30 दिनों के भीतर यह अस्तित्व में आ जाएगा।
5. समझौते के तहत सदस्य देशों ने 21वीं सदी में दुनिया के तापमान में वृद्धि दो डिग्री से कम स्तर तक सीमित करने का लक्ष्य रखा है।
6. भारत ने जीवाश्म ईंधन के उत्सर्जन में कटौती के साथ 2022 तक 175 गीगावॉट अक्षय ऊर्जा उत्पादन का लक्ष्य रखा है।
7. पेरिस समझौता विकासशील देशों के विकास की अनिवार्यताओं को सुनिश्चित करता है।

भारतीय प्रधानमंत्री ने इस पर टिवट्र के माध्यम से टिप्पणी की है कि " पेरिस समझौते में ना कोई विजेता है न ही किसी की हार हुई है पर्यावरण को लेकर न्याय की जीत हुई है। हम सब एक हरे भरे भविष्य पर काम कर रहे हैं।'' जलवायु सम्मेलन की मेजबानी कर रहे फ्रांस के राष्ट्रपति ने इस समझौते को 'धरती के लिए महान दिन' कहा उन्होने कहा कि पेरिस में कई शताब्दियों से अनेक क्रांतियां देखी है आज सब से खूबसूरत व शांति पूर्ण क्रांति हुई है। संयुक्त राष्ट्र संघ महासचिव बान की मून ने कहा कि यह कदम न केवल धरती के पर्यावरण को बचायेगा बल्कि गरीबी का अंत करेगा और विकास को बढावा देगा। भारत के पर्यावरण मंत्री प्रकाश जावड़ेकर ने कहा यह एक समझौता नहीं, सात अरब लोगों के जीवन में एक नया अध्याय है। गांधी जी कहा करते थे कि हमें यह धरती अपने पुरखों से विरासत में नहीं मिली है, बल्कि आने वाली पीढ़ियों ने इसे हमें कर्ज में दिया है।

पण्डित दीनदयाल की जयन्ती 25 सितम्बर 2016 के अवसर पर भारतीय प्रधानमंत्री ने घोषणा की कि भारत में पेरिस समझौते की सभी शर्तो को 2 अक्टूबर 2016 को लागू कर दिया जायेगा और इसी अनुसार 2 अक्टूबर 2016 को भारत में इस समझौते की क्रियान्विति हेतु प्रक्रिया प्रारंभ कर दी गई है।

2.9 भारतीय संविधान व पर्यावरण संरक्षण (Conservation of Environment & Indian Constitution)

हमारे देश में पर्यावरण के अनुकूल एक समृद्ध संस्कृति रही है यही कारण है कि हमारे संविधान निर्माताओं ने पर्यावरण को संवैधानिक स्तर पर मान्यता देते हुए इसे सरकार और नागरिकों के संवैधानिक दायित्व के साथ जोड़ा गया। संसद द्वारा 42वें संशोधन के द्वारा पर्यावरण संरक्षण अधिनियमों को पारित करते हुए संविधान के भाग–4 में राज्य के नीति निर्देशक तत्वों व मूल कर्त्तव्यों में सम्मिलित किया गया है। इसमें यह कहा गया है:–

1. राज्य के नीति निर्देशक तत्वों के अनुच्छेद 48 में कहा गया है कि राज्य पर्यावरण सुधार एवं संरक्षण की व्यवस्था करेगा तथा वन्य जीवन को सुरक्षा प्रदान करेगा।
2. संविधान के भाग 4 क के अनुच्छेद 51क में मूल कर्तव्यों में प्राकृतिक पर्यावरण की जिसके अन्तर्गत वन,झील नदी अन्य जीव भी हैं इनकी रक्षा करें और उनका संवर्धन करें तथा प्राणी मात्र के प्रति दया भाव रखें।
3. भारतीय संविधान के अनुच्छेद–21 में कहा गया है कि प्रत्येक व्यक्ति को उन गतिविधियों से बचाया जाना चाहिए, जो उसके जीवन, स्वास्थ्य और शरीर को हानि पहुँचाती हो।
4. भारतीय संविधान के अनुच्छेदों 252 व 253 को काफी महत्त्वपूर्ण माना गया है क्योंकि व पर्यावरण को ध्यान में रखकर कानून बनाने के लिये अधिकृत करते हैं।

भारतीय संविधान में न सिर्फ पर्यावरण को बचाने की अवधारणा निहित है बल्कि पर्यावरण असंतुलन से होने वाले दुष्प्रभावों से रक्षा करने हेतु भी ध्यान दिया गया है। संसद ने इस हेतु अनेक अधिनियम पारित किये हैं इन में से प्रमुख हैं:–

1. पर्यावरण संरक्षण अधिनियम 1986 — इस अधिनियम को 23 मई 1986 में राष्ट्रपति की स्वीकृति मिली। इस अधिनियम में प्रदूषण को निर्धारित मानदण्डों का प्रथम बार उल्लंघन करने वाले को 5 वर्ष की कैद व एक लाख के जुर्माने का प्रावधान है। मानदण्डों का निरन्तर उल्लंघन करने पर दैनिक 5 हजार रूपये जुर्माना व 7 वर्ष की कैद का प्रावधान है। नियमों के उल्लंघन पर कोई भी व्यक्ति दो माह का नोटिस देकर जन हित में मुकदमा कर सकता है। केन्द्रीय सरकार इस अधिनियम की धारा 5 के तहत प्राधिकृत है कि अपनी शक्तियों के निष्पादन हेतु स्थापित प्राधिकारियों को लिखित निर्देश दे। केन्द्र सरकार को यह अधिकार है कि अधिनियम की पालना न

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

करने वाले उद्योगों को बंद करवाने एवम बिजली पानी सेवायें रोकने के निर्देश दे सकती है।

2. वायुप्रदूषण (निवारण व नियंत्रण) अधिनियम 1981 — इस अधिनियम से राज्य सरकार अपने विवेक से किसी भी क्षेत्र को वायु प्रदूषण नियंत्रण क्षेत्र घोषित कर सकती है। समस्त औद्योगिक इकाइयों को राज्य बोर्ड से अनापत्ति प्रमाण पत्र लेना होगा। अधिनियम के प्रावधानों की अनुपालना नहीं करने पर उद्योग बंद कराये जा सकेंगे व विद्युत जल कनेक्शन भी विच्छेद करवा सकेंगे।

3. जल (प्रदूषण निवारण व नियंत्रण) अधिनियम 1974 संशोधन 1988 — इस अधिनियम की मुख्य विशेषता जल को प्रदूषण मुक्त रखने के उपायों से सम्बन्धित है। उद्योग की स्थापना से पहले प्रदूषण कर्ताओं को कड़े दण्ड व शास्ति का प्रावधान है।

4. वन्यजीव (संरक्षण) अधिनियम 1972 संशोधन — वन्य जीव संरक्षण अधिनियम को भारतीय संसद द्वारा 9 सितम्बर 1972 को पारित किया गया। वन्य प्राणियों के संरक्षण के लिए यह अधिनियम एक मील का पत्थर है। इस अधिनियम द्वारा वन्य जीव संरक्षण को राज्य सूची से हटा कर समवर्ती सूची में स्थान दिया गया। इस अधिनियम की मुख्य विशेषतायें निम्नानुसार हैः—

1. वन्य पशुओं के संरक्षण व प्रबन्धन को सुनिश्चित करना।
2. पशु शिकार उनके चमड़े व चमड़े से बनी वस्तुयें निषिद्ध करना।
3. अवैध आखेट की रोकथाम, वन्यजीवों को संरक्षण प्रदान करना।
4. उल्लंघन पर अपराधियों को 3–5 वर्ष का कारावास व 5 हजार रूपये जुर्माना।

राष्ट्रीय पशु बाघ व मोर के शिकार पर संबंधित अपराधी को 10 वर्ष तक कारावास का प्रावधान है।

2.10 पर्यावरण संरक्षण : कुछ महत्त्वपूर्ण न्यायिक फैसले
(Environment Conservation – Important Judicial Decisions)

पर्यावरण संबंधी मामलों की सुनवाई के लिये हमारी न्यायपालिका ने हमेशा तत्परता दिखाई है। समय समय पर उच्चतम न्यायालय ने पर्यावरण संबंधी जागरूकता बढ़ाने के उद्देश्य से महत्त्वपूर्ण निर्देश जारी किए।

1. सभी सिनेमाहॉल, चल सिनेमा तथा वीडियो पार्लर अनिवार्य रूप से कम से कम दो पर्यावरण संबंधी फिल्म का संदेश अनिवार्य रूप से प्रत्येक शो में निःशुल्क दिखाएँगे। यह उनके लिये लाइसेंस जारी करते समय पूर्व शर्त होगी।
2. सिनेमा हॉलों द्वारा लघु अवधि को पर्यावरण तथा प्रदूषण संबंधी सूचनाप्रद फिल्म दिखाना।
3. पर्यावरण तथा प्रदूषण संबंधी रुचिकर कार्यक्रम का प्रसारण प्रतिदिन 5 से 7 मिनट अवधि के लिये तथा सप्ताह में एक बार लंबी अवधि के लिये दूरदर्शन तथा रेडियो द्वारा प्रसारित किया जाए।
4. छात्रों में सामान्य जागृति लाने के लिये पर्यावरण को विद्यालयों, कॉलेजों तथा विश्वविद्यालयों में एक अनिवार्य विषय बनाया जाना चाहिए।
5. सन 1996 मे उच्चतम न्यायालय ने संघीय सरकार तथा स्थानीय प्राधिकरणों को दिल्ली के ऐतिहासिक नगर को प्रतिदिन साफ करने, सघन वानिकी अभियान को चलाने तथा आरक्षित वन कानून लागू करने के आदेश दिए।
6. उच्चतम न्यायालय ने जन समस्या तथा आगरा—ताजमहल की विश्व धरोहर को बचाने के लिये 292 कोयला आधारित उद्योगों को बंद करने या अन्यत्र ले जाने या गैस ईंधन आधारित बनाने के उद्देश्य से आदेश पारित किए। न्यायालय में (1999 में) सचिव, पर्यावरण वन मंत्रालय तथा सचिव, पर्यटन मंत्रालय को निर्देश दिया कि पर्यटकों से एकत्र किया गया कोष (लगभग 20 करोड़) स्मारक के संरक्षण तथा नगर के सौंदर्यीकरण व्यय किया जाएगा।
7. उच्चतम न्यायालय ने वाहनों से होने वाले प्रदूषण को रोकने के लिये विभिन्न निर्देश जारी किए हैं।
8. सन् 2000 से चार महानगरों, दिल्ली,मुंबई, कोलकाता,चेन्नई में सीसा रहित पेट्रोल का प्रयोग किया जाए।
9. दिल्ली में अप्रेल सन् 2001 में टैक्सियों, ऑटोरिक्शा तथा बसों में सीएनजी का प्रयोग हुआ।
10. सभी सार्वजनिक स्थानों पर धूम्रपान निषेघ किया जाए।

2.11 पर्यावरण जागरूकता संबंधी महत्त्वपूर्ण दिवस

1.	विश्व पर्यावरण दिवस	–	5 जून
2.	पृथ्वी दिवस	–	22 अप्रैल
3.	विश्व ओजोन दिवस	–	16 सितम्बर
4.	वन महोत्सव	–	28 जुलाई
5.	विश्व जल दिवस	–	22 मार्च

2.12 उपभोक्तावादी संस्कृति
(Culture of Consumerism)

उपभोक्तावाद एक ऐसी आर्थिक प्रक्रिया है जिसका सीधा अर्थ समाज के भीतर व्याप्त प्रत्येक तत्व उपभोग करने योग्य है। उसे बस सही तरीके से जरूरी वस्तुओं के रूप में बाजार में स्थापित करना है। उद्योगपति अपने निजी लाभ के लिए जो वस्तुयें बाजार में बेचते हैं, उसके प्रति ग्राहकों को

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

आकर्षित करने के लिए उनके मन में कृत्रिम इच्छाओं को जागृत करते हैं। ग्राहक को महससू होता है कि इस वस्तु के बिना तो उसका काम चल ही नहीं सकता। यहीं से अपव्ययपूर्ण उपभोग की शुरुआत हो जाती है। विकसित देशों में विश्व की एक चौथाई आबादी निवास करती है किन्तु विश्व के कुल संसाधनों का तीन चौथाई उपभोग इन्हीं के द्वारा किया जाता है। उदाहरण के लिए अमेरिका की जनसंख्या विश्व की जनसंख्या का 5 प्रतिशत होते हुए भी विश्व के कुल पैट्रोलियम उत्पादों का 20 प्रतिशत व्यय अमेरिकी उपभोक्ता द्वारा किया जाता है। इसी तरह विकसित देशों में घरों, वाहनों में भी एअर कंडीशनरों का प्रयोग सर्वाधिक हो रहा है। इन कारणों से ग्रीन हाऊस गैसों के प्रभाव से ग्लोबल वार्मिंग बढ़ती जा रही है।

कमोबेश सभी विकसित व विकासशील देशों की स्थिति अमरिका जैसी ही है। पश्चिमी संस्कृति की चकाचौंध में भारत सहित अन्य विकासशील देश आ चुके हैं। इस सोच को विकसित करने में विज्ञापनों की अहम भूमिका रही है। पिछले कुछ दशकों से "आपूर्ति का अर्थशास्त्र" "Supply Side Economies" की अवधारणा खूब चल रही है कि माल बनाते रहो ग्राहक तो मिल ही जायेंगे। जहां ग्राहक तैयार नहीं है वहां विज्ञापनों द्वारा आकर्षण पैदा करके ग्राहक तैयार किये जाएं। अधिकाधिक औद्योगिक उत्पादन की इस होड़ मे सरकारों व बैंकों का समर्थन भी मिल रहा है। निरन्तर अनावश्यक खरीददारी से उपभोक्ता के जेब, पर्स, बैंक खाता, क्रेडिट कार्ड खाली होने के बाद आर्थिक संकट (दिवालियेपन) का शिकार हो रहे हैं। साथ ही इन उत्पादों का जीवनकाल (Life Span) कम होता जा रहा है। इससे पुराना सामान शीघ्र अनुपयोगी हो जाता है, नया उत्पाद बिक्री के लिए आ जाता है। वर्तमान के मुकाबले एक उत्पाद का औसत जीवनकाल 1980 के दशक में तीन गुना अधिक होता था। इसके साथ साथ उत्पादों की पैकिंग सामग्री व डिस्पोजेबल उत्पादों के उपयोग को बढ़ावा मिलने से अपशिष्ट पदार्थों का निस्तारण दुनिया के समक्ष चुनौती बन गया है। इन उत्पादों को तैयार करने में प्राकृतिक संसाधनों खनिज, वन, पानी, ऊर्जा स्त्रोतों का भरपूर दोहन हो रहा है। यह प्रणाली प्रकृति के मूल्यवान व स्वास्थ्यप्रद स्त्रोतों को नष्ट करके वातावरण को प्रदूषित कर रही है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि प्राकृतिक संसाधनों का सृजन नहीं किया जा सकता, उन्हे बढ़ाना तो असंभव है। वर्तमान औद्योगिक विकास एक ऐसा व्यवसाय चला रहा है जो अपनी ही जमा पूंजी खर्च किये जा रहा है। पर्यावरण वादियों का यह मानना है कि किसी राष्ट्र के सकल राष्ट्रीय उत्पाद जी.एन.पी. की गणना करते समय उन संसाधनों का भी हिसाब लगाया जाये जिन्हे औद्योगिक प्रणाली नष्ट कर रही है।

विशेषज्ञों के अनुसार प्राकृतिक संसाधनों की खपत हम वर्तमान दर से करते रहे तो भूगर्भ में उपलब्ध ताम्बा 277 साल में, कोबाल्ट व प्लेटिनम 400 साल में, पैट्रोल 49 साल में, पैट्रोलियम गैस 60 साल में, कोयला कुछ सौ सालों में धरती से गायब हो जायेंगे। आज विश्व में एक साल में जितना ऊर्जा स्त्रोतों पेट्रोल, कोयला व प्राकृतिक गैस का प्रयोग हो रहा है, उसे तैयार करने में प्रकृति को दस लाख साल लगे हैं। अतः हमें इस बात को समझना होगा कि उपभोक्तावादी संस्कृति में ऐशोआराम के इतने साधन जुटाने के बावजूद सही मायने में मनुष्य संतुष्ट या सुखी नहीं है। उपभोक्तावाद की इस संस्कृति में मनुष्य निरन्तर नई आवश्यकताओं की पूर्ति की इच्छा रखने के कारण मानसिक तनाव का शिकार हो रहा है।

हमारी संस्कृति में आवश्यकताओं को सीमित रखते हुए संयमित व सात्विक जीवन शैली अपनाने की जो बात कही गई है वह आज न केवल भारत बल्कि समूचे विश्व के लिए प्रासंगिक है। धरती किसी की निजी संपत्ति नहीं है। यह हमें अपने पूर्वजों से उत्तराधिकार में नहीं मिली है बल्कि यह भावी पीढ़ियों की धरोहर है। अतः हम वर्तमान प्राकृतिक साधनों को सुरक्षित रखने के दायित्व से बंधे हैं।

निष्कर्ष (Conclusion)

आज के दौर में मानव विकास की दौड़ में इतना आगे बढ़ गया है कि उसे अपने पर्यावरण की ओर देखने का समय नहीं है। वह यह भूलता जा रहा है कि उसे पृथ्वी पर रहना है। विश्व में प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह बच्चा हो या वृद्ध अपने पर्यावरण के प्रति सजगता, जागरूकता, चेतना और पर्यावरण अनुकूलन को विकसित करने की आवश्यकता है और तभी इस गंभीर समस्या का समाधान किया जा सकता है। वर्तमान समय में आवश्यकता इस बात की भी है कि मनुष्यों द्वारा पर्यावरण के साथ समन्वयात्मक, सहयोगात्मकता और सामंजस्य पूर्ण संबंध को अपनाया जाए। साथ ही साथ हम अपने शास्त्रों और प्राचीन संस्कृति को अपनाएँ और अपने संविधान में पर्यावरण संरक्षण के प्रावधानों का पालन करें।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- राजस्थान के खेजड़ली गांव में बिश्नोई समुदाय के 363 लोगों ने अमृतादेवी के नेतृत्व में अपने प्राणों की आहूति यह कहते हुए दे दी कि सिर साटे रूख रहे तो भी सस्तो जाण।
- पृथ्वी का तापक्रम बढने के लिए ग्रीन हाउस गैसें उत्तरदायी हैं।
- ग्रीन हाऊस गैसें है– क्लोरोफ्लोरोकार्बन, कार्बन डाईआक्साइड, मीथेन, नाइट्रोजन आक्साइड आदि।
- ग्लोबल वार्मिंग विश्व के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती है। इसके प्रभाव से वातावरण का तापमान बढ़ रहा है जिससे ध्रुवों पर ग्लेशियर पिघल रहे है। परिणामस्वरूप समुद्र का जल स्तर बढने से तटीय क्षेत्रों के डूबने का खतरा हो गया है। मानव स्वास्थ्य व जीव जन्तु पर इसके दुष्प्रभाव हो रहे हैं।
- ग्लोबल वार्मिंग को रोकने के लिए प्रत्येक नागरिक को जागरूक होना होगा। ऊर्जा के कार्बन मुक्त संसाधन सूर्य, वायु, नाभिकीय ऊर्जा के प्रयोग को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

- प्रकृति से प्राप्त होने वाले पदार्थ जो प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से मानव जीवन के लिए आवश्यक हैं, प्राकृतिक संसाधन कहलाते हैं। जैसे जल संसाधन, खनिज संसाधन, वन संसाधन, खाद्य संसाधन, ऊर्जा संसाधन, मृदा संसाधन।
- जलवायु परिवर्तन पर विश्व स्तर पर सबसे पहला सम्मेलन 5 से 16 जून 1972 को स्टाक होम (स्वीडन) में हुआ।
- जलवायु परिवर्तन पर युनाइटेड नेशंस संघ फ्रेमवर्क कन्वेशन आन कलाइमेटिक चेंज (UNFCC) पहली संधि 1995 में बर्लिन में की गई। तब से अब तक हर वर्ष यूएनएफसीसी के सम्मेलन आयोजित किये जा रहे हैं।
- दिनांक 30 नवम्बर से 12 दिसम्बर 2015 तक पेरिस में जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र संघ का 21वां सम्मेलन आयोजित किया गया।
- पेरिस समझौते में पृथ्वी का तापक्रम 20 सेल्सियस से कम रखने के उपाय किये जायेंगे।
- भारतीय संविधान के नीति निर्देशक तत्वों के अनुच्छेद 4बी में कहा गया है कि राज्य पर्यावरण सुधार व संरक्षण की व्यवस्था करेगा।
- संविधान के भाग 4 क के अनुच्छेद 51 में मूल कर्त्तव्यों में वन,झील, नदी की रक्षा व संवर्धन को सम्मिलित किया गया है।
- संसद ने पर्यावरण असंतुलन के प्रभावों से रक्षा हेतु पर्यावरण संरक्षण अधिनियम 1986, वायु प्रदूषण अधिनियम 1981, जल प्रदूषण निवारण व नियंत्रण अधिनियम संशोधन, वन्य जीव संरक्षण अधिनियम 1972 संशोधन आदि अधिनियम पारित किये है।
- उपभोक्तावादी संस्कृति से पर्यावरण को भारी क्षति पहुंच रही है।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. अन्तर्राष्ट्रीय ओज़ोन दिवस मनाया जाता है :–
   (अ) 16 सितम्बर (ब) 16 अक्टूबर
   (स) 16 नवम्बर (द) 16 दिसम्बर ( )
2. विश्व जल दिवस मनाया जाता है–
   (अ) 12 मार्च (ब) 22 मार्च
   (स) 12 अप्रैल (द) 22 अप्रैल ( )
3. जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र संघ जलवायु परिवर्तन सम्मेलन COP–21 किस स्थान पर आयोजित किया गया।
   (अ) क्योटो (जापान) (ब) लीमा (पेरू)
   (स) पैरिस (फ्रांस) (द) रियोडिजेनरियों (ब्राजील) ( )
4. निम्न में से धात्विक खनिज है–
   (अ) जिप्सम (ब) ग्रेनाइट
   (स) रॉक फास्फेट (द) जस्ता ( )

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. बिश्नोई समाज के पर्यावरण संरक्षण हेतु बलिदान की घटना किस गांव में व कब हुई?
2. बिश्नोई समाज की किस महिला ने सबसे पहले वृक्ष रक्षा हेतु अपने प्राणों की आहूति दे दी?
3. सी.एफ.सी. गैस का पूरा नाम लिखे।
4. पृथ्वी दिवस कब मनाया जाता है?
5. विश्व पर्यावरण दिवस कब मानया जाता है?
6. आणविक ऊर्जा में काम आने वाले मुख्य रासायनिक तत्व का नाम लिखिये।
7. राजस्थान मे पन बिजली उत्पन्न करने वाले किन्हीं स्थानों के नाम लिखें।
8. यू.एन.एफ.सी.सी.सी. का पूरा नाम लिखें।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. भारतीय संस्कृति में पर्यावरण संरक्षण को किस तरह महत्त्व प्रदान किया गया।
2. "सिर साटे रूख रहे तो भी सस्तो जाण" इस सम्बन्धित घटना का संक्षिप्त उल्लेख कीजिए।
3. ग्लोबल वार्मिंग रोकने के उपाय सुझाइये।
4. विश्व के किनहीं तीन मरुस्थलो का नाम लिखें।
5. पैरिस समझौते पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।
6. पर्यावरण संरक्षण अधिनियम 1986 मे सरकार द्वारा पर्यावरण संरक्षण हेतु कौनसे संवैधानिक प्रावधान किये गये हैं।
7. उपभोक्तावादी संस्कृति किस प्रकार पर्यावरण को नुकसान पहुॅंचा रही है?संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

निबंधात्मक प्रश्न

1. ग्लोबल वार्मिंग से क्या अभिप्राय है?इसके कारणों की व्याख्या करते हुए पृथ्वी पर पड़ने वाले प्रभावों का विस्तृत वर्णन कीजिए।
2. भारतीय संविधान में पर्यावरण संरक्षण हेतु किये गये प्रावधानों का विस्तृत वर्णन करें।
3. जलवायु परिवर्तन पर वैश्विक चिन्तन पर लेख लिखिये।
4. उपभोक्तावादी संस्कृति के कारण व इससे पर्यावरण व मानव जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों की विस्तृत विवेचना कीजिए।
5. पर्यावरण संरक्षण पर भारतीय न्यायपालिका द्वारा दिये गये महत्त्वपूर्ण निर्णयों का वर्णन कीजिए।

बहुचयनात्मक प्रश्नों के उत्तर

1. अ 2. ब 3. स 4. स

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

3. भारत और वैश्वीकरण
(India & Globalisation)

बींसवी शताब्दी के अंतिम दशक में संचार क्रान्ति ने समूचे विश्व को एक ' वैश्विक गाँव ' में तब्दील कर दिया। इस युग में वैश्वीकरण का एक नई अवधारणा के रूप में सूत्रपात हुआ। दूसरे विश्व युद्ध के बाद विचारधारा के आधार पर विश्व दो भागों में बंट गया। एक ओर पूँजीवाद, निजीकरण और उदारवाद का समर्थन करने वाले देश थे, जबकि दूसरी तरफ साम्यवाद व समाजवादी विचारधारा वाले देश थे। प्रथम गुट का नेतृत्व संयुक्त राज्य अमेरीका कर रहा था वहीं दूसरे गुट का नेतृत्व पूर्व सोवियत संघ कर रहा था। इन दोनों गुटों के मध्य पारस्परिक राजनीतिक और आर्थिक सम्बन्ध न के बराबर थे। संयुक्त राष्ट्र संघ के दोनों गुटों के सभी देश सदस्य थे किन्तु सोवियत संघ, पूर्वी यूरोपीय संघ और उनके समर्थक देश विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा व्यापार व टैरिफ सामान्य समझौता (GATT) जैसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के सदस्य नहीं थे।

इन साम्यवादी देशों में निरकुंश सत्ता और स्वामित्व वाली अर्थव्यवस्था प्रचलन में थी, जबकि पूँजीवादी गुट में निजी स्वामित्व और बाजारोन्मुखी अर्थ व्यवस्था विद्यमान थी। साम्यवादी व्यवस्था में गरीबी, आर्थिक विषमता और शोषण को दूर करने की संभावनाएँ अन्तर्निहित थी लेकिन स्वतंत्रता, प्रेरणा और समृद्धि की संभावना न के बराबर थी। नौकरशाही तंत्र पूरी तरह से साम्यवादी व्यवस्थाओं पर हावी था। जबकि पूँजीवाद स्वतंत्रता प्रेरणा और विकास का स्वप्न दिखाकर अर्द्धविकसित एवं विकासशील देशों को अपनी ओर आकर्षित करने में लगा हुआ था लेकिन गरीबी और शोषण को दूर करने के प्रति गम्भीर नहीं था। दोनों विचारधाराओं ने अपना–अपना प्रभाव क्षेत्र बढ़ाने के लिए उचित–अनुचित उपाय अपनाए। फलस्वरूप दोनों महाशक्तियों में शीत युद्ध आरम्भ हो गया। पूँजीवादी गुट के नेता अमेरीका को यह आभास हो गया कि जहाँ–जहाँ गरीबी, विषमता और पूँजीवाद के तत्व मौजूद होंगे वहाँ–वहाँ साम्यवाद तेजी से पनप सकता है। अतः उन्होंने अपने वर्चस्व वाली अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से इन देशों में गरीबी और असमानता को दूर करने के प्रयास प्रारम्भ कर दिए। साम्यवादी गुट के पास न तो इतने साधन थे और न सामर्थ्य कि, वे गरीबी व असमानता का निवारण कर सके। साम्यवादी देशों की प्रशासनिक अव्यवस्था एवं हथियारों की अन्धाधुन्ध होड़ के कारण आर्थिक विषमता लगातार बढ़ रही थी। इसी दौर में सोवियत संघ के तत्कालीन राष्ट्रपति मिखाइल गोर्वाचोव ने आर्थिक उदारीकरण तथा वैश्वीकरण को साम्यवाद और विश्व के लिए समय की मांग बताया। परिणामस्वरूप सोवियत संघ 1991 में कई टुकड़ों में बंट गया। इस प्रकार साम्यवादी गुट व विचारधारा की पराजय हुई और अमेरीका के नेतृत्व में पूँजीवादी गुट व विचारधारा की विजय हुई। पश्चिमी पूँजीवादी देशों ने यह महसूस किया कि जिन देशों के साथ उनके आर्थिक सम्बन्ध नहीं है उनके साथ नवीन सम्बन्ध बनाने से उनकी समृद्धि नई ऊँचाईयाँ छू सकती है। साम्यवादी के समर्थकों और एशिया व अफ्रीका के साथ अनेक पिछड़े देशों के लिए अब यही विकल्प बचा था कि वे अपने विकास के लिए बाजारोन्मुखी व्यवस्था को अपनाए। परिणामस्वरूप विश्व के अधिकांश देशों ने स्वतंत्र अर्थ व्यवस्था को छोड़कर निजीकरण, उदारीकरण व वैश्वीकरण से प्रेरित बाजारोन्मुखी अर्थव्यवस्था को अपना लिया।

3.1 वैश्वीकरण का अर्थ
(Meaning of Globalisation) –

वैश्वीकरण का अर्थ है अन्तर्राष्ट्रीय एकीकरण, विश्व व्यापार का खुलना, उन्नत संचार साधनों का विकास, वित्तीय बाजारों का अन्तर्राष्ट्रीयकरण, बहुराष्ट्रीय कम्पनी का महत्त्व बढ़ाना, जनसंख्या का देशान्तर गमन, व्यक्तियों, वस्तुओं, पूँजी आंकड़ों व विचारों की गतिशीलता का बढ़ना। यह ऐसी प्रक्रिया है जिसने वैविध्यपूर्ण दुनिया को एकल समाज में एकीकृत किया है। हालांकि वैश्वीकरण बहुत चर्चित व विवादित विचारधारा है, परन्तु इस बात पर आम सहमति है कि वैश्वीकरण के दौर में लोगों, पूँजी, माल और विचारों के अन्तर्राष्ट्रीय प्रवाह में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। भारत वैश्वीकरण के प्रभाव से अछूता नहीं रहा है। वैश्वीकरण के बारे में यह कहा जाता है कि इस प्रवृत्ति ने राष्ट्रीय राज्य का स्वरूप ही बदल दिया है। राष्ट्रीय राज्य की सम्प्रभुता का ह्रास हुआ है। साथ ही इसका सकारात्मक प्रभाव यह पड़ा है कि राजनीतिक शक्ति का अधोगामी संचार हुआ है। वैश्वीकरण के युग्मित बलों का जन्म इस बात को पुष्ट करता है।

3.2 वैश्वीकरण के कारण
(Causes of Globalisation) –

वैश्वीकरण के लिए कोई एक कारक उत्तरदायी नहीं, फिर भी प्रौद्योगिकी अपने आप में एक महत्त्वपूर्ण कारण साबित हुई है। टेलीग्राफ, टेलीफोन और माइक्रोचिप, इन्टरनेट के नवीन अविष्कारों ने पूरी दुनिया में संचार क्रान्ति का सूत्रपात किया। उन्नत प्रौद्योगिकी के कारण विचार, पूँजी, वस्तु और लोगों की विश्व के विभिन्न भागों में आवाजाही बढ़ गई। विश्व के एक हिस्से में घटने वाली घटना का प्रभाव पूरी दुनिया पर पड़ने लगा।

3.3 वैश्वीकरण के राजनीतिक प्रभाव
(Political Impact of Globalisation) –

वैश्वीकरण का सर्वाधिक प्रभाव राष्ट्रीय राज्यों पर पड़ा। वैश्विक स्तर पर पारिस्थितिक बदलाव, एकीकृत अर्थव्यवस्था,

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अन्य प्रभावकारी प्रवृत्तियों के कारण सम्पूर्ण विश्व का राजनीतिक पर्यावरण वैश्वीकरण के प्रभाव में आ गया। राष्ट्रीय राज्य की अवधारणा में परिवर्तन आने लगा। विकसित देशों में कल्याणकारी राज्य की धारणा पुरानी पड़ने लगी और उसकी जगह न्यूनतम अहस्तक्षेपकारी राज्य ने ले ली है। अब राज्य लोककल्याणकारी राज्य के साथ आर्थिक और सामाजिक प्राथमिकताओं का प्रमुख निर्धारक तत्व बन गया है। पूरी दुनिया में बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ स्थापित हो चुकी है। इससे सरकारों की स्वायतता प्रभावित हुई है। यद्यपि राजनीतिक समुदाय के रूप में राज्य की प्रधानता को अभी भी कोई चुनौती नहीं मिली है और राज्य इस अर्थ में आज भी प्रमुख है। विश्व राजनीति में आज भी राष्ट्रीय राज्य की महत्ता बनी हुई है। राज्य पर वैश्वीकरण के कुछ और प्रभाव भी हुए है। जो राज्य तकनीकी क्षेत्र में अग्रणी है उनके नागरिकों का जीवन स्तर उल्लेखनीय रूप से बढ़ा है। सूचनाओं के तीव्र आदान प्रदान से नागरिकों का जीवन सहज हुआ है। वैश्वीकरण का राजनीतिक परिदृश्य पर प्रभाव तो है परन्तु समाज वैज्ञानिक इसके राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर पड़ रहे प्रभाव की प्रकृति और स्तर को लेकर एकमत नहीं है कि वैश्वीकरण राष्ट्रीय राज्यों को कमजोर बना रहा है और वैश्विक संस्थाओं द्वारा इन राज्यों की गतिविधियों और शक्तियों पर अपनी प्रभुता कायम कर एक दूसरे पर बढ़ती निर्भरता के परिणाम के रूप में विश्व राजनीति में आमूल–चूल बदलाव तो जरुर आएँगे। विशेष रूप से अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में, लेकिन राष्ट्रीय राज्यों का अस्तित्व समाप्त होने की कोई संभावना नहीं है।

बींसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों तथा विश्व राजनीति पर अन्य वैश्विक तत्वों का प्रभाव रहा। शीत युद्ध एक वैचारिक संघर्ष था। 1950 तथा 1960 के दशकों में जब शीत युद्ध अपने उफान पर था उस समय एशिया तथा अफ्रीका में उपनिवेशवाद का अन्त हो रहा था और नए राष्ट्रीय राज्यों का उदय हो रहा था। स्वतंत्रता, न्याय तथा समानता के सिद्धान्त इसके संघर्ष का आधार थे। इन सिद्धान्तों के प्रति पूर्वी तथा पश्चिमी दोनों ही गुट अपने अपने ढंग से वैचारिक अनुसमर्थन कर रहे थे। इन नए स्वतंत्र देशों की जमीन पूर्वी तथा पश्चिमी गुटों के लिए आर्थिक, राजनीतिक तथा वैचारिक प्रतियोगिता के लिए अत्यन्त उपजाऊ थी। शीतयुद्ध के तनाव के कारण ही कोरिया, वियतनाम, कांगों, अंगोला, मोजेम्बिक तथा सोमालिया में कई बार क्षेत्रीय संघर्ष उत्पन्न हुए। कुछ राजनीतिक वैज्ञानिकों का मानना है कि सोवियत संघ के पतन के बाद विश्वशान्ति का एक नया दौर प्रारम्भ हुआ है, जो वैश्वीकरण से प्रभावित है। अब अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय अपनी नियंत्रित नीतियों के स्थान पर व्यापार में खुलेपन को प्रोत्साहन दे रहे है जो कि प्रजातंत्र एवं जनता के अधिकारों के सिद्धान्तों पर आधारित है। खुलेपन की नीति में हुई अभिवृद्धि के कारण संयुक्त राष्ट्र संघ, विश्व बैंक व अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने भी अपनी नीतियों में परिवर्तन किया है। अब पूर्व तथा पश्चिम के बीच शक्ति संघर्ष व शक्ति संतुलन की जद्दोजहद के स्थान पर शान्ति, रक्षा, विकास, पर्यावरण की सुरक्षा, मानव अधिकारों की रक्षा तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आपराधिक न्यायालय जैसी कानूनी संस्थाओं का सृजन हुआ है। बड़े–बड़े अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किए जा रहे है ताकि विश्व के सभी देश मिलजुल कर आपसी सहयोग द्वारा अपनी व वैश्विक समस्याओं का निवारण कर सके। इस तरह की प्रवृत्ति को राजनीतिक वैश्वीकरण की संज्ञा दी जा सकती है। सभी अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएँ राष्ट्रीय राज्यों की हिस्सेदारी व भागीदारी पर आधारित है तथा राष्ट्रीय सम्प्रभुता के मौलिक सिद्धान्तों का सम्मान करती है।

3.4 वैश्वीकरण के आर्थिक प्रभाव (Economic Impacts of Globalisation)–

वैश्वीकरण का सर्वाधिक प्रभाव विश्व अर्थव्यवस्था पर पड़ा है। पश्चिमी पूँजीवादी देश एशिया और अफ्रीका में अपने उत्पादों के लिए बाजार ढूँढने में प्रयत्नरत है। प्रत्येक देश ने अपना बाजार विदेशी वस्तुओं की बिक्री के लिए खोल दिया है। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) और विश्व व्यापार संगठन (WTO) दुनिया में आर्थिक नीतियों के निर्धारण में प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से सक्रिय भूमिका निभा रहे है। यह संस्थाएँ शक्तिशाली पूँजीवादी ताकतों के प्रभाव के क्षेत्र में कार्य कर रही है। यद्यपि पिछड़ी अर्थव्यवस्थाओं को भी काफी लाभ हुआ है। लोगों के जीवन स्तर में काफी सुधार हुआ है। चीन, भारत व ब्राजील जैसी प्रगतिशील अर्थव्यवस्थाओं को पिछली अर्थव्यवस्थाओं की तुलना में अधिक लाभ हुआ है। विश्व के विभिन्न देशों में आर्थिक प्रवाह तेज हुआ है। पूर्व में विभिन्न देश आयात पर प्रतिबन्ध अधिक लगाते थे परन्तु वैश्वीकरण के दौर में प्रतिबन्ध शिथिल हो गए है। अब धनी देश के निवेशकर्त्ता अपना विनिवेश अन्य देशों में कर सकते हैं। भारत, ब्राजील जैसे विकासशील देश विदेशी निवेश के विशेष आकर्षण है।

पूँजीवादी देशों को इससे अधिक मुनाफा होता है। वैश्वीकरण ने पूरी दुनिया में वैचारिक क्रान्ति लाने का कार्य किया है। अब विचारों के आदान–प्रदान में राष्ट्रीय सीमाओं का असर समाप्त हो गया है। इन्टरनेट और कम्प्यूटर से जुड़ी सेवाओं जैसे बैकिंग, ऑनलाईन शॉपिग व व्यापारिक लेन–देन तो बहुत सरल हो गई है लेकिन जितना तेज वस्तुओं और पूँजी का प्रवाह बढ़ा है उतनी तेज लोगों की आवाजाही, नहीं बढ़ सकी है। विकसित पूँजीवादी देशों ने अपनी वीजा नीति को 9/11 की आतंकवादी घटना के बाद अत्यन्त कठोर कर दिया है। ऐसा मुख्य रूप से इस कारण से हुआ है कि यह देश आशंकित है कि अन्य देश के नागरिक उनके नागरिकों की नौकरी व व्यवसाय न हथिया लें।

वैश्वीकरण का अलग–अलग देशों पर अलग–अलग प्रभाव पड़ा। कुछ देशों की अर्थव्यवस्था तेज गति से प्रगति कर रही है वहीं कुछ देश आर्थिक रूप से पिछड़ गये है। वैश्वीकरण के दौर में सामाजिक न्याय की स्थापना अभी भी संकट में है। सरकार का संरक्षण छिन जाने के कारण समाज के कमजोर तबकों को लाभ की बजाय नुकसान उठाना पड़ रहा है। कई विद्वान् वैश्वीकरण के दौर में पिछड़े लोगों के लिए सामाजिक

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

सुरक्षा कवच तैयार करने की बात कर रहे है। कुछ लोग वैश्वीकरण को नवउपनिवेशवाद का नाम देकर निन्दा कर रहे है। जबकि वैश्वीकरण के पक्षकारों का मानना है कि वैश्वीकरण से विकास व समृद्धि दोनों बढ़ती है। खुलेपन के कारण आम आबादी की खुशहाली बढ़ती है। हर देश वैश्वीकरण से लाभान्वित होता है।

3.5 वैश्वीकरण के सांस्कृतिक प्रभाव (Cultural Effects of Globalization) –

वैश्वीकरण ने न केवल राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्र को प्रभावित किया है अपितु इसका लोगों के सांस्कृतिक जीवन पर भी काफी प्रभाव पड़ा है। इसका विश्व के देशों की स्थानीय संस्कृतियों पर मिश्रित प्रभाव पड़ा है। इस प्रक्रिया से विश्व की परम्परागत संस्कृतियों को सबसे अधिक खतरा पहुँचने की आशंका है। वैश्वीकरण सांस्कृतिक समरूपता को जन्म देता है जिसका विशिष्ट देशज संस्कृतियों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। सांस्कृतिक समरूपता के नाम पर पश्चिमी सांस्कृतिक मूल्यों को अन्य आँचलिक संस्कृतियों पर लादा जा रहा है। इससे खान–पान, रहन–सहन व जीवन शैली पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। वैश्वीकरण का सकारात्मक पक्ष यह भी है कि प्रौद्योगिकी के विकास व प्रवाह से एक नवीन विश्व संस्कृति के उदय की प्रबल सम्भावनाएँ बन गई है। इन्टरनेट, सोशल मीडिया, फैक्स, उपग्रह तथा केबल टी.वी. ने विभिन्न राष्ट्रों के मध्य विद्यमान सांस्कृतिक बाधाओं को हटाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

3.6 सांस्कृतिक प्रवाह बढ़ाने वाले माध्यम (The Channels for Promoting Cultural Exchanges)

सूचनात्मक सेवाएँ (Information Services) –

1. इन्टरनेट व ईमेल से सूचनाओं का आदान–प्रदान।
2. इलेक्ट्रॉनिक क्रान्ति ने सूचनाओं को जनतांत्रिक बना दिया है।
3. विचारों एवं धारणाओं का आदान–प्रदान आसान बनाना।
4. सूचना तकनीकी के विस्तार से डिजीटल क्रान्ति आई है वहीं विषम डिजीटल दरार भी उत्पन्न हुई है।
5. अविकसित, अर्द्धविकसित व कुछ विकासशील देशों में सूचना सेवाओं पर राज्य का नियत्रंण है।
6. एक विशिष्ट समूह द्वारा सूचना माध्यमों पर आधिपत्य स्थापित कर लेना, अलोकतांत्रिक है।

समाचार सेवाएँ – सी.एन.एन., बी.बी.सी, अल जजीरा (CNN, BBC, AL- Jazeera) आदि सैकड़ों अन्तर्राष्ट्रीय चैनलों का विश्वव्यापी प्रसारण हो रहा है जिससे वैश्वीकरण को अधिक प्रभावशाली बना दिया है। खबरों की विश्वसनीयता व प्रमाणिकता पर अभी भी प्रश्न चिह्न लगे हुए है। खबरें व उनका विश्लेषण राजनीतिक प्रभाव से सम्बद्ध होता है जो लोकतंत्र के लिए उपयुक्त नहीं है।

3.7 भारत पर वैश्वीकरण के प्रभाव (Impact of Globalisation on India)–

वैश्वीकरण की लहर का भारत में आगाज पिछली शताब्दी के अन्त में हुआ। मिश्रित अर्थव्यवस्था में विश्वास करने वाला भारत देश भी इस धारा से जुड़ गया। भारत में वैश्वीकरण का सूत्रपात जुलाई 1991 में तत्कालीन प्रधानमंत्री नरसिंह राव ने किया था। वे अमेरिकान्मुख वैश्वीकरण के लिए कई बार आलोचना के केन्द्र रहे। व्यवहार में उस समय के वित्तमंत्री मनमोहन सिंह ने ही नई आर्थिक नीतियों (उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण) को शुरु किया।

1991 में नई आर्थिक नीति अपनाकर भारत वैश्वीकरण एवं उदारीकरण की प्रक्रिया से जुड़ गया। 1992–93 से रूपये को पूर्ण परिवर्तनीय बनाया गया। पूँजी बाजार और वित्तीय सुधारों के लिए कदम उठाए गए।। आयात–निर्यात नीति को सुधारा गया है। इसमें प्रतिबन्धों को हटाया गया है। 30 दिसम्बर 1994 को भारत ने एक अन्तर्राष्ट्रीय समझौतावादी दस्तावेज पर हस्ताक्षर किए। 1 जनवरी,1995 को विश्व व्यापार संगठन की स्थापना हुई और भारत इस पर हस्ताक्षर करके इसका सदस्य बन गया। समझौते पर हस्ताक्षर करने के बाद भारत ने अनेक नियमों और औपचारिकताओं को समाप्त करना शुरु कर दिया जो वर्षों से आर्थिक विकास में बाधक बनी हुई थी। प्रशासनिक व्यवस्था में अनेक सुधार किए गए और सरकारी तंत्र की जटिलताओं को हल्का किया गया।

देश में अभी भी वैश्विक परिवर्तन का दौर जारी है। भारतीय राजनीति पर वैश्वीकरण के भिन्न– भिन्न प्रभाव पड़े है। इन चुनौतियों का सामना करने लिए भारतीय संघवाद की तीन अलग–अलग प्रतिक्रियाएँ सामने आयी है। पहला यह आशंका है कि वैश्वीकरण के कारण अर्थव्यवस्था की ढील से देश के आर्थिक विकास पर विषम प्रभाव पड़ा है क्योंकि भारत अभी भी एक विकासशील देश है और वह विकास के मार्ग पर वैश्वीकरण की सकारात्मक प्रवृत्तियों का लाभ लेते हुए विकसित देशों की बराबरी नहीं कर सकता। वैश्वीकरण का सर्वाधिक लाभ उन अर्थव्यवस्थाओं को होगा जो पहले से ही विकसित है। अर्द्धविकसित और आर्थिक रूप से पिछड़े हुए देश इस दौड़ में पीछे रह जाएँगें। यदि भारतीय राज्य को सतुंलित समग्र और समाजवादी विकास की अभिवृद्धि करनी है तो राष्ट्रीय सरकार की शक्तियों में भी बढ़ोतरी करनी पड़ेगी। इसी कारण प्रतिस्पर्धा और बेहतर सेवा प्रदान करने के लिए व समान नीतियों को लागू करने के लिए केन्द्रीकरण की मांग करती है।

दूसरा, वैश्वीकरण की प्रवृत्ति वैधता का संकट पैदा करती है। एक तरफ राष्ट्रीय राज्य अपनी आर्थिक सम्प्रभुता को तो कम कर देता है किन्तु आन्तरिक सम्प्रभुता का परित्याग करने से परहेज रखता है। घरेलू सम्प्रभुता को बढ़ाने के लिए राष्ट्रीय राज्य को स्थानीय लोकतांत्रिक संरचनाओं की रचना

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

करनी पड़ती है ताकि राज्य की वैधता आगे बढ़ सके।

भारतीय संघवाद की तीसरी परत पंचायतीराज की संवैधानिक मान्यता इसी चिंता का एक प्रतिबिम्ब है। इस प्रवृत्ति का ''नवीन स्थानीयता "New Localism think Globally, Act Locally" की संज्ञा दी जाती है।

भारतीय संघवाद के सामने वैश्वीकरण की तीसरी चुनौती है– नागरिक समाज संगठनों की तीव्र वृद्धि। इनमें से कुछ संगठन लोकतांत्रिक शासन की समानान्तर और क्षैतिज संरचनाएँ उत्पन्न कर देते है जो लोकतंत्र के संचालन पर बुरा प्रभाव डालते है।

यदि भारतीय राज्य आर्थिक विकास के लिए प्रतिबद्ध है तो यह सुधारात्मक हस्तक्षेप शुरु किए बिना दो स्तरीय प्रणाली को नहीं ला सकता। एक तरफ अग्रिम राज्य व्यापक विकास कर लेते है। वहीं पिछड़े राज्यों को सामाजिक एवं आर्थिक विकास के लिए सहायता के लिए केन्द्र पर निर्भर रहना पड़ता है। केवल स्वयं के विकास के लिए नहीं, अपितु शासन पर पड़ने वाले सम्भावित सकारात्मक प्रभाव की वजह से सहायता पर निर्भर रहना पड़ता है। जैसे – सहकारी वित्तीय संघवाद

संघवाद का यह मार्गदर्शक सिद्धान्त है कि असमान राज्यों को समान अधिकार प्रदान किए जाए। क्षेत्रीय असमानता एक इकाईयों की आपसी सौदेबाजी की शक्ति पर प्रभाव डालती है। वहीं दूसरी तरफ यह राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय कारकों की सौदेबाजी पर भी प्रभाव डालती है और इन इकाईयों की आबादी की सामाजिक और राजनीतिक भागीदारी पर नकारात्मक प्रभाव डालती है।

एक प्रक्रिया के रूप में वैश्वीकरण उतना ही पुराना है जितनी की हमारी सभ्यता। यद्यपि पिछले दो दशकों में यह प्रवृत्ति राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बन गई है। दुनिया की सभी देशों की राजनीति व प्रशासन विशेष रूप से विकासशील देशों की प्रशासनिक व्यवस्था पर बड़ा प्रभाव पड़ा है। भारत की इस प्रक्रिया का एक हिस्सा बन गया है। जब भारत की अर्थव्यवस्था 1991 में वित्तीय संकट के दौर में विश्व के अन्य देशों के लिए खोलनी पड़ी।

स्वतंत्र भारत की संघीय परियोजना एक तरफ औपनिवेशिक विरासत से प्रभावित थी वहीं दूसरी तरफ राष्ट्र निर्माण की बाध्यताओं और चुनौतियों के प्रति प्रतिक्रिया थी। संविधान निर्माताओं को यह अपेक्षाएँ थी कि उनके द्वारा प्रदान किया संस्थागत ढांचा देश की जटिल विविधताओं और राष्ट्र निर्माण की चुनौतियों से सफलतापूर्वक निपट सकेगा। भारतीय संघ में एक तरफ बहुलवाद और विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्तियों विद्यमान है, वहीं दूसरी तरफ केन्द्रवाद की प्रवृत्तियाँ भी मौजूद है। इन दोनों विरोधी प्रवृत्तियों का सह–अस्तित्व भारत के संघवाद को अर्धसंघवाद बनाता है।

वैश्वीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जो विश्व के दूरस्थ भागों को जोड़ती है एक का दूसरे पर प्रभाव पड़ता है। राज्यों के बीच बढ़ती हुई अन्तःक्रिया व अन्तः निर्भरता इसी के तथ्य है। वैश्वीकरण को एक विश्वव्यापी प्रवाह के रूप में समझा जाना चाहिए जो विश्वव्यापी जुड़ाव से पैदा हुआ है। विश्वव्यापी प्रवाह के उदाहरण है– विश्व के एक हिस्से के विचारों का दूसरे हिस्सों में पहुँचना। पूँजी का एक से ज्यादा देशों में जाना, वस्तुओं का विभिन्न देशों में पहुँचना या फिर बेहतर आजीविका की तलाश में विश्व के विभिन्न देशों में लोगों की आवाजाही। वैश्वीकरण एक बहुआयामी अवधारणा है तथा जीवन के प्रत्येक पक्ष से सम्बन्धित है। वैश्वीकरण ने विश्व को एक छोटे से गाँव का रूप दे दिया है क्योंकि विश्व के दूर–दूर तक फैले देशों के लोग अब अपने को एक–दूसरे के निकट महसूस करते हैं। जैसे कि वे एक दूसरे के पड़ोसी हो। वैश्वीकरण की प्रवृत्ति को बलवती करने में प्रोद्योगिकी का महत्त्वपूर्ण योगदान है। बढ़ते संचार साधनों, इन्टरनेट और सोशल मीडिया ने सारे विश्व को एक समग्र इकाई में परिवर्तित कर दिया है। यातायात एवं संचार व्यवस्था में हुई वृद्धि से आज पूरा विश्व एक बाजार स्थल (व्यापार क्षेत्र) बन गया है।

यदि आप किसी बड़े शहर में रहते हैं तो आज अपने स्थानीय बाजार में अमेरीका अथवा न्यूजीलैंड के कीवी फल खरीद सकते हैं। इस प्रकार उत्पादक देशों से अन्य देशों के बाजारों तक वस्तुओं का यह प्रवाह वैश्वीकरण का एक अंग है। वस्तुओं और सेवाओं का यह मुक्त प्रवाह एक देश की राष्ट्रीय सीमाओं में प्रदेशों में हर समय बना रहता है।

हिमाचल प्रदेश के सेव, गुजरात और महाराष्ट्र के संतरे, उत्तर–पूर्वी राज्यों तक पहुँचते है। परन्तु यही जब दो या दो से अधिक सम्प्रभु राष्ट्रीय राज्यों के मध्य मुक्त रूप से होता है तो इस प्रवृत्ति को वैश्वीकरण नाम दिया जाता है। इस प्रकार जो देश अन्य देशों की तुलना में अधिक सस्ती व बेहतर तकनीक से युक्त कार का उत्पादन कर सकता है, वह विश्व के सभी देशों को अपने यहाँ निर्मित कार का निर्यात कर सकता है। इसी प्रकार जिन देशों में कम्प्यूटरों का उत्पादन नहीं होता तथा कम्प्यूटर उन्हें बाहर से आयात करने पड़ते है, उन्हें सस्ते तथा बेहतर कम्प्यूटर का उत्पादन करने वाले देश निर्यात कर सकते हैं। इसे ही कहा जाता है – एक देश की प्रतिस्पर्धा से प्राप्त होने वाला सर्वश्रेष्ठ लाभ। वैश्वीकरण को इस रूप में बताया जा सकता है जब देश माल का उत्पादन करते हैं और उस माल को पूरे विश्व में बेचने के लिए दूसरे देशों से प्रतियोगिता करते हैं तो उससे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, विनिवेश व पूँजी में वृद्धि होती है।

आज चीन के उत्पाद दुनिया के किसी भी देश के बाजार में बिक्री हेतु उपलब्ध है क्योंकि वहाँ मजदूरी सस्ती है। जो उसे अन्य देशों से प्रतिस्पर्धा में मददगार साबित हुई है। एक राष्ट्र

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

यह निर्णय कैसे ले कि उसे क्या उत्पादित करना है? यह प्राकृतिक देन भी हो सकती है, जैसे भूगोल या प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता और जलवायु यह भी हो सकता है कि किसी देश को किसी खास चीज के उत्पादन में लम्बे समय से विशिष्टता प्राप्त हो, जैसे कि भारत बासमती चावल उत्पादन को। वैसा क्षेत्र जिसमें देश के पास कुछ उत्पादित करने की योग्यता होती है मुख्य स्पर्धा कहलाती है।

मुख्य स्पर्धा–एक ऐसा आधारभूत तत्व है जो किसी विषय–क्षेत्र या कौशल के विवरण में विशेषज्ञता अथवा योग्यता स्थापित करता है।

इसलिए वैश्वीकरण के पीछे प्रमुख विचार यह है कि सभी राष्ट्र केन्द्रीय सक्षमता को विकसित करेंगे और वैसी चीजों का उत्पादन करेंगे, जिसमें वे निपुण है। ऐसी स्पर्धा, देश के भीतर और दूसरे देशों के साथ दोनों देश को सक्षम और मजबूत बनाने में मददगार होगी।

प्रयास के बावजूद भी यहाँ माल और सेवाओं के आवागमन पर अक्सर अवरोध लगा रहता है। जैसा कि सभी देश एक ही विश्व बाजार में बेचने का प्रयास कर रहे हैं यह स्वाभाविक है कि उनके पास वस्तुओं के उत्पादन के अवसर आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं। कुछ विकसित राष्ट्र दूसरे देशों को विकसित स्तर तक पहुँचने के अवसर नहीं देते। यहाँ तक कि जब कोई राष्ट्र इन विकसित राष्ट्रों द्वारा खड़े किए अवरोधों से सामना करने की तैयारी करता है तो फिर नई सीमाओं या अवरोधों को बना दिया जाता है। भारत को ऐसी कठिनाइयों का सामना करने के लिए तैयार रहना होगा।

3.8 वैश्वीकरण का लोक संस्कृति पर प्रभाव (Impact of Globalisation on Native Culture)–

वैश्वीकरण के कारण आज किसी भी देश का गीत–संगीत विश्व के हर कोने में सुना जा सकता है। इसका नकारात्मक पक्ष यह है कि इससे विशिष्ट राष्ट्रीय संगीत को प्रदूषित कर दिया है। वैश्वीकरण ने पूरी दुनिया में लोक संस्कृति के प्रसार को तो बढ़ाया है परन्तु इससे आंचलिक सांस्कृतिक अभिव्यक्ति में रुकावट आई है। पाश्चात्य एवं विदेशी सांस्कृतिक साम्राज्यवाद का वर्चस्व बढ़ा है। पोप कल्चर ने शास्त्रीय संगीत परम्परा पर भी प्रतिकूल प्रभाव डाला है। लोकवाद्यों के स्थान पर इलेक्ट्रानिक वाद्ययंत्रों के आ जाने से संगीत की सुरमयता व शास्त्रीय विशिष्टता समाप्त हो गई है।

पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण ने परम्परागत सांस्कृतिक मूल्यों का हास किया है। इससे राष्ट्र के खान–पान व पहनावे पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।

3.9 सामाजिक मूल्यों पर वैश्वीकरण का प्रभाव (Impact of Globalisation on Social Values)–

भारत ने वैश्वीकरण का आर्थिक क्षेत्र में तो सकारात्मक प्रभाव पड़ा है, परन्तु सामाजिक क्षेत्र में इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। हमारे युवाओं ने पश्चिमी प्रभाव में आकर मान–मर्यादा, रीति–रिवाज का परित्याग कर दिया है। सामाजिकता के स्थान पर स्वार्थपरकता ने स्थान ले लिया है। व्यक्ति के नैतिक चरित्र में वैश्वीकरण की विभिन्न नकारात्मक प्रवृत्तियों के प्रभाव स्वरूप ह्रास हुआ है। मूल्यविहीनता भारत जैसे बहुलवादी देश के लिए अत्यन्त घातक सिद्ध हुई है।

3.10 वैश्वीकरण के परिणाम (Consequences of Globalisation) –

आज पूरा विश्व एक ही नेटवर्क के दायरे में बंधा हुआ है। एक देश की महत्त्वपूर्ण घटना का तुरन्त प्रभाव अन्य देशों पर पड़ता है। वस्तुएँ , पूँजी, लोग, ज्ञान, संचार, हथियार, अपराध, फैशन, विचार, और विश्वास तेज गति से एक देश से दूसरे देश में पहुँच जाते हैं। वैश्वीकरण ने वैश्विक संस्कृति के साथ एक वैश्विक व्यवस्था को जन्म दिया है। वैश्वीकरण ने जीवन के हर क्षेत्र को प्रभावित किया है। वैश्वीकरण एक प्रक्रिया के रूप में जन आन्दोलन तथा पलायन को प्रेरित करता है जिसका सबसे अधिक प्रभाव बुजुर्गों पर पड़ता है। वैश्वीकरण ने यूरोप व अन्य राज्यों में शरणार्थी समस्या को जन्म दिया है। 2016 तक 7.4 अरब जनसंख्या में से लगभग 60 करोड़ लोग शरणार्थी है अर्थात् हर 122वां व्यक्ति शरणार्थी है। वैश्वीकरण को हर व्यक्ति की आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा करने वाली प्रक्रिया भी माना जाता है। कई आलोचक यह भी मानते हैं कि वैश्वीकरण केवल कॉरपोरेट सेक्टर व उद्योगपतियों के हितों का सम्वर्द्धन करता है और इसका गरीब वर्ग के हितों से कोई सरोकार नहीं है। कुछ आलोचक यह भी मानते हैं कि वैश्वीकरण की मुक्त बाजारोन्मुखी अर्थव्यवस्था से दुनिया की जो अपेक्षाएँ थी वे पूरी नहीं हो सकी है। वैश्वीकरण से प्रभावित संस्थाओं ने गरीब देशों, कामगारों तथा प्राकृतिक पर्यावरण के हितों की अनदेखी करते हुए केवल कॉरपोरेट जगत के हितों की पूर्ति की है। यह बड़े देशों के साम्राज्यवाद का नवीन रूप है। वैश्वीकरण ऋण आधारित अर्थव्यवस्था को थोपने के लिए कटिबद्ध है जिसके कारण ऋण में बेहताशा बढ़ोतरी एवं ऋण संकट की स्थिति पैदा हो सकती है।

आलोचना – वैश्वीकरण से राष्ट्र की आर्थिक स्वायत्तता प्रभावित होने की आशंका रहती है। अर्द्ध विकसित व विकासशील देशों की विकसित देशों के पिछलग्गू बनने की सम्भावना होती है।

1. वैश्वीकरण एक राष्ट्र की स्वायत्तता सम्प्रभुता और आत्मनिर्भरता को प्रभावित कर सकता है।
2. वैश्वीकरण भारत जैसे विकासशील व अन्य पिछड़े देशों के लिए देर–सवेर घातक सिद्ध हो सकता है। यह

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

परिघटना अमेरीका वर्चस्व को ही प्रोत्साहित करेगी।

3. भारत अमेरीका का 'Client State' (ग्राहक देश) बनकर रहने की आशंका की जाती थी।

4. वैश्वीकरण की नीति उदारीकरण और निजीकरण के तार्किक परिणाम की अभिव्यक्ति है। इसके अन्तर्गत व्यवस्था की आर्थिक गतिविधियों की कार्य कुशलता में वृद्धि के लिए व्यवस्थागत अर्द्ध व्यवस्थागत अर्थव्यवस्था को विश्व की किसी भी राजनीतिक व्यवस्था की आर्थिक गति के साथ जोड़ने की छूट दी जाती है। वैश्वीकरण के अन्तर्गत कोई व्यवस्था अपने उत्पादन खरीद–फरोख्त तथा सेवाओं का जाल विश्व के किसी भी हिस्से के साथ जोड़ सकती है। जहाँ सबसे कम लागत पर गुणवता, उन्नत की जा सके और उससे अधिकतम लाभ पाया जा सके। आर्थिक क्षेत्र में वैश्वीकरण की नीति बहुराष्ट्रीय निगमों के विस्तार को बढ़ावा देती हैं, जिसके परिणामस्वरूप विकासशील व्यवस्थाओं का सामाजिक, आर्थिक सांस्कृतिक जीवन, विश्वव्यापी सामाजिक, आर्थिक सांस्कृतिक प्रभाव के दायरे में आ जाता है। उदारीकरण वह नीति या प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत व्यवस्था की आर्थिक गतिविधियों का कौशल सामर्थ्य बढ़ाने एवं उससे मिलने वाले लाभ के प्रतिशत में अधिकतम वृद्धि करने के लिए उस पर से सरकारी प्रतिबन्ध और नियंत्रण समाप्त कर दिया जाता है या उनमें रियायत दे दी जाती है, ताकि बाजार शक्तियों को काम करने का मौका मिल सके और व्यवस्था की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाने हेतु में शक्तियाँ स्वतंत्र होकर आर्थिक गतिविधियों का संचालन समर्थ रूप से कर सके। इस नीति के अन्तर्गत समाज एवं व्यक्तियों के कल्याण हेतु राज्य की जबावदेही को कम करने की कोशिश की जाती है। यह इस विश्वास के साथ सम्बद्ध होता है कि यह नीति व्यवस्था के सेवाओं एवं वस्तुओं की मांग पूर्ति तथा मुक्त प्रतिस्पर्धा के नियम व्यापारियों के लिए निजी लाभ और कामगारों के लिए विभिन्न प्रकार के प्रोत्साहनों का आकर्षण उपलब्ध कराता है जो आर्थिक गतिविधियों को कार्यक्षम बनाने का सर्वोत्कृष्ट साधन है। आलोचनाओं के तर्क में तीनों परिस्थितियाँ विकासशील व्यवस्थाओं में अनेक प्रकार के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं के प्रवेश का मार्ग प्रशस्त करती है। यह नव उपनिवेशवादी मानसिकता को बढ़ावा देती है जिसके माध्यम से विकसित देश संदर्भित व्यवस्था को उन्नति का प्रलोभन देकर मुख्यतः अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार व औद्योगिकीकरण के बहाने उन देशों का सस्ता कच्चा माल और सस्ते श्रम का इस्तेमाल अपनी उन्नति के लिए करता है तथा अपनी उत्पादित वस्तुओं की बिक्री के लिए बड़े बाजार के रूप में इन व्यवस्थाओं का प्रयोग करता है।

उपलब्धियाँ – आलोचनाओं के बावजूद विश्वव्यवस्था में वैश्वीकरण की सकारात्मक भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। विगत 25 वर्षों में कई पिछड़े देशों की प्रगति व लोगों के जीवन को खुशहाल बनाने में वैश्वीकरण का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। वैश्वीकरण की निम्नलिखित उपलब्धियाँ गिनाई जा सकती है –

1. विकासशील देशों के लोगों की जीवन प्रत्याशा का दोगुना होना व शिशुमृत्यु दर का घटना।
2. वयस्क मताधिकार का व्यापक विस्तार।
3. लोगों के भोजन में पौष्टिकता को बढ़ाना।
4. बालश्रम को घटना।
5. प्रति व्यक्ति को विद्युत, कार, रेडियो, टेलीविजन, टेलीफोन, मोबाईल फोन आदि सुविधाएँ उपलब्ध करवाना।
6. स्वच्छ जल उपलब्ध कराना।
7. प्रत्येक सेवा क्षेत्र के अभूतपूर्व सुधार।
8. जीवन को अधिक खुशहाल बनाना।

निष्कर्ष

1991 में प्रारम्भ हुए वैश्वीकरण का सर्वाधिक लाभ विकसित राष्ट्रों को हुआ। यद्यपि चीन, भारत और ब्राजील देशों की अर्थव्यवस्था पर वैश्वीकरण का काफी सकारात्मक प्रभाव पड़ा। अर्द्धविकसित व अविकसित देशों में तुलनात्मक दृष्टि से कम आर्थिक सुधार हुए है। भारत जैसे देशों में उच्च व मध्यम वर्ग के लोगों की आय में वृद्धि हुई है। सेवा, क्षेत्र, दूरसंचार सूचना प्रौद्योगिकी, वित्त, मनोरंजन, पर्यटन सेवाओं में लगे लोगों को कृषि व विनिर्माण की तुलना में अधिक लाभ हुआ। आज भारत प्रगतिशील राष्ट्र है। जिसकी अर्थव्यवस्था काफी सुदृढ़ है। भारत में कई बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने विभिन्न क्षेत्रों में निवेश किया है। वैश्वीकरण प्रौद्योगिक क्रान्ति के माध्यमों से अनवरत प्रगति कर रहा है। दूसरी तरफ वैश्वीकरण के विरुद्ध कई आवाजें उठ रही है। कुछ लोग वैश्वीकरण को भारत की बर्बादी का कारण मानते हैं।

एक विकसित भारत के निर्माण हेतु आवश्यक है कि हम अपने आप पर विश्वास रखें और यह सुनिश्चित करे कि एक राष्ट्र के रूप में हम क्या कर सकते हैं। हमारे देश में इस प्रकार की मानसिकता भी देखने को मिलती है। जहाँ कुछ लोग यह भी सोचते है कि विदेशी चीजें अपेक्षाकृत अच्छी होती है। उदाहरणतः हम चीन में निर्मित घटिया किस्म के आयातित माल को इस विश्वास के साथ खरीदने के इच्छुक रहते हैं कि वे किसी भी तरह से हमारे देश में बन रहे उत्पादों से बेहतर होंगे। ऐसा प्रतीत होता है कि हमने स्वयं के प्रति अपना विश्वास खो दिया है। वैश्वीकरण कोई नई प्रवृत्ति नहीं है हजारों साल पहले भारत का माल अपनी गुणवत्ता व कारीगरी के कारण दुनिया के दूरदराज क्षेत्रों में निर्यात किया जाता था। आज आवश्यकता उस विश्वास को पुनःस्थापित करने की है, जो विभिन्न कारणों से हमारे में क्षीण हो गया है। हमारा विदेशी आयातित चीजों के प्रति अतिमोह व आकर्षण को कम करना होगा। हमें जापान के

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

नागरिकों की तरह अपने देश में उत्पादित स्वयं की वस्तुओं को ही खरीदना चाहिए। वर्तमान सरकार की ' मेक इन इण्डिया ' योजना इसी भावना को प्रदर्शित करती है। हमें एक देश के रूप में साहसी बनना होगा और अपनों के लिए कार्य करना होगा तभी वैश्वीकरण के इस दौर में हम अपना अस्तित्व बनाए रख पाएँगे। वैश्वीकरण के दौर में हमें उन सभी क्षेत्रों में जिनमें भारत के पास केन्द्रीय क्षमता है, उन्हें पूर्ण उपयोग के लिए विकसित करने की आवश्यकता है। 1991 में प्रारम्भ हुए वैश्वीकरण का सर्वाधिक लाभ विकसित राष्ट्रों को हुआ। यद्यपि चीन, भारत और ब्राजील देशों की अर्थव्यवस्था पर वैश्वीकरण का काफी सकारात्मक प्रभाव पड़ा। अर्द्धविकसित व अविकसित देशों में तुलनात्मक दृष्टि से कम आर्थिक सुधार हुए है। भारत जैसे देशों में उच्च व मध्यम वर्ग के लोगों की आय में वृद्धि हुई है। सेवा, क्षेत्र, दूरसंचार सूचना प्रौद्योगिकी, वित्त मनोरंजन, पर्यटन सेवाओं में लगे लोगों को कृषि व विनिर्माण की तुलना में अधिक लाभ हुआ है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- अन्तर्राष्ट्रीय एकीकरण, विश्व व्यापार का खुलना, उन्नत संचार साधनों का विकास, बाजार का अन्तर्राष्ट्रीयकरण, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के महत्त्व में वृद्धि, जनसंख्या का देशान्तर वैश्वीकरण का प्रक्रियागत हिस्सा है।
- प्रौद्योगिकी का प्रसार वैश्वीकरण का मुख्य कारण है।
- वैश्वीकरण के प्रमुख प्रभाव – राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक।
- वैश्वीकरण की उपलब्धियाँ –
  - विकासशील देशों के लोगों की जीवन प्रत्याशा का दोगुना होना व शिशुमृत्यु दर का घटना।
  - वयस्क मताधिकार का व्यापक विस्तार।
  - लोगों के भोजन में पौष्टिकता को बढ़ाना।
  - बालश्रम का घटना।
  - प्रति व्यक्ति को विद्युत, कार, रेडियो, टेलीविजन, टेलीफोन, मोबाईल फोन आदि सुविधाएँ उपलब्ध करवाना।
  - स्वच्छ जल उपलब्ध कराना।
  - प्रत्येक सेवा क्षेत्र के अभूतपूर्व सुधार।
  - जीवन को अधिक खुशहाल बनाना।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. वैश्वीकरण के सम्बन्ध में कौनसा कथन सत्य नहीं है–
(अ) यह बाजारोन्मुखी अवधारणा है।
(ब) इसकी शुरुआत 1960 में हुई है।
(स) वैश्वीकरण और पूँजीवाद एक–दूसरे पर निर्भर है।
(द) यह एक बहुआयामी परिघटना है। ( )

2. वैश्वीकरण के प्रभाव के बारे में कौन–सा कथन सही है –
(अ) विभिन्न देशों और समाजों पर इसका नकारात्मक प्रभाव पड़ा है।
(ब) वैश्वीकरण का सभी देशों पर समान प्रभाव रहा है।
(स) वैश्वीकरण का प्रभाव राजनीतिक दायरे तक सीमित है।
(द) वैश्वीकरण से अनिवार्यतया सांस्कृतिक समरूपता आती है। ( )

3. वैश्वीकरण के कारणों के बारे में कौनसा कथन सही है –
(अ) इसका एकमात्र कारण आर्थिक धरातल पर पारस्परिक निर्भरता है।
(ब) इसमें सिर्फ वस्तुओं की आवाजाही होती है।
(स) इसका कारण एक विशेष समुदाय है।
(द) वैश्वीकरण का जन्म संयुक्त राज्य अमेरीका में हुआ। ( )

4. वैश्वीकरण के बारे में कौनसा कथन सही है –
(अ) वैश्वीकरण का सम्बन्ध सिर्फ वस्तुओं की आवाजाही से है।
(ब) वैश्वीकरण में मूल्यों का संघर्ष नहीं होता है।
(स) वैश्वीकरण के अंग के रूप में सेवाओं का महत्त्व गौंण है।
(द) वैश्वीकरण का सम्बन्ध विश्वव्यापी पारस्परिक जुड़ाव से है । ( )

5. वैश्वीकरण के बारे में कौनसा कथन असत्य है –
(अ) वैश्वीकरण के पक्षधरों का तर्क है कि इससे आर्थिक विकास और समृद्धि बढ़ती है।
(ब) वैश्वीकरण के समर्थक मानते हैं कि इससे सांस्कृतिक समरूपता आयेगी।
(स) वैश्वीकरण के आलोचकों का तर्क है कि इससे सांस्कृतिक समरूपता आयेगी।
(द) वैश्वीकरण के आलोचकों का तर्क है कि इससे आर्थिक असमानता और ज्यादा बढेगी। ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. वैश्वीकरण का क्या अर्थ है ?
2. भारत और वैश्वीकरण से क्या तात्पर्य है ?
3. निजीकरण से क्या तात्पर्य है ?
4. वैश्वीकरण के क्या–क्या लाभ है?
5. भारत में आर्थिक सुधार कब और क्यों प्रारम्भ हुआ ?
6. वैश्वीकरण के राजनीतिक पक्ष का राज्य पर क्या प्रभाव पड़ा है?
7. वैश्वीकरण का सर्वाधिक प्रभाव किन देशों पर पड़ा ?
8. वैश्वीकरण के आर्थिक पक्ष के बारे में बताइये ?

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

9. वैश्वीकरण के राजनीतिक पक्ष का राज्य पर क्या प्रभाव पड़ा ?
10. वैश्वीकरण का जीवन प्रत्याशा पर क्या प्रभाव पड़ा ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. वैश्वीकरण के सांस्कृतिक पक्ष से आप क्या समझते हैं ?
2. वैश्वीकरण के प्रमुख प्रभाव क्या रहे हैं ?
3. वैश्वीकरण के सकारात्मक प्रभाव बताइए ?
4. भारत में वैश्वीकरण क्यों अपनाया गया ? कोई चार कारण बताइए।
5. वैश्वीकरण के विराध के मुख्य आधार क्या है ? समझाइये।
6. वैश्वीकरण ने राष्ट्रीय सम्प्रभुता को किस प्रकार प्रभावित किया है, बताइये।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. वैश्वीकरण क्या है ? इसके राजनीतिक व आर्थिक प्रभावों की समीक्षा कीजिए
2. भारत व वैश्वीकरण पर निबन्ध लिखिए।

बहुचयनात्मक प्रश्नों की उत्तरमाला

1. ब   2. द   3. अ   4. द   5. स

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

4. नवसामाजिक आन्दोलन (New Social Movements)

सामाजिक आन्दोलन वस्तुतः एक ऐसा लचीला शब्द है जिसका सम्बन्ध समाज के उन समस्त सामाजिक हितों, समूहों और प्रयासों से है जो सामान्यतः प्रतिनिधियात्मक लोकतंत्र में प्रतिनिधित्व से वंचित रह जाते हैं। यह एक सामूहिक सामाजिक क्रिया है, जिसका उद्देश्य वंचित समूहों के हितों से रक्षा करना और उनका संवर्द्धन करना है। सामाजिक आन्दोलन लोकतांत्रिक प्रक्रिया का गैर परम्परागत परन्तु सक्रिय सहभागी है जो राज्य के कल्याणकारी प्रयासों का पूरक है। सामाजिक आन्दोलनों के पूर्व सामाजिक समूहों और वर्गों के हितों को परम्परावादी संस्थाओं के माध्यम से ही नागरिक वर्ग प्राप्त करने की कोशिश करता रहा है।

4.1 सामाजिक आन्दोलनों का श्रेणी विभाजन (Classification of Social Movements)

1. क्रांतिकारी
2. सुधारवादी
3. उपचारवादी
4. वैकल्पिक

क्रांतिकारी (Revolutionary) – क्रांतिकारी सामजिक आन्दोलन प्रचलित सामाजिक संस्थानों और व्यवस्थाओं में आमूल परिवर्तन के पक्षधर होते हैं। जैसे– नक्सलवादी आन्दोलन, वामपंथी आन्दोलन।

सुधारवादी (Reformative) – सुधारवादी आन्दोलन, प्रचलित असमानताओं, सामाजिक समस्याओं के धीरे–धीरे सुधार के हिमायती होते हैं। इसके लिए सामान्यतः सांविधानिक संसदीय परम्पराओं का सहारा लिया जाता है। अधिकांश गैर सरकारी संगठन इसी श्रेणी में आते हैं।

उपचारवादी (Corrective) – उपचारवादी आन्दोलन किसी एक व्यक्ति विशेष या समस्या पर केन्द्रित होते हैं और उस विशेष समस्या से मुक्ति दिलाने के प्रयासरत होते हैं।

वैकल्पिक आन्दोलन (Alternative Movements) – वैकल्पिक आन्दोलन, सम्पूर्ण सामाजिक, सांस्कृतिक व्यवस्था में बदलाव लाकर एक अलग विकल्प स्थापित करने की बात करते हैं। इसमें सामाजिक मूल्यों में बदलाव भी शामिल होता है जैसे नारीवादी आन्दोलन।

इस प्रकार सामाजिक आन्दोलन एक नयी व्यवस्था अथवा पुराने व्यवस्था में परिवर्तन के लिए सचेतन सामूहिक और संगठित मानव प्रयास है। इसके माध्यम से सामाजिक व्यवस्था में जड़ता समयानुकूल मानवीय और अन्य वांछित परिवर्तन के लक्ष्य आधारित सामूहिक प्रयास किए जाते हैं। उन सभी आन्दोलनों का उद्देश्य एक न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था की स्थापना होता है, जो वामपंथी गोलबंदी पर आधारित होता है। प्रसिद्ध समाज विज्ञानी अभय कुमार दूबे के अनुसार इससे पहले वामपंथी राजनीतिक कार्रवाई का मतलब वर्ग–आधारित गतिविधि माना जाता था, लेकिन जब पश्चिम में रेडिकल नारीवाद, पर्यावरण संरक्षण, अफ्रो–अमेरिकी समूह के नागरिक अधिकार, आणविक निरस्त्रीकरण आदि मुद्दों पर आंदोलन संगठित हुए तो इनकी वर्ग केन्द्रिकता को चुनौती दी गई। तदनुसार नव सामाजिक आंदोलन विचारधारात्मक, विविधता पर आधारित, मुद्दा केन्द्रित आंदोलन होते है, जो दलगत राजनीति से अपनी तटस्थता को रेखांकित करते है। नवीन सामाजिक आन्दोलनों में प्रमुख रूप से निम्नलिखित समूहों की चर्चा आवश्यक है –

1. **कृषक अधिकार आन्दोलन (Peasants, Movements)**– अन्ध औद्योगिकरण 1991 के बाद प्रारम्भ हुए पूँजीवादी और वैश्वीकरण के पश्चात् भारतीय कृषकों, विशेष रूप से लघु कृषकों के हितों की रक्षा के लिए आन्दोलन होते रहे है। इनका उद्देश्य मुख्य रूप से वैश्वीकरण और निजीकरण के दौर में मुक्त बाजार व्यवस्था में भारतीय हितों की रक्षा करना है।
2. **श्रमिक आन्दोलन (Labour Movements)** – परम्परावादी श्रमिक आन्दोलन जो मुख्यतः वामपंथी समूहों तक केन्द्रित था, ने मुख्यतः औद्योगिक प्रतिष्ठानों और सरकारों से स्वयं को सामूहिक सौदेबाजी तक सीमित कर लिया था। इनके विपरीत उदारीकरण, वैश्वीकरण के इस नवीन युग में सेवा क्षेत्र और औद्योगिक क्षेत्र के श्रमिकों के हितों को सुरक्षित करने के लिए कई श्रमिक समूह सक्रिय हो गए है जैसे छततीगढ़ मुक्ति मोर्चा।
3. **महिला सशक्तिकरण आन्दोलन (Women Empowerment Movements)** – भारत में महिला आंदोलन का विकास उपनिवेशवाद–विरोधी राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान हुआ। महिला–कल्याण तथा महिला–विकास के चरणों के बाद 80 के दशक में महिला–सशक्तिकरण का दौर नव सामाजिक आंदोलन की देन है। तदनुसार यह मांग की गई कि सहभागिता, प्रतिनिधित्व एवं निर्णय प्रक्रिया में प्रभावशाली भूमिका के माध्यम से महिलाओं को सामाजिक व्यवस्था में अपनी समुचित प्रस्थिति अर्जित करनी है। रूढ़िवादी पितृसत्ता को चुनौती देते हुए महिला–आदोलनों ने परिवार से लेकर अर्थ व्यवस्था और राज्य के जेंडर–संवेदीकरण का अभियान चलाया है।
4. **विकास के दुष्परिणामों के विरुद्ध आन्दोलन (Movements Against Devlopmental Hazards)** – यद्यपि विकास एक अनिवार्य और सतत् चलने वाली प्रक्रिया है परन्तु इसके कुछ दुष्परिणाम भी सामने आए

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

है। नदियों पर बाँधों के कारण विस्थापन, नदी जल विवाद, सड़क एवं अन्य परियोजनाओं से विस्थापन, पर्यावरण क्षरण इत्यादि। इस क्षेत्र के नव सामाजिक आंदोलनों ने विकास की पर्यावरणीय आशंकाओं पर भी ध्यान केन्द्रित किया है। इसी संदर्भ में 'अनंत विकास' की धारणा को चुनौती देकर 'संपोषणीय विकास' के लिए गोलबंदी की गई।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- सामाजिक आंदोलनों की चार श्रेणियाँ है – परिवर्तकारी, सुधारवादी, उपचारवादी, वैकल्पिक
- भारत में सक्रिय कुछ सामाजिक आंदोलन– कृषक आंदोलन, श्रमिक आन्दोलन, महिला सशक्तिकरण आन्दोलन, विकास के दुष्परिणामों के विरुद्ध आन्दोलन।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. भारत में सुधारवादी आन्दोलन का एक उदाहरण है–
   (अ) नक्सली आन्दोलन
   (ब) बेटी बचाओं आन्दोलन
   (स) बोड़ो आन्दोलन
   (द) कावेरी जल विवाद ( )
2. इनमें से कौन कृषक अधिकार आन्दोलन से सम्बन्धित नहीं है –
   (अ) भारतीय किसान संघ
   (ब) भारतीय किसान यूनियन
   (स) शेतकारी संगठन
   (द) प्रजामण्डल आन्दोलन ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. किसी एक श्रमिक संघ का नाम बताइए ?
2. नर्मदा बचाओ आन्दोलन का सम्बन्ध किससे है ?
3. शेतकरी संगठन किस राज्य में सक्रिय है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. सुधारवादी आन्दोलनों की कोई दो विशेषताएँ बताइए?
2. किन्हीं दो नारीवादी आन्दोलनों की जानकारी एकत्रित कीजिए।
3. विकास परियोजनाओं के विरुद्ध उठ खड़े हुए किन्हीं दो आन्दोलनों के नाम बताइए।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारत में नव सामाजिक आन्दोलनों की प्रवृत्ति व प्रकारों पर विश्लेषणात्मक लेख लिखिए।
2. सामाजिक आंदोलन तथा नव सामाजिक आंदोलन के मध्य अंतर को स्पष्ट करें।

बहुचयनात्मक प्रश्नों के उत्तर

1. ब 2. द

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

5. सामाजिक और आर्थिक न्याय एवं महिला आरक्षण
(Social, Economic Justice & Women Reservation)

भारतीय संविधान के भाग – 4 के अन्तर्गत सामाजिक, आर्थिक न्याय की स्थापना के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण व्यवस्था की गई है। एक अवधारणा के रूप में सामाजिक न्याय की बुनियाद सभी मनुष्यों को समान मानने के आग्रह पर आधारित है। किसी भी व्यक्ति मे सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक पूर्वाग्रहों के आधार पर भेदभाव नहीं हो, वहीं सामाजिक न्याय है। सामाजिक न्याय की अवधारणा का उद्भव सामाजिक मानदण्डों, आदेशों, कानूनों और नैतिकता के विकास की प्रक्रिया का परिणाम है। इस अवधारणा ने सामाजिक समानता के सिद्धान्तों के अनुसार नियमों और कानूनों को लागू करने का समर्थन किया। सामाजिक न्याय शब्द के प्रथम भाग सामाजिक से तात्पर्य है – समाज में रहने वाले सभी लोग और दूसरे भाग न्याय से अभिप्रायः है स्वतंत्रता, समानता और अधिकारों की व्यवस्था व वितरण से है। सामाजिक न्याय वह प्रत्यय है जो समाज में रहने वाले सभी लोगों की स्वतंत्रता, समानता और उनके अधिकारों की रक्षा करता है। दूसरे शब्दों में समाज के सभी सदस्यों की क्षमताओं के समुचित विकास की अवस्था को सामाजिक न्याय कहा जा सकता है। सामाजिक न्याय की परम्परागत अवधारणा व आधुनिक अवधारणा में काफी अन्तर है।

5.1 सामाजिक न्याय का अर्थ (Meaning of Social Justice) –

सामाजिक न्याय से तात्पर्य है समाज के सभी सदस्यों के मध्य बिना किसी भेदभाव के समता, एकता और मानव अधिकारों की स्थापना करना तथा व्यक्ति की प्रतिष्ठा व गरिमा को विशेष महत्त्व प्रदान करता है। यह मानव अधिकार और समानता की अवधारणाओं पर आधारित संकल्पना है जिसका उद्देश्य समतामूलक समाज की स्थापना करना है। भारतीय समाज का रूढ़िवादी सामाजिक दृष्टिकोण भेदभाव पूर्ण था। जातीयता व साम्प्रदायिकता भारत में सामाजिक न्याय की स्थापना में सबसे बड़ी बाधाएँ रही है। सामाजिक न्याय के अभाव के कारण ही भारत की एकता और अखण्डता अक्षुण्ण न रह सकी और उसे लम्बे समय तक गुलाम रहना पड़ा। भारतीय सामाजिक व्यवस्था जो कि जाति आधारित है, सामाजिक न्याय व समतावादी राज्य की स्थापना में बड़ी रुकावट थी। भारतीय समाज में सदियों से सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष जारी रहा। कई ऐसे समाज सुधारक हुए जिन्होंने सामाजिक न्याय की स्थापना पर बल दिया। महात्मा बुद्ध, महावीर स्वामी, कबीर, लोक देवता बाबा रामदेव से लेकर महात्मा गाँधी तक हजारों समाज सुधारक हुए जिन्होंने भारतीय समाज के भेदभाव व ऊँचनीच पर आधारित सामाजिक ढाँचे को सुधारने की भरसक चेष्टा की। जिन राज्यों में सामाजिक न्याय का अभाव रहता है वहाँ युद्ध क्रान्ति, बगावत व विद्रोह की अधिक आशंका रहती है। सभी श्रेष्ठ शासकों ने अपनी नीतियों में सामाजिक न्याय को मान्यता प्रदान की है। जिन राज्यों और प्रशासकों ने सामाजिक न्याय के सिद्धान्त के विरुद्ध कार्य किया उनकी सत्ता हमेशा अस्थिर और डाँवाडोल रही है।

हमारा भारतीय समाज पहले वर्ण व्यवस्था पर आधारित था कालान्तर में धीरे–धीरे प्रदूषित होकर वर्ण व्यवस्था, जाति व्यवस्था में परिवर्तित हो गई। जातिव्यवस्था में रूढ़िवादियां आने से असमानता, अलगाववाद, क्षेत्रवाद, सामाजिक ऊँचनीच की भावना उत्पन्न हुई जिसका लाभ विदेशियों के द्वारा उठाया गया। '' फूट डालो और राज करो '' की नीति अपनाकर पहले विदेशी आक्रांताओं और तत्पश्चात अंग्रेजों ने लम्बी अवधि तक भारत को पराधीन करने में सफलता प्राप्त की। लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति आन्दोलन में सभी भारतीयों ने सामाजिक भेदभावों को भूलाकर एकता, अखण्डता और भाईचारे की भावना को अपनाकर अन्ततः 15 अगस्त 1947 को भारत को स्वतंत्र करवाने में कामयाबी अर्जित की।

5.2 भारतीय संविधान और सामाजिक न्याय (Social Justice & Indian Constitution)–

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् संविधान निर्माताओं के लिए ' सामाजिक न्याय ' की स्थापना हेतु संविधान के उचित व्यवस्था करना उनकी महत्त्वपूर्ण प्राथमिकताओं में से एक थी। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद और डॉ. भीमराव अम्बेडकर भविष्य के भारतीय लोककल्याणकारी प्रजातंत्र की स्थापना के लिए सामाजिक न्याय की स्थापना को सबसे महत्त्वपूर्ण मानते हैं। भारतीय संविधान की प्रस्तावना में सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक न्याय का उल्लेख अपने आप में सामाजिक न्याय के लक्ष्य को प्राप्त करने का महत्त्वपूर्ण दर्शन है। हमारा संविधान मात्र उदारवादी ही नहीं है बल्कि यह सामाजिक न्याय से जुड़ा है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए संविधान में अनेक प्रावधान किए गए है। समानता के अधिकार को मौलिक अधिकारों में शामिल किया गया। संविधान निर्माताओं का यह मानना था कि मात्र समानता के अधिकार से सदियों से अत्याचार सह रहे वर्गों की स्थिति में सुधार लाना सम्भव नहीं है। इसलिए उनकी स्थिति सुधारने व उनके हितों की रक्षा हेतु अनुसूचित जाति व जनजाति को सरकारी नौकरियों में तथा विधायिका में आरक्षण भी प्रदान किया गया है। संविधान में यह भलीभाँति समझ लिया गया है कि सच्चे लोकतंत्र के लिए समानता की ही आवश्यकता

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

नहीं है, बल्कि न्याय की भी आवश्यकता है क्योंकि न्याय के बिना समानता और स्वतंत्रता के आदर्श बिल्कुल निस्सार हो जाते हैं। संविधान के भाग चार के अन्तर्गत अनुच्छेद 38 में न्याय के इस आदर्श का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है। इस अनुच्छेद के अनुसार '' राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था की जिसमें सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को अनुप्रमाणित करे, भरसक कार्यसाधन के रूप में स्थापना और संरक्षण करके लोककल्याण की उन्नति का प्रयास करेगा। '' इस अनुच्छेद के अनुसार भारतीय संविधान में न्याय के आदर्श को लोककल्याण के आदर्श से भिन्न माना गया है।

5.3 सामाजिक न्याय की प्रकृति

(Nature of Social Justice)–

सामाजिक न्याय का अभिप्रायः यह है कि एक नागरिक दूसरे नागरिक के मध्य सामाजिक स्थिति के आधार पर किसी प्रकार का भेद न माना जाए और प्रत्येक व्यक्ति को विकास के पूर्ण अवसर सुलभ हो। सामाजिक न्याय की धारणा में एक निष्कर्ष यह निहित है कि व्यक्ति का किसी भी रूप में शोषण न हो और उसके व्यक्तित्व को एक पवित्र सामाजिक विभूति माना जाए, किसी लक्ष्य की सिद्धि के लिए साधन–मात्र नहीं। सामाजिक न्याय की व्यवस्था में सुचारु और सुसंस्कृत जीवन के लिए आवश्यक परिस्थितियों का भाव निहित है और इस संदर्भ में समाज की राजनीतिक सत्ता से अपेक्षा की जाती है कि वह अपने विधायी तथा कार्यकारी कार्यक्रमों द्वारा समतामूलक समाज की स्थापना का प्रयत्न करें।

सामाजिक न्याय का अर्थ है– जाति, वर्ण, लिंग, नस्ल, जन्मस्थान आदि के आधार पर व्यक्ति और व्यक्ति के बीच भेदभाव ना हो। चूंकि समाज में ऐतिहासिक विकास क्रम में अनेक कारणों से उपर्युक्त आधारों पर व्यक्ति और व्यक्ति के बीच भेद पनपने लगता है, इससे समाज में असमानता और अन्याय की स्थिति पैदा होती है। ऐसे में सामाजिक असमानता एक यथार्थ बनकर उपस्थित होती है। अतः सामाजिक न्याय की प्रस्थापना के लिए राज्य को 'भेदमूलक न्याय' को अपनाना पड़ता है, जिसके अनुसार न्याय की मांग है– समानों के साथ समान बरताव तथा असमानों के साथ असमान बरताव। राज्य समाज में ऐतिहासिक विकास क्रम में पीछे रह गए समुदायों की पहचान कर, उन्हें संरक्षण प्रदान करता है। इस प्रकार सामाजिक न्याय के लिए 'संरक्षणात्मक विभेदन' आवश्यक है। भारत का संविधान इसी की व्यवस्था करता है।

संविधान के भाग– 3 (मौलिक अधिकार) और भाग – 4 (राज्य के नीति निर्देशक तत्व) में सामाजिक न्याय को प्राप्त करने के विविध उपायों की व्याख्या की गई है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 में भारत के सभी नागरिकों को विधि के समक्ष समता और अधिनियमों के अन्तर्गत समान सुरक्षा प्रदान की गई है और अनुच्छेद 15 में धर्म, मूलवंश (नस्ल) जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर किसी भी प्रकार के भेदभाव व विभेद का निषेध किया गया है। अनुच्छेद 16 के अन्तर्गत राज्याधीन पदों पर नियुक्ति के सम्बन्ध में सभी नागरिकों को अवसर की समानता प्राप्त है। अनुच्छेद 17 के द्वारा अस्पृश्यता का कानूनी तौर पर अन्त कर दिया गया है। अनुच्छेद 23 (1) के अन्तर्गत मानव के पण्य और बलात् श्रम अथवा बेगार पर रोक लगा दी गई है। अनुच्छेद 24 कारखानों आदि में बच्चों से काम कराने (बालश्रम) पर रोक लगाता है। अनुच्छेद 29 और 30 शिक्षा और संस्कृति सम्बन्धी अधिकार भी सामाजिक न्याय के सोपान है। संविधान ने नागरिकों का कुछ अवस्थाओं में काम, शिक्षा और लोक सहायता पाने का अधिकार स्वीकार किया है। अनुच्छेद 41 व अनुच्छेद 42 में संविधान ने राज्यों को यह उत्तरदायित्व सौंपा है कि वह काम की यथोचित और मानवोचित दशाओं को सुनिश्चित करने के लिए तथा प्रसूति सहायता के लिए उपबन्ध करेगा।

अनुच्छेद 43 (श्रमिकों के लिए निर्वाह, मजदूरी का प्रबन्ध) अनुच्छेद 44 (नागरिकों के लिए समान व्यवहार–संहिता) अनुच्छेद 45 (अनुसूचित जातियों, जनजातियों तथा अन्य दुर्बल वर्गों के लिए शिक्षा और अर्थ सम्बन्धी हितो की उन्नति) और अनुच्छेद 47 के तहत (आहार पुष्टि–तल और जीवन स्तर को ऊँचा करने तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य के सुधार करने का राज्य का कर्तव्य) भारत में सामाजिक न्याय की स्थापना में सहायक सिद्ध होंगे, ऐसी संविधान निर्माताओं को आशा थी। संविधान (86वां संशोधन) अधिनियम, 2002 द्वारा भारत के संविधान में अंतः स्थापित अनुच्छेद 21क सामाजिक न्याय को स्थापित करने की दिशा में एक और महत्त्वपूर्ण कदम है। इस अनुच्छेद के अन्तर्गत राज्य कानून द्वारा निर्धारित करेगा कि 6 से 14 वर्ष के आयु समूह के सभी बच्चे मौलिक अधिकार के रूप निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्राप्त करेंगे। यह अनुच्छेद 4 अगस्त 2009 को संसद द्वारा अधिनियमित हुआ एवं 1 अप्रैल 2010 को लागू हुआ।

सामाजिक न्याय के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है कि सहृदयता से वंचित वर्ग का सामाजिक उत्थान हो। वास्तव में तभी भेदभाव से परे सामाजिक न्याय के सिद्धान्त का सुफल प्राप्त हो सकेगा। सामाजिक ध्रुवीकरण, जातिवाद व वोट बैंक की राजनीति सामाजिक न्याय के मौलिक सिद्धान्तों के पूर्णतया विपरीत है। सामाजिक रूप से पिछड़े वर्ग को केवल आरक्षण भर देने से सामाजिक न्याय की स्थापना नहीं हो जाती। इस वर्ग के मानसिक एवं शैक्षणिक विकास के सतत् व सार्थक प्रयास ही उन्हें संकीर्ण सामाजिक क्रियाकलापों से मुक्त रख सकेंगे। अतएव सामाजिक न्याय के लिए वंचित वर्ग का सामाजिक उत्थान व मानसिक विकास आवश्यक है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

आर्थिक न्याय
(Economic Justice)

किसी भी समाज में पूर्ण रूप से आर्थिक न्याय व आर्थिक समानता की स्थापना करना सम्भव नहीं है। आर्थिक न्याय का अर्थ आर्थिक असमानता को समाप्त करना नहीं, बल्कि कम करना है। आर्थिक न्याय का मूल लक्ष्य आर्थिक असमानता को कम करना है। समाज में व्यक्ति–व्यक्ति की आय व सम्पति में इतनी विषमता नहीं होनी चाहिए कि जिससे सामाजिक विषमता उत्पन्न हो जाये। ऐतिहासिक रूप से सामाजिक, अन्याय व आर्थिक अन्याय के तत्व हर युग व हर क्षेत्र में विद्यमान रहे है। मार्क्सवादी राजनीतिक चिंतक ने तो इतिहास की व्याख्या ही आर्थिक भौतिकवाद के सिद्धान्त के आधार पर करते हुए लिख है कि हर युग में आर्थिक स्थिति के कारण समाज में दो वर्ग पाये जाते हैं। जिनमें से एक अमीरों का प्रतिनिधित्व करता है वहीं दूसरा गरीबों व शोषितों का। उसने यह भी कहा है कि अमीर आम तौर पर गरीबों का शोषण करते हैं। इस रूप में समाज में दो वर्ग शोषक व शोषित होने के कारण बिना एक वर्ग की समाप्ति के समाज में आर्थिक न्याय की स्थापना ही नहीं की जा सकती। विश्व के अन्य देशों की भाँति भारत में भी लोगों की आर्थिक स्थिति एक जैसी नहीं है और इसीलिए आर्थिक न्याय की स्थापना भारतीय शासन का महत्त्वपूर्ण लक्ष्य है। भारत के विभिन्न राज्यों में बढ़ती हुई आर्थिक विषमता के कारण ही नक्सलवाद, भ्रष्टाचार, राजनीति के अपराधीकरण, तस्करी व आतंकवाद जैसी दुप्रवृत्तियाँ विकसित हुई है, जो भारत की एकता और अखण्डता के लिए बहुत बड़ी चुनौती है। सामाजिक व राजनीतिक न्याय के लिए आर्थिक न्याय अनिवार्य शर्त है।

5.5 आर्थिक न्याय का अर्थ
(Meaning of Economic Justice) –

आर्थिक न्याय से तात्पर्य यह है धन व सम्पति के आधार पर व्यक्ति–व्यक्ति के मध्य विभेद की दीवार खड़ी नहीं होनी चाहिए। साधारण शब्दों में आर्थिक न्याय का अर्थ है आर्थिक क्षेत्र में न्याय। मानव समाज में धन और सम्पति का सदैव महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। धन व सम्पति समाज में उच्च दर्जा पाने व शक्ति प्राप्त करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। प्रत्येक व्यक्ति धन और सम्पति को बढ़ाने की चेष्टा करता हैं। यदि किसी राज्य या समाज में आर्थिक शक्ति व स्त्रोतों का (धन–सम्पदा) का न्यायपूर्ण वितरण नहीं होता है तो उसे आर्थिक अन्याय या आर्थिक असमानता की संज्ञा दी जाती है। प्रत्येक समाज व राज्य में आर्थिक संसाधनों व धन सम्पदा का न्यायपूर्ण वितरण ही आर्थिक न्याय है जिससे समाज का प्रत्येक व्यक्ति गरिमामय जीवन जी सके। दूसरे शब्दों में आर्थिक न्याय से अभिप्रायः है कि समाज में सभी व्यक्तियों की न्यूनतम आवश्यकताएँ पूरी होना। कोई इतना गरीब या आर्थिक रूप से दुर्बल न हो जाए कि वह अपना अस्तित्व व गरिमा ही खो दें।

पं. नेहरू के शब्दों में " भूख से मर रहे व्यक्ति के लिए लोकतंत्र का कोई अर्थ एवं महत्त्व नहीं है। "

डॉ. राधाकृष्णन ने भी कहा है कि जो लोग गरीबी की ठोकरें खाकर इधर–उधर भटक रहे हैं, जिन्हें कोई मजदूरी नहीं मिलती और जो भूख से मर रहे है, वे संविधान या उसकी विधि पर गर्व नहीं कर सकते।

अमेरीकी राष्ट्रपति फ्रैकलिन डी. रुजवेल्ट भी कहा है कि " आर्थिक सुरक्षा एवं आर्थिक स्वतंत्रता के बिना कोई भी व्यक्ति सच्ची स्वतंत्रता प्राप्त नहीं कर सकता। "

5.6 भारतीय संविधान और आर्थिक न्याय (Economic Justice & Indian Constitution)–

भारत में आर्थिक न्याय की संकल्पना को व्यवहार रूप में सफल बनाने के लिए संविधान में कई प्रावधान किए गए है। अनुच्छेद 16 के अनुसार राज्य द्वारा प्रदान की जाने वाली नौकरियों के सम्बन्ध मं समाज के सभी व्यक्तियों को समान अवसर उपलब्ध करवाये जाएँगे। संविधान के अनुच्छेद 19 (1) (छ) में प्रावधान है कि सभी नागरिकों को कोई भी वृत्ति, व्यापार या आजीविका प्राप्त करने का अधिकार होगा। राज्य के नीति निर्देशक तत्वों के अन्तर्गत भी आर्थिक न्याय के लिए पर्याप्त प्रावधान हैं। अनुच्छेद 39 सबसे उल्लेखनीय उपलब्ध है जिसमें निर्धारित किया गया है कि –

" राज्य अपनी नीति का विशेषतया ऐसा संचालन करेगा कि निश्चय ही –

1. समान रूप से महिला व पुरुष सभी नागरिकों को जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त हो।
2. समुदाय की भौतिक सम्पति का स्वामित्व और नियंत्रण इस प्रकार बंटा हो कि जिससे सामूहिक हित का सर्वोत्तम रूप से साधन हो।
3. आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार संचालित हो कि धन और उत्पादन–साधनों व संसाधनों का केन्द्रीकरण न हो।
4. पुरुष और महिलाओं दोनों का समान कार्य के लिए समान वेतन मिलता हो।
5. श्रमिक पुरुष और महिलाओं के स्वास्थ्य और शक्ति तथा बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरूपयोग न हो और आर्थिक आवश्यकता से विवश होकर नागरिकों को ऐसे रोजगार में जाने के लिए विवश न होना पड़े जो उनकी आयु तथा शक्ति के अनुकूल न हो।

भारत की विविध पंचवर्षीय योजनाएँ आर्थिक न्याय की स्थापना की प्रबल चेष्टाएँ रही है। समाजवादी ढंग का समाज लोककल्याणकारी राज्य और मिश्रित अर्थव्यवस्था जैसे शब्दों से व्यक्त होता है कि भारतीय राज्य आर्थिक क्षेत्र में ऐसी नीतियों को अनुसरण करेगा जो आर्थिक न्याय की स्थापना में सार्थक हो। राष्ट्रीय लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए मध्य मार्ग को अपनाने से ही आर्थिक विषमता को कम किया जा सकता है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

भारत के संविधान के भाग–4 में वर्णित अन्य अनुच्छेदों (अनुच्छेद 36 से 51 तक) का उद्देश्य भी न्याय से अनुप्रमाणित एक नई सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था सुनिश्चित करना है। अनुच्छेद 39 समान न्याय और निःशुल्क विधिक सहायता की प्रावधान करते हैं ताकि जो गरीब है या किसी कारण से मुकदमे के दौरान अपना पक्ष न्यायालय में नहीं रख सकते उनके लिए सरकार का कर्तव्य है कि उन्हें सरकारी खर्च पर वकील उपलब्ध कराए। अनुच्छेद 39 (क) तथा 39 (ख) के प्रावधान भी उल्लेखनीय रूप से आर्थिक न्याय से सम्बद्ध है। वे दोनों अनुच्छेद इस रूप में भी महत्त्वपूर्ण है कि इनकी प्राप्ति के लिए मौलिक अधिकारों में भी कटौती की जा सकती है। आर्थिक न्याय की स्थापना के उद्देश्य से ही भारत में जमीदारी प्रथा व देशी राजाओं के प्रिविपर्स को समाप्त कर दिया गया था।

5.7 भारत में आर्थिक न्याय की स्थापना के लिए आवश्यक व्यवस्थाएँ–

स्वतंत्रता प्राप्ति से लेकर अब तक विगत 70 वर्षों में गरीब की स्थिति में सुधार अवश्य हुआ है। लेकिन भारत में गरीबी और अमीरी के मध्य अन्तर लगातार बढ़ रहा है। भ्रष्टाचार, लालफीता शाही, भ्रष्ट राजनीतिज्ञों, नौकरशाही व अपराधियों के गठजोड़ से आर्थिक विषमता की खाई निरन्तर गहरी होती जा रही है। भारत सरकार को आर्थिक विषमता को कम करने के लिए निम्नलिखित ठोस व प्रभावशाली व्यवस्थाएँ स्थापित करनी होगी –

1. आर्थिक विषमता को दूर करना।
2. असीमित सम्पति के अधिकार पर प्रतिबन्ध लगाना।
3. प्रत्येक नागरिक को रोजगार उपलब्ध करवाकर उसकी आर्थिक सुरक्षा सुनिश्चित करना।
4. धन का उचित वितरण।
5. गरीबों के कल्याण की नवीन योजनाओं का निर्माण व क्रियान्वयन करना।
6. प्रभावशाली कर प्रणाली की स्थापना व कर प्रणाली में सुधार।
7. राजनीतिक आधार पर आरक्षण न देकर आर्थिक आधार पर आरक्षण की व्यवस्था करना।

5.8 आर्थिक न्याय की वस्तुस्थिति–

भारत आज विश्व का सबसे तेज विकास दर वाला देश बन गया है। वित्तीय वर्ष 2015–16 में भारत की विकास दर 7.6 प्रतिशत थी जो कि चीन की 6.7 प्रतिशत विकास दर से भी आगे थी। विमुद्रीकीरण के कारण एक बार थोड़ी दर में गिरावट आई है लेकिन ठोस निर्णय से आगामी वर्षों में भारत 8–9 प्रतिशत विकास दर प्राप्त कर सकता है। भारत की बढ़ती विकास दर देश को गरीबी के चंगुल से निकालने में अवश्य मददगार साबित होगी। अच्छी विकास दर क बावजूद देश में आर्थिक विषमता के कारण उपजी समस्याओं को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। आर्थिक न्याय की सच्चे मायने में स्थापना तभी हो सकेगी जब आर्थिक विकास का समुचित लाभ सभी वर्गों तक समान रूप से पहुँचे। उल्लेखनीय है कि उच्च विकास दर के बावजूद अमीर और अमीर हो रहे हैं और गरीब अभी भी गरीब है। विकास का वास्तविक लाभ अभी तक केवल शहरों तक ही पहुँचा है। भारत के गाँव जहाँ लगभग 65 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है। अभी भी भीषण अभावों से जुझ रहे है। इन्टरनेट व प्रौद्योगिकी का अभी तक गाँवों में अपेक्षित स्तर तक प्रसार नहीं हुआ है जो डिजीटल डिवाइड के रूप में गाँव व शहर में भेद करने वाली परिघटना के रूप में जानी जाने लगी है। भारत में निर्माण व उत्पादन क्षेत्र लम्बे समय से पिछड़ रहे थे।

महिला आरक्षण
(Women Reservation)

परम्परागत रूप से भारतीय महिला सदियों से घरों की चार दीवारी में कैद रही है। वैश्वीकरण के इस तेज युग में जहाँ पश्चिमी व पूर्वी देशों में महिलाएँ सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक क्षेत्रों में पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम कर रही है, वहीं भारतीय महिला सामाजिक व धार्मिक कारणों से खुलकर न तो अपनी क्षमताओं का विकास कर पाई है और न ही भारतीय पुरुष प्रधान मानसिकता ने उसे उसके व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के अवसर प्रदान किए है। विगत 70 वर्षों में भारत में महिला शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति तो अवश्य हुई है, परन्तु रोजगार प्राप्त करने, उद्योगों में व्यवसाय करने व राजनीतिक क्षेत्रों में काम करने के पर्याप्त अवसर भारतीय महिलाओं को अभी तक नहीं मिल सके है। जब तक भारतीय महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक स्थिति पुरुषों के समतुल्य नहीं हो जाती तब तक न तो देश की वास्तविक तरक्की संभव है और न ही महिलाओं की प्रगति। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक हो जाता है कि उन्हें सभी क्षेत्रों में वे सभी विशेष सुविधाएँ उपलब्ध करायी जाए जिन्हे प्राप्त कर वे शक्ति और सामर्थ्य में पुरुषों के बराबर पहुँच जाए। वर्तमान में सरकारी नौकरियों में कई राज्यों में महिलाओं के लिए पद आरक्षित है। अब भारतीय सेना, वायुसेना और नौसेना भी महिलाओं को आंशिक कमीशन के द्वारा नियोजित कर रही है। अन्य सरकारी नौकरियों में भी महिलाओं का प्रतिशत निरंतर बढ़ रहा है। लेकिन पुरुषों की तुलना में सभी क्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी अत्यन्त अल्प है। वर्तमान सरकार ने केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल (CRPF) व औद्योगिक सुरक्षा बल (CISF) में महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत पद आरक्षित कर दिये हैं वहीं सीमा पर तैनात सीमा सुरक्षा बल, सशस्त्र सुरक्षा बल (SSB) और आई.टी.बी.पी. में 15 प्रतिशत पद महिलाओं के लिए सुरक्षित कर दिये गये हैं। भारतीय तटरक्षक बल में भी अधिकारी के रूप में कुछ पद महिलाओं के लिए सुरक्षित रखे

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

गये हैं।

5.9 पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं को आरक्षण (Women Reservation in Panchayati Raj Institutions)–

महिलाओं का समुचित विकास हो सके एवं वे सक्रिय रूप स्थानीय स्वशासन की गतिविधियों में भाग ले सके इस प्रयोजनार्थ भारतीय संविधान के 73वें एवं 74वें संवैधानिक संशोधन द्वारा पंचायती राज संस्थाओं में 1/3 पद सभी श्रेणीयों में महिलाओं के लिए आरक्षित कर दिए गए है। इस प्रावधान से पंचायती राज संस्थानों में महिलाओं की उल्लेखनीय रूप से भागीदारी बढ़ी है जिससे न केवल उनका सामाजिक व राजनीतिक सशक्तिकरण हुआ है अपितु उन्होंने पंचायतीराज संस्थाओं के माध्यम से विकास के कार्यों में भी सक्रिय भूमिका अदा की है। अधिकांश महिला निर्वाचित प्रतिनिधियों ने ग्रामसभा व पंचायत की गतिविधियों में सक्रिय भागीदारी की है। अब आरक्षण के फलस्वरूप भारत में पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं की भागीदारी ने 42.3 प्रतिशत के आंकड़े को पार कर दिया है।

5.10 लोकसभा व राज्यसभा एवं विधानसभा में आरक्षण की मांग –

आरक्षण की आवश्यकता – महिलाओं को आरक्षण देने का सबसे ठोस आधार यह है कि अब तक सामाजिक कारणों से महिलाएँ अपना समुचित व सर्वागीण करने में सफल नहीं हुई। इस तुच्छ पुरुष प्रधान मानसिकता से महिला के विकास के सभी मार्ग अवरुद्ध हो गए है। आरक्षण की दरकार व आवश्यकता इसलिए है कि वह समस्त सामाजिक प्रतिबन्धों व बाधाओं को दूर कर सके। राजनीति व समाज में अपना सार्थक योगदान दे सके। उनके सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक अधिकारों की सुरक्षा सुनिश्चित हो सके। लोकसभा व विधानसभाओं में आरक्षण द्वारा महिलाओं की भागीदारी बढ़ाना भारतीय लोकतंत्र के लिए एक सकारात्मक कदम है जो भारत के लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया को और सुदृढ़ करेगा।

इस सम्बन्ध में चौथे विश्व महिला सम्मेलन, बीजिंग के घोषणा पत्र का अनुच्छेद 181 का वक्तव्य उल्लेखनीय है। इस अनुच्छेद में कहा गया है कि लोकतंत्र के सुचारु क्रियान्वयन व विकास के लिए आवश्यक है कि निर्बाध निर्माण की प्रक्रिया में पुरुष और महिला दोनों की समतुल्य भागीदारी सुनिश्चित हो ताकि समाज की बनावट के संतुलन को उचित रूप में बनाए रखा जा सके। सभी क्षेत्रों में बिना महिलाओं के सशक्त भागीदारी के बिना न तो समानता के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है और न ही विश्व में शान्ति सम्भव है। सर्वागीण विकास के लिए महिलाओं की सशक्त भागीदारी अपरिहार्य है।

पन्द्रहवीं लोकसभा के पहले सत्र में 4 जून 2009 को तत्कालीन राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा पाटिल ने दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में घोषणा की कि सरकार विधानसभाओं और संसद में महिला आरक्षण विधेयक को शीघ्र पारित कराने की दिशा में सौ दिन के भीतर कदम उठायेगी। राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा पाटिल ने वास्तव में महिला आरक्षण को लेकर सरकार की मंशा सामने रखी। वर्ष 2018 के प्रारम्भ में राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (NDA) सरकार ने मंशा जाहिर की कि वर्तमान सरकार संसद और राज्य विधानसभा में 33 प्रतिशत सीटें महिलाओं के लिए सुरक्षित करना चाहती है, परन्तु इस पर सभी राजनैतिक दलों की आम सहमति आवश्यक है।

5.11 महिला आरक्षण विधेयक का संक्षिप्त इतिहास –

1. 1996 – देवगोड़ा सरकार द्वारा 81वें संवैधानिक संशोधन के रूप में महिला आरक्षण विधेयक का प्रस्तुतीकरण।
2. 1998 – अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (NDA) द्वारा 84वें संवैधानिक विधेयक के रूप में महिला आरक्षण विधेयक को पुनः प्रस्तुतीकरण।
3. 1999 – राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (NDA) द्वारा विधेयक का दोबारा प्रस्तुतीकरण।
4. 2002 – महिला आरक्षण विधेयक पर सदन में पारित नहीं हो सका।
5. 2003 – महिला आरक्षण विधेयक का फिर दो बाद प्रस्तुतीकरण
6. 2008 – संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (UPA) सरकार ने 108वें संवैधानिक संशोधन के रूप में महिला आरक्षण विधेयक को समयपार से बचाने के लिए पुनः राज्यसभा में रखा।
7. 2010 – कैबिनेट ने महिला आरक्षण विधेयक प्रस्ताव को अनुमोदित कर राज्यसभा में भेजा। जहाँ राज्यसभा द्वारा दिनांक 25 फरवरी, 2010 को इसे पारित कर दिया गया। तत्पश्चात् विधेयक को पारित होने हेतु लोकसभा में प्रेषित किया गया जहाँ अभी तक अवलम्बित है व अवधिपार हो चुका है।
8. इस बिल को पारित होने के लिए राज्यसभा व लोकसभा के अनुमोदन के साथ ही भारत के आधे राज्यों द्वारा पारित होना आवश्यक है। तभी इसे अन्तिम स्वीकृति के लिए राष्ट्रपति के पास भेजा जा सकेगा। किन्तु दुर्भाग्यवश विभिन्न राजनीतिक दलों की हठधर्मिता व इस विधेयक में वर्गीय आरक्षण की व्यवस्था की मांग आदि कारणों से इस बिल को लटका दिया गया है।
9. 2016 – नवम्बर 2016 में महिला आरक्षण की मांग संसद में पुनः उठी है। लेकिन अभी तक कोई प्रस्ताव नहीं रखा जा सका है।

महिला आरक्षण विधेयक निहित स्वार्थों के कारण 2010 में निम्न

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

सदन में पारित नहीं हो पाया परन्तु वर्तमान में इसकी मांग और अधिक प्रखर हो गई है। भारत के समग्र विकास के लिए आवश्यक है कि देश की आधी आबादी को संसद व विधानसभा में पुरुषों के बराबर भागीदारी प्राप्त हो ताकि परम्परागत रूप से पिछड़ी हुई भारतीय महिलाओं का सर्वांगीण विकास हो सके और वे देश के विकास में समग्र योगदान दे सके।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- भारतीय संविधान के भाग 4 में सामाजिक, आर्थिक न्याय की अवधारणा पर महत्त्वपूर्ण व्यवस्था दी गई है।
- परम्परागत भारतीय समाज चार वर्गों ब्राहमण, क्षत्रिय, वैश्य व शुद्र में वर्गीकृत था जिसका आगे कोई औचित्य नहीं है।
- समाज में जातिगत आधार पर कई लोगों को सामाजिक व आर्थिक असामनताओं का सामना करना पड़ता है।
- भारतीय संविधान का अनुच्छेद 16(4) सामाजिक न्याय के सुदृढ़ीकरण हेतु आरक्षण की व्यवस्था देता है।
- अवसरों की समानता, आर्थिक न्याय की स्थापना का प्रभावी कदम है।
- शासकीय नौकरियों व विधायिकाओं में समान अवसर सुनिश्चित करने के लिए महिला आरक्षण विधेयक आवश्यक है।
- निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा अधिकार अधिनियम संसद ने 4 अगस्त 2009 को पारित किया जो 1 अप्रैल 2010 में लागू हुआ।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. सामाजिक व आर्थिक न्याय के सम्बन्ध में संविधान के किस भाग में व्यवस्था की गई है ?
   (अ) भाग एक (ब) भाग दो
   (स) भाग तीन (द) भाग चार ( )
2. इनमें से कौनसा कथन सामाजिक न्याय की अवधारणा से मेल नहीं खाता है –
   (अ) यह स्वतंत्रता, समानता व न्याय पर बल देता है।
   (ब) यह मानवाधिकारों का पोषण करता है।
   (स) यह जातिगत भेदभाव को बढ़ावा देता है।
   (द) यह समता की अवधारणा पर आधारित है। ( )
3. परम्परागत रूप से शोषित व हाशिए पर स्थित लोगों के उत्थान हेतु संविधान में कौनसा विशेष प्रावधान किया गया है –
   (अ) आरक्षण की व्यवस्था (ब) सभी को आवास
   (स) पंचायती राज व्यवस्था
   (द) इनमें से कोई नहीं ( )
4. भारतीय संविधान का कौनसा अनुच्छेद अवसर की समानता प्रदान करता है –
   (अ) अनुच्छेद 15 (ब) अनुच्छेद 16
   (स) अनुच्छेद 20 (द) अनुच्छेद 32 ( )
5. निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा अधिकार कानून किस तिथि से प्रभावी हुआ –
   (अ) 26 जनवरी 1950 (ब) 4 अगस्त 2009
   (स) 1 अप्रैल 2010 (द) 15 अप्रैल 2015 ( )
6. 'भूख से मर रहे व्यक्ति के लिए लोकतंत्र को कोई महत्त्व नहीं है।' यह कथन किसका है –
   (अ) बीसांक (ब) पं. नेहरू
   (स) लोहिया (द) अर्मत्य सैन ( )
7. महिला आरक्षण से सम्बन्धित कौनसा संविधान संशोधन अधिनियम संसद में अवलम्बित है –
   (अ) 108 वां (ब) 118 वां
   (स) 43 वां (द) 74 वां ( )

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. सामाजिक न्याय के पक्षधर दो समाज सुधारकों के नाम लिखिए।
2. युद्ध या क्रान्ति का मुख्य कारण क्या है ?
3. भारतीय सामाजिक व्यवस्था के चार वर्ण कौनसे थे ?
4. आर्थिक स्थिति के आधार पर समाज में कितने वर्ग पाए जाते हैं ?नाम बताइये।
5. भारत की प्रथम महिला राष्ट्रपति कौन थी ?
6. पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं के लिए कितने प्रतिशत पद आरक्षित है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. सामाजिक न्याय का अर्थ बताइए।
2. आर्थिक न्याय की अवधारणा पर टिप्पणी कीजिए।
3. भारत में जातिगत आधार पर आरक्षण की व्यवस्था क्यों की गई ?
4. महिला आरक्षण बिल संसद में पारित नहीं होने के मुख्य कारण क्या है ?

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

निबन्धात्मक प्रश्न

1. ''सामाजिक न्याय की अवधारणा समता मूलक सामाजिक ढाँचे में ही संभव है।'' क्या आप इस कथन से सहमत है ? सम्पूर्ण अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।
2. जनकल्याणकारी राज्य के रूप में भारतीय संविधान के उन प्रावधानों की मीमांसा कीजिए जो आर्थिक न्याय की स्थापना के पक्षधर है।
3 महिला आरक्षण– दिशा व दशा पर एक लेख लिखिए।

बहुचयनात्मक प्रश्नों के उत्तर

1. द 2. स 3. अ 4. ब
5. ब 6. ब 7. अ

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

खण्ड (ब)

भारत में शासन एवं लोकतंत्र

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

इकाई–I

भारत का संविधान

1. भारत के संविधान की विशेषताएं
(Salient Features of Indian Constitution)

''मैं अनुभव करता हूँ कि भारतीय संविधान कार्य संचालन योग्य है, लचीला है तथा इसमें शान्तिकाल व युद्धकाल में देश की एकता बनाये रखने का सामर्थ्य है।''

डॉ. अम्बेडकर

किसी भी देश के संविधान व राजनीतिक व्यवस्था में उस देश की आस्थाओं, विश्वासों, आधारभूत शाश्वत मूल्यों और सिद्वांतों के समेकित दर्शन होते हैं। भारत के संविधान निर्माताओं ने हमारे देश की एतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक परिस्थितियों को ध्यान में रख कर संविधान का निर्माण किया है। उनका लक्ष्य एक लोककल्याणकारी राज्य की स्थापना करना था, इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए उन्होंने संविधान की प्रस्तावना में संविधान के आदर्शों को स्पष्ट किया है। हमारे संविधान की अपनी विशिष्टतायें हैं जो उसे विश्व के अन्य संविधानों से अलग करती हैं। यह संविधान निर्माताओं की बुद्धिमत्ता व दूरदृष्टि का प्रमाण है कि उन्होंने विश्व के महत्त्वपूर्ण संविधानों के श्रेष्ठ गुणों का संविधान में समावेश किया है, उन्होंने भारतीय परिस्थितियों की आवश्यकतानुसार उनमें वांछित परिवर्तन किये जाने का विकल्प रखा है। इसीलिए इसे जीवंत संविधान का दर्जा दिया गया है। यह हमारे देश का सर्वोच्च कानून है जो शासकीय तंत्र को सक्रिय रूप से काम करने व व्यवस्था संचालित करने हेतु दिशा निर्देशित करता है।

हमारा संविधान एक तरफ मौलिक राजनीतिक सिद्धान्तों को परिभाषित करता है वहीं दूसरी तरफ विभिन्न संरचनाओं और प्रक्रियाओं को भी स्थापित करता है। इस प्रकिया में मौलिक अधिकार, नीति निर्देशक सिद्धान्त व नागरिकों के मूल कर्त्तव्य भी शामिल हैं। यह दुनिया का ऐसा लिखित कानूनी दस्तावेज है जिसे लिखने में सर्वाधिक समय, 2 वर्ष 11 माह, 18 दिन लगे। इसे एक संविधान सभा ने तैयार किया। संविधान के मूल वैचारिक आधार की अभिव्यक्ति को अत्यन्त संक्षिप्त रूप में 'प्रस्तावना' शीर्षक में व्यक्त किया गया है जिसमें किसी भी परिस्थिति में परिवर्तन नहीं किया जा सकता है। हमारे संविधान में उन आदर्शों को सम्मिलित किया गया है जो संविधान की लोकतंत्र के प्रति प्रतिबद्धता, सभी लोगों की स्वतंत्रता समानता व न्याय को सुनिश्चित करता है। भारतीय संविधान की विशेषताएँ मूलतः इसकी प्रस्तावना में व्याख्यायित सिद्धान्तों व आदर्शों का विस्तार ही है।

1.1 भारतीय संविधान की विशेषताएँ (Salient Features of Indian Constitution) –

1. **सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न संविधान (Sovereign Constitution)** – भारत का संविधान लोकप्रिय प्रभुसत्ता पर आधारित संविधान है अर्थात यह भारतीय जनता द्वारा निर्मित है। इस संविधान द्वारा अन्तिम शक्ति भारतीय जनता को प्रदान की गई है। संविधान की प्रस्तावना में कहा गया है कि **'हम भारत के लोग इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित व आत्मार्पित करते हैं'** अर्थात भारतीय जनता ही इस की निर्माता है, जनता ने स्वयं की इच्छा से इसे अंगीकार, अधिनियमित व आत्मर्पित किया है। इसे किसी अन्य सत्ता द्वारा थोपा नहीं गया है।
2. **प्रस्तावना (Preamble)** – भारतीय संविधान के मौलिक उद्देश्यों व लक्ष्यों को संविधान की प्रस्तावना में दर्शाया गया है। डॉ. के.एम. मुन्शी ने इसे संविधान की राजनीतिक कुंडली कहा है। इसके महत्त्व को देखते हुए इसे संविधान की आत्मा भी कहा जाता है। प्रस्तावना की शुरुआत में 'हम भारत के लोग' से अभिप्राय है कि अन्तिम प्रभुसत्ता भारतीय जनता में निहित है। यह संविधान की मुख्य विशेषता है।
3. **विश्व का सबसे विशाल संविधान (Largest Constitution of the World)** – जहां अमेरिका के संविधान में 07 अनुच्छेद, कनाडा के संविधान में 147 अनुच्छेद, आस्ट्रेलिया के संविधान में 128 अनुच्छेद व दक्षिण अफ्रीका के संविधान में 153 अनुच्छेद हैं वहीं हमारा संविधान व्यापक व विस्तृत संविधान है। इसमें 395 अनुच्छेद 22 भाग व 12 अनुसूचियां, 05 परिशिष्ट है। इसमें अब तक 101 संशोधन हो चुके हैं और संशोधन की यह प्रक्रिया अनवरत जारी है। इस कारण भी इसका स्वरूप विशाल हो जाता है। हमारा संविधान संघात्मक है, इसमें संघ व राज्यों के बीच सम्बन्धों का बहुत व्यापक वर्णन किया गया है। संविधान के एक अध्याय में तो राज्य के नीति निर्देशक सिद्वांतो का ही उल्लेख है जो अधिकांश देशों के संविधान में नहीं है। संविधान की इसी विशालता को लेकर हरिविष्णु कामथ ने कहा था कि ''हमें इस बात का गर्व है कि हमारा संविधान विश्व का सबसे विशाल संविधान है।''

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

***संविधान का 101वां संशोधन वस्तु व सेवा कर (GST) से संबंधित है जिसे राष्ट्रपति जी ने सितम्बर, 2016 में हस्ताक्षरित किया है।**

4. **लिखित एवं निर्मित संविधान (Written and Created Constitution) –** भारतीय संविधान संविधान सभा द्वारा निर्मित एवं लिपिबद्ध किया गया दस्तावेज है। संविधान सभा ने इसे 2 वर्ष 11 माह 18 दिन में तैयार किया था। विस्तृत संविधान होने के बावजूद इसे देश की परिस्थितियों व आवश्यकताओं को दृष्टिगत रखते हुए उसमें संशोधन की व्यवस्था भी की गई है। अब तक इसमें 101 संशोधन हो चुके हैं।

5. **संसदीय शासन व्यवस्था (Parliamentary System of Government) –** डॉ. अम्बेडकर के अनुसार '' संसदात्मक प्रणाली में शासन के उत्तरदायित्व का मूल्यांकन एक निश्चित समय बाद तो होता ही है इसके साथ साथ दिन प्रतिदिन भी होता रहता है। इस प्रणाली में कार्यपालिका व्यवस्थापिका के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होती है। राष्ट्रपति का पद गरिमा व प्रतिष्ठा का होता है पर उसकी स्थिति सांविधानिक प्रधान की है, वास्तविक शक्तियां मंत्रिमण्डल के द्वारा प्रयोग की जाती हैं। संसद का विश्वास समाप्त होने पर मंत्रिमण्डल को त्यागपत्र देना पड़ता है। इस व्यवस्था से प्रधानमंत्री ही मंत्रिमण्डल का नेतृत्व करता है भारत में संसदीय व्यवस्था को केन्द्र के साथ राज्यों में भी अपनाया गया है जहां राज्यपाल सांविधानिक प्रमुख होता है।

6. **मौलिक अधिकार व कर्त्तव्य (Fundamental Rights & Duties) –** भारतीय संविधान में नागरिकों के मूल अधिकारों का वर्णन संविधान के भाग – 3 में अनुच्छेद 12 से 35 तक किया गया है। संविधान निर्माताओं ने 07 मौलिक अधिकार देश के नागरिकों को दिये थे 1. समता का अधिकार 2. स्वतंत्रता का अधिकार 3. शोषण के विरुद्ध अधिकार 4. धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार 5. संस्कृति व शिक्षा सम्बन्धी अधिकार 6. सांविधानिक उपचारों का अधिकार 7. सम्पति का अधिकार। भारतीय संविधान में 44वें संशोधन के बाद सम्पत्ति के अधिकार को मौलिक अधिकारों की सूची से हटा दिया गया है। अतः अब मौलिक अधिकार 06 रह गये है। इन अधिकारों का हनन होने पर नागरिक न्यायालय की शरण ले सकते हैं। 86वें संवैधानिक संशोधन (दिसम्बर 2002) जो कि जुलाई 2009 में संसद में पारित किया गया व 1 अप्रैल 2010 को लागू हुआ के द्वारा शिक्षा (प्रारम्भिक) के अधिकार को मूल अधिकार के रूप में संविधान में शामिल कर लिया गया है। अब अनुच्छेद 21 के बाद एक नया अनुच्छेद 21क जोड़ा गया है जिसके अनुसार 6 से 14 वर्ष की उम्र के सभी बच्चों को अनिवार्य व निःशुल्क शिक्षा प्राप्त हो, की व्यवस्था करना राज्य का दायित्व है। याद रखें कि यह अधिकार स्वतंत्रता के अधिकार में जोड़ा गया है।

   एम. सी. छागला के अनुसार– ''एक स्वतंत्र न्यायालय को नागरिकों के अधिकारों की रक्षा का काम सौप कर भारतीय संविधान में ऐसी व्यवस्था की गई है कि जिस पर कोई भी सभ्य देश गर्व कर सकता है।''

   42 वें संविधान संशोधन 1976 के द्वारा नागरिकों के 10 मूल कर्त्तव्य निर्धारित किये गये हैं। जिनका पालन करना प्रत्येक नागरिक का संवैधानिक दायित्व है। इसमें संविधान का पालन करना भारत की सम्प्रभुता एकता व अखण्डता की रक्षा करना, भाई चारे की भावना रखना, प्रकृति व पर्यावरण की रक्षा करना आदि प्रमुख कर्त्तव्य है। अप्रेल 2010 से लागू शिक्षा के अधिकार संबधी 86वें संविधान संशोधन द्वारा 11वां मूल कर्तव्य भी संविधान में जोड़ दिया गया है, जिसके अनुसार अपने 6–14 वर्ष की आयु के बच्चों को शिक्षा के अवसर उपलब्ध कराना अभिभावकों का कर्तव्य है। अतः वर्तमान में मूल कर्तव्यों की संख्या 11 है।

7. **राज्य के नीति निर्देशक तत्व (Directive Principles of State Poilcy) –** आयरलैण्ड के संविधान से प्रेरित होकर संविधान के भाग 4 में नीति निर्देशक तत्वों का वर्णन किया गया है। राज्य के नीति निर्देशक तत्व वे विचार हैं जो भविष्य में बनने वाली सरकारों के समक्ष पथ प्रदर्शक की भूमिका का निर्वहन करते हैं। यद्यपि इनके क्रियान्वयन के लिए सरकार को बाध्य नहीं किया जा सकता। ये न्यायालय में वाद योग्य भी नहीं है। लोक कल्याणकारी राज्य के लिए आवश्यक होने के कारण किसी भी सरकार द्वारा इनकी उपेक्षा संभव नहीं है।

8. **समाजवादी राज्य (Socialist State) –** 42 वें संविधान संशोधन 1976 द्वारा भारत को समाजवादी गणराज्य घोषित किया गया है। यद्यपि मूल संविधान में यह शब्द प्रयुक्त नहीं था। प्रस्तावना में यह शब्द भारतीय राज व्यवस्था को एक नई दिशा दिये जाने की भावना को दृष्टिगत रखकर जोड़ा गया है।

9. **वयस्क मताधिकार (Adult Franchise) –** हमारे देश के संविधान में 18 वर्ष की आयु प्राप्त प्रत्येक नागरिक को समान रूप से मताधिकार प्रदान किया गया है। यद्यपि मूल संविधान में आयु 21 वर्ष थी किन्तु संविधान में 61वें संशोधन द्वारा आयु सीमा 21 वर्ष से घटाकर 18 वर्ष कर दी गई है।

10. **पंथ निरपेक्ष राज्य (Secular State) –** भारतीय संविधान के अनुच्छेद 25 के अनुसार धर्म के क्षेत्र में प्रत्येक नागरिक को स्वतंत्रता प्रदान की गई है। धर्म के आधार पर किसी भी नागरिक से भेदभाव नहीं किया जा सकता। राज्य का कोई आधिकारिक धर्म नहीं है। किन्तु भारत में यूरोपीय मॉडल की भॉति राज्य और धर्म के बीच पार्थक्य नहीं है। संविधान राज्य को अधिकृत करता है कि वह धर्म से जुड़ी कुरीतियों का निराकरण करने के लिए धार्मिक मामलों में मूल्य आधारित हस्तक्षेप करें। इसे प्रसिद्ध राजनीतिशास्त्री राजीव भार्गव ने धर्म निरपेक्षता का उसूली फासले का सिद्धांत कहा है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

11. **विलक्षण दस्तावेज (Distinguished Document)** – संविधान निर्माताओं की बुद्विमता व दूरदृष्टि का प्रमाण है कि उन्होंने संविधान में जनता द्वारा मान्य आधारभूत मूल्यों व सर्वोच्च आंकाक्षाओं को स्थान दिया। हमारा संविधान एक विलक्षण दस्तावेज है। दक्षिण अफ्रीका ने तो इसे प्रतिमान के रूप में अपने देश का संविधान बनाने हेतु काम में लिया है।

12. **एकात्मक व संघात्मक तत्वों का अद्भुत संयोग (Remarkable Fusion of Unitary and Federal Elements)** – भारत एक संघात्मक राज्य है, संविधान में संघ शब्द के स्थान पर Union of states शब्द का प्रयोग किया गया है संविधान के पहले अनुच्छेद में ही कहा गया है कि ''भारत राज्यों का एकक होगा'' जिसे प्रचलन में 'राज्यों का संघ' भी कहा जाता है। संविधान निर्माताओं की आकांक्षा ऐसा संविधान बनाने की थी जिसमें केन्द्र सरकार भारत की एकता को बनाये रखे तथा राज्यों को भी स्वायतत्ता मिले। इस लिए इसमें संघात्मक व एकात्मक तत्वों का मिश्रण किया गया है। संविधान के अनेक प्रावधान केन्द्र को राज्यों की अपेक्षा शक्तिशाली बनाते हैं। जैसे अतिमहत्वपूर्ण विषयों को संघ सूची में स्थान, समवर्ती सूची में केन्द्र के निर्णय को प्रमुखता, अवशिष्ट शक्तियां केन्द्र के पास, आपात काल में केन्द्र का राज्यों पर नियंत्रण इकहरी नागरिकता, अखिल भारतीय सेवायें, संसद को राज्यों के पुर्नगठन का अधिकार (जम्मू कश्मीर को छोडकर) राष्ट्रपति द्वारा राज्यपालों की नियुक्ति, राज्यों की केन्द्र पर आर्थिक निर्भरता केन्द्र को मजबूती प्रदान करती है। राज्य अपना पृथक् संविधान नहीं रख सकते केवल एक ही संविधान केन्द्र व राज्य दोनों पर लागू होता है।

13. **स्वतंत्र न्याय पालिका (Independent Judiciary)** – संविधान की सर्वोच्चता प्रजातंत्र की रक्षा, जनता के मौलिक अधिकारों की सुरक्षा के लिए भारतीय संविधान में कई सवैधानिक व्यवस्थायें की गई है। भारत के राष्ट्रपति द्वारा सर्वोच्च तथा उच्च न्यायालयों के न्यायधीशों की नियुक्ति की जाती है तथा उन्हें संसद में महाभियोग द्वारा हटाया जा सकता हैं। कार्यपलिका के आदेश तथा व्यवस्थापिका के कानून यदि संवैधानिक व्यवस्थाओं का उल्लंघन करते हैं तो न्यायपालिका को न्यायिक पुनरावलोकन उन्हें अवैध घोषित करने का अधिकार है। नागरिकों के मूल अधिकारों की रक्षा के लिए अनुच्छेद 32 के अन्तर्गत पुनरावलोकन द्वारा बन्दी प्रत्यक्षीकरण, अधिकार पृच्छा जैसे लेखों को जारी किया जा सकता है। न्यायिक स्वतंत्रता के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए ये सभी व्यवस्थायें की गई है।

14. **कठोरता व लचीलेपन का मिश्रण (Combination of Rigidity & Flexibility)** – भारतीय संविधान कठोरता व लचीलेपन का मिश्रण है। किसी भी देश की परिस्थितियों में बदलाव के साथ संवैधानिक संशोधन की आवश्यकता होती है। संवैधानिक संशोधन के लिए भारतीय संविधान में संशोधन विधि अनुच्छेद 368 में दी गई है, संविधान में संशोधन व्यवस्था कुछ भागों के सम्बन्ध में कठोर तो कुछ में लचीली रखी गई है। संविधान में कठोरता का समावेश संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान व लचीलेपन का ब्रिटेन के संविधान से लिया गया है। भारतीय संविधान में संशोधन की कुल तीन विधियां है, जिनमें से पहली विधि का वर्णन अनुच्छेद 368 में नहीं है। 1. संविधान के कुछ भागों में संसद के दोनों सदनों के साधारण बहुमत से संशोधन किया जाता है जैसे राज्यों का पुनर्गठन, राज्यों में विधान परिषद की स्थापना या समाप्ति, केन्द्र प्रशासित क्षेत्र बनाना, संसद सदस्यों के वेतन आदि। 2. कुछ विषयों में संशोधन के लिए संसद के दोनों सदनों के पूर्ण बहुमत व उपस्थित सदस्यों के दो तिहाई बहुमत की आवश्यकता होती है। 3. कुछ विषयों में संशोधन के लिए संसद के दोनों सदनो के पूर्ण बहुमत, उपस्थित सदस्यों के दो तिहाई बहुमत के अतिरिक्त कम से कम आधे राज्यों की विधान मण्डलों का समर्थन आवश्यक है। राष्ट्रपति निर्वाचन की पद्धति, केन्द्र व राज्यों के बीच शक्ति विभाजन आदि विषयों के संशोधन के लिए यह जटिल प्रक्रिया अपनाई जाती है। संशोधन की इन तीन विधियों से स्पष्ट है कि संविधान संशोधन के लिए लचीले व कठोरता का मिश्रण किया गया है। डॉ. ह्वीयर के शब्दों में भारतीय संविधान अधिक कठोर तथा अधिक लचीले के मध्य एक अच्छा संतुलन स्थापित करता है।

15. **न्यायिक पुनरावलोकन व संसदीय सम्प्रभुता का समन्वय (Harmony Between Judicial Review & Parliamentary Supremacy)** – भारतीय संविधान में न्यायिक पुनरावलोकन के सिद्वांत व संसदीय सम्प्रभुता के मध्य मार्ग को अपनाया गया है। हमारे संविधान में संसद को सर्वोच्च बनाया गया है, साथ ही उसको नियंत्रित करने के लिए सर्वोच्च न्यायालय को संविधान की व्याख्या करने का अधिकार प्रदान किया गया है। न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति के माध्यम से सर्वोच्च न्यायालय कार्यपालिका के उन आदेशों तथा संसद द्वारा निर्मित विधि को अवैध घोषित कर सकता है जो संविधान की भावना के अनुरुप न हो।

16. **विश्व शांति का समर्थक (Advocate of World Peace)** – '' वसुधैव कुटुम्बकम'' के सिद्वांत को अपनाते हुए भारतीय संविधान में विश्व शांति का समर्थन किया गया है। नीति निर्देशक तत्वों में अनुच्छेद 51 के अनुसार राज्य का यह कर्तव्य है कि वह अन्तर्राष्ट्रीय शांति व सुरक्षा तथा राष्ट्रों के बीच न्यायपूर्ण व सम्मानजनक सम्बधों की स्थापना करे। भारत न तो किसी देश की सीमा व आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करना चाहता है न ही अपने देश में किसी देश के हस्तक्षेप को बर्दाश्त करता है। भारत सरकार ने इसी भावना के अनुरुप पंचशील एवम् गुटनिरपेक्षता की नीति को अपनाया है।

17. **आपातकालीन उपबन्ध (Emergency Provisions)** – संविधान के भाग 18 में आपातकालीन उपबंधों का स्पष्ट

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

उल्लेख किया गया है। अनुच्छेद 352 के अनुसार बाहरी आक्रमण, सशस्त्र विद्रोह एवम युद्व की स्थिति में, अनुच्छेद 356 के अनुसार राज्यों में संवैधानिक तंत्र की विफलता की स्थिति में तथा अनुच्छेद 360 के अनुसार वित्तीय संकट उत्पन्न होने पर सम्पूर्ण देश या देश के किसी भाग में आपातकाल लागू किया जा सकता है। इसमें शासन राष्ट्रपति के अधीन संचालित होता है।

18. **इकहरी नागरिकता (Single Citizenship)** – भारतीय संविधान द्वारा संघात्मक शासन की व्यवस्था की गई है और सामान्यतया संघ राज्य के नागरिकों को दोहरी नागरिकता प्राप्त होनी चाहिए– प्रथम, संघ की नागरिकता द्वितीय राज्य की नागरिकता। लेकिन भारतीय संविधान निर्माताओं का विचार था कि दोहरी नागरिकता भारत की एकता को बनाये रखने में बाधक हो सकती है अतः संविधान निर्माताओं द्वारा संविधान में संघ राज्य की स्थापना करते हुए इकहरी नागरिकता के आदर्श को ही अपनाया गया है।

19. **लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना का आदर्श (Ideal of Establishing Welfare State)** – संविधान के नीति निदेशक तत्वों से यह स्पष्ट हो जाता है कि संविधान निर्माताओं द्वारा संविधान के माध्यम से कल्याणकारी राज्य की स्थापना का आदर्श निश्चित किया गया है। इस हेतु केन्द्र व राज्य सरकारें नागरिको को पौष्टिक भोजन, आवास, वस्त्र, शिक्षा व स्वास्थ्य की सुविधायें उपलब्ध करवायें। नागरिकों के जीवन स्तर को ऊँचा उठायें। जहां तक संभव हो आर्थिक समानता की स्थापना की जाये। केन्द्र व राज्य सरकारें संविधान में दिये गये लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील हैं। जिसके लिए नियोजन की पद्वति को अपनाया गया है।

20. **अल्पसंख्यक एवम् पिछड़े वर्गों के कल्याण की विशेष व्यवस्था (Special Provisions for Welfare of Minority & Backward Classes)** – भारतीय संविधान में अल्पसंख्यकों के धार्मिक, भाषायी और सांस्कृतिक हितों की रक्षा के लिए विशेष व्यवस्था की गई है। इसके अतिरिक्त संविधान अनुसूचित जातियों व जनजाति क्षेत्रों के नागरिकों को सेवाओं, संसद विधान सभाओं और अन्य क्षेत्रों में विशेष संरक्षण प्रदान किया गया है। संविधान के अनुच्छेद 330 व 332 के तहत अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जनजातियों को लोक सभा व विधान सभाओं में आरक्षण प्रदान किया गया है। प्रारंभ में यह व्यवस्था 25 जनवरी 1960 तक के लिए की गई थी, किन्तु संविधान में संशोधन कर इसकी समय सीमा को बढ़ाया जाता रहा है। अब 95 वें संवैधानिक 2010 के आधार पर आरक्षण की व्यवस्था को 25 जनवरी 2020 तक के लिए बढा दिया गया है। अनुच्छेद 335 में अनुसूचित जातियों व जनजातियों के लिए सरकारी सेवाओं में आरक्षण के लिए कोई समय सीमा निर्धारित नहीं की गई। इसी तरह अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए केन्द्र सरकार की सेवाओं में सितम्बर 1993 से 27 प्रतिशत आरक्षण लागू किया गया।

प्रस्तावना (Preamble)

हमारे संविधान के प्रारंभ में एक प्रस्तावना है जिसके द्वारा संविधान में मूल उद्देश्यों को स्पष्ट किया है जिससे संविधान की क्रियान्वति तथा उसका पालन संविधान की मूल भावना के अनुसार किया जा सके। संविधान के गौरव पूर्ण मूल्यों को संविधान की प्रस्तावना में रखा गया है।

संविधान की मूल प्रस्तावना (Preamble) – ''हम, भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न, लोकतंत्रात्मक, गणराज्य बनाने के लिये तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता सुनिश्चित कराने वाली बन्धुता बढाने के लिए दृढ़ संकल्प होकर अपनी संविधान सभा में आज तारीख 26 नवम्बर 1949 ईस्वी (मिति मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी, संवत 2006 विक्रमी) को एतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।'' संविधान में 42 वें संविधान संशोधन अधिनियम 1976 की धारा 2 के द्वारा (3.1.77 के अनुसार) प्रस्तावना में निम्न संशोधन किये गये हैं–

1. सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोक तंत्रात्मक गणराज्य के स्थान पर सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न समाजवादी, पंथनिरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य प्रतिस्थापित किया गया है।
2. राष्ट्र की एकता के स्थान पर राष्ट्र की एकता और अखण्डता को प्रतिस्थापित किया गया है।

इस संशोधन के बाद प्रस्तावना निम्नानुसार है।

हम भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न, समाजवादी, पंथ निरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनानें के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समानता प्राप्त कराने के लिए तथा उन सबमें व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवम्बर 1949 ई. (मिति मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी, सम्वत् 2006 विक्रमी) को एतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।

1.2 प्रस्तावना की विस्तृत विवेचना (Description of Preamble) –

(अ) घोषणात्मक भाग (Declaratory Part)

- 'हम भारत के लोग '' – संविधान के निर्माताओं के

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अनुसार सम्प्रभुता अंततः जनता में निहित है। सरकार के पास अथवा राज्य सरकार के विभिन्न अंगों के पास जो शक्तियाँ है, वे सब जनता से मिली हैं। प्रस्तावना में प्रयुक्त 'हम भारत के लोग' इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित व आत्मार्पित करते हैं, पदावली से यह स्पष्ट है कि भारतीय संविधान का स्त्रोत भारत की जनता है, अर्थात जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों की सभा द्वारा संविधान का निर्माण किया गया है।

(ब) उद्देश्य भाग (Obejective Part)

- **सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न** – इस पदावली से यह व्यक्त होता है कि भारत पूर्ण रूप से प्रभुता सम्पन्न राज्य है। आंतरिक और विदेशी मामलों में किसी अन्य विदेशी शक्ति के अधीन नहीं है।
- **समाजवाद** – समाजवाद शब्द को 42 वें संशोधन द्वारा जोड़ा गया है। प्रस्तावना में समाजवाद शब्द को सम्मिलित करके उसे और अधिक स्पष्ट किया गया है। इसमें समाज के कमजोर और पिछड़े वर्गों के जीवन स्तर को ऊंचा उठाने और आर्थिक विषमता को दूर करने का प्रयास करने के लिए मिश्रित अर्थव्यवस्था को अपनाया है।
- **पंथ निरपेक्ष** – 42 वें संशोधन के द्वारा 1976 में इसे जोड़ा गया था। इसका अर्थ यह है कि भारत धर्म के क्षेत्र में न धर्म विरोधी है न धर्म का प्रचारक, बल्कि वह तटस्थ है जो सभी धर्मो के साथ समान व्यवहार करता है।
- **लोकतंत्रात्मक** – इससे तात्पर्य है कि भारत में राजसत्ता का प्रयोग जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि करते हैं और वे जनता के प्रति उत्तरदायी होते हैं। संविधान सभी को सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक न्याय का आश्वासन देता है।
- **गणराज्य** – इसका अर्थ यह है कि भारत में राज्याध्यक्ष या सर्वोच्च व्यक्ति वंशानुगत न होकर निर्वाचित प्रतिनिधि होता है। भारत के राष्ट्रपति का निर्वाचन अप्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा होता है।

(स) विवरणात्मक भाग (Distributory Part)

1. सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक न्याय –

- **सामाजिक न्याय** – सामाजिक न्याय का अर्थ है कि सभी नागरिकों को बिना किसी भेदभाव के समानता प्राप्त हो। जाति, धर्म, वर्ग, लिंग, नस्ल या अन्य किसी आधार पर नागरिकों में भेदभाव नहीं हो।
- **आर्थिक न्याय** – अनुच्छेद 39 में आर्थिक न्याय के आदर्श को स्वीकार किया गया है इसमें राज्यों को अपनी नीति का संचालन इस प्रकार करने के लिए कहा गया है कि समान रूप से सभी नागरिकों को आजीविका के साधन प्राप्त करने का अधिकार हो, समुदाय की भौतिक सम्पत्ति का स्वामित्व और वितरण इस प्रकार हो जिसमें अधिकाधिक सामूहिक हित संभव हो सकें। पुरुषों व स्त्रियों को समान कार्य के लिए समान वेतन मिले, उत्पादन व वितरण के साधनों का अहितकर केन्द्रीयकरण न हो।
- **राजनीतिक न्याय** – भारतीय संविधान वयस्क मताधिकार की स्थापना, सांविधानिक उपचारों द्वारा राजनीतिक न्याय के आदर्श को मूर्त रूप प्रदान करता है।

2. स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुत्व–

- **स्वतन्त्रता** – भारतीय संविधान में नागरिकों को विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता दी गई है।
- **समानता** – देश के सभी नागरिकों को प्रतिष्ठा और अवसर की समानता प्रदान की गई है।
- **बन्धुत्व** – प्रस्तावना में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बन्धुता की भावना बढाने के लिए संकल्प किया गया है।

3. व्यक्ति की गरिमा व राष्ट्र की एकता व अखण्डता–

- **व्यक्ति की गरिमा व राष्ट्र की एकता** – हमारे संविधान निर्माता भारत की विविधताओं के अन्तर्गत विद्यमान एकता से परिचित थे। वे चाहते थे कि हमारे नागरिक क्षेत्रीयता, प्रान्तवाद, भाषावाद व सम्प्रदायवाद को महत्त्व न देकर देश की एकता के भाव को अपनायें। इसलिए हमारे संविधान में बन्धुत्व का आदर्श दो आधारों पर टिका है। यह आधार हैं– राष्ट्र की एकता व व्यक्ति की गरिमा।
- **अखण्डता** – 42 वें संविधान संशोधन द्वारा उद्देशिका में ''अखण्डता'' शब्द को सम्मिलित किया गया है। इसका मूल उद्देश्य भारत की एकता और अखण्डता को सुनिश्चित करना है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रस्तावना या उद्देशिका में संविधान के मूलभूत आदर्शों को दर्शाया गया है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न संविधान
- प्रस्तावना संविधान का सार
- विश्व का सबसे विशाल संविधान
- लिखित एवं निर्मित संविधान
- संसदीय शासन व्यवस्था
- मौलिक अधिकार व कर्तव्य
- राज्य के नीति निर्देशक तत्व
- समाजवादी राज्य
- पंथ निरपेक्ष राज्य
- वयस्क मताधिकार
- विलक्षण दस्तावेज
- एकात्मक व संघात्मक तत्वों का अदभूत संयोग

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

- स्वतंत्र न्यायपालिका
- कठोरता व लचीलेपन का मिश्रण
- विश्व शांति का समर्थक
- आपातकालीन उपबन्ध
- एकल नागरिकता एवं लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना का आदर्श
- अल्पसंख्यक एवम् पिछड़े वर्गों के कल्याण की विशेष व्यवस्था
- प्रस्तावना के महत्त्वपूर्ण बिन्दु – भारतीय संविधान का एक संक्षिप्त एवं सारपूर्ण घोषणा पत्र

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. भारतीय संविधान को संविधान सभा द्वारा अंगीकार किया गया –
   (अ) 1 मई 1947 (ब) 9 दिसम्बर 1946
   (स) 26 नवम्बर 1949 (द) 26 जनवरी 1950 ( )
2. भारत के संविधान में अनुच्छेद हैं–
   (अ) 150 (ब) 395
   (स) 360 (द) 147 ( )
3. नीति निर्देशक तत्व किस देश के संविधान से लिये गये हैं –
   (अ) इंग्लैड (ब) फ्रांस
   (स) आयरलैण्ड (द) आस्ट्रेलिया ( )
4. राज्यों में संवैधानिक संकट होने पर राष्ट्रपति शासन संविधान के किस अनुच्छेद के तहत लगाया जाता है?
   (अ) अनुच्छेद 352 (ब) अनुच्छेद 356
   (स) अनुच्छेद 362 (द) अनुच्छेद 366 ( )
5. 42 वें संविधान संशोधन द्वारा प्रस्तावना में किन शब्दों को जोड़ा गया है–
   (अ) गणराज्य
   (ब) समाजवादी, पंथ निरपेक्ष तथा अखण्डता को
   (स) लोकतंत्र
   (द) बन्धुत्व ( )
6. भारत के संविधान की प्रस्तावना में प्रयुक्त " हम भारत के लोग " वाक्यांश से तात्पर्य है –
   (अ) संविधान सभा के सदस्य
   (ब) प्रारूप समिति के सदस्य
   (स) स्वतंत्रता सेनानी
   (द) संविधान को स्वीकार करने वाले भारत के नागरिक ( )
7. प्रस्तावना न्याय का स्वरूप है –
   (अ) सामाजिक न्याय (ब) आर्थिक न्याय
   (स) राजनीतिक न्याय (द) उपर्युक्त सभी ( )

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. भारतीय संविधान के निर्माण में कितना समय लगा?
2. भारतीय संविधान में कितनी अनुसूचियां है?
3. भारत के संविधान की प्रस्तावना से क्या अभिप्राय: है?
4. संविधान में अब तक कितने संशोधन किये जा चुके है?
5. " प्रस्तावना संविधान की प्रेरणा और प्राण है " क्यों?
6. सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति किसके द्वारा की जाती है?
7. देश के किसी हिस्से में सशस्त्र विद्रोह की स्थिति में किस अनुच्छेद के तहत आपातकाल लागू किया जाता है?
8. प्रस्तावना में समाजवाद शब्द किस सांविधानिक संशोधन द्वारा जोड़ा गया?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. भारत के संविधान की कोई 5 विशेषताएं बताइए।
2. संविधान में वयस्क मताधिकार से क्या तात्पर्य है?
3. पंथ निरपेक्ष राज्य से क्या अभिप्राय है?
4. प्रस्तावना को लिखिए ?
5. संविधान में आपातकालीन उपबंधो से संबंधित अनुच्छेद लिखिये।
6. ''भारतीय संविधान कठोरता व लचीलेपन का मिश्रण है''। इस पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
7. लोकतंत्रात्मक गणराज्य से क्या अभिप्राय है?
8. प्रस्तावना में प्रयुक्त समाजवाद शब्द की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए।
9. धर्म निरपेक्षता का उसूली फासले का सिद्धांत क्या है?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारतीय संविधान की मुख्य विशेषताओं का विस्तृत वर्णन कीजिए।
2. " भारतीय संविधान की विशेषताएँ, भारत को विश्व के सफलतम लोकतंत्रों में से एक बनाने में सहायक सिद्ध हुई है। " इस कथन की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
3. 'संविधान की प्रस्तावना, भारतीय संविधान का सार है,' समझाइए।

बहुचयनात्मक प्रश्नों के उत्तर

1. स 2. ब 3. स 4. ब
5. ब 6. द

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

2. मूल अधिकार, नीति निर्देशक तत्व एवं मूल कर्त्तव्य
(Fundamental Rights; Directive Principles & Duties)

" संविधान में मूल अधिकारों को रखने का उद्देश्य नागरिकों को समानता, स्वतन्त्रता, न्याय और सुरक्षा प्रदान करना था "

—न्यायाधीश सप्रू

मूल अधिकार अधिकारों का ही एक स्वरूप है। वे अधिकार जो व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए अनिवार्य होने के कारण संविधान द्वारा नागरिकों को प्रदान किये गये हैं, मूल अधिकार कहलाते हैं। इन अधिकारों में राज्य द्वारा हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता ।

2.1 मूल अधिकारों की आवश्यकता व महत्त्व (Importance & Necessity of Fundamental Rights) –

1. **प्रत्येक व्यक्ति को सुरक्षा प्रदान करना** – मूल अधिकार लोकतंत्र की आधारशिला हैं। इनके द्वारा प्रत्येक नागरिक को शारीरिक, मानसिक व नैतिक विकास की सुरक्षा प्रदान की जाती है।
2. **शासन की स्वेच्छाचारिता पर रोक** – कौटिल्य के अर्थशास्त्र में इस बात का उल्लेख है कि प्राचीन भारतीय राज्य व्यवस्था में स्वेच्छाचारी शासकों के लिए कोई स्थान न था। भारतीय राजाओं की शक्ति पर ऐसे प्रतिबन्ध लगाये गये थे कि वे सत्ता का दुरुपयोग न कर सकें। संविधान में दिये मूल अधिकार शासन व विधान मण्डल के ऊपर अंकुश लगाने में सहायता प्रदान करते हैं। ये शासन के अधिकारों की शक्ति व बहुमत दल की तानाशाही से नागरिकों को सुरक्षा देते हैं। मूल अधिकार साधारण कानून से भी श्रेष्ठ हैं। राज्य ऐसी कोई विधि नहीं बना सकता जो इन अधिकारों को छीनती है या न्यून करती है।
3. **न्यायिक सुरक्षा** – मूल अधिकारों का हनन होने की स्थिति में नागरिक न्यायालय की शरण ले सकता है।
4. **लोकतंत्र के आधार स्तम्भ** – मूल अधिकार लोकतंत्र के लिए आधार स्तम्भ की भूमिका का निर्वहन करते हैं, इनके अभाव में लोकतन्त्रामक शासन की कल्पना नहीं की जा सकती।
5. **समानता के कारक** – संविधान द्वारा राष्ट्र के समस्त नागरिकों को मूल अधिकार प्रदान कर उनमें परस्पर समानता स्थापित की गई है। सभी विशेषाधिकारों को समाप्त कर दिया गया है।

   नागरिकों के मूल अधिकार मानवीय स्वतन्त्रता के मापदण्ड और संरक्षक दोनों ही हैं। इस कारण इनका अपना मनोवैज्ञानिक महत्त्व है। वर्तमान युग का कोई राजनीतिक दार्शनिक इनकी उपेक्षा नहीं कर सकता।

2.2 भारत के संविधान में मूल अधिकार (Fundamental Rights in Indian Constitution) –

राष्ट्र की एकता व आम नागरिकों के हित के लिए किसी भी राज्य द्वारा अब तक बनाये गये मानव अधिकारों के चार्टरों में सर्वाधिक विस्तृत चार्टर संविधान के भाग 3 में शामिल है। मूल अधिकारों के सम्बन्ध में संविधान में कुल 23 अनुच्छेद है। ये अनुच्छेद 12 से 30 व 32 से 35 तक दिये गये हैं। इनमें भी कुछ अनुच्छेद असाधारण रूप से विस्तृत हैं। विशेष रूप से 19वें अनुच्छेद में 450 शब्द होने से इसका आकार अत्यधिक व्यापक हो गया है। मौलिक अधिकार अधिकारों का एक स्वरूप है। मौलिक अधिकारों का अर्थ स्पष्ट करते हुए भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश के सुब्बाराव ने कहा था कि " मौलिक अधिकार परम्परागत प्राकृतिक अधिकारों का दूसरा नाम है। ये वे नैतिक अधिकार हैं जिन्हें हर काल में, हर जगह, हर मनुष्य को प्राप्त होना चाहिए क्योंकि अन्य प्राणियों के विपरीत वह चेतन तथा नैतिक प्राणी है। मानव व्यक्तित्व के विकास के लिए मौलिक अधिकार आवश्यक हैं। वे ऐसे अधिकार हैं जो मनुष्य को स्वेच्छानुसार जीवन व्यतीत करने का अवसर प्रदान करते हैं।"

भारतीय संविधान द्वारा भारतीय नागरिकों को 7 मूल अधिकार प्रदान किये गये थे किन्तु 44वें संविधान संशोधन द्वारा सम्पति के अधिकार को मूल अधिकारों से विलोपित कर एक कानूनी अधिकार के रूप में ही सम्मिलित किया गया है। इस तरह मूल अधिकारों को छः श्रेणियों के तहत गारन्टी प्रदान की गई है–

1. समानता का अधिकार (अनुच्छेद 14 से 18)
2. स्वतन्त्रता का अधिकार (19 से 22)
3. शोषण के विरुद्ध अधिकार (23 से 24)
4. धर्म की स्वतन्त्रता का अधिकार (25 से 28)
5. सांस्कृतिक एवं शिक्षा संबंधी अधिकार (29 से 30)
6. संवैधानिक उपचारों का अधिकार (32)

1. समानता का अधिकार (अनुच्छेद 14 से 18) (Right to Equality) –

भारतीय संविधान में प्रत्येक नागरिक को कानून के समक्ष समानता, राज्य में रोजगार के अवसरों की समानता एवम् सामाजिक समानता प्रदान की गई है। इस हेतु संविधान में

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

निम्न प्रावधान किये गये हैं–

- **कानून के समक्ष समानता** – अनुच्छेद 14 के तहत राज्य क्षेत्र में राज्य किसी भी व्यक्ति को कानून के समक्ष समानता या कानून के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा। विधि के समक्ष सभी समान हैं और बिना किसी विभेद के विधि के समान संरक्षण के हकदार हैं।
- **धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर विभेद का प्रतिषेध** – अनुच्छेद 15 राज्यों को यह आदेश देता है कि किसी नागरिक के साथ केवल उसके धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर विभेद न किया जावे। सभी नागरिकों को दुकानों, सार्वजनिक स्थलों यथा भोजनालयों, होटलों, मनोरंजन स्थलों, कुंओं, तालाबों, स्नानघरों, सड़कों के प्रयोग का अधिकार प्रदान किया गया है। इसी अनुच्छेद में स्त्रियों व बच्चों तथा सामाजिक व शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए नागरिकों, अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के नागरिकों के लिए विशेष प्रावधान का अधिकार दिया गया है।
- **लोक नियोजन के विषय में अवसरों की समानता** अनुच्छेद 16– इस अनुच्छेद के तहत देश के सभी नागरिकों को राज्य के अधीन नौकरी में समान अवसर प्रदान करने की गारंटी दी गई है। इस बारे में व्यक्ति के धर्म,जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर विभेद नहीं किया जावेगा। किन्तु राज्य को यह अधिकार है कि वह राजकीय सेवाओं के लिए आवश्यक योग्यताएं निर्धारित कर राज्य के मूलनिवासी हेतु आरक्षण, पिछड़ा वर्ग, अनुसूचित जाति व जनजाति के लिए आरक्षण का प्रावधान कर दे। यदि आप ध्यान से सोचें तो पायेंगे कि इस आरक्षण का उद्देश्य मूलतः समानता की स्थापना ही है।
- **अस्पृश्यता का अंत, अनुच्छेद 17** – सामाजिक समानता बढाने हेतु संविधान में अस्पृश्यता का पूर्ण निषेध किया गया है। इसमें कहा गया है कि यदि ऐसा आचरण किया जावेगा तो दंडनीय अपराध माना जाएगा। इस अनुच्छेद का उद्देश्य व्यक्ति को उसकी जाति के कारण ही अस्पृश्य माने जाने के अमानवीय आचरण को समाप्त करना है। इसे पूर्ण रूपेण समाप्त करने हेतु सरकार ने अस्पृश्यता निवारण अधिनियम 1955 का संशोधन कर नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम 1955 कर दिया है। अनुसूचित जाति अनुसूचित जनजाति निरोधक अधिनियम 1989 पारित किया है। यह कानून अस्पृश्यता के अब तक बने कानूनों में सबसे अधिक कठोर है। अतः जरूरत इस बात की है कि इसका अस्पृश्यता निवारण हेतु सदुपयोग किया जावे। साथ ही यह सुनिश्चित किया जावे कि इसका दुरुपयोग न हो।
- **उपाधियों का अंत अनुच्छेद 18** – ब्रिटिश शासन काल में सम्पत्ति व राज शक्ति के आधार पर उपाधियां प्रदान की जाती थी जो सामाजिक जीवन में भेद उत्पन्न करती थी। संविधान में सेना तथा विद्या सम्बन्धी उपाधियों के अतिरिक्त राज्य द्वारा किसी भी तरह की उपाधि दिया जाना निषेध है। इसके अलावा भारत का नागरिक राष्ट्रपति की आज्ञा बिना विदेशी राज्य की कोई उपाधि स्वीकार नहीं करेगा।

2. **स्वतन्त्रता का अधिकार (अनुच्छेद 19) (Right to Freedom)–**

भारतीय संविधान में व्यक्ति को छः बुनियादी स्वतन्त्रताएं भाषण व अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता, शस्त्र रहित शांति पूर्वक सम्मेलन की स्वतन्त्रता, भारत राज्य में अबाध भ्रमण व निवास की स्वतन्त्रता एवम आजीविका, व्यापार व कारोबार की स्वतन्त्रता प्रदान की गई हैं।

- **विचार व अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता अनुच्छेद 19 (1) (क)** – भारत के सभी नागरिकों को विचार अभिव्यक्त करने, भाषण देने तथा अन्य व्यक्तियों के विचारों का प्रचार प्रसार करने की स्वतन्त्रता है। इसमें प्रेस की स्वन्त्रता भी सम्मिलित है। किन्तु इस अधिकार का दुरुपयोग रोकने के लिए प्रतिबन्ध भी लगाये गये हैं। इस स्वतन्त्रता पर भारत की प्रभुता व अखण्डता के पक्ष में राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों के हित में, लोक व्यवस्था, शिष्टाचार या सदाचार के हित में, न्यायालय अवमानना, मानहानि, अपराध के लिए उत्तेजित करना आदि के सम्बन्ध में उचित निर्बन्धन लगाये जा सकते हैं।
- **अस्त्र शस्त्र रहित शांतिपूर्ण सम्मेलन की स्वतन्त्रता अनुच्छेद 19 (1) (ख)** – इसके तहत सभी नागरिकों को शान्ति पूर्ण व बिना अस्त्र शस्त्र के सभा व सम्मेलन का अधिकार दिया गया है। इस अधिकार को भी राज्य हित या सार्वजनिक सुरक्षा हित में सीमित किया जा सकता है।
- **संघ व समुदाय निर्माण की स्वतन्त्रता अनुच्छेद 19 (1) (ग)** – इसके अनुसार नागरिक मिलकर अपना संगम, संघ या सहकारी सोसाइटी बना सकते हैं किन्तु राज्य हित में इसे भी प्रतिबन्धित किया जा सकता है।
- **सर्वत्र आने जाने की स्वतन्त्रता अनुच्छेद 19 (1) (घ)** – इसके अनुसार भारत के राज्य क्षेत्र में अबाध रूप से आने जाने का अधिकार दिया गया है।
- **निवास की स्वतन्त्रता अनुच्छेद 19(1) (ङ.)** – इस अनुच्छेद के अनुसार भारत राज्य क्षेत्र के किसी भाग में निवास करने की गारन्टी दी गई है।
- **वृति व व्यापार की स्वतन्त्रता अनुच्छेद 19(1) (छ)** – इस अनुच्छेद द्वारा सभी नागरिकों को वृति, आजीविका, व्यापार तथा व्यवसाय करने की स्वतन्त्रता प्रदान की गई है। किन्तु जनहित में नशीली व खतरनाक चीजों के व्यापार करने तथा अन्य ऐसे कार्य करना जो राज्य हित में न हो को निषेध किया जा सकता है।

इनके अलावा अनुच्छेद 20,21,22 द्वारा व्यक्तिगत मौलिक स्वतन्त्रताओं की व्यवस्था की गई है–

1. **अपराधों के लिए दोष सिद्वि के विषय में संरक्षण अनुच्छेद 20** – इसमें यह स्पष्ट किया गया है कि किसी भी व्यक्ति को उस समय तक अपराधी नहीं ठहराया जा सकता –
   (अ) जब तक कि उसने अपराध के समय लागू किसी कानून का उल्लंघन न किया हो।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

(ब) किसी व्यक्ति को एक अपराध के लिए एक बार से अधिक दण्डित नहीं किया जा सकता।

(स) किसी व्यक्ति को अपराध करने के समय निर्धारित सजा से अधिक सजा भी नहीं दी जा सकती।

2. **जीवन व व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का संरक्षण अनुच्छेद 21** – इसके अनुसार किसी व्यक्ति को उसके जीवन या व्यक्तिगत स्वतन्त्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोड़कर अन्य किसी प्रकार से वंचित नहीं किया जा सकता। 44 वें संविधान संशोधन 1979 द्वारा इस अधिकार को और अधिक प्रभावशाली बना दिया गया है। अब आपातकाल में भी जीवन व व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के अधिकारों को सीमित नहीं किया जा सकता। इसे प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता का अधिकार भी कहा जाता है।

3. **शिक्षा का अधिकार** – संविधान के 86 वे संशोधन अधिनियम द्वारा अनुच्छेद 21क जोड़ कर शिक्षा को मौलिक अधिकार का दर्जा दिया है। इसे राज्य के नीति निर्देशक तत्वों से हटा लिया गया है। इसके अनुसार राज्य के 6 से 14 वर्ष के आयु के सब बच्चों को निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा कानूनी रूप से स्वीकृत तरीके से प्रदान करनी होगी। इसी में यह भी कहा गया है कि 6 से 14 वर्ष के आयु के बच्चों को शिक्षा के अवसर प्रदान करना माता पिता या अभिभावक की जिम्मेदारी है।

4. **बन्दीकरण से संरक्षण** – अनुच्छेद 22 के तहत बन्दी व्यक्तियों को कुछ अधिकार दिये गये है–

(अ) उसे बन्दी बनाने का कारण जानने का अधिकार है।

(ब) उसे इच्छानुसार स्वंय के लिए कानूनी सहायता प्राप्त करने का अधिकार दिया गया है।

(स) 24 घण्टे के अन्दर बन्दी को न्यायाधीश के सम्मुख पेश किया जाना आवश्यक है। ये अधिकार शत्रु देश के निवासियों एवम निवारक नजरबन्दी अधिनियम के तहत गिरफ्तार किये गये अपराधियों पर लागू नहीं होंगे।

2.3 निवारक नजरबन्दी –

निवारक नजरबन्दी से तात्पर्य बिना किसी न्यायिक प्रक्रिया के नजरबन्दी से है। यह अपराधी को दण्डित करने से नहीं बल्कि अपराध करने से रोकने की प्रक्रिया है। जब राज्य को यह अनुमान हो कि किसी व्यक्ति से जो अपराध करने वाला है, राज्य की सुरक्षा को खतरा हो या खतरे की धमकी मिल रही हो तो राज्य सीमित अवधि के लिए बिना जांच किये बंदी बना सकता है। हालांकि किसी व्यक्ति को 3 महीने से अधिक इस कानून के तहत बन्दी नहीं रख सकते, जब तक कि परामर्श दात्री समिति, जिसमें एक व्यक्ति उच्च न्यायालय का जज हो, की अनुमति प्राप्त न हो चुकी हो।

1. **राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम** – दिसम्बर 1980 को सरकार ने राष्ट्रीय सुरक्षा अध्यादेश लागू किया जो बाद में कानून बन गया। इसका उद्देश्य साम्प्रदायिक व जातीय दंगों व देश की सुरक्षा के लिए खतरनाक गतिविधियों के लिए उत्तरदायी व्यक्तियों को निरूद्व करना हैं। राष्ट्रीय सुरक्षा कानून निवारक निरोध कानून की व्यवस्था ही है। जून 1984 को राष्ट्रीय सुरक्षा कानून दूसरा संशोधन अध्यादेश जारी किया गया। अध्यादेश में कहा गया यह जम्मू कश्मीर राज्य के अतिरिक्त सम्पूर्ण भारत में लागू होगा। इसके आधार पर इसमें कुछ परिवर्तन करते हुए इसे और कठोर बना दिया गया है। पहला यह संशोधन किया गया कि किसी व्यक्ति की नजरबन्दी के आदेश की अवधि खत्म होने, आदेश रदद हो जाने अथवा वापिस ले लिये जाने के बाद नया आदेश जारी करके उसे नजरबन्द किया जा सकेगा। दूसरा प्रावधान यह किया गया नजरबन्दी के हर कारण पर अदालतों को अलग अलग विचार करके फैसला करना होगा। आर्थिक क्षेत्र में राष्ट्रीय सुरक्षा कानून की श्रेणी का एक कानून ''विदेशी मुद्रा संरक्षण व तस्करी निरोधक अधिनियम'' 1974 से लागू है।

2. **गैर कानूनी गतिविधियां निवारण अध्यादेश** – पोटा कानून को समाप्त करने के बावजूद राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आतंकवाद से निपटने के लिए कठोर कानून की आवश्यकता अनुभव करते हुए सितम्बर 2004 में गैरकानूनी गतिविधियां निरोधक अध्यादेश जारी किया गया। इसमें पोटा के कई प्रावधानों को सम्मिलित किया गया है।

निवारक निरोध अधिनियम का मूल्यांकन – इस अधिनियम को कटु आलोचनाओं का सामना करना पड़ा है। इन्हें अलोकतांत्रिक प्रतिक्रियावादी संविधान की महान असफलता व निरंकुशता का प्रतीक माना गया। इनके दुरुपयोग की संभावना सदैव बनी रही है। फिर भी निवारक निरोध अधिनियम की आलोचनाओं के बावजूद इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि वर्तमान परिस्थितियों में जब देश आतंकवाद, अलगाववाद की मार झेल रहा है ऐसे समय में इस तरह के कानून आवश्यक व उपयोगी भी हैं। गोपालन बनाम मद्रास राज्य के विवाद में पातंजलि शास्त्री ने निवारक कानून की उपयोगिता इस प्रकार व्यक्त की है–

इस भयावह उपकरण की व्यवस्था, जिसका प्रजातंत्र में कोई स्थान नहीं है, मौलिक अधिकारों की पवित्रता के प्रतिकूल और संविधान में की गई प्रतिज्ञाओं के विरुद्ध है, उन समाज विरोधी तथा विध्वंसकारी तत्वों के विरुद्ध की गई है, जिनसे नवजात प्रजातंत्र के राष्ट्रीय हित को खतरा है।

3. **शोषण के विरुद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23 व 24 (Right Against Exploitation)** – संविधान के अनुच्छेद 23 व 24 के द्वारा सभी नागरिकों को शोषण के विरुद्ध अधिकार प्रदान कर शोषण की सभी स्थितियां समाप्त करने का प्रयास किया गया है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

- **मानव के क्रय विक्रय व बेगार पर रोक (अनुच्छेद 23)** – इस अनुच्छेद द्वारा बेगार तथा इसी प्रकार का जबरदस्ती करवाये हुए श्रम का निषेध किया गया है। हमारे देश में सदियों से किसी न किसी रूप में दासता की प्रथा विद्यमान थी जिसमें खेतीहर श्रमिकों, बन्धुआ मजदूरों, स्त्रियों व बच्चों से बेगार करवाकर उनका शोषण किया जाता था। संविधान में मानवीय शोषण के इन सभी रूपों को कानून के अनुसार दण्डनीय घोषित किया गया है। फिर भी राज्य हित में सरकार द्वारा व्यक्ति को अनिवार्य श्रम की योजना लागू की जा सकती है लेकिन ऐसा करते समय नागरिकों के बीच धर्म, मूलवंश, जाति,वर्ण या सामाजिक स्तर के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जा सकता।
- **बालश्रम का निषेध (अनुच्छेद 24)** – इसके अनुसार 14 वर्ष से कम आयु वाले बच्चों को कारखानों, खानों अथवा जोखिम वाले काम पर नियुक्त नहीं किया जा सकता।

4. **धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 25–28) (Right to Freedom of Religion)**

भारत एक बहुधार्मिक देश है। हमारे देश में सभी धर्मो के लोग रहते हैं। संविधान के अनुच्छेद 25–28 में प्रत्येक व्यक्ति को धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार प्रदान किया गया है।

- **अन्तःकरण की स्वतन्त्रता (अनुच्छेद 25)**– इस अनुच्छेद के अनुसार अंतःकरण की स्वतन्त्रता तथा कोई भी धर्म अंगीकार करने, उसका अनुसरण व प्रचार करने का अधिकार प्राप्त है। धार्मिक संस्थाओं में बिना किसी भेद के प्रवेश व पूजा अर्चना का अधिकार दिया गया है।
- **धार्मिक मामलों का प्रबन्ध करने की स्वतन्त्रता (अनुच्छेद 26)**– इस अनुच्छेद में प्रत्येक धर्म के अनुयायियों को निम्न अधिकार प्रदान किये गये हैं–

(अ) धार्मिक और धर्मार्थ प्रयोजनों के लिए संस्थाओं की सीापना व पोषण।
(ब) धर्म विषयक कार्यों का प्रबन्ध करना।
(स) चल अचल सम्पति के अर्जन व स्वामित्व का अधिकार
(द) उस सम्पति का विधि के अनुसार संचालन करने का अधिकार।

- **राजकीय संस्थाओं में धार्मिक शिक्षण पर रोक (अनुच्छेद 28)** – इस अनुच्छेद के अनुसार राज्य की निधि से किसी भी शिक्षण संस्था में किसी प्रकार की धार्मिक शिक्षा नहीं की जावेगी। इसके साथ ही राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त या आर्थिक सहायता प्राप्त शिक्षण संस्था में किसी व्यक्ति को धर्म विशेष की शिक्षा लेने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकेगा।

5. **सांस्कृतिक व शिक्षा सम्बन्धी अधिकार (अनुच्छेद 29 व 30) (Cultural & Educational Rights)**

- **अल्पसंख्यक वर्गों के हितों की सुरक्षा (अनुच्छेद 29)** – इस अनुच्छेद के अनुसार देश के सभी नागरिकों को संस्कृति व शिक्षा सम्बन्धी स्वतन्त्रता का अधिकार दिया गया है। नागरिकों के प्रत्येक वर्ग को अपनी भाषा, लिपि व संस्कृति को सुरक्षित रखने का पूरा अधिकार है। इस तरह राज्य द्वारा संचालित शैक्षणिक संस्थानों में प्रवेश के लिए जाति, वर्ग के आधार पर कोई विभेद नहीं किया जायेगा।
- **अल्पसंख्यक वर्ग को शिक्षा संस्थाओं की स्थापना व संचालन का अधिकार (अनुच्छेद 30)** – इस अनुच्छेद के अनुसार अल्पसंख्यक वर्ग को अपनी इच्छानुसार शिक्षण संस्थान की स्थापना व उनके संचालन सम्बन्धी अधिकार प्राप्त है। राज्य द्वारा वित्तीय सहायता प्रदान करते समय किसी भी ऐसी संस्था के साथ धर्म, जाति के आधार पर भेदभाव नहीं किया जायेगा।

6. **संवैधानिक उपचारों का अधिकार (अनुच्छेद 32) (Right fo Constitutional Remedies)** – यद्यपि संविधान में मूल अधिकार प्रदान किये गये हैं किन्तु यदि इनकी उचित क्रियान्वति की व्यवस्था न की जाए तो इनका कोई अर्थ नहीं रहेगा। संविधान निर्माताओं ने इसी तथ्य को मध्यनजर रखते हुए संवैधानिक उपचारों का अधिकार दिया है। इसका अभिप्राय यह है कि नागरिक अधिकारों को लागू कराने के लिए न्यायपालिका की शरण ले सकता है।

डां. अम्बेडकर ने तो अनुच्छेद 32 का महत्त्व स्पष्ट करते हुए कहा था कि यदि मुझसे कोई यह पूछे कि संविधान का वह कौनसा अनुच्छेद है जिसके बिना संविधान शून्य प्रायः हो जायेगा तो मैं इस अनुच्छेद को छोड़कर किसी और अनुच्छेद की ओर संकेत नहीं कर सकता। यह तो संविधान की हृदय व आत्मा है। सर्वोच्च व उच्च न्यायालय द्वारा मूल अधिकारों की रक्षा के लिए निम्न पांच प्रकार के लेख जारी किये जा सकते हैं।

1. **बन्दी प्रत्यक्षीकरण लेख (Habeas corpus)** – यह उस व्यक्ति की प्रार्थना पर जारी किया जाता है जो यह समझता है कि उसे अवैध रूप से बन्दी बनाया गया है। इसके द्वारा न्यायालय सम्बन्धित अधिकारी को यह आदेश देते है कि बन्दी बनाये गये व्यक्ति को निश्चित समय व निश्चित स्थान पर निश्चित प्रयोजन के लिए उपस्थित करे जिससे न्यायालय यह जान सके कि उसे वैध रूप से बन्दी बनाया गया है या अवैध। अगर बन्दी बनाने का कारण अवैध होता है तो न्यायालय तत्काल इसे मुक्त करने की आज्ञा देता है।
2. **परमादेश (Mandamus)** – इस आदेश द्वारा न्यायालय उस पदाधिकारी को अपने कर्त्तव्य निर्वहन के लिए आदेश जारी कर सकता है जो पदाधिकारी अपने कर्त्तव्य का समुचित पालन नहीं कर रहे हैं।
3. **प्रतिषेध लेख (Prohibition)**– यह आलेख सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालय द्वारा अपने अधीनस्थ न्यायालयों को जारी करते हुए निर्देश दिया जाता है कि इस मामले में कार्यवाही नहीं करें क्योंकि यह उनके क्षेत्राधिकार से बाहर है।
4. **उत्प्रेषण लेख (Certiorari)**– इस आज्ञा पत्र का उपयोग किसी भी विवाद को निम्न न्यायालय से उच्च न्यायालय में भेजने के लिए जारी किया जाता है। जिससे कि वह अपने शक्ति से अधिक अधिकारों का प्रयोग न करे और न्याय के प्राकृतिक सिद्वान्त की पालना

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

की जा सके।

5. **अधिकार पृच्छा (Quowarranto)**– जब कोई व्यक्ति गैर कानूनी तौर पर किसी सरकारी या अर्द्ध सरकारी या निर्वाचित पद को संभालने का प्रयास करे तो उसे ऐसा आदेश जारी किया जा सकता है कि वह किस आधार पर इस पद पर कार्य कर रहा है? जब तक वह संतोषजनक उत्तर नहीं देता तब तक वह कार्य नहीं कर सकता। न्यायालय उस पद को रिक्त घोषित कर सकता है।

2.4 मूल अधिकारों का मूल्यांकन (Appreciation of Fundamental Rights) –

भारतीय संविधान में प्रदत्त मूल अधिकारों की आलोचना निम्न आधारों पर की गई है–

1. मूल अधिकारों में इतने प्रतिबंध लगा दिये गये है कि इनके बारे में कहा जाता है कि संविधान द्वारा एक हाथ से मूल अधिकार प्रदान किये गये व दूसरे हाथ से ले लिये गये।
2. आपातकाल के समय मूल अधिकार स्थगित किया जाना न्यायोचित है लेकिन शान्ति काल में भी मूल अधिकारों पर स्थगन किया जाना इनके अस्तित्व पर प्रश्न चिह्न लगा देता है। विशेष रूप से सामान्य परिस्थितियों में भी निवारक नजरबन्दी की जो व्यवस्था की गई है वह कटु आलोचना का विषय रही है। हरिविष्णु कामथ ने इन व्यवस्थाओं का विरोध करते हुए संविधान सभा में कहा था "इस व्यवस्था द्वारा हम तानाशाही राज्य की और पुलिस राज्य की स्थापना कर रहे हैं।"
3. मूल अधिकार भारतीय नागरिकों को व्यवस्थापिका की निरंकुशता से सुरक्षा प्रदान करने में समर्थ नहीं हैं। संसद तथा विधानसभा द्वारा बनाये गये कानून वैध हैं चाहे वे नागरिक हितों के प्रतिकूल ही क्यों न हों।
4. मौलिक अधिकारों पर प्रतिबन्धों की व्यवस्था संविधान में राष्ट्र व समाज विरोधी गतिविधियों को रोकने के लिए की गई है। व्यावहारिक दृष्टि से इनका प्रयोग राजनीतिक विरोधियों के स्वर को दबाने के लिये भी किया गया है।
5. मूल अधिकारों के अन्तर्गत भारतीय संविधान में अल्पसंख्यकों, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के लिये विशेष संरक्षण की व्यवस्था की गई है किन्तु इसका प्रयोग वोटों की राजनीति के लिए हुआ है।
6. शोषण के विरुद्धअधिकार यद्यपि स्त्रियों, बच्चों गरीब कामगारों के हितों की रक्षा के लिए बनाया गया है। किन्तु अशिक्षा, बेरोजगारी,गरीबी के कारण इन वर्गो का शोषण व्यवहारिक रूप से नहीं रोका जा सका है।
7. मौलिक अधिकारों को न्यायिक सुरक्षा देने के बावजूद वर्तमान न्यायिक प्रक्रिया लम्बी, जटिल व खर्चीली होने से आम नागरिक के हितों की रक्षा में सफल नहीं हो पा रही है।

उपरोक्त आलोचनाओं के बावजूद मौलिक अधिकारों का महत्त्व कम नहीं हुआ है क्योंकि राष्ट्र की सुरक्षा व्यक्ति की सुरक्षा से अधिक मूल्यवान है। मूल अधिकारों के अतिक्रमण की परिस्थिति अल्पकालिक ही होती है।

2.5 नीति निर्देशक तत्व (Directive Principles of State Policy)

हमारे संविधान की एक प्रमुख विशेषता नीति निर्देशक तत्व हैं जिन्हें संविधान निर्माताओं ने आयरलैण्ड के संविधान से लिया है। राज्य के नीति निर्देशक तत्व वे विचार हैं जिन्हे संविधान निर्माताओं ने भविष्य में बनने वाली सरकारों के समक्ष एक पथ प्रदर्शक के रूप में रखा है। डा. राजेन्द्र प्रसाद के शब्दो में "राज्य नीति निर्देशक सिद्वांतों का उद्देश्य जनता के कल्याण को प्रोत्साहित करने वाली सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करना है।" नीति निर्देशक तत्व राज्य की कार्यपालिका व व्यवस्थापिका के समक्ष आचार संहिता के रूप में हैं। देश की मौलिक अधिकार परामर्शदात्री समिति ने यह स्वीकारा था कि इन्हे प्रशासन संचालन हेतु मूलभूत सिद्वांत माना जाए।

संविधान के अनुच्छेद 37 में कहा गया है कि इस भाग में दिये उपबन्धों को किसी भी न्यायालय द्वारा बाध्यता नहीं दी जा सकेगी तब भी इसमें दिये हुए तत्व देश के शासन में मूलभूत हैं और विधि निर्माण में इन तत्वों का प्रयोग करना राज्य का कर्त्तव्य होगा। एल जी खेडेकर के अनुसार" नीति निर्देशक तत्व वे आदर्श हैं जिनकी क्रियान्वति का प्रयत्न शासन को करना है।" संविधान के भाग 4 में अनुच्छेद 36 से 51 तक राज्य के नीति निर्देशक तत्वों का उल्लेख किया गया है।

2.6 राज्य के नीति निर्देशक तत्त्व (Directive Principles of State Policy)

लोक कल्याणकारी राज्य की कल्पना को साकार रूप देने, समता पर आधारित समाज का निर्माण करने, विकास हेतु सभी को सामान अवसर प्रदान करने के उद्देश्य से संविधान में राज्य के नीति निर्देशक तत्त्वों का उल्लेख किया गया है।

संविधान के भाग 4 में अनुच्छेद 36 से 51 तक राज्य के नीति निर्देशक तत्त्वों की परिभाषा सहित अन्य प्रावधानों की व्यवस्था की गई है। ये नीति निर्देशक तत्त्व नागरिकों की शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक समता तथा राज्य के लिये अनुसरणीय नीति के विश्लेषण से सम्बन्धित हैं। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से इन सिद्वान्तों अथवा तत्त्वों को निम्नलिखित वर्गों में बांटा जा सकता है :

(क) आर्थिक सुरक्षा सम्बन्धी निर्देशक तत्त्व (Directive Principles and Economic Security) :

संविधान निर्माताओं का उद्देश्य भारत में एक लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना था। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु संविधान में अनेक निर्देशक तत्त्वों की व्यवस्था की गयी है। ये तत्त्व निम्नलिखित हैं :

1. संविधान के अनुच्छेद 39 के अनुसार राज्य अपनी नीति इस प्रकार निधारित करेगा जिससे कि :

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

- पुरुष और स्त्री सभी नागरिकों को समान रूप से जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार हो;
- समुदाय के भौतिक साधनों का स्वामित्व और वितरण इस प्रकार बंटा हो जिससे सामूहिक हित का सर्वोत्तम रूप से साधन हो;
- सम्पत्ति और उत्पादन के साधनों का इस प्रकार केन्द्रीकरण न हो कि सार्वजनिक हित को किसी प्रकार की बाधा पहुँचे;
- स्त्री और पुरुष दोनों को समान कार्य के लिए समान वेतन मिले;
- श्रमिक पुरुषों और स्त्रियों के स्वास्थ्य तथा शक्ति एवं बालकों की सुकुमार अवस्था का आर्थिक दुरूपयोग न हो;
- राज्य के द्वारा बच्चों के स्वस्थ रूप से विकास के लिए अवसर और सुविधाएँ प्रदान की जायेगी, उन्हें स्वतन्त्रता और सम्मान की स्थिति प्राप्त होगी तथा बच्चों और युवकों की शोषण से तथा नैतिक और आर्थिक परित्याग से रक्षा की जायेगी।

2. अनुच्छेद 41 में कहा गया है कि राज्य अपने विकास और आर्थिक सामर्थ्य की सीमाओं के अन्तर्गत इस बात का प्रयास करेगा कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्तानुसार रोजगार पा सके, शिक्षा प्राप्त कर सके एवं बेकारी, वृद्धावस्था, बीमारी तथा अंगहीन होने की दशा में सार्वजनिक सहायता प्राप्त कर सके।
3. अनुच्छेद 42 में कहा गया है कि राज्य काम के लिए यथोचित और मानवोचित दशाओं का प्रबन्ध करेगा तथा ऐसी व्यवस्था करेगा जिससे स्त्रियों को प्रसूतावस्था में कार्य न करना पड़े।
4. अनुच्छेद 43 में कहा गया है कि राज्य कानून द्वारा अथवा आर्थिक संगठनों द्वारा अथवा अन्य किसी प्रकार से ऐसी व्यवस्था करेगा जिससे कृषि, उद्योगों अथवा अन्य क्षेत्रों में लगे हुए सभी श्रमिकों को अपने जीवन निर्वाह के लिये यथोचित वेतन मिल सके, उनका जीवन–स्तर ऊँचा उठ सके, वे अपने अवकाश के समय का पूरा उपयोग कर सकें तथा उन्हें सामाजिक और सांस्कृतिक उत्रति के लिए सुअवसर प्राप्त हो सकें।
5. इसी अनुच्छेद में यह भी कहा गया है कि राज्य ग्रामीण क्षेत्रों में व्यक्तिगत अथवा सहकारी आधार पर कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन देने का प्रयत्न करेगा।

   42 वें संविधान संशोधन द्वारा आर्थिक सुरक्षा सम्बन्धी निर्देशक तत्त्वों में दो तत्त्व और जोड़ दिये गये है

- कमजोर वर्गों के लिये निःशुल्क कानूनी सहायता
- औद्योगिक संस्थाओं के प्रबन्धन में कर्मचारियों की भागीदारी बनाने की व्यवस्था।

6. नवीन अनुच्छेद 43क के अनुसार राज्य उचित व्यवस्थापन अथवा अन्य किसी प्रकार से औद्योगिक संस्थानों अथवा अन्य ऐसे ही संगठनों के प्रबन्ध में श्रमिकों को भागीदार बनाने के लिए कदम उठायेगा।
7. अनुच्छेद 48 के अनुसार राज्य कृषि एवं पशुपालन का आधुनिक तथा वैज्ञानिक ढंग से संचालन करेगा एवं गाय, बछड़ों तथा अन्य दूध देने वाले व भार ढोने वाले पशुओं की नस्ल सुधारने और उनके वध को रोकने का प्रयत्न करेगा।
8. 44वें संविधान संशोधन (अप्रेल 1979) द्वारा एक और तत्त्व जोड़ा गया कि राज्य विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले और विभिन्न व्यवसायों में लगे हुए व्यक्तियों के समुदायों के बीच विद्यमान आय, सामाजिक स्तर, सुविधाओं और अवसरों सम्बन्धी भेदभाव को भी कम से कम करने का प्रयत्न करेगा।

(ख) **सामाजिक सुरक्षा और शिक्षा सम्बन्धी निर्देशक तत्त्व (Directive Principles, Social Security and Education) :** लोगों के सामाजिक तथा शैक्षिक स्तर को ऊँचा उठाने की दृष्टि से भी संविधान में कुछ निर्देशक तत्त्वों का वर्णन किया गया है,

1. अनुच्छेद 44 के अनुसार राज्य देश के सभी नागरिकों के लिए एक समान आचार–संहिता बनाने का प्रयत्न करेगा।
2. अनुच्छेद 45 के अनुसार राज्य संविधान लागू होने के 10 वर्ष के अन्दर 14 वर्ष की आयु तक के बालकों के लिए निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था करेगा।
3. अनुच्छेद 46 के अनुसार राज्य जनता के पिछड़े हुए वर्गों– विशेषकर अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की शिक्षा तथा आर्थिक हितों की उन्नति के लिए विशेष प्रयत्न करेगा और सामाजिक अन्याय तथा सभी प्रकार के शोषण से उनकी रक्षा करेगा।
4. अनुच्छेद 47 के अनुसार राज्य का यह प्रमुख कर्त्तव्य होगा कि वह लोगों के जीवन स्तर को ऊंचा उठाने तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य के विकास के लिए प्रयत्न करे। राज्य औषधि में प्रयोग किये जाने के अतिरिक्त ऐसे मादक द्रव्यों व पदार्थो के सेवन पर प्रतिबन्ध लगायेगा जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं।
5. 42वें संविधान संशोधन में एक नवीन अनुच्छेद 48क और जोड़ा गया है जिसमें कहा गया है कि राज्य पर्यावरण की रक्षा और उसमें सुधार करने तथा देश के वन्य जीव और वनों की सुरक्षा के लिए प्रयत्न करेगा।

(ग) **पंचायतीराज, प्राचीन स्मारक तथा न्याय संबंधी निर्देशक तत्त्व (Panchayatiraj, Ancient Heritage Sites, Justice and Directive Principles):** देश के पंचायती राज के विकास, प्राचीन स्मारकों की रक्षा तथा न्याय की प्राप्ति के उद्देश्य से भी संविधान में कुछ निर्देशक तत्त्वों का वर्णन किया गया है, जो इस प्रकार हैः–

1. अनुच्छेद 40 के अनुसार राज्य, ग्राम पंचायतों के गठन के लिए प्रयत्न करेगा और उनको ऐसी शक्तियाँ तथा अधिकार प्रदान करेगा जिससे कि वे स्वायत्त शासन की

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

इकाइयों के रूप में कार्य कर सकें।

2. अनुच्छेद 49 में कहा गया है कि राज्य का यह दायित्व होगा कि वह प्रत्येक स्मारक अथवा स्थान, कलात्मक अथवा ऐतिहासिक रूचि की वस्तुओं की जिन्हें संसद ने राष्ट्रीय महत्त्व का घोषित कर दिया हो, रक्षा करे और उन्हें नष्ट होने, कुरूप बनाने अथवा उनका निर्यात करने से रोकने का प्रयत्न करे।
3. अनुच्छेद 50 में कहा गया है कि राज्य न्यायपालिका को कार्यपालिका से पृथक् करने का प्रयत्न करेगा। इसका उद्देश्य न्यायपालिका की स्वतन्त्रता को सुरक्षित करना है।

(घ) अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा सम्बन्धी निर्देशक तत्व (International Peace and Security and Directive Principles) : अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की दृष्टि से संविधान के अनुच्छेद 51 में जिन निर्देशक तत्वों को अपनाया गया है, वे इस प्रकार हैं :

1. राज्य अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की वृद्धि के लिए प्रयत्न करेगा।
2. राज्य संसार के विभिन्न राष्ट्रों के मध्य न्यायपूर्ण व सम्मानपूर्ण सम्बन्धों को बनाये रखने का प्रयत्न करेगा।
3. राज्य, राष्ट्रों के आपसी व्यवहार में अन्तर्राष्ट्रीय कानून और सन्धियों के प्रति आदर की भावना बढ़ाने का प्रयत्न करेगा।
4. राज्य अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को मध्यस्थता द्वारा सुलझाने के लिए प्रोत्साहन देगा।

निर्देशक तत्वों के उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन सिद्धान्तों के आधार पर भारत में वास्तविक लोकतन्त्र की स्थापना हो सकेगी। इन सिद्धान्तों के कार्यान्वयन से भारत, संविधान की प्रस्तावना के अनुरूप एक कल्याणकारी राज्य बन सकेगा।

नीति निर्देशक तत्वों का महत्व (Importance of Directive Principles) :–

संवैधानिक और व्यवहारिक दृष्टिकोण से नीति निर्देशक तत्व अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इन तत्वों के महत्व का अध्ययन निम्नलिखित रूपों में किया जा सकता है।

1. **शासन के लिए आचार संहिता :–** यद्यपि इन निर्देशक तत्वों को न्यायालय द्वारा क्रियान्वित नहीं किया जा सकता किन्तु इनके पीछे जनमत की शक्ति होती है जो प्रजातन्त्र का सबसे बड़ा न्यायालय है। अतः जनता के प्रति उत्तरदायी कोई भी सरकार इनकी अवहेलना का साहस नहीं कर सकती।
2. **लोक कल्याणकारी राज्य की रूप रेखा :–** डा. अम्बेडकर ने संविधान सभा में कहा था कि संविधान का उद्देश्य केवल राजनीतिक लोकतंत्र की व्यवस्था करना ही नहीं है बल्कि ऐसे कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना है जिसमें आर्थिक व सामाजिक लोकतंत्र का भी समावेश हो। ये सिद्धांत इस आदर्श की पूर्ति करते हैं।
3. **शासन के मूल्यांकन का आधार :–** नीति निर्देशक तत्व जनता द्वारा शासन की सफलता या असफलता जांचने के मानदण्ड हैं। इनके द्वारा सरकारों के विभिन्न कार्यों का मूल्यांकन किया जा सकता है।
4. **संविधान के क्रियान्वयन में सहायक :–** नीति निर्देशक तत्व देश के शासन में मूलभूत है जिसका तात्पर्य यह है कि देश के प्रशासन के लिए उत्तरदायी सभी सत्तायें इनके द्वारा निर्देशित होंगी। न्यायपालिका भी शासन का एक महत्वपूर्ण अंग होने के कारण यह आशा की जाती है कि भारत में न्यायालय संविधान की व्यवस्था के कार्य में नीति निर्देशक तत्वों को उचित महत्व देंगे।
5. **सामाजिक, आर्थिक परिवर्तन में सहायक :–** भारतीय संविधान निर्माताओं का उद्देश्य भारत में एक लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना था। इस हेतु आर्थिक सुरक्षा व आर्थिक न्याय प्रदान करने हेतु राज्य के प्रत्येक स्त्री, पुरुष को जीविका के साधन उपलब्ध कराना, सम्पति का केन्द्रीयकरण रोकना, स्त्री, बाल श्रमिकों को शोषण से सुरक्षा प्रदान करना आदि समता मूलक समाज स्थापना में सहायक सिद्ध हुए हैं। इसी तरह लोगों के जीवन स्तर सुधार हेतु चिकित्सा, शिक्षा, रोजगार उपलब्ध कराने में नीति निर्देशक तत्वों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

2.7 नीति निर्देशक तत्वों के क्रियान्वयन के कुछ महत्वपूर्ण उदाहरण (Some Exampls of Implementation of Directive Principles) –

1. **भूमि सुधार** – आजादी से पूर्व किसान जमींदारी व जागीरदारी प्रथा के शोषण का शिकार थे। किन्तु संविधान की नौंवी अनुसूची में 1951 में भूमि सुधारों के अन्तर्गत भूमि पर जोतने वाले का अधिकार लागू करने से किसानों को सुरक्षा प्राप्त हुई है।
2. **पंचायती राज और स्थानीय स्वशासन** – नीति निर्देशक तत्वों में ग्राम पंचायतों की स्थापना और उन्हें स्वायत्त शासन की इकाईयाँ का रूप देने की बात की गई है। 2 अक्टूबर 1959 से पंचायती राज की व्यवस्था में लागू की गई। 1993 में 73वें संविधान संशोधन अधिनियम के आधार पर पंचायती राज को संवैधानिक दर्जा दिया गया। इसी तरह 74 वें संविधान संशोधन में शहरी क्षेत्र में स्थानीय स्वशासन की व्यवस्था को सुदृढ़ करने का प्रयास किया गया है।
3. **पंचवर्षीय योजनाएं** :– देश के आर्थिक विकास के लिए नियोजन की प्रक्रिया को अपनाया गया। इस आधार पर योजना आयोग का गठन कर आर्थिक विकास का ढांचा तैयार किया गया। अब तक 11 पंचवर्षीय योजनाएं लागू की जा चुकी हैं। वर्तमान पंचवर्षीय योजना एक अप्रेल 2012 से संचालित की जा रही है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

इन योजनाओं में कृषि, जलसंधान पशु नस्ल सुधार, ऊर्जा, उद्योग, परिवहन, श्रम, आवास सुरक्षा, वैज्ञानिक अनुसंधान, शिक्षा आदि के सम्बन्ध में विभिन्न कार्यक्रम तैयार कर क्रियान्वयन निरन्तर जारी है।

4. **कमजोर वर्गों का कल्याण** :— अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों व पिछड़े वर्ग के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने के लिए संविधान व शासन में विशेष प्रावधान किये गये हैं। प्रतिनिधि संस्थाओं में इनके लिए आरक्षण की अवधि 95वें संवैधानिक संशोधन द्वारा 25 जनवरी 2020 तक के लिए बढा दी गई है। अस्पृश्यता निवारण के लिए कठोर कानून बनाये गये हैं। इनके शैक्षिक स्तर उन्नयन के लिए निःशुल्क शिक्षा, छात्रवृतियां आदि की व्यवस्था की गई है। 65वें संविधान संशोधन अधिनियम के आधार पर 7 सदस्यीय ''अनुसूचित जाति व जनजाति आयोग'' की स्थापना कर इसे संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया है। यह आयोग इस वर्ग के शोषण सम्बन्धी घटनाओं की जांच कर सकेगा। महिला सशक्तिकरण के लिए 73वें व 74 संविधान संशोधन द्वारा पंचायती राज संस्थाओं व शहरी क्षेत्र की स्थानीय स्वशासन संस्थाओं में महिलाओं के लिए 30 प्रतिशत स्थान आरक्षित किये गये हैं।
5. **सामाजिक सुरक्षा** :— नागरिकों के सामाजिक उत्थान के लिए वृद्धावस्था पेंशन योजना, स्वास्थ्य बीमा योजना, महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी अधिनियम 2005 आदि कार्यक्रम राष्ट्रीय स्तर पर संचालित किये जा रहे हैं।
6. **बड़े उद्योगों का राष्ट्रीयकरण** :— आर्थिक समानता के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए जीवन बीमा, परिवहन, कोयला, खान, पर्यटन आदि के साथ साथ प्रमुख बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया जा चुका है।
7. **न्यायिक व्यवस्था में सुधार** :— सस्ता व शीघ्र न्याय सुलभ कराने के लिए लोक अदालतों व त्वरित न्यायालयों की व्यवस्था को अपनाया गया है।
8. **अनिवार्य व निशुल्क प्राथमिक शिक्षा का अधिकार** :— स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारत की मात्र 14 प्रतिशत आबादी शिक्षित थी। हमारी सरकारों ने शिक्षा के महत्व को समझते हुए लोगों तक शिक्षा पहुंचाने पर जोर दिया। इसी के अन्तर्गत 86 वें संविधान संशोधन के आधार पर प्रारंभिक शिक्षा के अन्तर्गत 6 से 14 वर्ष के प्रत्येक बालक के लिए अनिवार्य व निःशुल्क शिक्षा के अधिकार का प्रावधान किया गया है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सर्व शिक्षा अभियान, मिड डे मील आदि कार्यक्रम संचालित किये जा रहे हैं।
9. **सम्पति के अधिकार से सम्बन्धित व्यवस्था में परिवर्तन** :— आर्थिक व सामाजिक न्याय के मार्ग में बाधित मानते हुए सम्पति के अधिकार को 44वें संविधान संशोधन के द्वारा मूल अधिकारों की सूची से हटा कर कानूनी अधिकार बना दिया गया है।
10. **समान कार्य हेतु समान वेतन** :— वर्ग,जाति, लिंग के आधार पर आजीविका में भेदभाव दूर करते हुए स्त्री पुरुषों को समान कार्य के लिए समान वेतन का प्रावधान किया गया है। केन्द्र व राज्य सरकारों द्वारा किये गये ये कार्य यह दर्शाते हैं कि भारत में एक पंथ निरपेक्ष समाजवादी व लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना के लिए इन नीति निर्देशक तत्वों को लागू किया गया है।

2.8 मूल अधिकार व नीति निर्देशक तत्व (Fundamental Rights and Directive Principles)

मूल अधिकार व नीति निर्देशक तत्त्व दोनों ही नागरिकों के कल्याण तथा विकास से सम्बन्धित हैं तथा नागरिकों का जीवन श्रेष्ठ बनाने के लिए प्रतिबद्ध हैं, फिर भी दोनों में अन्तर है :

1. मौलिक अधिकार वाद योग्य हैं लेकिन निर्देशक तत्त्व वाद योग्य नहीं हैं।
2. मौलिक अधिकार नागरिकों के कानूनी अधिकार हैं लेकिन निर्देशक तत्त्व समाज के नैतिक बन्धन हैं।
3. मौलिक अधिकार व्यक्ति के व्यक्तिगत अधिकार हैं लेकिन निर्देशक तत्त्व राज्य की नीतियों के निर्धारण में पथ प्रदर्शक हैं।
4. मौलिक अधिकार राजनीतिक लोकतन्त्र के प्रतीक हैं लेकिन निर्देशक तत्त्व सामाजिक व आर्थिक लोकतन्त्र के प्रतीक हैं।

2.9 मूल अधिकारों व राज्य नीति के निर्देशक तत्वों में सम्बन्ध (Relations between Fundamental Rights and Directive Principles)

संविधान के भाग तीन में मूल अधिकार और भाग चार में राज्य के नीति निर्देशक तत्त्व वर्णित हैं। संविधान निर्माताओं ने इन दोनों भागों को एक दूसरे का पूरक माना है। ये सम्मिलित रूप से कल्याणकारी लोकतांत्रिक राज्य के निर्माण की योजना प्रस्तुत करते हैं। न्यायाधीश गजेन्द्र गड़कर का मत था कि दोनों भागों में यदि गतिरोध हो तो न्यायालय को ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए जिससे दोनों में सामंजस्य स्थापित हो जाए। सन् 1967 में गोलकनाथ वाले मामले में न्यायपालिका ने अधिकारों को सर्वोच्च एवं संसद द्वारा असंशोधनीय घोषित कर दिया था। सन् 1973 में केशवानन्द भारती वाले वाद में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह घोषित किया गया कि संसद द्वारा संविधान के किसी भी भाग में परिवर्तन या संशोधन तो किया जा सकता है, किन्तु संविधान के 'मूल ढांचे' में कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता। 42वें संविधान संशोधन द्वारा नीति निर्देशक तत्वों को मूल अधिकारों पर वरीयता दी गई थी किन्तु बाद में मिनर्वा मिल्स वाले वाद में उच्चतम न्यायालय ने मूल अधिकारों पर नीति निर्देशक तत्वों की सर्वोच्चता को समाप्त कर यह स्पष्ट कर

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

दिया कि संविधान में संशोधन करने की संसद की शक्ति असीमित नहीं है। वह मूल ढांचे का उल्लंघन नहीं कर सकती है। वर्तमान में न्यायपालिका द्वारा मूल अधिकारों की व्याख्या नीति निर्देशक तत्त्वों के सन्दर्भ में की जा रही है क्योंकि मूल अधिकार एवं नीति निर्देशक तत्त्व एक दूसरे के विरोधी नहीं पूरक हैं।

मूल कर्त्तव्य (Fundamental Duties)

मूल अधिकार व कर्त्तव्य में विशिष्ट सम्बन्ध है। अधिकार व कर्त्तव्य एक दूसरे के पूरक हैं एक व्यक्ति के कर्त्तव्य दूसरे व्यक्ति के अधिकार बन जाते हैं। अतः कर्त्तव्यों की अनुपस्थिति में अधिकारों की कल्पना ही संभव नहीं। संविधान में 1950 में भारतीय नागरिकों के लिए सिर्फ मूल अधिकारों का ही उल्लेख किया गया था, मूल कर्त्तव्यों का नहीं। लेकिन 1976 में 42 वां संविधान संशोधन करते हुए यह अनुभव किया गया कि नागरिकों के मूल कर्त्तव्यों का उल्लेख किया जाना चाहिए। अतः संविधान के भाग 'चार क' में 10 कर्त्तव्यों को जोड़ा गया। इसमें उल्लेख किया गया कि भारत के प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य होगा कि वह –

1. संविधान का पालन करे तथा उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज तथा राष्ट्रगान का आदर करे।
2. स्वतन्त्रता के लिये हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हदय में संजोये रखे व उनका पालन करे।
3. भारत की प्रभुता, एकता व अखण्डता को अक्षुण्ण रखे।
4. देश की रक्षा करे और आह्वान किये जाने पर राष्ट्र की सेवा करे।
5. भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा, प्रदेश या वर्ग पर आधारित भेदभाव से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध हो।
6. हमारी समन्वित संस्कृति की गौरवशाली परम्परा का महत्त्व समझे और उसका परिरक्षण करे।
7. प्राकृतिक पर्यावरण की जिसके अन्तर्गत वन,झील, नदी व वन्य जीव है, की रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणी मात्र के प्रति दयाभाव रखे।
8. वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे।
9. सार्वजनिक सम्पत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे।
10. व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्र में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत् प्रयास करे जिससे राष्ट्र निरन्तर बढ़ते हुये प्रगति व उत्कर्ष की नई ऊँचाइयों को छू ले।
11. 86 वें संवैधानिक, संशोधन (2002) के आधार पर अनुच्छेद 51(क) को संशोधित करते हुए 11वां मूल कर्त्तव्य जोड़ा गया है कि ''माता पिता या संरक्षक का कर्त्तव्य होगा कि वे 6 से 14 वर्ष के अपने बच्चों को शिक्षा के लिए अवसर प्रदान करें।''

2.10 मूल कर्त्तव्यों की आलोचना (Criticism of Fundamental Duties)

1. कर्त्तव्यों के उल्लंघन पर दण्ड की व्यवस्था नहीं की गई है – मूल कर्त्तव्यों के उल्लंघन पर हमारे संविधान में किसी तरह की कोई दण्ड की व्यवस्था नहीं की गई है। इससे इनकी पालना भी भली भांति नहीं हो पा रही है।
2. अत्यधिक आदर्शवादी – मूल कर्त्तव्य अत्यधिक आदर्शवादी विचारों से प्रेरित हैं जैसे राष्ट्रीय आदर्शों की पालना, देश की समन्वित संस्कृति व गौरवशाली परम्परा की रक्षा करना, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद ऐसे ही आदर्श है जो प्राय व्यवहार में काम नहीं लिये जा रहे हैं।

यह सर्व मान्य तथ्य है कि कर्त्तव्यों की पालना किये बिना अधिकारों का उपयोग संभव नहीं। ये हमारे नागरिकों के लिए आदर्श के रूप में जोड़े गये हैं। ये राष्ट्रहित व राष्ट्रप्रेम की भावना जागृत करने वाले हैं। संविधान में इनको सम्मिलित करने के पीछे कोई राजनीतिक या दलगत भावना नहीं थी। ऐसा माना जा रहा है कि नागरिक चेतना के विकास के साथ साथ नागरिक भविष्य में इन कर्त्तव्यों को धीरे धीरे पालन करने में अभ्यस्त हो जाएँगे। प्रत्येक नागरिक द्वारा इन कर्त्तव्यों का पालन करना सर्वोच्च धर्म समझा जाना चाहिए।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- मूल अधिकार वे अधिकार हैं जो व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक होने के कारण संविधान द्वारा नागरिकों को प्रदान किये गये हैं।
- मूल अधिकार का महत्त्व – प्रत्येक व्यक्ति को सुरक्षा प्रदान करना, शासन की स्वेच्छा चारिता पर रोक, न्यायिक सुरक्षा लोकतंत्र के आधार स्तम्भ, समानता के कारक आदि।
- भारतीय संविधान के भाग 3 में मूल अधिकारों के सम्बन्ध में कुल 23 अनुच्छेद दिये गये हैं। अनुच्छेद 12 से 30 व 32 से 35 तक मूल अधिकारों का उल्लेख है।
- मूल संविधान में 07 मूल अधिकार थे किन्तु 44वें संविधान संशोधन द्वारा सम्पति का अधिकार इस सूची से हटा दिया गया। अब छः मूल अधिकार हैं– समानता का अधिकार, स्वतन्त्रता का अधिकार, शोषण के विरुद्ध अधिकार, धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार, संस्कृति एवं शिक्षा अधिकार, संवैधानिक उपचारों का अधिकार।

मौलिक अधिकारों की आलोचना –

मौलिक अधिकारों पर अत्यधिक प्रतिबन्ध लगे हैं, शांति काल में भी इन पर प्रतिबंध लगाना, व्यवस्थापिका का कानून मानने की बाध्यता, राजनीतिक विरोधियों को दबाने मे इनका उपयोग, शोषण के विरुद्ध प्रभावी नहीं, न्यायिक प्रक्रिया की बाधा।

- नीति निर्देशक तत्व वे विचार हैं जिन्हे संविधान निर्माताओं

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

ने भविष्य में बनने वाली सरकारों के समक्ष एक पथ प्रदर्शक के रूप में रखा है।

- संविधान के भाग 4 में अचुन्छेद 36 से 51 तक राज्य के नीति निर्देशक तत्वों की परिभाषा व इसके प्रावधानों की व्यवस्था की गई है।
- **नीति निर्देशक तत्वों को चार वर्गों में विभक्त कर अध्ययन किया जाता है–**

अ. आर्थिक सुरक्षा सम्बन्धी निर्देशक तत्व
ब. सामाजिक हित और शिक्षा सम्बन्धी नीति निर्देशक तत्व
स. पंचायती राज, प्राचीन स्मारकों तथा न्याय सम्बन्धी नीति निर्देशक तत्व
दृ अन्तर्राष्ट्रीय शांति व सुरक्षा सम्बन्धी सिद्धांत।

- **नीति निर्देशक तत्वों का महत्व–**

अ. शासन हेतु आचार संहिता
ब. लोक कल्याणकारी राज्य की रूप रेखा
स. शासन के मूल्यांकन का आधार
दृ संविधान की व्याख्या में सहायक
य. सामाजिक आर्थिक परिवर्तन में सहायक

- नीति निर्देशक तत्वों के क्रियान्वयन हेतु सरकार द्वारा विभिन्न कार्य किये जा रहे हैं जैसे– भूमि सुधार, पंचायती राज शासन को सुदृढ़ करना, पंचवर्षीय योजना, निर्माण, कमजोर वर्गों के कल्याण हेतु योजनाएं, सामाजिक सुरक्षा, बड़े उद्योगों का राष्ट्रीयकरण, न्यायिक व्यवस्था में सुधार, अनिवार्य व निशुल्क शिक्षा का अधिकार, सम्पति के अधिकार व्यवस्था में परिवर्तन, समान कार्य हेतु समान वेतन आदि।
- संविधान में 42 वें संशोधन 1976 में चतुर्थ भाग में चतुर्थ 'क' जोड़ा गया है इसमें 11 मूल कर्त्तव्य की व्यवस्था की गई है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. भारत के संविधान के किस भाग में मूल अधिकारों का उल्लेख किया गया है?
(अ) भाग एक (ब) भाग दो
(स) भाग तीन (द) भाग चार ( )
2. जब किसी व्यक्ति को पुलिस द्वारा गिरफ्तार कर लिया जाता है तो कितने समय के अन्दर निकटतम न्यायाधीश के समक्ष प्रस्तुत करना होगा?
(अ) 12 घण्टे (ब) 24 घण्टे
(स) 36 घण्टे (द) 48 घण्टे ( )
3. नीति निर्देशक तत्व किस देश के संविधान से लिये गये हैं?
(अ) यू.एस.ए. (ब) इग्लैंड
(स) आयरलैण्ड (द) आस्ट्रेलिया ( )
4. नीति निर्देशक तत्व का उल्लेख संविधान के किस भाग में किया गया हैं?
(अ) पहले (ब) दूसरे
(स) तीसरे (द) चौथे ( )
5. ''पुरुष व स्त्री सभी नागरिकों को समान रूप से जीविका उपार्जन का अधिकार है।'' यह निम्न में से किस प्रकार का नीति निर्देशक तत्व है–
(अ) सामाजिक हित व शिक्षा सम्बन्धी
(ब) आर्थिक सुरक्षा सम्बन्धी
(स) न्याय सम्बन्धी
(द) इनमें से कोई नहीं ( )
6. किस संविधान संशोधन द्वारा मूल कर्त्तव्यों को संविधान के साथ जोड़ा गया है?
(अ) 44 वें संशोधन (ब) 42 वें संशोधन
(स) 41 वें संशोधन (द) 45 वें संशोधन ( )
7. वर्तमान में भारतीय संविधान में कितने मूल अधिकार है?
(अ) 05 (ब) 06
(स) 07 (द) 08 ( )
8. जब न्यायालय किसी पदाधिकारी को उसके कर्त्तव्य निर्वहन के लिए आदेश जारी करता है तो इसे कहते हैं–
(अ) परमादेश (ब) प्रतिषेध लेख
(स) उत्प्रेषण आदेश (द) अधिकार पृच्छा ( )

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. संविधान के किन अनुच्छेदों में मूल अधिकारों का उल्लेख है?
2. स्वतंत्रता का अधिकार किस अनुच्छेद से सम्बन्धित है?
3. नीति निर्देशक तत्वों का महत्व स्पष्ट कीजिए।
4. नीति निर्देशक तत्वों की पालना में सरकार द्वारा शिक्षा सम्बन्धी संचालित विभिन्न योजनाओं का उल्लेख कीजिए।
5. संविधान के किस भाग में मूल कर्त्तव्य जोड़े गये हैं?
6. संविधान में अनुच्छेद 14 से 18 किस मौलिक अधिकार से सम्बन्धित है?
7. शोषण के विरुद्ध अधिकार किस अनुच्छेद से सम्बन्धित है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. मूल अधिकारों से क्या अभिप्राय है?
2. मूल अधिकारों में धार्मिक स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में क्या प्रावधान किये गये हैं?
3. निवारक नजरबन्दी पर टिप्पणी लिखें।
4. राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम की उपादेयता स्पष्ट कीजिए।
5. भारतीय संविधान में दिये गये कोई 5 मूल कर्त्तव्य लिखिये।
6. समानता के अधिकार हेतु संविधान में दिये गये प्रावधानों का उल्लेख कीजिए।
7. ''मूल अधिकार व मूल कर्त्तव्य एक दूसरे के पूरक हैं।'' स्पष्ट कीजिए।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारतीय संविधान में नागरिकों को दिये गये मूल अधिकारों का उल्लेख करते हुए किन्हीं दो मूल अधिकारों का विस्तृत वर्णन कीजिए।
2. मूल अधिकार से क्या अभिप्राय है? इसका महत्त्व स्पष्ट करते हुए समानता के मूल अधिकार का वर्णन कीजिए।
3. राज्य के नीति निदेशक तत्वों की व्याख्या कीजिये तथा निदेशक तत्व व मौलिक अधिकारों में अन्तर स्थापित कीजिए।
4. नीति निर्देशक तत्वों की सफल क्रियान्वति हेतु भारत सरकार द्वारा संचालित विभिन्न कार्यक्रमों का विस्तृत वर्णन कीजिए।
5. भारतीय संविधान द्वारा प्रदान किये गये स्वतन्त्रता के अधिकार का वर्णन कीजिए और बताइए कि क्या स्वतंत्रता पर लगाये प्रतिबन्धों और निवारक नजरबन्दी कानून की व्यवस्था से स्वतन्त्रता का अधिकार समाप्त हो गया है?
6. भारतीय संविधान में दिये गये मूल कर्त्तव्यों का विस्तृत वर्णन कीजिए।

बहुचयनात्मक प्रश्नों की उत्तरमाला

1. अ	2. ब	3. स	4. द
5. ब	6. ब	7. ब	8. अ

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

3. भारत की संघीय व्यवस्था के आधारभूत तत्व
(Main Elements of Indian Federal System)

सत्ता की शक्तियों के वितरण तथा स्तरों के आधार पर अपनायी जानी वाली शासन प्रणाली ही संघवाद है। इस प्रणाली के अंतर्गत शासन का संचालन केन्द्र तथा उसकी विभिन्न इकाईयों के माध्यम से होता है। संघीय शासन का निर्माण भी प्रायः दो प्रकार से होता है। प्रथम पूर्व में अनेक संप्रभु इकाईयों का आपस में एक हो जाना और द्वितीय, एक बड़ी राजनीतिक इकाई को शासन की कार्यकुशलता की दृष्टि से अलग अलग इकाईयों में विभाजित कर देना। पहली प्रक्रिया का सबसे प्रमुख उदाहरण अमेरिका है जबकि दूसरे का भारत। वर्तमान में अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, स्विट्जरलैण्ड, रुस, कनाडा तथा भारत जैसे देश सफल संघीय देश माने जाते हैं।

भारत में संविधान के तहत संघीय शासन की स्थापना की गयी है। यद्यपि 'संघवाद' के स्थान पर ''राज्यों का संघ'' शब्द का प्रयोग किया गया है। संविधान लागू होने पर भारत में एक केन्द्रीय सत्ता और 14 राज्यों/प्रान्तों की सत्ता स्थापित कर संघीय ढाँचे को मूर्त रूप दिया गया।

वर्तमान में भारत में 29 राज्य और 7 केन्द्र शासित प्रदेश हैं।

3.1 भारतीय संघीय व्यवस्था के प्रमुख तत्व (Main Elements of Indian Federal System) –

1. **शासन शक्तियों का स्पष्ट विभाजन** – संविधान की सातवीं अनुसूची के अन्तर्गत अनुच्छेद 246 केन्द्र और राज्यों के बीच शक्तियों का विभाजन सूची पद्धति के माध्यम से किया गया है। संघीय सूची के 97 विषयों पर केन्द्र को विधि निर्माण का अधिकार है। राज्य सूची के 66 विषयों पर राज्यों को विधि निर्माण का अधिकार है जबकि समवर्ती सूची के 47 विषयों पर केन्द्र तथा राज्य दोनों कानून बना सकते हैं। परन्तु केन्द्र और राज्यों के बीच संघर्ष की स्थिति में केन्द्रीय कानून ही अन्तिम रूप से मान्य होगा। इसके अतिरिक्त समस्त अवशिष्ट शक्तियाँ केन्द्र को प्रदान की गई है। केन्द्र की इस मजबूत स्थिति के कारण ही विशेषज्ञ भारत को केन्द्रीय वर्चस्व वाला संघवाद मानते हैं।
2. **निष्पक्ष व स्वतंत्र न्यायपालिका** – किसी भी संघीय व्यवस्था के लिए एक स्वतंत्र और निष्पक्ष न्यायपालिका का होना अत्यावश्यक है। इसी से ' विधि का शासन ' स्थापित होता है और केन्द्र तथा राज्यों के बीच विवादों का संविधान के प्रावधानों के अनुरूप समाधान किया जा सकता है। ऐसे अनेक अवसर भारत में आए जब न्यायपालिका ने राज्यों के बीच तथा केन्द्र और राज्यों के बीच संवैधानिक स्थिति को स्पष्ट कर संघीय ढाँचे की रक्षा की है। सभी राज्यों के शीर्ष पर सर्वोच्च न्यायालय को पदस्थ किया गया है।
3. **संविधान की सर्वोच्चता** – भारतीय संघवाद के अन्तर्गत संविधान की सर्वोच्चता को स्थापित किया गया है। केन्द्र तथा राज्य दोनों ही संविधान से ही अपनी शक्ति प्राप्त करते हैं। अमेरिकी संघवाद के विपरीत भारतीय विविधता के कारण ही सम्पूर्ण देश के लिए केवल एक ही संविधान की व्यवस्था की गई है। इकाईयों को अलग से संविधान (जम्मू कश्मीर राज्य को छोड़कर कर) बनाने का अधिकार प्राप्त नहीं है।
4. **एकल नागरिकता** – पारम्परिक संघीय व्यवस्थाओं के विपरीत भारतीय संघवाद में सम्पूर्ण देश के लिए एकल नागरिकता का ही प्रावधान है। ऐसा भारत की विशाल–बहुलता के कारण भावी विखण्डनकारी संभावना को रोकने के लिए किया गया था।
5. **केन्द्रीय व्यवस्थापिका में राज्यों का सदन–राज्यसभा** – भारतीय संघवाद को सुदृढ़ करने के लिए ही केन्द्रीय व्यवस्थापिका अर्थात् संसद के उच्च सदन राज्यसभा को राज्य की प्रतिनिध्यात्मक संस्था के रूप में स्थापित किया गया है। यद्यपि अमेरिकी संघीय व्यवस्था के विपरीत राज्य सभा में राज्यों को एक समान प्रतिनिधित्व प्रदान नहीं किया गया है, वरन् जनसंख्या के अनुपात में सदस्य संख्या निर्धारित की गई है।
6. **राज्यपाल का पद** – राज्यपाल भारतीय संघीय व्यवस्था का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। राज्यपाल केन्द्र द्वारा नियुक्त होकर राज्य में केन्द्र के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता है। यद्यपि व्यावहारिक अनुभव के आधार पर राज्यपाल का पद केन्द्र और राज्यों के मध्य विवाद का सबसे बड़ा मुद्दा बन गया है। परन्तु केन्द्र राज्य संघर्ष के रूप में उसकी अपनी उपयोगिता है।
7. **एकात्मकता का प्रभुत्व** – भारतीय संघीय व्यवस्था मूल रूप से केन्द्रीकृत अर्थात् एकात्मक प्रभुत्व वाली व्यवस्था ही मानी जा सकती है। भारत की एकता और अखण्डता को सुरक्षित रखने के लिए केन्द्र को मजबूत बनाना स्वाभाविक ही था। यद्यपि कुछ वामपंथ समर्थक राजनैतिक दल तथा विघटनकारी विचारधाऐं इस एकात्मक प्रवृति का विरोध करती हैं। यथार्थ में संविधान में अनेक प्रावधानों के माध्यम से केन्द्र को निर्णायक

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

भूमिका प्राप्त है। संविधान संशोधन, राज्यों के निर्माण –पुनर्सीमांकन, आपातकालीन परिस्थितियों, आर्थिक अधिकारों आदि संदर्भों में केन्द्र की स्थिति अत्यन्त मजबूत और निर्णायक रखी गई है। विभिन्न उदाहरण भी यह स्पष्ट करते हैं कि सशक्त केन्द्र वाले भारतीय संघवाद ने वस्तुतः भारत की एकता व अखण्डता को कायम रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है।

3.2 एकात्मक लक्षण (Unitary Features) –

संघात्मक व्यवस्था के होते हुए भी भारतीय संविधान को पूर्ण संघीय नहीं माना गया है क्योंकि भारतीय संविधान में कुछ ऐसे प्रावधान है जो एकात्मक होने के साक्षात् प्रमाण है। वे विशेषताएँ जो भारतीय संविधान को एकात्मक रूप देती है, वे निम्नलिखित है–

1. **एक संविधान**– भारत में केन्द्र तथा राज्यों के लिए एक ही संविधान है, अपवाद जम्मू–कश्मीर राज्य है। अमेरीका तथा स्विट्जरलैण्ड आदि देशों में संघात्मक प्रणाली है तथा वहाँ राज्यों के अपने पृथक् संविधान हैं, जबकि भारत में समस्त देश के लिए एक ही संविधान हैं, जिसमें केन्द्र तथा राज्यों के शासन की व्यवस्था के सम्बन्ध में प्रावधान है।
2. **अवशिष्ट शक्ति** – भारतीय संविधान ने अनुच्छेद 248 के अनुसार अवशिष्ट शक्तियाँ केन्द्र सरकार को प्रदान की है। अवशिष्ट शक्ति का अर्थ किसी ऐसे विषय से है जो तीनों में से किसी भी सूची में अंकित नहीं हैं। यह व्यवस्था कनाडा के संविधान में उपलब्ध है।
3. **संविधान संशोधन** – संविधान के संशोधन करने के सम्बन्ध में केन्द्र को राज्यों की अपेक्षा अधिक अधिकार प्राप्त है। संविधान के अधिकांश भाग को संसद साधारण बहुमत से निश्चित विधि द्वारा परिवर्तित कर सकती है। संविधान का बहुत कम भाग ऐसा है जिसमें संशोधन के लिए कम से कम आधे राज्यों के विधानमंडलों का समर्थन आवश्यक है। अतः संविधान संशोधन में भी केन्द्र सरकार की श्रेष्ठता है जो कि एकात्मक प्रणाली का मुख्य लक्षण है।
4. **शक्तियाँ का विभाजन** – संविधान में शक्तियों का विभाजन केन्द्र के पक्ष में है। संघ सूची में राज्य सूची की अपेक्षा बहुत महत्त्वपूर्ण विषय अंकित किए गए हैं। इसके अतिरिक्त संघ सूची के विषयों की कुल संख्या 97 है। जब कि राज्य सूची में कम महत्त्व वाले 66 विषय अंकित किए गए है। इसके अतिरिक्त समवर्ती सूची में कुल 47 विषय अंकित है। संघ सूची में अंकित विषयों पर केन्द्र अथवा संसद कानून बनाती है। राज्य सूची में अंकित विषयों पर राज्य विधानमंडल कानून बनाता है। किन्तु कुछ विशेष अवस्थाओं में संसद भी राज्य सूची में अंकित विषयों पर कानून बना सकती है। समवर्ती सूची में अंकित विषयों पर दोनों यानी केन्द्र तथा राज्य सरकारें कानून बना सकती है। परन्तु यदि राज्य सरकार द्वारा निर्मित कानून केन्द्रीय कानून का विरोध करता है तो राज्य सरकार द्वारा निर्मित कानून उस सीमा तक रद्द कर दिया जाता है जिस सीमा तक वह केन्द्र सरकार के कानून का विरोध करता है और तब केन्द्र का कानून लागू कर दिया जाता है। अतः शक्तियों का यह विभाजन केन्द्र को शक्तिशाली बनाता है जो कि एकात्मक सरकार का मुख्य लक्षण है।
5. **आपात शक्ति** – प्रायः संघात्मक संविधान को एकात्मक रूप देने के लिए संशोधन करना आवश्यक होता है। परन्तु भारतीय संविधान की विशेषता है कि संशोधन किए बिना इसको एकात्मक रूप दिया जा सकता है। संविधान के अनुच्छेद 352, 356 तथा 360 के अनुसार राष्ट्रपति आपात स्थिति की घोषणा कर सकता है। अनुच्छेद 352 के अनुसार यदि राष्ट्रपति को विश्वास हो जाए कि युद्ध, बाह्य आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह के कारण भारत की सुरक्षा खतरे में है तो समस्त देश में या देश के किसी एक भाग में वह आपात स्थिति की घोषणा कर सकता है। अनुच्छेद 356 के अनुसार यदि राष्ट्रपति को राज्य के राज्यापाल या किसी अन्य साधन द्वारा सूचना मिलने पर विश्वास हो जाए कि उस राज्य में ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है, जिसमें राज्य का शासन संवैधानिक प्रावधानों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता है तो राष्ट्रपति आपातकाल की घोषणा कर सकता है। अनुच्छेद 360 के अनुसार यदि राष्ट्रपति को विश्वास हो जाए की ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है जिसके कारण भारत या इसके किसी भाग की वित्तीय स्थिरता संकट में है तो वह उस समय वित्तीय संकट की घोषणा कर सकता है।
6. **राज्यसभा में राज्यों का असमान प्रतिनिधित्व** – संघीय प्रणाली में दूसरा सदन प्रायः समानता के आधार पर राज्यों का प्रतिनिधित्व करता है। जिस प्रकार अमेरीका के द्वितीय सदन सीनेट में प्रत्येक राज्य दो–दो प्रतिनिधि भेजता है परन्तु भारत की राज्यसभा में राज्यों का प्रतिनिधित्व समानता के आधार पर नहीं बल्कि जनसंख्या के आधार पर दिया गया है जो संघात्मक प्रणाली के सिद्धान्तों के विरुद्ध है।
7. **एकल नागरिकता** – अमेरीका तथा स्विट्जरलैण्ड के संविधानों में दोहरी नागरिकता की प्रथा है। प्रत्येक व्यक्ति संघ का नागरिक होने के साथ–साथ अपने राज्य का भी नागरिक होता है। उस राज्य की ओर से उसको कुछ विशेषाधिकार प्राप्त होते हैं। भारतीय संविधान में दोहरी नागरिकता की प्रथा नहीं है। अपितु सभी व्यक्ति भारत के ही नागरिक है तथा सभी को समानता के आधार पर संविधान की ओर से अधिकार प्राप्त है।
8. **प्रारम्भिक बातों में एकरूपता** – कुछ प्रारम्भिक बातों की एकरूपता भारतीय संविधान की मुख्य विशेषता है जैसे – समस्त देश के लिए एक ही प्रकार के दीवानी तथा फौजदारी कानून का प्रबन्ध किया गया है। समस्त

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

देश के लिए एक ही चुनाव आयोग है। अखिल भारतीय सेवाओं के सदस्य केन्द्र तथा राज्यों में शासन का प्रबन्ध करते हैं। जबकि इन सेवाओं के अधिकारियों की नियुक्ति केन्द्र सरकार द्वारा की जाती है। परन्तु वे राज्य सरकारों के उच्च पदों पर कार्य करते हैं। इन बातों से संविधान का एकात्मकता की ओर झुकाव प्रतीत होता है।

9. **एकल संगठित न्याय व्यवस्था** – अमेरीका तथा आस्ट्रेलिया में राज्यों की न्याय प्रणाली केन्द्रीय न्याय प्रणाली से पृथक् है। परन्तु भारत में प्रत्येक न्यायालय सर्वोच्च न्यायालय के अधीन कार्य करता है। राज्यों के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है। इसी प्रकार राज्यों के छोटे न्यायालय के अधीन होते हैं। इन छोटे न्यायालयों के निर्णय के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है। अतः एकल संगठित उच्चन्यायालय प्रणाली संघात्मक राज्य का नहीं बल्कि एकात्मक राज्य का लक्षण माना जाता है।

10. **राज्यों को पृथक् होने का अधिकार नहीं** – भारत संघ के राज्यों को संघ से पृथक् होने का अधिकार नहीं है। इस संदर्भ में उल्लेखनीय है कि 1963 में संविधान के 16वें संशोधन द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि संघ से पृथक् होने के पक्षपोषण को वाक् स्वातंत्र्य संरक्षण प्राप्त नहीं होगा।

11. **सीमाओं में परिवर्तन हेतु राज्यों की सहमति अनिवार्य नहीं** – अमेरीकी संविधान के विपरीत भारतीय संविधान के अनुसार संघीय संसद राज्यों की सहमति के बिना भी राज्यों का पुनर्गठन अथवा उनकी सीमाओं में परिवर्तन कर सकती है। ऐसा विधान की सामान्य प्रक्रिया के अनुसार साधारण बहुमत से किया जा सकता है। अनुच्छेद 7 के अनुसार इसके लिए संसद को प्रभावित राज्य के विधानमण्डल की सहमति प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं है। केवल संसद को सिफारिश करने के प्रयोजन हेतु राष्ट्रपति के लिए यह आवश्यक है कि वे प्रभावित राज्य के विधानमण्डल के विचार ज्ञात कर लें। यह बाध्यता भी पूर्णतः आज्ञापरक नहीं है। प्रभावित राज्य द्वारा अपने विचार अभिव्यक्त करने हेतु राष्ट्रपति द्वारा समय सीमा का निर्धारण किया जा सकता है। इस प्रकार भारत संघ में राज्य उस प्रकार अविनाशी नहीं हैं, जिस प्रकार अमेरीका में हैं।

12. **लोक सेवाओं का विभाजन नहीं** – अमेरीका में संघ एव राज्य दोनों के अपने–अपने प्रशासनिक पदाधिकारी होते हैं, जो उनकी स्वयं की विधियों एवं कृत्यों का प्रशासन करते हैं किन्तु भारत में लोक सेवकों के मध्य इस प्रकार का विभाजन नहीं है। अधिकांश लोक सेवकों का नियोजन राज्यो द्वारा किया जाता है। किन्तु वे अपने–अपने राज्यों पर लागू होने वाली संघ एव राज्य दोनों द्वारा निर्मित विधियों के प्रशासन करते हैं। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 312 के अन्तर्गत अखिल भारतीय सेवाओं के सृजन से सम्बन्धित प्रावधान किए गए है। किन्तु ये सेवाएँ संघ एवं राज्य दोनों के लिए सामान्य है। संघ द्वारा नियुक्त भारतीय प्रशासनिक सेवा के सदस्य या तो संघ के किसी विभाग (जैसे –गृह अथवा प्रतिरक्षा) के अधीन नियोजित किए जा सकते हैं अथवा किसी राज्य सरकार के अधीन। लोक सेवकों की सेवाएँ अन्तरणीय होती है। संघ के अधीन नियोजित किए जाने पर भी वे प्रश्नगत विषय पर लागू होने वाली संघ एवं राज्य दोनों द्वारा निर्मित विधियों का प्रशासन करते हैं। राज्यों के अधीन सेवा करते हुए भी अखिल भारतीय सेवा के सदस्य को केवल संघीय सरकार द्वारा ही पद से हटाया जा सकता है। राज्य सरकार इस प्रयोजनार्थ अनुषंगी कार्यवाही शुरु करने हेतु सक्षम है।

3.3 भारतीय संघवाद की प्रवृत्तियाँ (Tendencies of Indian Federalism) –

भारतीय संघवाद, संविधानविद् के.सी.व्हीयर के शब्दों में 'अर्द्धसंघीय' है। ग्रेनविले ऑस्टिन ने इसे सहयोगी संघवाद कहा है। स्वयं डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने इसे कठोर संघीय ढाँचा मानने से इन्कार किया है। मोरिस जोन्स ने इसे सौदेबाजी वाला संघवाद माना है। परन्तु यह सत्य है कि भारतीय संघवाद विशुद्ध सैद्धान्तिक संघवाद नहीं है और विशिष्ट बहुलवादी परिस्थितियों में इसे एकात्मक शक्ति प्रदान की गई है। केन्द्र को अत्यधिक शक्तिशाली बनाया गया है। विधायी कार्यकारी और न्यायिक – आपातकालीन सभी क्षेत्रों में अन्तिम व निर्णायक भूमिका केन्द्र की ही रखी गई है। अखिल भारतीय सेवाएँ आपातकालीन उपबंध (धारा 352, 356, 360) वित्त आयोग इत्यादि संस्थागत रूप से केन्द्रीकरण के माध्यम रहे है।

इस एकात्मक आत्मा वाले संघवाद का दूसरा पहलू यह भी है कि राज्यों को अनेक संस्थाओं के माध्यम से उचित महत्त्व और भागीदारी प्रदान की गई है। राष्ट्रीय विकास परिषद्, अन्तर्राज्यीय परिषद् (अनुच्छेद 263) क्षेत्रीय परिषदे नीति आयोग इत्यादि महत्त्वपूर्ण संस्थाओं से संघवादी स्वरूप में राज्य की भागीदारी को सुनिश्चित करने का प्रयास किया गया है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- शासन की शक्तियों का केन्द्र व राज्यों में विभाजन संघवाद की प्रवृत्ति है।
- भारतीय संघ को अर्द्धसंघात्मक व सहयोगी संघवाद के नाम से भी जाना जाता है।
- भारत में वर्तमान में 29 राज्य व 7 केन्द्र शासित प्रदेश है।
- भारत में संविधान की सर्वोच्चता को महत्त्व दिया गया है।
- संघ व राज्यों के आपसी सम्बन्धों के अध्ययन हेतु सरकारिया आयोग गठित किया गया।
- संविधान के अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत राज्यों में केन्द्र द्वारा राष्ट्रपति शासन लागू किया जा सकता है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. वर्तमान में हमारे देश में कितने राज्य है –
   (अ) 29 (ब) 30
   (स) 35 (द) 14 ( )
2. संघ सूची के विषयों पर कानून बनाने का अधिकार है–
   (अ) राज्य सरकार (ब) केन्द्र सरकार
   (स) पंचायत को (द) उच्च न्यायालय ( )
3. संविधान का कौनसा उपबन्ध आपातकाल की व्यवस्था देता है–
   (अ) 263 (ब) 310
   (स) 356 (द) 74 ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. राज्य सूची में कितने विषय है?
2. संसद में राज्यों का प्रतिनिधित्व कौनसा सदन करता है?
3. केन्द्र व राज्यों के मध्य विवादों का निपटारा कौनसी संस्था करती है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. एकल नागरिकता क्या है ?
2. ''विधि के शासन'' से आप क्या समझते हैं ?
3. सरकारिया आयोग का सम्बन्ध किससे था ?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारतीय संघीय व्यवस्था की विशेषताओं पर व्याख्यात्मक लेख लिखिए।
2. भारत के संघवाद की नवीन प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए।

बहुचयनात्मक प्रश्नों के उत्तर

1. अ 2. ब 3. स

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

इकाई–II
भारत में शासन
(Governance in India)
1. संसद, लोकसभा एवं राज्यसभा
(Parliament, Lok Sabha and Rajya Sabha)

संसद (Parliament)

किसी भी लोकतांत्रिक शासन में सरकार के तीन अंग होते हैं – व्यवस्थापिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका। व्यवस्थापिका के प्रत्येक देश में अलग–अलग नाम होते है, जैसे – ब्रिटेन में इसे पार्लियामेण्ट, संयुक्त राज्य अमेरिका में कांग्रेस, जापान में डायट, जर्मनी में बुण्डेस्टांग, ईरान में मजलिस कहते है। भारत की व्यवस्थापिका को संसद कहा जाता है, जिसका गठन संविधान के अनुच्छेद 79 में किया गया है, जिसके अनुसार "भारतीय संघ के लिए एक संसद होगी जो राष्ट्रपति और दो सदनों से मिलकर बनेगी, जिनके नाम राज्यसभा और लोकसभा होंगे।" इस प्रकार राष्ट्रपति भारतीय संघ की कार्यपालिका का संवैधानिक प्रमुख होने के साथ ही संघ की व्यवस्थापिका अर्थात् संसद का भी अभिन्न अंग होता है। यह व्यवस्था नितान्त संसदीय शासन प्रणाली के अनुरूप है। भारत में आधुनिक रूप में लोकतंत्र एवं संसद के रूप में प्रतिनिधि संस्थाओं की स्थापना ब्रिटिश शासन की देन है। हालांकि प्रतिनिधि निकाय तथा लोकतांत्रिक स्वशासी संस्थाएं भारत में प्राचीन काल से ही विद्यमान रही है।

ऋग्वेद में 'सभा' और 'समिति' नामक दो संस्थाओं का उल्लेख आता है, समिति आधुनिक लोकसभा के सदृश्य मानी जा सकती है जबकि सभा विशिष्ट लोगों का संगठन हुआ करती थी, जिसका स्वरूप आजकल की राज्यसभा से मिलता–जुलता था।

1.1 पृष्ठभूमि (Background) –

ब्रिटिश शासन के दौरान विभिन्न अधिनियमों द्वारा भारत में संसदीय परम्पराओं को सीमित एवं मुख्यतः अनुत्तरदायी रूप से लागू करने की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। 1833 के चार्टर अधिनियम से, 1935 के भारत शासन अधिनियम तक में संसदीय तत्वों के विकास को देखा जा सकता है। 1892 के अधिनियम द्वारा गवर्नर जनरल की विधान परिषद् में अधिकतम सदस्यों की संख्या सोलह निर्धारित कर उनमें से चार सदस्यों को अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित करने की प्रक्रिया को शामिल किया गया। 1909 ई. के अधिनियम द्वारा अधिकतम सदस्य संख्या को 60 कर दिया गया तथा उनके अधिकारों में भी वृद्धि की गई। लेकिन दूसरी ओर इनके निर्वाचन में साम्प्रदायिक प्रणाली को प्रारम्भ कर भारतीय एकता को खण्डित करने के प्रयास भी प्रारम्भ कर दिये।

भारत सरकार अधिनियम, 1919 द्वारा केन्द्रीय स्तर पर एक सदनीय विधान परिषद् के स्थान पर द्विसदनीय विधान मण्डल बनया गया, जिसमें एक था राज्य परिषद् और दूसरा था विधान सभा और प्रत्येक सदन में अधिकांश सदस्य निर्वाचित होते थे। इसी तरह 1935 के अधिनियम द्वारा भी इन दोनों सदनों को बनाये रखा गया, हालांकि इनकी सदस्य संख्या और अधिकारों में पर्याप्त बढ़ोत्तरी की गई थी फिर भी उत्तरदायी शासन का रूप अब भी खण्डित ही था। मतदाताओं की संख्या सम्पत्ति के आधार पर बहुत सीमित थी। केवल पन्द्रह प्रतिशत लोगों को ही वोट देने का अधिकार था। मतदाता साम्प्रदायिक और व्यावसायिक आधार पर विभिन्न वर्गों में बंटे हुए थे। स्वाभाविक रूप से भारतीय संविधान द्वारा गठित होने वाली संसद में इन सभी अलोकतांत्रिक तत्वों को हटाया गया तथा इसे लोकतांत्रिक मूल्यों के अनुरूप बनाया गया।

1.2 संसद का गठन (Composition of Parliament)

जैसा पूर्व में उल्लेखित है संसद का गठन संविधान के अनुच्छेद 79 द्वारा हुआ है, जिसके अनुसार राष्ट्रपति के अलावा संसद के दो सदन होंगे राज्यसभा एवं लोकसभा। राष्ट्रपति के व्यवस्थापिका का अंग होने के नाते क्या–क्या कृत्य होंगे, उसका उल्लेख राष्ट्रपति की विधायी शक्ति के अन्तर्गत किया जा चुका है। अतः अब हम संसद की प्रक्रिया एवं दोनों सदनों के गठन एवं कार्यों व शक्तियों का अध्ययन करेंगे।

1.3 संसद सदस्य होने की योग्यताएं एवं निर्योग्यताएं (Qualifications & Disqualifications)

संविधान ने संसद का सदस्य होने के लिए निम्नलिखित योग्यताएं निर्धारित की है – (1) उसे भारत का नागरिक होना चाहिए। लम्बे समय से देश में यह मांग की जाती रही है कि देश के सर्वोच्च पदों पर जन्मजात भारतीय ही आसीन होना चाहिए। कई देशों में ऐसा प्रावधान भी है, यद्यपि भारतीय संविधान में ऐसा उल्लेख अभी तक नहीं है। (2) उसे राज्यसभा के स्थान के लिए न्यूनतम 30 वर्ष की आयु का एवं लोकसभा के स्थान के लिए न्यूनतम 25 वर्ष की आयु का होना चाहिए। (3) उसके पास अन्य ऐसी योग्यताएं होनी चाहिए जो संसद निर्धारित करें।

इसके अतिरिक्त कोई विकृत चित्त व्यक्ति अथवा अनुन्मोचित दिवालिया (पागल व दिवालिया) व्यक्ति संसद का

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

सदस्य नहीं हो सकता है। कोई व्यक्ति एक समय में संसद के दोनों सदनों का सदस्य नहीं हो सकता। कोई व्यक्ति अधिकतम दो स्थानों से लोकसभा का चुनाव लड़ सकता हैं यदि वह दोनों स्थानों से निर्वाचित होता है तब एक माह के भीतर उसे एक स्थान रिक्त करना होता है। संविधान की दसवीं अनुसूची के अनुसार किसी संसद सदस्य को दल–बदल का दोषी पाये जाने पर सदस्यता से बर्खास्त किया जा सकता है। इसके अलावा सदस्य के चुनावी अपराध अथवा चुनाव में भ्रष्ट आचरण का दोषी सिद्ध होने पर सदस्यता से बर्खास्त किया जा सकता है।

1.4 शपथ (Oath)

संसद के सभी सदस्य जिन्हें हम बोलचाल में सांसद अथवा एम.पी. कहकर सम्बोधित करते है, अपना स्थान ग्रहण करने से पूर्व राष्ट्रपति अथवा उसके द्वारा इस कार्य के लिए नियुक्त व्यक्ति के समक्ष शपथ लेता है और उस पर अपने हस्ताक्षर करता है।

1.5 संसद के सत्र (Sessions of Parliament)

संविधान के अनुच्छेद 85 के अनुसार राष्ट्रपति समय–समय पर संसद के प्रत्येक सदन को ऐसे समय और स्थान पर जो वह ठीक समझे अधिवेशन के लिए आहूत करेगा, किन्तु संसद के एक सत्र की अन्तिम बैठक और आगामी सत्र की प्रथम बैठक के लिए नियत तारीख के बीच छः माह का अन्तर नहीं होगा। वास्तव में, भारतीय संसद के प्रतिवर्ष तीन सत्र अथवा अधिवेशन होते है बजट सत्र (फरवरी–मई), मानसून सत्र (जुलाई–सितम्बर) तथा शीतकालीन सत्र (नवम्बर–दिसम्बर)। संसद की कार्यवाही के दौरान सदनों को स्थगित करने का अधिकार पीठासीन अधिकारी (लोकसभा में अध्यक्ष तथा राज्यसभा में सभापति) को होता है, लेकिन सत्रावसान करने का अधिकार राष्ट्रपति को प्राप्त होता है।

1.6 गणपूर्ति (कोरम) (Quorum)

गणपूर्ति अथवा कोरम सदस्यों की वह न्यूनतम सदस्य संख्या है, जिनकी उपस्थिति से सदनों की कार्यवाही को वैधानिकता प्राप्त होती है। यह प्रत्येक सदन में पीठासीन अधिकारी सहित सदन की कुल सदस्य संख्या का दसवां भाग होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि लोकसभा की कार्यवाही का संचालन करने हेतु सदन में कम से कम 55 सदस्य (कुल सदस्य संख्या 545 का दसवां भाग) एवं राज्यसभा की कार्यवाही का संचालन करने हेतु सदन में कम से कम 25 सदस्य (कुल सदस्य संख्या 245 का दसवां भाग) अवश्य होने चाहिए।

1.7 संसद में भाषा (Language of Parliament)

संविधान के अनुसार संसद के कार्य संचालन की भाषा हिन्दी एवं अंग्रेजी है। किन्तु पीठासीन अधिकारी किसी ऐसे सदस्य को जो हिन्दी या अंग्रेजी में अपनी बात को अभिव्यक्त नहीं कर सकता हो, अपनी मातृभाषा में बोलने की अनुज्ञा दे सकते है।

1.8 मंत्रियों एवं महान्यायवादी के संसद में अधिकार (Powers of Ministers and Advocate General)

संविधान के अनुच्छेद 88 में उल्लेखित है कि प्रत्येक मंत्री एवं भारत के महान्यायवादी को यह अधिकार होगा कि वह संसद के किसी भी सदन में बोलने एवं कार्यवाही में भाग लेने का अधिकारी होगा। महान्यायवादी को संसद में मतदान का अधिकार नहीं होगा तथा मंत्री मतदान केवल उसी सदन में कर सकेगा, जिस सदन का वह सदस्य है।

1.9 राज्यसभा का गठन (Composition of Rajya Sabha)

राज्यसभा को संसद का उच्च सदन, स्थायी सदन अथवा राज्यों के सदन नाम से जाना जाता है। राज्यसभा का गठन संविधान के अनुच्छेद 80 के तहत होता है, जिसके अनुसार इसकी कुल सदस्य संख्या 250 हो सकती है। इनमें से बारह सदस्य राष्ट्रपति द्वारा नाम निर्देशित अर्थात् मनोनीत किये जाते है जो साहित्य, विज्ञान, कला अथवा समाजसेवा में विशेष ज्ञान अथवा व्यवहारिक अनुभव प्राप्त व्यक्ति होंगे। राज्यसभा में राष्ट्रपति द्वारा नाम निर्देशित व्यक्तियों का प्रावधान आयरलैण्ड के संविधान से प्रेरित है। शेष 238 सदस्य राज्यों एवं संघ राज्य क्षेत्रों से निर्वाचित होते है। यद्यपि वर्तमान में राज्यसभा की कुल सदस्य संख्या 245 निश्चित है, जिनमें से 229 सदस्य विभिन्न राज्यों से व 4 सदस्य संघ राज्य क्षेत्रों से निर्वाचित है, जबकि 12 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत है। राज्यसभा में राज्यों एवं संघ राज्य क्षेत्रों को स्थानों का आवंटन संविधान की चौथी अनुसूची के द्वारा जनसंख्या के आधार पर किया गया है। इस कारण एक ओर जहाँ अकेले उत्तरप्रदेश से राज्यसभा के 31 सदस्य निर्वाचित होते है, वहीं गोवा, मणिपुर, मेघालय आदि अनेक राज्यों से केवल एक–एक सदस्य निर्वाचित होता है। राजस्थान से राज्यसभा के 10 सदस्य निर्वाचित होते है, जबकि संघ शासित राज्यों में केवल दिल्ली एवं पुदुचेरी को ही राज्यसभा में प्रतिनिधित्व प्राप्त है, शेष को नहीं। इस प्रकार अमेरिकी कांग्रेस के उच्च सदन सीनेट के समान सभी राज्यों को समान प्रतिनिधित्व देने के स्थान पर भारत में राज्यों को समान प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया है।

1.10 राज्यसभा के सदस्यों का निर्वाचन (Election of Members of Rajya Sabha)

संविधान के अनुसार राज्यसभा के सदस्यों का निर्वाचन उस राज्य की विधानसभा के निर्वाचित सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

मत द्वारा किया जाएगा। अतः राज्यसभा के सदस्यों का निर्वाचन अप्रत्यक्ष रूप से होता है, जैसे राजस्थान से राज्यसभा के सदस्यों का निर्वाचन राजस्थान विधानसभा के 200 विधायक मिलकर करेंगे। राज्यसभा चुनाव के लिए हाल ही में दो संशोधन हुए है – प्रत्याशियों के लिए उस राज्य का निवासी होने की शर्त का निवारण किया गया, जिस राज्य से वह निर्वाचित होना चाहता है तथा गुप्त मतदान प्रणाली के स्थान पर खुली मतदान व्यवस्था को अंगीकार किया गया। राज्यसभा का निर्वाचन कराने की जिम्मेदारी भारत के निर्वाचन आयोग की है।

1.11 राज्यसभा की अवधि (Tenure of Rajya Sabha)

राज्यसभा एक स्थायी सदन है, जो कभी भंग नहीं होता है। संविधान में राज्यसभा के सदस्यों की पदावधि निर्धारित नहीं की थी, इसे संसद पर छोड़ दिया गया था। इसके आधार पर संसद ने जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 द्वारा राज्यसभा सदस्यों का कार्यकाल छः वर्ष तय किया। व्यवस्था ऐसी स्थापित है कि प्रत्येक दो वर्ष पश्चात् राज्यसभा के एक–तिहाई सदस्यों का कार्यकाल पूर्ण हो जाता है, जिनके स्थान पर पुनः छः वर्ष के लिए सदस्यों का निर्वाचन होता है। पुनः निर्वाचित होने के लिए कोई निश्चित अवधि निर्धारित नहीं है।

1.12 राज्यसभा के पदाधिकारी (Officials of Rajya Sabha)

संविधान के अनुच्छेद 64 व 89 के अनुसार भारत का उपराष्ट्रपति राज्यसभा का पदेन सभापति होता है, यद्यपि वह राज्यसभा का सदस्य नहीं होता है। अनुच्छेद 89 के अनुसार सभापति के अतिरिक्त राज्यसभा का एक उपसभापति होता हे, जिसका निर्वाचन राज्यसभा के सदस्य अपने में से ही किसी एक का करते है। इस तरह राज्यसभा का सभापति सदन का सदस्य नहीं होता लेकिन उपसभापति सदस्य होता है। जब उपराष्ट्रपति भारत के कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में कार्य करता है अथवा सदन से अनुपस्थित रहता है, उस समय उपसभापति राज्यसभा की कार्यवाही का संचालन करता है।

1.13 लोकसभा का गठन (Composition of Lok Sabha)

लोकसभा भारतीय संसद का निम्न सदन अथवा लोकप्रिय सदन कहलाता है, जिसका गठन संविधान के अनुच्छेद 81 के अनुसार होता है। प्रारम्भ में लोकसभा की कुल सदस्य संख्या 500 निर्धारित की गई थी। 1956 में राज्यों के पुर्नगठन के पश्चात् इसके सदस्यों की संख्या 520 एवं बाद में 525 निर्धारित की गई। 31वें संविधान संशोधन, 1974 द्वारा लोकसभा की अधिकतम सदस्य संख्या 552 हो सकती है, जिनमें से –

(1) 530 सदस्य विभिन्न राज्यों से निर्वाचित होंगे।

(2) 20 सदस्य संघ राज्य क्षेत्रों से निर्वाचित होंगे। इसके अतिरिक्त संविधान के अनुच्छेद 331 के अनुसार यदि राष्ट्रपति की यह राय है कि लोकसभा में आंग्ल भारतीय समुदाय का पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है तब वह लोकसभा में उस समुदाय के दो सदस्य नाम निर्देशित कर सकेगा।

लेकिन वास्तव में वर्तमान में लोकसभा की कुल सदस्य संख्या 545 है, जिनमें से 530 विभिन्न राज्यों से एवं 13 सदस्य संघ राज्य क्षेत्रों से निर्वाचित है, जबकि दो सदस्य राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत है। विभिन्न राज्यों को लोकसभा में स्थानों का आवंटन जनसंख्या के आधार पर होता है। यही कारण है कि अकेले उत्तरप्रदेश से लोकसभा के 80 सदस्य व महाराष्ट्र से 48 सदस्य निर्वाचित होते है, जबकि राजस्थान से लोकसभा के 25 सदस्य चुने जाते है। संविधान के अनुच्छेद 82 में परिसीमन आयोग के गठन का प्रावधान है, जिसके अनुसार प्रत्येक जनगणना की समाप्ति पर राज्यों को लोकसभा में स्थानों के आवंटन एवं प्रत्येक राज्य के प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों का पुनः निर्धारण किया जाएगा। जनसंख्या नियंत्रण के उद्देश्य को पूरा करने के लिए 84वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2001 द्वारा यह प्रावधान किया गया कि लोकसभा की कुल सदस्य संख्या 2026 तक यथावत बनी रहेगी।

1.14 लोकसभा सदस्यों का निर्वाचन (Election of Members of Lok Sabha)

औपनिवेशिक शासन के दौरान व्यवस्थापिका के गठन में अनेक दोष विद्यमान थे। उन्होंने भारतीय शासन प्रणाली में अल्पसंख्यकों की सुरक्षा के नाम पर पृथक साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली आदि के रूप में ऐसे तत्व शामिल कर दिए, जिन्होंने हमारे राजनीतिक जीवन को छिन्न–भिन्न कर दिया था। सरदार पटेल ने कठिन परिश्रम कर अल्पसंख्यक प्रतिनिधियों को साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली को समाप्त करने के लिए राजी किया। अतः स्वतंत्र भारत में लोकसभा के सदस्यों का निर्वाचन प्रत्यक्ष रूप से वयस्क मताधिकार द्वारा होता है। अनुच्छेद 326 के अनुसार, 18 वर्ष या अधिक उम्र के वयस्क नागरिक जिनका मतदाता सूची में पंजीकरण है, वे मतदान द्वारा लोकसभा सदस्यों का निर्वाचन करेंगे। विभिन्न राजनीतिक दल प्रत्येक लोकसभा क्षेत्र से अपने प्रत्याशियों को खड़ा करते है। साथ ही निर्दलीय प्रत्याशी भी चुनाव में उम्मीदवार हो सकते है। भारत के निर्वाचन आयोग द्वारा निर्धारित तिथि को उस लोकसभा क्षेत्र के पंजीकृत मतदाता अपने मत का प्रयोग करते है तथा जिस प्रत्याशी को सबसे अधिक मत प्राप्त होते है, वह निर्वाचित घोषित कर दिया जाता है। इस प्रकार इसमें कोई निश्चित मत प्राप्त करना आवश्यक नहीं है। उदाहरणार्थ यदि किसी चुनाव क्षेत्र में 5 या अधिक प्रत्याशी है एवं सर्वाधिक मत प्राप्त करने वाले को 25 प्रतिशत मत प्राप्त हुए है, तब वह विजयी घोषित किया जाएगा। भले ही उसके विरोध में कुल 75 प्रतिशत मत डाले गये हो। यही कारण है कि विभिन्न राजनीतिक दलों को प्राप्त मत एवं स्थानों में

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

कोई संगति नहीं होती है। 2014 में 542 स्थानों पर हुए लोकसभा चुनावों में भाजपा को 283 स्थान अर्थात् 50 प्रतिशत से अधिक स्थान प्राप्त हुए जबकि उसे कुल मत 31 प्रतिशत प्राप्त हुए थे। लोकसभा में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लिए स्थानों के आरक्षण का प्रावधान किया गया है। वर्तमान में अनुसूचित जाति के लिए कुल 84 एवं अनुसूचित जनजाति के लिए 47 स्थान आरक्षित है।

1.15 लोकसभा का कार्यकाल (Tenure of Lok Sabha)

संविधान के अनुच्छेद 83 के अनुसार लोकसभा का कार्यकाल अपनी प्रथम बैठक से पाँच वर्ष होगा। पाँच वर्ष की समाप्ति पर लोकसभा स्वतः ही भंग हो जाती है। लेकिन अनुच्छेद 85 के अनुसार राष्ट्रपति कभी भी लोकसभा को भंग कर सकते है। राष्ट्रपति प्रधानमंत्री की सलाह पर ही लोकसभा को भंग करता है। राष्ट्रीय आपातकाल की स्थिति में लोकसभा की अवधि को एक बार में एक वर्ष तक बढ़ाया जा सकता है। 1976–77 में लोकसभा का कार्यकाल बढ़ाया गया था। भारत में पहली लोकसभा का गठन अप्रेल, 1952 में हुआ था, जबकि वर्तमान में 16वीं लोकसभा कार्यरत है, जिसका गठन मई, 2014 में हुआ है।

1.16 लोकसभा अध्यक्ष व उपाध्यक्ष (Loksabha Speaker & Deputy Speaker)

संविधान के अनुच्छेद 93 के अनुसार लोकसभा यथाशीघ्र अपने दो सदस्यों को अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष के रूप में चुनेगी। राजनीतिक रूप से यह निश्चित है कि अध्यक्ष उसी दल का कोई सदस्य निर्वाचित होता है, जिस दल को लोकसभा में बहुमत प्राप्त होता है। उपाध्यक्ष के रूप में यह परम्परा स्थापित हुई है कि वह विपक्षी पार्टी का होगा, यद्यपि ऐसी कोई संवैधानिक अथवा राजनीतिक बाध्यता नहीं है। अध्यक्ष अपना त्यागपत्र उपाध्यक्ष को तथा उपाध्यक्ष अपना त्यागपत्र अध्यक्ष को सौंप सकता है। लोकसभा के तत्कालीन समस्त सदस्यों के बहुमत से पारित संकल्प द्वारा अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष को अपने पद से हटा सकते है, लेकिन ऐसा प्रस्ताव लाने से कम से कम 14 दिन पूर्व संबंधित को सूचित करना आवश्यक है।

अध्यक्ष सदन की कार्यवाही का संचालन करता है। वह सदस्यों को बोलने का समय देता है, कोई भी विषय जिसे सदन में मतदान के लिए रखा गया है, उस पर मतदान करवाता है। प्रथमतः वह अपने मत का प्रयोग नहीं करता लेकिन पक्ष एवं विपक्ष में बराबर मत आने पर वह अपना निर्णायक मत देता है। वह सत्र् को स्थगित करने का अधिकार रखता है अर्थात् स्पीकर सदन की बैठक को कुछ समय अथवा कुछ दिनों के लिए स्थगित कर सकता है, हालांकि उसके सत्रावसान का अधिकार राष्ट्रपति को प्राप्त होता है। अध्यक्ष सदन में दल–बदल के आधार पर किसी सदस्य की निर्योग्यता के बारे में भी फैसला करता है। संविधान के अनुच्छेद 110 के तहत अध्यक्ष को यह भी अधिकार प्राप्त है कि यदि यह प्रश्न उठता है कि कोई विधेयक धन विधेयक है या नहीं तो उस पर लोकसभा अध्यक्ष का फैसला अन्तिम माना जाएगा।

स्वतंत्र भारत की पहली लोकसभा के अध्यक्ष गणेश वासुदेव मावलंकर एवं उपाध्यक्ष अनन्त शयनम अयंगर थे।

1.17 संसद के कार्य (Functions of Parliament)

1. **विधि निर्माण** – सरकार के व्यवस्थापिका अंग का सबसे प्रमुख कार्य विधि निर्माण होता है। संसद भारत की व्यवस्थापिका है। अतः उसका मुख्य कार्य विधि निर्माण का है। भारत में संघात्मक व्यवस्था की स्थापना की गई है, जिसका अभिप्राय यह है कि संघ एवं प्रान्तों में विधायी शक्तियों का विभाजन किया गया है। संविधान की सातवीं अनुसूची में संघ सूची, राज्य सूची एवं समवर्ती सूची के माध्यम से संघ एवं प्रान्तों में शक्ति विभाजन किया गया है। इसके अनुसार संघ सूची एवं समवर्ती सूची में अन्तर्विष्ट विषयों में से किसी भी विषय पर संसद विधान बना सकती है। अवशिष्ट शक्तियों पर भी विधान निर्माण की शक्ति संसद को ही प्राप्त हे। राज्यों को सौंपे गये राज्य सूची के विषयों के संबंध में भी कुछ परिस्थितियों में संसद विधान बना सकती है।

कानून बनाने के प्रस्ताव को साधारण विधेयक कहते है। यह विधेयक संसद के किसी भी सदन में प्रस्तुत किया जा सकता है। यदि विधेयक मंत्री परिषद् के किसी सदस्य द्वारा सदन में रखा गया है तब उसे सरकारी विधेयक कहते है जबकि साधारण सदस्यों द्वारा रखा गया विधेयक गैर सरकारी विधेयक कहलाता है। विधेयक को पारित होने के लिए संसद में अनेक प्रक्रियाओं से गुजरना होता है। विधेयक के प्रत्येक सदन में तीन वाचन होते है। नियत समय पर सदन में संबंधित सदस्य खड़े होकर प्रस्ताव करता है कि विधेयक को पेश करने की अनुमति दी जाए। आमतौर पर अनुमति दे दी जाती है। इस प्रकार सदन में विधेयक को प्रस्तुत करने की अनुमति ही उसका प्रथम वाचन कहलाता है। द्वितीय वाचन किसी भी विधेयक की सबसे महत्वपूर्ण एवं निर्णायक अवस्था होती है। सामान्यतः इस अवस्था में विधेयक पर प्रवर समिति का गठन किया जाता है जो विधेयक पर बारीकी से विचार करती है। प्रत्येक धारा पर चर्चा करती है। निर्धारित अवधि में समिति अपना प्रतिवेदन सदन को प्रस्तुत करती है। इस प्रतिवेदन पर सदन में बहस एवं विचार विमर्श होता है, उसकी प्रत्येक धारा पर मतदान होता है। यह पूरी प्रक्रिया विधेयक का द्वितीय वाचन कहलाता है। इसके पश्चात् विधेयक में आवश्यक शाब्दिक एवं औपचारिक संशोधन किये जाते है एवं अन्तिम रूप से पारित करने के लिए सदन में प्रस्तुत किया जाता है। चूंकि द्वितीय वाचन में विस्तार से विधेयक पर चर्चा हो चुकी होती है। अतः तृतीय वाचन में सामान्य चर्चा के उपरान्त मतदान होता है। यदि उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों का साधारण बहुमत विधेयक के पक्ष में हो तब वह उस सदन से पारित समझा जाएगा।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

विधेयक दूसरे सदन में

जिस सदन में विधेयक पेश किया गया हो, वहाँ से पारित किए जाने के पश्चात् उसे पारित करने के लिए दूसरे सदन में भेजा जाता है। वहाँ पर भी विधेयक के तीन वाचन होते है। यदि दूसरा सदन विधेयक को पारित कर ले तब वह दोनों सदनों द्वारा पारित समझा जाता है एवं राष्ट्रपति के समक्ष हस्ताक्षर के लिए प्रस्तुत किया जाता है। लेकिन दूसरा सदन विधेयक को अस्वीकार कर दे अथवा उसमें ऐसे संशोधन करें, जिससे पहला सदन सहमत नहीं हो अथवा सदन विधेयक पर छः मास तक चर्चा ही नहीं करे तब इसका अर्थ यह होता है कि उस साधारण विधेयक पर दोनों सदनों में मतभेद उत्पन्न हो गया है।

दोनों सदनों की संयुक्त बैठक

दोनों सदनों में साधारण विधेयक पर असहमति से उत्पन्न गतिरोध का समाधान संयुक्त बैठक में होता है। अनुच्छेद 108 के तहत राष्ट्रपति को यह अधिकार प्राप्त है कि वह विधेयक पर फैसला करने हेतु संयुक्त बैठक आमंत्रित करें। इस संयुक्त बैठक की अध्यक्षता लोकसभा अध्यक्ष द्वारा की जाती है। संयुक्त बैठक में निर्णय दोनों सदनों के उपस्थित और मतदान करने वाले कुल सदस्यों के बहुमत द्वारा किया जाता है। अब तक केवल तीन विधेयक ही संयुक्त बैठक में पास किए गए है।

विधेयक पर राष्ट्रपति की अनुमति

दोनों सदनों द्वारा पारित विधेयक राष्ट्रपति के हस्ताक्षर हेतु प्रस्तुत किया जाता है, क्योंकि वह कार्यपालिका का संवैधानिक प्रमुख होने के साथ ही भारत की संसद का भी अभिन्न अंग होता है। अनुच्छेद 111 के अनुसार राष्ट्रपति के हस्ताक्षर होने पर ही कोई विधेयक अधिनियम अर्थात् कानून बनता है। राष्ट्रपति विधेयक को पुर्नविचार के लिए एक बार संसद को भेज सकता है, लेकिन यदि संसद संशोधनों सहित अथवा बिना किसी संशोधन के पुनः पारित कर विधेयक राष्ट्रपति के समक्ष भेजे तब राष्ट्रपति के लिए उस पर हस्ताक्षर करना आवश्यक होता है।

इस प्रकार विधि निर्माण की यह जटिल प्रक्रिया राष्ट्रपति के हस्ताक्षर के साथ समाप्त होती है लेकिन संसद का यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य माना जाता है। उसके द्वारा संसद लोगों के प्रति अपने दायित्वों का निर्वहन करने एवं देश की सामाजिक, आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा करने का कार्य करती है। लेकिन क्या संसद देश के सभी नागरिकों के लिए विधि निर्माण का अधिकार रखती है। यह आश्चर्य की बात है कि देश के मुसलमानों एवं ईसाईयों के लिए सामाजिक, धार्मिक जीवन के लिए कानून निर्माण का अधिकार संसद को प्राप्त नहीं है। उन्हें यह विशेषाधिकार प्राप्त है कि उनके लिए अपने पर्सनल लॉ बोर्ड होंगे, जो उनके सामाजिक जीवन के नियमों का निर्धारण करेंगे। यद्यपि यह संविधान प्रदत्त विधि के समक्ष समानता के मौलिक अधिकार का उल्लंघन है। यही नहीं नीति निदेशक तत्वों में अनुच्छेद 44 के तहत राज्य का यह कर्तव्य घोषित है कि वह यथाशीघ्र समान नागरिक संहिता की स्थापना करेगा। भारत का सर्वोच्च न्यायालय भी अनेक बार समान नागरिक संहिता की स्थापना करने का निर्णय दे चुका है लेकिन अभी तक ऐसा हुआ नहीं है।

2. **धन विधेयक पारित करना** – संसद का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य धन विधेयक को पारित करना है। अनुच्छेद 109 में धन विधेयक की प्रक्रिया का वर्णन है तथा अनुच्छेद 110 में इसे परिभाषित किया गया है। धन विधेयक राज्यसभा में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। वह राष्ट्रपति की सिफारिश पर केवल लोकसभा में ही पेश किया जा सकता है। लोकसभा द्वारा पास किए जाने के पश्चात् राज्य सभा की सिफारिशों के लिए उसके पास भेजा जाता है। राज्यसभा के लिए विधेयक की उसे प्राप्ति की तिथि से 14 दिन के भीतर लोकसभा को लौटाना अनिवार्य है। यदि 14 दिन में लौटाया नहीं जाता तब भी वह दोनों सदनों द्वारा पास किया गया जाना जाएगा। यह भी उल्लेखनीय है कि धन विधेयक अनिवार्य रूप से सरकारी विधेयक ही होता है, गैर सरकारी विधेयक नहीं।

3. **संविधान संशोधन का कार्य** – संविधान देश की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक आवश्यकताओं की पूर्ति का उपकरण होता है। आवश्यकताओं में परिवर्तन के अनुरूप संविधान में बदलाव भी आवश्यक होता है। अतः प्रत्येक देश के संविधान में संशोधन की व्यवस्था होती है। संशोधन प्रक्रिया के आधार पर संविधान लचीला एवं कठोर दो प्रकार का होता है। ब्रिटिश संविधान जहाँ सबसे लचीला संविधान का उदाहरण है, वहीं अमेरिका का संविधान कठोर संविधान का उदाहरण माना जाता है।

भारतीय संविधान में संशोधन करने की शक्ति संसद को प्राप्त है। संविधान संशोधन प्रक्रिया का वर्णन संविधान के अनुच्छेद 368 में है। इसके अनुसार संविधान संशोधन दो प्रकार से हो सकता है। संविधान की अधिकांश धाराओं में परिवर्तन प्रत्येक सदन की कुल सदस्य संख्या के बहुमत तथा उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों से कम से कम दो–तिहाई बहुमत द्वारा पारित प्रस्ताव से होता है। परन्तु ऐसा कोई संशोधन जो संघ एवं राज्यों की कार्यपालिका शक्ति में परिवर्तन, राज्यों के विधायी संबंधों में परिवर्तन, संसद में राज्यों के प्रतिनिधित्व तथा स्वयं अनुच्छेद 368 में संशोधन आदि से संबंधित हो तब ऐसे संशोधन वाले विधेयक के लिए संसद के विशेष बहुमत के साथ–साथ कम से कम आधे राज्यों के विधान मण्डलों द्वारा उसे अनुसमर्थन प्राप्त होना आवश्यक होता है। संविधान के कुछ प्रावधानों में संसद के दोनों सदनों के साधारण बहुमत से संशोधन किया जाता है। संविधान संशोधन का यह तीसरा तरीका अनुच्छेद 368 में उल्लेखित दोनों तरीकों से अलग है।

संविधान संशोधन विधेयक किसी भी सदन में प्रस्तुत किया जा सकता है एवं दोनों सदनों द्वारा अलग–अलग पारित

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

करना आवश्यक है अर्थात् इसमें संयुक्त अधिवेशन का प्रावधान नहीं होता है। दोनों सदनों द्वारा पारित संविधान संशोधन विधेयक राष्ट्रपति के हस्ताक्षर से पारित समझा जाता है। राष्ट्रपति इस पर हस्ताक्षर करने से इन्कार नहीं कर सकते है।

इस प्रकार विधेयक तीन प्रकार के होते है – साधारण, धन एवं संविधान संशोधन विधेयक। साधारण एवं धन विधेयक पर जहाँ लोकसभा को राज्यसभा पर प्रभुत्व प्राप्त होता है, वहीं संविधान संशोधन विधेयक पर दोनों सदनों को समान शक्ति प्राप्त होती है, क्योंकि एक सदन इसे पारित करें एवं दूसरा सदन पारित नहीं करें तब संविधान संशोधन विधेयक समाप्त समझा जाएगा।

4. **कार्यपालिका पर नियंत्रण का कार्य** – लोकतांत्रिक व्यवस्था में सरकार जनता के प्रति उत्तरदायी होती है एवं जनता मताधिकार के माध्यम से उसे नियंत्रित करती है। लेकिन कार्यपालिका को नित प्रतिदिन कार्यों में नियंत्रित करने का कार्य जनता की प्रतिनिधि संस्था अर्थात् संसद को प्राप्त है। भारतीय संसद विभिन्न तरीकों से कार्यपालिका को नियंत्रित करती है, जैसे – प्रश्नकाल, शून्यकाल, ध्यानाकर्षण प्रस्ताव, काम रोको प्रस्ताव आदि के द्वारा। लेकिन कार्यपालिका अर्थात् मंत्री परिषद् पर नियंत्रण की सबसे बड़ी शक्ति लोकसभा को प्राप्त है, वह है विश्वास प्रस्ताव एवं अविश्वास प्रस्ताव पारित करना। विश्वास का मत प्रधानमंत्री सदन में प्रस्तुत करते है और सदस्यों से इसके पक्ष में मत देकर पारित करने का आग्रह करते है। अविश्वास प्रस्ताव मंत्री परिषद् को अपने पद से हटाने के लिए विपक्ष द्वारा लाया जाता है। विश्वास मत के पारित न होने और अविश्वास मत के पारित होने इन दोनों का ही परिणाम मंत्री परिषद् का अपने पद से हटना होता है।

इसके साथ ही संसद देश में विचार–विमर्श का सबसे बड़ा मंच है। विकास एवं कल्याण की विभिन्न योजनाओं पर विस्तार से संसद में चर्चा होती है। संसद राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति आदि के निर्वाचन एवं उनको पद से हटाने आदि का कार्य भी करती है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

- भारत में संसद का गठन संविधान के अनुच्छेद 79 द्वारा हुआ है।
- संसद में दो सदन–राज्यसभा व लोकसभा शामिल है।

संसद सदस्य बनने की योग्याताएँ –

- भारत का नागरिक हो, एक निश्चित आयु, राज्यसभा के लिए 30 वर्ष व लोकसभा के लिए 25 वर्ष पूर्ण कर चुका हो, ससंद द्वारा निर्धारित अन्य योग्यता पूर्ण करता हो।
- छः माह की अवधि में संसद का सत्र आहूत करना आवश्यक है।
- सदन की गणपूर्ति का अर्थ है– कुल सदस्य संख्या का दसवाँ भाग। वर्तमान में लोकसभा में गणपूर्ति हेतु 55 सदस्य व राज्यसभा में 25 सदस्य आवश्यक हैं।
- हमारी संसद में राज्यसभा उच्च सदन व लोकसभा में निम्न सदन या लोकप्रिय सदन के रूप में है।
- राज्यसभा में 12 एवं लोकसभा में 2 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत होते है।
- राजस्थान से राज्यसभा के लिए 10 सदस्य व लोकसभा के लए 25 सदस्य होते है।
- भारत का उपराष्ट्रपति राज्यसभा का पदेन सभापति होता है।
- लोकसभा का अध्यक्ष (स्पीकर) व उपाध्यक्ष का चुनाव सदस्यों में से ही होता है।
- संसद का सबसे महत्वपूर्ण कार्य है – कानून निर्माण।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. हमारी संसद मुख्य रुप से कौनसा कार्य करती है –
(अ) कानून लागू करना
(ब) कानून बनाना
(स) कानून तोड़ने वालों को दंडित करना
(द) पंचायतों के चुनाव कराना ( )
2. संसद के दो सदन है –
(अ) राज्यसभा व लोकसभा
(ब) लोकसभा व विधानसभा
(स) राष्ट्रपति व विधानसभा
(द) महाधिवक्ता व राष्ट्रपति ( )
3. धन विधेयक सर्वप्रथम किस सदन में प्रस्तुत किया जाता है –
(अ) राज्यसभा (ब) विधानसभा
(स) लोकसभा (द) ग्राम पंचायत ( )
4. राजस्थान से राज्यसभा के लिए अधिकतम कितने सदस्य निर्वाचित हो सकते है –
(अ) 25 (ब) 15
(स) 250 (द) 10 ( )

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. भारतीय संसद के कितने सदन है ?
2. लोकसभा सदस्य की न्यूनतम आयु क्या है ?
3. राष्ट्रपति राज्यसभा में कितने सदस्य मनोनीत करता है?
4. लोकसभा अध्यक्ष का चुनाव कौन करता है ?
5. उपराष्ट्रपति किस सदन का पदेन सभापति होता है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. संसद सदस्य बनने की योग्यता बताइए ?

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

2. संसद के दो कार्य लिखिए।
3. धन विधेयक पर एक टिप्पणी लिखिए।
4. संविधान संशोधन विधेयक क्या है?
5. गणपूर्ति (कोरम) से आप क्या समझते है ?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारतीय ससंद के गठन व संरचना को स्पष्ट कीजिए।
2. संसद की विधि निर्माण प्रक्रिया समझाइये।
3. '' भारतीय संसद दुनिया की शक्तिशाली विधायिकाओं में से एक है '' इसके कार्य एवं शक्तियों के आलोक में समीक्षा कीजिए।

बहुचयनात्मक प्रश्नों के उत्तर

1. ब 2. अ 3. स 4. द

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

2. संघीय कार्यपालिका, राष्ट्रपति का निर्वाचन एवं शक्तियाँ, प्रधानमंत्री, स्थिति एवं कार्य

(Union Executive, Election and Powers of President & Position and Functions of Prime Minister)

राष्ट्रपति
(President)

सरकार के तीन अंगों में से कार्यपालिका अंग विधायिका द्वारा स्वीकृत नीतियों और कानूनों को लागू करने के लिए जिम्मेदार है। लेकिन सभी देशों में एक ही तरह की कार्यपालिका नहीं हो सकती। मुख्यतः शासन के प्रकार के रूप में संसदात्मक एवं अध्यक्षात्मक का भेद कार्यपालिका के अलग–अलग प्रकार एवं कार्यपालिका व व्यवस्थापिका के आपसी संबंधों पर ही आधारित होता है। जिस संविधान में कार्यपालिका अपने कार्यों एवं कार्यकाल के लिए व्यवस्थापिका के प्रति जवाबदेह हो, कार्यपालिका के सदस्य आवश्यक रूप से व्यवस्थापिका के भी सदस्य हो एवं राष्ट्र का अध्यक्ष एवं सरकार का अध्यक्ष अलग–अलग हो, इस व्यवस्था को संसदात्मक अथवा संसदीय व्यवस्था कहते हैं। जापान, जर्मनी, इटली, ब्रिटेन, भारत इत्यादि संसदीय व्यवस्था के उदाहरण है। इसके विपरीत अध्यक्षात्मक व्यवस्था में राष्ट्रपति राज्य एवं सरकार दोनों का प्रधान होता है तथा वह शासन की सारी शक्तियों का केन्द्र बिन्दु होता है। अमेरिका, ब्राजील आदि अध्यक्षात्मक व्यवस्था के उदाहरण है, जबकि फ्रान्स, रूस, श्रीलंका आदि अर्द्ध–अध्यक्षात्मक व्यवस्था वाले देश है।

2.1 कार्यपालिका का स्वरूप (Nature of Executive) –

भारत में संसदीय व्यवस्था की स्थापना की गई है, जिसमें राष्ट्रपति कार्यपालिका का औपचारिक एवं संवैधानिक प्रधान होता है तथा प्रधानमंत्री के नेतृत्व में मंत्री–परिषद् वास्तविक कार्यपालिका होती है। यद्यपि राष्ट्रपति का पद गरिमा एवं प्रतिष्ठा का पद माना जाता है, वह देश का प्रथम नागरिक माना जाता है तथा वरीयता क्रम (प्रोटोकॉल) में सर्वोच्च स्थान रखता है। संविधान का अनुच्छेद 52 राष्ट्रपति पद की व्यवस्था करता है, जिसके अनुसार "भारत का एक राष्ट्रपति होगा।" अनुच्छेद 53 के अनुसार "संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित होगी, जिसका प्रयोग वह स्वयं अथवा अपने अधीनस्थ अधिकारियों द्वारा करेगा।"

2.2 राष्ट्रपति का निर्वाचन (Election of President) –

राष्ट्रपति के निर्वाचन प्रणाली का उल्लेख संविधान के अनुच्छेद– 54 एवं 55 में किया गया है। अनुच्छेद– 54 अनुसार राष्ट्रपति का निर्वाचन एक निर्वाचक मण्डल द्वारा किया जाएगा जो संसद के दोनों सदनों – लोकसभा एवं राज्यसभा के निर्वाचित सदस्यों तथा राज्यों की विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्यों से मिलकर बनेगा। इस प्रकार राष्ट्रपति का निर्वाचन अप्रत्यक्ष रूप से होता है। यह चुनाव एक विशेष विधि, जिसे आनुपातिक प्रतिनिधित्व की एकल संक्रमणीय मत विधि कहते हैं, के द्वारा गुप्त रूप से होता है। इस विधि में विजयी होने के लिए उम्मीदवार को कुल डाले गये वैध मतों के आधे से एक मत अधिक प्राप्त करना होता है, इसे न्यूनतम कोटा कहते हैं। राष्ट्रपति का निर्वाचन पाँच वर्ष के कार्यकाल के लिए होता है तथा वह पुनः चुनाव लड़ सकता है। राष्ट्रपति किसी भी समय उपराष्ट्रपति को सम्बोधित कर अपना त्याग पत्र दे सकता है। संविधान के अतिक्रमण के आरोप में राष्ट्रपति को महाभियोग की प्रक्रिया द्वारा पद से हटाया भी जा सकता है, जिसका वर्णन संविधान के अनुच्छेद 61 में है। यह महाभियोग संसद के किसी भी सदन द्वारा राष्ट्रपति को कम से कम 14 दिन पूर्व सूचित कर लाया जा सकता है। महाभियोग के प्रस्ताव को सदन की कुल सदस्य संख्या के कम से कम दो–तिहाई सदस्यों के बहुमत द्वारा पारित होना चाहिए। यह प्रक्रिया दोनों ही सदनों में अपनाई जाती है। अगर राष्ट्रपति का पद मृत्यु, त्याग पत्र अथवा पदच्युति के कारण रिक्त हो जाये तब छः माह के भीतर नए राष्ट्रपति का चुनाव करवाना आवश्यक है और नवनिर्वाचित राष्ट्रपति शेष बची अवधि के लिए नहीं बल्कि पाँच वर्ष के लिए निर्वाचित होता है।

2.3 राष्ट्रपति निर्वाचित होने की योग्यताएँ (Qualifications for the Election of President) –

संविधान के अनुसार राष्ट्रपति पद का उम्मीदवार होने के लिए आवश्यक है कि –

1. वह भारत का नागरिक हो।
2. उसकी न्यूनतम आयु पैंतीस वर्ष हो।
3. वह लोकसभा का सदस्य निर्वाचित होने की योग्यता रखता हो।

इसके अतिरिक्त वह सरकार के अन्तर्गत किसी लाभ के पद पर नहीं होना चाहिए। गैर गम्भीर व्यक्तियों को चुनाव लड़ने से रोकने के लिए निर्वाचक मण्डल में से प्रस्तावकों एवं अनुमोदकों की व्यवस्था भी की गई है। श्री राजेन्द्र प्रसाद भारत के पहले राष्ट्रपति थे, जो दो बार निर्वाचित हुए।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

2.4 राष्ट्रपति के निर्वाचन की प्रक्रिया–

राष्ट्रपति के निर्वाचक मण्डल में दो बातों पर विशेष बल दिया गया है। प्रथम, निर्वाचक मण्डल में जनसंख्या का निकटतम–संभव समान प्रतिनिधित्व हो। द्वितीय, समस्त विधानसभा–सदस्यों द्वारा देय मतों में समता रहे। उक्त उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु निर्वाचक–मंडल के प्रत्येक सदस्य की मत–संख्या निश्चित करने के लिए विशेष पद्धति अपनायी गयी है। राज्य–विधान सभा की मत–संख्या प्राप्त करने के लिए राज्य की कुल जनसंख्या वहां के विधानसभा के कुल चुने हुए सदस्यों में बाँट दी जाती है एवं उस भागफल को 1000 से बाँट दिया जाता है। 84 वें संवैधानिक संशोधन 2001 द्वारा राष्ट्रपति चुनाव में मतभार हेतु 1971 की जनगणना आधार होगी। इसमें परिवर्तन 2026 के पश्चात् होने वाली जनगणना के प्रकाशन के बाद ही होगा।

इसे निम्न सूत्र से स्पष्ट समझा जा सकता है:–

$$\text{विधानसभा के निर्वाचित सदस्य का मतभार} = \frac{\text{राज्य की कुल जनसंख्या}}{\text{राज्य विधानसभा के निर्वाचित सदस्यों की कुल संख्या}} \div 1000$$

अन्य शब्दों में राज्य की कुल जनसंख्या वहां के विधानसभा के चुने हुए सदस्यों की कुल संख्या से बाँट दी जाती है। विभाजन में यदि भजनशेष 50 % या उससे अधिक आए, तो एक मान कर भागफल में जोड़ दिया जाता है।

उदाहरण :– माना कि राजस्थान की जनसंख्या (1971 की जनगणना के आधार पर) 2, 57, 65, 806 है और राज्य विधानसभा की सदस्य संख्या 200 है तो प्रत्येक विधायक का मत भार इस प्रकार होगा।

$$\frac{\text{राजस्थान की जनसंख्या (1971 जनगणना के अनुसार)}}{\text{राज. विधानसभा सदस्यों की संख्या}} = \frac{2,57,65,806}{200} = \frac{1,28,829}{1000} = 128.82 = 129$$

l!ln d! iR;!d fuok!fpr lnL; dk er Hkkj &

संसद के प्रत्येक निर्वाचित सदस्य का मतभार निकालने के लिए राज्यों की विधानसभाओं के सभी निर्वाचित सदस्यों के कुल मतों को संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्यों की कुल संख्या से बाँट दिया जाता है (जिसमें केन्द्र शासित प्रदेश दिल्ली और पुदुच्चेरी की विधानसभा के सदस्य भी शामिल है।) इसका सूत्र निम्नानुसार है :–

$$\text{संसद के निर्वाचित सदस्य का मतभार} = \frac{\text{सभी राज्यों की विधानसभाओं के सदस्यों के कुल मत}}{\text{संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्यों की कुल संख्या}}$$

माना कि सभी विधानसभाओं के कुल मतों की संख्या 5, 44, 971 है और संसद के निर्वाचित सदस्यों की कुल संख्या 776 है, तो –

संसद के प्रत्येक सदस्य का मत भार =

$$\frac{5,\ 44,\ 971}{776} = 702.28 = 702$$

यदि भजनशेष 50% या उससे कम है तो उसे अनदेखा किया जाता है। लेकिन यदि शेष 50% से अधिक हैं उसे एक मानते हुए भागफल में जोड़ दिया जाता है।

निर्वाचन गुप्त–मतदान द्वारा एकल संक्रमणीय मत पद्धति से आनुपातिक–प्रतिनिधित्व प्रणाली द्वारा होता है। इस निर्वाचन–प्रक्रिया में सर्वप्रथम विजयी होने के लिए मतों के नियतांश का निर्धारण निम्नांकित सूत्र से किया जाता है–

$$\frac{\text{डाले गये वैध मतों की संख्या}}{\text{निर्वाचित किये जाने वाले सदस्यों की संख्या} + 1} + 1$$

यदि किसी उम्मीदवार को उक्त नियतांश नहीं मिलता, तो चाहे उसके सबसे अधिक मत हों निर्वाचित नहीं किया जा सकता। द्वितीय, हर मतदाता को इतने वरीयता मत देने का अधिकार होता है जितने उम्मीदवार होते हैं। तृतीय, उसको अपनी पसंद से वरीयता निर्धारित करने का अधिकार होता है। चतुर्थ, यदि प्रथम वरीयता की मतगणना में किसी भी उम्मीदवार को नियतांश में मत नहीं मिलते तो फिर दूसरी वरीयता की मतगणना प्रारम्भ की जाती है। पंचम, इस दूसरे चरण में उस उम्मीदवार को मुकाबले से हटाया जाता है जिसको प्रथम चरण में सबसे कम मत मिले हैं। उस उम्मीदवार के द्वितीय वरीयता के मत जिन उम्मीदवारों को मिले है, वे उन्हें हस्तांतरित किये जाते है। षष्ठ, यह क्रिया उस समय तक चलती रहती है जब तक कि किसी एक उम्मीदवार को नियतांश की मत–संख्या प्राप्त नहीं हो जाती।

यह पद्धति निम्न उदाहरण द्वारा और भी अधिक स्पष्ट की जा सकती है। हम मान लेते हैं कि राष्ट्रपति पद के लिए चुनाव मैदान में चार उम्मीदवार हैं। क, ख, ग एवं घ। कुल मतभार 140000 है। प्रथम वरीयता की मत गणना में प्रत्येक को निम्नलिखित मत प्राप्त हुए।

क = 30000, ख = 20000, ग = 40000, घ = 50000

यहाँ कुल मतभार = 140000 है अतः निर्वाचित होने के लिए आवश्यक निर्धारित मत (न्यूनतम कोटा)

$$= \frac{140000}{1 + 1} + 1 = 70000 + 1 = 70001$$

चूंकि प्रथम वरीयता की मतगणना में किसी भी उम्मीदवार को नियतांश में मत नहीं मिले हैं। अतः मतों का हस्तान्तरण आवश्यक है, और उम्मीदवार 'ख' जिसे सबसे कम मत मिले, के मतों का हस्तान्तरण किया जाता है।

द्वितीय चरण में उम्मीदवार 'ख' को प्राप्त 20000 मत शेष रहे तीन उम्मीदवारों में इस प्रकार विभाजित हुए:–

क = 5000, ग = 10000, घ = 5000

इन मतों को क, ग एवं घ के प्रथम गणना के मत में प्राप्त मतों में जोड़ने पर इनके मतों की संख्या निम्न रही।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

क = 35,000, ग = 50,000, घ = 55,000

स्पष्ट है कि अभी भी किसी उम्मीदवार को नियतांश (70001) प्राप्त नहीं हुआ है। अतः पूर्व प्रक्रिया को दोहराते हुए न्यूनतम मत प्राप्त उम्मीदवार यानी 'क' के पहली वरीयता के 30000 मतों की दूसरी वरीयता का विभाजन 'ग' व 'घ' में इस प्रकार किया गया।

ग = 50,000 + 11,000 = 61,000

घ = 55,000 + 19,000 = 74,000

इस प्रकार 'घ' राष्ट्रपति निर्वाचित हुए।

2.5 वेतन/विशेषाधिकार/उन्मुक्तियाँ व अन्य सुविधाएं (Salary/Privileges/ Immunities And Other Facilities) –

भारत सरकार द्वारा वर्तमान में राष्ट्रपति का वेतन पाँच लाख प्रतिमाह निर्धारित किया गया है। जब तक कोई व्यक्ति राष्ट्रपति के पद पर आसीन है तब तक उसके विरुद्ध किसी दीवानी या फौजदारी न्यायालय में कोई मुकदमा नहीं चलाया जा सकता है, न तो किसी गिरफ्तारी के लिए वारण्ट ही जारी किया जा सकता है और न ही उसे गिरफ्तार किया जा सकता है। दो महीने के लिखित नोटिस देने के पश्चात् राष्ट्रपति के विरुद्ध केवल दीवानी कार्यवाही की जा सकती है। पूर्व राष्ट्रपति की मृत्यु हो जाने पर उनकी पत्नी को सेवानिवृत्त राष्ट्रपति को मिलने वाली पेंशन की आधी राशि तथा सरकारी मकान आजीवन प्राप्त होगा। 'राष्ट्रपति भवन' उनका औपचारिक आवास है, जो ''रायसीना हिल्स'' दिल्ली में स्थित है। इसके अतिरिक्त हिमाचल प्रदेश की राजधानी शिमला के निकट ''छरबरा'' में उनका ग्रीष्मकालीन निवास स्थित है, जिसका नाम ''द रिट्रीट'' है। इसके अलावा आन्ध्रप्रदेश की राजधानी हैदराबाद में ''राष्ट्रपति निलयम'' में भी उनका एक अन्य आवास स्थित है।

2.6 राष्ट्रपति की शक्तियाँ व कार्य (Powers & Functions of President) –

संविधान के अनुसार राष्ट्रपति देश का सर्वोच्च पदाधिकारी होता है, वह राष्ट्राध्यक्ष के रूप में कार्य करता है। राष्ट्रपति की शक्तियों को दो भागों में बांटा जा सकता है, सामान्यकालीन एवं संकटकालीन अथवा आपातकालीन।

2.7 सामान्यकालीन शक्तियाँ (General Powers)

1. **कार्यपालिका शक्ति (Executive Powers)**– जैसा कि पूर्व में बतलाया गया है राष्ट्रपति भारत की कार्यपालिका का संवैधानिक प्रमुख होता है। संघ का शासन राष्ट्रपति के नाम से किया जाता है। वह प्रधानमंत्री, मंत्रीपरिषद् के अन्य सदस्यों, भारत के महान्यायवादी, विदेशों में राजदूत एवं राज्यों में राज्यपाल नियुक्त करता है। राष्ट्रपति भारत के सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों में मुख्य न्यायाधीश एवं अन्य न्यायाधीश नियुक्त करता है। संघ के स्तर के प्रमुख आयोगों जैसे संघ लोक सेवा आयोग, निर्वाचन आयोग, वित्त आयोग आदि के अध्यक्ष और सदस्यों को नियुक्त करने का अधिकार राष्ट्रपति को प्राप्त है। संविधान का अनुच्छेद 72 राष्ट्रपति को क्षमादान का अधिकार प्रदान करता है, जिसके अनुसार वह किसी व्यक्ति के दण्ड को, जिसमें मृत्यु दण्ड भी शामिल है, क्षमा, विलम्बन, निलम्बन अथवा लघुकरण कर सकता है। इन सभी के साथ राष्ट्रपति भारत की तीनों सेनाओं का प्रधान सेनापति भी होता है। उसे मंत्रीपरिषद् की कार्यवाही के बारे में सूचना प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त है। अनुच्छेद 78 के अनुसार, प्रधानमंत्री का यह कर्तव्य है कि वह राष्ट्रपति द्वारा मांगी गई सभी सूचनाएँ उसे प्रदान करे।

हम जानते हैं कि राष्ट्रपति की यह सारी शक्तियाँ औपचारिक ही है। वह यह सब कार्य मंत्रीपरिषद् की सलाह से ही करता है, लेकिन विशेष राजनीतिक परिस्थितियों में राष्ट्रपति को विवेक के अनुसार निर्णय करना पड़ता है। औपचारिक रूप से प्रधानमंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति करता है, लेकिन वह हर किसी को ऐसे नियुक्त नहीं कर सकता है। संसदीय व्यवस्था में लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल के नेता को ही वह प्रधानमंत्री नियुक्त करता है लेकिन जब चुनाव बाद किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं हो, ऐसे में अनेक बार राष्ट्रपति राजनीतिक आधार पर फैसला लेते हुए दिखते है।

2. **विधायी शक्ति (Legislative Powers)**– संसदीय व्यवस्था होने के कारण राष्ट्रपति कार्यपालिका का संवैधानिक प्रमुख होने के साथ ही संघीय व्यवस्थापिका अर्थात् संसद का भी अंग होता है। इस नाते वह अनेक कार्य करता है, जिन्हें राष्ट्रपति के विधायी कार्य कहा जाता है। वह संसद का सत्र बुलाता है, उसका सत्रावसान करता है। राष्ट्रपति लोकसभा को उसके कार्यकाल से पूर्व ही भंग कर सकता है, जिसका उल्लेख अनुच्छेद 85 में है। राष्ट्रपति प्रतिवर्ष संसद के दोनों सदनों को संयुक्त रूप से सम्बोधित करता है, जिसे राष्ट्रपति का अभिभाषण कहते हैं। राष्ट्रपति राज्यसभा में बारह सदस्य मनोनीत कर सकता है, जो कला, साहित्य, विज्ञान अथवा समाजसेवा के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान दिए व्यक्ति होते हैं। वह आंग्ल भारतीय समुदाय के दो सदस्यों को लोकसभा में मनोनीत कर सकता है।

अनुच्छेद 111 के अनुसार कोई भी विधेयक तब तक अधिनियम अर्थात् कानून नहीं बनता जब तक उस पर राष्ट्रपति के हस्ताक्षर नहीं हो जाये। राष्ट्रपति ऐसे किसी साधारण विधेयक को संसद को लौटाकर पुनर्विचार के लिए कह सकता है। लेकिन यदि संसद इसे दुबारा पारित कर राष्ट्रपति के पास भेजे तब राष्ट्रपति उस पर हस्ताक्षर को बाध्य होता है। अतः इसे राष्ट्रपति का सीमित अथवा निलम्बनकारी निषेधाधिकार (वीटो) कहते हैं। संविधान में राष्ट्रपति के लिए ऐसी कोई समय सीमा

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

तय नहीं की है, जिसके अन्दर ही उसे विधेयक पर फैसला लेना पड़ता हो। वह विधेयक पर न हस्ताक्षर करे एवं न ही उसे पुनर्विचार के लिए संसद को भेजे बल्कि अपने पास ही लम्बित रख ले। ऐसी स्थिति में यह विधेयक पारित नहीं हो सकेगा। इसे राष्ट्रपति का "जेबी निषेधाधिकार" (पॉकेट वीटो) कहते हैं, जिसका प्रयोग राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह ने डाक बिल के सन्दर्भ में किया था। इसके अलावा जब संसद के किसी भी सदन का अधिवेशन नहीं चल रहा हो, ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति अध्यादेश जारी कर सकता है, जो कानून के समान ही प्रभावी होता है। इसका वर्णन अनुच्छेद 123 में है। यह अध्यादेश संसद के पुनः समवेत होने पर उसके सामने रखा जायेगा और यदि छः सप्ताह में संसद उसे पारित कर विधि न बनाए तब वह अध्यादेश समाप्त माना जाएगा।

इस प्रकार राष्ट्रपति को संवैधानिक कार्यपालिका प्रमुख होने के साथ–साथ अनेक व्यवस्थापिका शक्तियाँ भी प्राप्त है।

3. **वित्तीय शक्तियाँ (Financial Powers)** – भारतीय राष्ट्रपति को व्यापक शक्तियाँ प्राप्त है। अनुच्छेद 112 के अन्तर्गत राष्ट्रपति संसद से समक्ष संघ का वार्षिक आय–व्यय का विवरण प्रस्तुत करता है। अनुच्छेद 113 के तहत बिना राष्ट्रपति की सिफारिश के संसद से किसी प्रकार की धन की मांग नहीं की जा सकती है। अनुच्छेद 117 (1) में वित्त से सम्बन्धित कोई विधेयक बिना राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति के संसद में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता तथा किसी विधेयक के पारित हो जाने पर भारत की संचित निधि से व्यय करना होगा उस पर संसद का कोई सदन तब तक विचार नहीं कर सकता जब तक कि राष्ट्रपति ने उस पर विचार देने की सिफारिश न की हो। राष्ट्रपति की अनुमति से पूरक, अतिरिक्त तथा अन्य मांगे पेश की जाती है। राष्ट्रपति वित्त आयोग के सदस्यों और नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की नियुक्ति करता है। उनके द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदनों को वह संसद के समक्ष प्रस्तुत करता है। राष्ट्रपति वित्त अयोग की सिफारिशों के आधार पर ही आयकर और अन्य करों से प्राप्त आय को केन्द्र और राज्यों में बंटवाता है।
4. **न्यायिक शक्तियाँ (Judicial Powers)**– राष्ट्रपति को कुछ न्यायिक शक्तियाँ भी प्रदान की गई है। अनुच्छेद 72 के अनुसार राष्ट्रपति को अधिकार है कि वह किसी सजा पाये हुए व्यक्ति को क्षमादान दे सके। न्यायालयों द्वारा दण्डित व्यक्तियों के सम्बन्ध में राष्ट्रपति को क्षमा प्रदान करने, दण्ड को कम करने या दण्ड को बदलने की शक्ति प्राप्त है। इन शक्तियों का प्रयोग राष्ट्रपति तीन प्रकार के मामलों में कर सकता है– पहला उन सभी मामलों में जहाँ दण्ड किसी सैनिक न्यायालय द्वारा किया गया हो। दूसरा उन सभी मामलों में, जहाँ दण्ड ऐसे अपराधों के लिए दिया गया हो जो संघ की कार्यपालिका शक्ति के अन्तर्गत आते हैं। तीसरा उन सभी मामलों के लिए जिनमें मृत्युदण्ड मिला हो। राष्ट्रपति की क्षमादान सम्बन्धी शक्ति का राज्यों के राज्यपालों और सैनिक न्यायालयों के सैनिक अधिकारियों को क्षमादान सम्बन्धी शक्ति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। इस शक्ति का प्रयोग राष्ट्रपति अपने मंत्रियों के परामर्श से करेगा।

2.7 आपातकालीन शक्तियाँ (Emergency Powers) –

संविधान के भाग 18 में अनुच्छेद 352 से 360 तक में आपातकालीन प्रावधान है, जिसके अनुसार राष्ट्रपति तीन तरह के आपात की घोषणा कर सकता है।

1. **राष्ट्रीय आपातकाल (अनुच्छेद 352) (National Emergency)** – मूल रूप से अनुच्छेद 352 के अनुसार, यदि राष्ट्रपति को यह समाधान हो जाता है कि गम्भीर आपात विद्यमान है, जिसे युद्ध, बाहरी आक्रमण या आन्तरिक अशान्ति के कारण भारत या उसके राज्यक्षेत्र के किसी भाग की सुरक्षा संकट में है तो वह उद्घोषणा द्वारा आपात की घोषणा कर सकेगा।

अनुच्छेद 352 के अन्तर्गत अब तक तीन बार – 1962 में भारत पर चीन के आक्रमण के समय, 1971 में भारत पर पाकिस्तान के आक्रमण के समय एवं जून, 1975 में आन्तरिक अशान्ति के आधार पर आपातकाल की घोषणा की गई है। 1978 में 44वें संविधान–संशोधन द्वारा 'आंतरिक अशांति' के स्थान पर 'सशस्त्र विद्रोह' शब्दावली रख दी गई है।

2. **राज्यों में संवैधानिक तंत्र की विफलता (Failure of Constitutional Machinery in States)** – अनुच्छेद 356 – इस अनुच्छेद के अनुसार यदि राष्ट्रपति को राज्य के राज्यपाल अथवा अन्य किसी माध्यम से यह ज्ञात हो जाये कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है, जिसमें उस राज्य का शासन संविधान के उपबन्धों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता, तब राष्ट्रपति उस राज्य की मंत्रीपरिषद् को बर्खास्त करता है। इस स्थिति को सामान्य बोलचाल में राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू होना कहते हैं।

राष्ट्रपति की ऐसी घोषणा दो माह के भीतर संसद के समक्ष रखी जाएगी, जहाँ दोनों सदनों द्वारा इसका अनुमोदन आवश्यक है। किसी राज्य में राष्ट्रपति शासन एक वर्ष के अधिक अवधि के लिए तभी जारी रह सकता है जब अनुच्छेद 352 के तहत सम्पूर्ण भारत में अथवा उस राज्य या उसके किसी भाग में आपातकाल लागू हो तथा निर्वाचन आयोग यह प्रमाणित कर दे कि राज्य में चुनाव करवाना सम्भव नहीं है। लेकिन किसी भी परिस्थिति में किसी राज्य में तीन वर्ष से अधिक समय के लिए राष्ट्रपति शासन नहीं रह सकता है।

यथार्थ में, इस प्रावधान का भी राजनीतिक आधार पर कई बार प्रयोग किया गया। इसी कारण देश में विभिन्न राज्यों में अब तक सौ से अधिक बार राष्ट्रपति शासन लागू हुआ। केन्द्र की सरकार राज्यों की विरोधी पार्टियों की सरकारों को इस अनुच्छेद के माध्यम से बर्खास्त करने का प्रयास करती है। इस

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

प्रवृत्ति ने केन्द्र और राज्यों के आपसी संबंधों को भी प्रभावित किया है। अनेक मामलों में सर्वोच्च न्यायालय ने राष्ट्रपति शासन की घोषणा को निरस्त कर पुनः राज्य सरकार को बहाल करने के आदेश दिये, जिससे सिद्ध है कि इस अनुच्छेद का प्रयोग भी राजनीतिक कारणों से ज्यादा हो रहा है।

3. **वित्तीय आपातकाल – अनुच्छेद 360 (Financial Emergency)**– इस अनुच्छेद के अनुसार यदि राष्ट्रपति को यह विश्वास हो जाता है कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है, जिससे भारत का वित्तीय स्थायित्व संकट में है तब वह वित्तीय आपात की घोषणा कर सकता है। ऐसी घोषणा का दो माह के भीतर संसद से अनुमोदन आवश्यक है। वित्तीय आपात के समय सभी अधिकारियों के जिसमें न्यायाधीश भी शामिल है, वेतन में कटौती की जा सकती है। देश में अब तक एक भी बार वित्तीय आपात लागू करने की आवश्यकता नहीं पड़ी है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि संवैधानिक रूप से सामान्यकाल एवं संकटकाल में राष्ट्रपति को व्यापक शक्तियाँ प्राप्त है। लेकिन वह इन शक्तियों का वास्तविक प्रयोगकर्ता नहीं है। संवैधानिक प्रावधानों एवं परम्पराओं के कारण वह इन शक्तियों का प्रयोग प्रधानमंत्री व मंत्रीपरिषद् की सिफारिश पर ही कर सकता है। इस कारण राष्ट्रपति राष्ट्राध्यक्ष होकर सम्मान का प्रतीक है, शासनाध्यक्ष होकर शक्ति का प्रतीक नहीं है।

प्रधानमंत्री–स्थिति एवं कार्य (Prime Minister – Position & Functions)

हमारे देश भारत में प्रधानमंत्री सबसे महत्त्वपूर्ण संस्थाओं में से एक है। भारत में संसदीय शासन–प्रणाली की व्यवस्था की गई है। संसदीय शासन प्रणाली में दो स्वरूप होते हैं एक नाममात्र की कार्यपालिका और दूसरा वास्तविक कार्यपालिका। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 53 में कहा गया है कि – ''संघ की कार्यकारी शक्तियाँ राष्ट्रपति के पास होंगी जिनका प्रयोग वह स्वयं प्रत्यक्ष रूप में या अपने अधीन अधिकारियों के माध्यम से संविधान के अनुसार करेगा।'' संविधान के अनुच्छेद 74 में यह प्रावधान है कि '' राष्ट्रपति की सहायता व परामर्श देने के लिए एक मंत्रीपरिषद् होगी जिसका मुखिया प्रधानमंत्री होगा और राष्ट्रपति उस मंत्री परिषद् की सलाह के अनुसार कार्य करेगा। '' इस प्रकार अनुच्छेद 74 के अनुसार राष्ट्रपति की स्वतंत्र कार्यपालिका शक्ति नहीं होगी और वह अपनी शक्तियों का प्रयोग भी स्वतंत्र रूप से नहीं कर सकता। वह प्रधानमंत्री व मंत्रिपरिषद् की सलाह मानने को बाध्य है। हमारी भारतीय संसदीय प्रणाली वेस्ट मिनिस्टर प्रणाली के मॉडल (ब्रिटिश मॉडल) पर आधारित है और इसी आधार पर समस्त कार्यपालिका, शक्तियों का वास्तविक प्रयोग वहीं करता है। वह राष्ट्रपति के सलाहकार के रूप में कार्य करता है और मंत्रिपरिषद् का नेता होता है। भारत के पहले प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरु थे और वर्तमान प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी हैं जो भारत के 15वें प्रधानमंत्री है। प्रधानमंत्री के पद की शक्तियाँ व प्रतिष्ठा काफी हद उस पद को धारण करने वाले व्यक्ति के व्यक्तित्व, कार्यशैली व उसके दल के लोकसभा में बहुमत पर निर्भर करती है।

भारत में पं. नेहरु, इन्दिरा गाँधी व नरेन्द्र मोदी जैसे शक्तिशाली प्रधानमंत्री भी हुए हैं तो मिली–जुली सरकारों के दौर में एच.डी. देवगौडा व इन्द्रकुमार गुजराल जैसे कम शक्तिशाली नेताओं ने भी प्रधानमंत्री के रूप में कार्य किया है। प्रधानमंत्री का लोकसभा या राज्यसभा में से किसी एक का सदस्य होना अनिवार्य होता है। यदि प्रधानमंत्री नियुक्त होते समय वह किसी सदन का सदस्य नहीं है तो 6 माह में उसे संसद के किसी सदन का सदस्य निर्वाचित होना आवश्यक है।

2.8 मंत्री परिषद् की रचना (Formation of Council of Ministers) –

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 74 में यह व्यवस्था की गई है कि प्रधानमंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाएगी और अन्य मंत्रियों की नियुक्ति प्रधानमंत्री की सलाह पर राष्ट्रपति करेगा। प्रधानमंत्री की नियुक्ति मंत्रिपरिषद् के निर्माण में पहला कदम होता है।

2.9 प्रधानमंत्री की नियुक्ति (Appointment of Prime Minister)–

संसदीय प्रणाली के वेस्ट मिनिस्टर मॉडल की परम्परा के अनुसार राष्ट्रपति अनुच्छेद 75 के तहत उस व्यक्ति को प्रधानमंत्री नियुक्त करता है जो लोकसभा में बहुमत दल का नेता होता है तथा जिसे लोकसभा में बहुमत का समर्थन प्राप्त होता है। यदि किसी एक पार्टी को लोकसभा में बहुमत प्राप्त नहीं होता है तो राष्ट्रपति सबसे बड़े राजनीतिक दल के नेता को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित करता है। वह एक निश्चित समय सीमा में उसे बहुमत सिद्ध करने के लिए आदेश देता है।

2.10 मंत्रियों की नियुक्ति व विभागों का आवंटन (Appointment of Ministers & Allocation of Portfolios)

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 75 के अन्तर्गत प्रधानमंत्री की सलाह पर वह मन्त्रिमण्डल के अन्य सदस्यों की नियुक्ति करता है। वह मंत्रियों के विभागों का आवंटन भी स्वयं करता है। प्रधानमंत्री अपने साथी मंत्रियों की सूची राष्ट्रपति को भेजता है जिसे राष्ट्रपति मन्जूरी दे देता है व उन्हें शपथ ग्रहण की रस्म भी अदा करवाता है। वर्तमान सरकार में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी सहित 78 मंत्रियों की विशाल मंत्रिपरिषद् है।

2.11 मंत्रियों के प्रकार (Types of Ministers) –

1. **कैबिनेट स्तर के मंत्री** – यह किसी विभाग विशेष के सर्वोच्च मंत्री होते हैं जो स्वतंत्र रूप से उस विभाग के प्रभारी होते हैं।
2. **राज्य स्तर के मंत्री** – ये मंत्री दूसरे दर्जे के मंत्री होते

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

हैं। ये कैबिनेट की बैठक में भाग नहीं लेते। इनमें कुछ को स्वतंत्र प्रभार भी दिया जा सकता है और वे किसी विभाग के मुखिया भी हो सकते हैं। सामान्यतयाः इनको कैबिनेट मंत्री के साथ सम्बद्ध किया जात है।

3. **उप–मंत्री** – ये तीसरे दर्जे के मंत्री होते हैं। ये किसी विभाग के स्वतंत्र प्रभारी नहीं होते तथा मंत्रीमंडल की बैठक में भी भाग नहीं लेते है। ये कैबिनेट मंत्री व राज्यमंत्री की सहायता करते हैं।

हाल ही के वर्षों में संसदीय सचिव नियुक्ति करने की परम्परा पनपी है। हालांकि संवैधानिक रूप में उन्हें कोई शक्ति नहीं दी जाती है और न ही कोई प्रशासनिक दायित्व सौंपा जाता है। इनकी नियुक्ति भी प्रधानमंत्री ही करता है तथा उन्हें पद की शपथ दिलवाता है। इनका काम विभागों के मंत्रियों की संसद में सहायता करना है।

2.12 मंत्री परिषद् का आकार (Size of Council of Ministers) –

91वां संवैधानिक संशोधन (जो कि 2003 में पारित हुआ व जिसे 2004 में राष्ट्रपति द्वारा मंजूर किया गया था) के अनुसार मंत्रियों की कुल संख्या लोकसभा के कुल सदस्यों के 15 प्रतिशत अर्थात् 82 से अधिक नहीं हो सकती।

2.13 कार्यकाल (Tenure) –

संविधान के अनुच्छेद 75 के अनुसार " सभी मंत्री राष्ट्रपति के प्रसादपर्यन्त अपने पद पर बने रह सकते हैं।" प्रधानमंत्री व मंत्रिपरिषद् उस समय तक अपने पद पर बने रहते हैं जब तक उसे लोकसभा का विश्वास प्राप्त हो। साधारणतया मंत्री परिषद् का कार्यकाल लोकसभा के कार्यकाल के साथ ही चलता है।

2.14 पद की शपथ (Oath) –

प्रधानमंत्री सहित प्रत्येक मंत्री को पद ग्रहण करने से पूर्व राष्ट्रपति द्वारा दो तरह की शपथ दिलाई जाती है। एक पद के प्रति और दूसरी गोपनीयता की होती है। शपथ कर्तव्यों के ईमानदारी से निर्वहन करने के लिए दिलाई जाती है। गोपनीयता से तात्पर्य यह है कि प्रत्येक व्यक्ति मंत्रिमण्डल के निर्णय को गुप्त रखेंगे।

2.15 प्रधानमंत्री की भूमिका एवं उत्तरदायित्व (Role and Responsblities of Prime Minister) (Link Between President & Council of Ministers) –

प्रधानमंत्री मंत्रिपरिषद् व लोकसभा दोनों का नेता होता है। वह राष्ट्रपति और मंत्रिपरिषद् के मध्य संचार माध्यम होता है। राष्ट्रपति व मंत्रिपरिषद के मध्य कड़ी है। प्रधानमंत्री का यह दायित्व है कि वह मन्त्रिपरिषद् में लिये गए सभी निर्णयों से राष्ट्रपति को अवगत कराये। संघ सरकार के प्रशासन व विधायी व अन्य प्रस्तावों की जानकारी राष्ट्रपति तक पहुँचाना प्रधानमंत्री का ही कार्य है।

2.16 विभागों का आवंटन (Allocation of Portfolios) –

प्रधानमंत्री अपने साथी मंत्रियों को विभागों का आवंटन स्वयं करता है साथ ही, विभिन्न कार्यालयों व विभागों में काम का बंटवारा करता है। प्रधानमंत्री कैबिनेट सचिवालय के माध्यम से विभिन्न मंत्रालयों और विभागों के बीच समन्वय करता है।

2.17 मंत्रालयों का प्रभारी (Incharge of Ministry) –

प्रधानमंत्री कुछ विभाग या पोर्टफोलियो अपने पास रखता है जिनका आवंटन अन्य मंत्रियों को नहीं किया गया हो। वह साधारणतया अपने पास रखे विभागों/मंत्रालयों का प्रभारी होता है।

2.18 मंत्रिमंडल का नेता (Leader of Cabinet)–

प्रधानमंत्री कैबिनेट की विभिन्न बैठकों का आव्हान करता है उसकी अध्यक्षता करता है। वह इन बैठकों में क्या कार्य एवं विचार विमर्श होंगे, उसका भी निर्धारण करता है।

2.19 संसद और कैबिनेट के मध्य कड़ी (Link Between Parliament & Cabinet) –

प्रधानमंत्री संसद और कैबिनेट के बीच सम्पर्क सूत्र के रूप में कार्य करता है। वह संसद में सरकार की तरफ से मुख्य प्रवक्ता होता है। वह लोकसभा का नेता भी होता है। प्रधानमंत्री का इस रूप में यह उत्तरदायित्व है कि वह महत्त्वपूर्ण नीतिगत फैसलों की घोषणा करे। प्रधानमंत्री संसद में सामान्य महत्त्व की बहस में हस्तक्षेप कर सरकार की नीति को स्पष्ट करने के लिए अपना पक्ष रख सकता है।

2.20 सरकारी प्रतिनिधि के रूप में (As an Official Delegate) –

प्रधानमंत्री विभिन्न प्रतिनिधि मंडलों उच्च स्तरीय बैठकों और अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों में भारत का प्रतिनिधित्व करता है। प्रधानमंत्री राष्ट्रीय महत्त्व के विभिन्न अवसरों व मुद्दों पर दूरदर्शन एवं रेडियों पर सम्बोधित करता है।

2.21 प्रधानमंत्री की शक्तियाँ एवं अधिकार (Powers & Rights of Prime Minister) –

भारत का प्रधानमंत्री विश्व के शक्तिशाली शासनाध्यक्षों में से एक है।

1. भारत का प्रधानमंत्री विश्व के शक्तिशाली शासनाध्यक्षों में से एक है, वह सरकार का मुखिया होता है जबकि राष्ट्रपति राज्याध्यक्ष या राष्ट्राध्यक्ष होता है। केन्द्रीय मंत्रिमण्डल व अन्य नीति निर्माता संस्थाओं से सम्बन्धित सभी महत्त्वपूर्ण निर्णय उसकी देखरेख में लिए जाते हैं। वह नीति (NITI) आयोग का पदेन अध्यक्ष होता है।
2. प्रधानमंत्री सरकार का वास्तविक अध्यक्ष होता है। वह

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

राष्ट्रपति को अपने मंत्रियों की नियुक्ति तथा उनके विभागों के आवंटन, परिवर्तन या उनके त्यागपत्र स्वीकार या अस्वीकार करने की सलाह देता है।

3. प्रधानमंत्री मन्त्रिपरिषद् की सभी बैठकों में अध्यक्षता करता है और यह सुनिश्चित करता है कि मन्त्रिपरिषद् सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त पर कार्य करें।
4. वह केन्द्र प्रशासन तथा विधान सम्बन्धी प्रस्तावों के सम्बन्ध में कैबिनेट द्वारा लिए गए निर्णयों से राष्ट्रपति को समय–समय पर सूचित करता है।
5. किसी भी मंत्री द्वारा लिए गए निर्णय को प्रधानमंत्री राष्ट्रपति के कहने पर पुनः मन्त्रिपरिषद् में विचार के लिए रखवा सकता है।
6. प्रधानमंत्री संसद के कार्य संचालन में नेतृत्व प्रदान करता है। सभी सरकारी विधेयक उसके निरीक्षण में तथा उसकी सलाह के अनुसार तैयार किए जाते हैं।
7. वह अपने अधीन मंत्रियों के विभागों के कार्यों की भी देखरेख करता है तथा मंत्रियों में परस्पर उत्पन्न होने वाले मतभेदों को दूर कर सम्पूर्ण प्रशासन में सामजंस्य बनाए रखता है।
8. संसद में प्रधानमंत्री सरकार का मुख्य प्रवक्ता होता है। शासकीय नीति से सम्बन्धित अधिकृत घोषणा प्रधानमंत्री के अधिकार क्षेत्र में ही आता है।
9. वह सभी महत्त्वपूर्ण नियुक्तियों के सम्बन्ध में राष्ट्रपति को परामर्श देता है।
10. वह राष्ट्रपति तथा मन्त्रिपरिषद् के मध्य सम्पर्क सूत्र के रूप में कार्य करता है।
11. प्रधानमंत्री लोकसभा तथा राज्यसभा के मध्य भी सम्पर्क सूत्र के रूप में कार्य करता है। वह राष्ट्रपति को परामर्श देता है कि संसद का सत्र कब बुलाया जाए, कब स्थगित किया जाए और कब भंग किया जाए। वह यह भी सुनिश्चित करता है कि कैबिनेट के निर्णयानुसार कौनसे विधेयक संसद में पेश किए जावे और विपक्ष के विरोध का किस प्रकार सामना किया जाए।
12. प्रधानमंत्री विदेश नीति से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण निर्णय स्वयं लेता है एवं विदेशों में भारत का प्रतिनिधित्व करता है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- संविधान के अनुच्छेद 53 के अनुसार संघ की समस्त कार्यपालिका शक्तियाँ राष्ट्रपति में निहित है।
- राष्ट्रपति का निर्वाचन, संसद व राज्य विधानसभा के निर्वाचित सदस्य करते हैं।
- राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार की न्यूनतम आयु 35 वर्ष है।
- राष्ट्रपति की शक्तियों व कार्यों को दो भागों में वगीकृत किया जा सकता है – सामान्य कालीन व आपातकालीन। सामान्य कालीन शक्तियाँ – कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियाँ, विधायी शक्तियाँ, न्यायिक शक्तियाँ, नियुक्ति सम्बन्धी व विशेषाधिकारी शक्तियाँ। आपातकालीन शक्तियाँ – अनुच्छेद 352 में उल्लिखित बाह्य आक्रमण, अनुच्छेद 356 में उल्लिखित राज्य प्रशासन की विफलता पर आपातकाल(राष्ट्रपति शासन) व अनुच्छेद 360 में उल्लिखित वित्तीय आपातकाल लगाने की शक्तियाँ राष्ट्रपति को प्राप्त है।
- संविधान के अनुच्छेद 75 के तहत राष्ट्रपति लोकसभा के बहुमत दल के नेता को प्रधानमंत्री नियुक्त करता है। इसमें कुछ विशेषाधिकार भी राष्ट्रपति के पास है।
- संघीय मंत्री परिषद् में तीन प्रकार के मंत्री होते हैं – कैबिनेट मंत्री, राज्यमंत्री व उपमंत्री। प्रधानमंत्री कार्य व्यवस्थार्थ संसदीय सचिव भी नियुक्त कर सकता है।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. भारत का राष्ट्रपति बनने के लिए इनमें से कौनसी योग्यता होनी चाहिए ?
   (अ) वह भारत का नागरिक हो।
   (ब) उसकी आयु न्युनतम 35 वर्ष हो।
   (स) वह लोकसभा सदस्य की योग्यता रखता हो।
   (द) उपरोक्त सभी ( )
2. राष्ट्रपति की क्षमादान की शक्ति में शामिल नहीं है–
   (अ) मृत्यृदण्ड को उम्र कैद में बदलना।
   (ब) उम्र कैद को मृत्युदण्ड में बदलना।
   (स) उम्र कैद को पूर्णतः क्षमा करना।
   (द) मृत्युदण्ड को विलम्बित (देरी) करना ( )
3. भारतीय संविधान के किस अनुच्छेद के प्रावधानों के तहत आज तक आपातकाल की घोषणा नहीं हुई है–
   (अ) अनुच्छेद 352 (ब) अनुच्छेद 356
   (स) अनुच्छेद 360 (द) अनुच्छेद 75 ( )
4. इनमें से कौन मन्त्रिपरिषद् का हिस्सा नहीं है –
   (अ) कैबिनेट मंत्री (ब) संसदीय सचिव
   (स) राज्यमंत्री (द) उपमंत्री ( )
5. राष्ट्रपति संविधान के किस अनुच्छेद के प्रावधानों के अन्तर्गत प्रधानमंत्री की नियुक्ति करता है–
   (अ) अनुच्छेद 75 (ब) अनुच्छेद 74
   (स) अनुच्छेद 356 (द) अनुच्छेद 53 ( )

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. भारतीय संघ की समस्त कार्यपालिका शक्तियाँ किसमें निहित है ?
2. हमारे देश के प्रथम राष्ट्रपति कौन थे ?
3. प्रधानमंत्री की नियुक्ति कौन करता है ?

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

4. प्रधानमंत्री की दो प्रमुख शक्तियाँ लिखिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. भारत के राष्ट्रपति की निर्वाचन प्रक्रिया बताइए।
2. राष्ट्रपति की कार्यपालिका शक्तियों पर टिप्पणी लिखिए।
3. अनुच्छेद 356 के तहत राष्ट्रपति के अधिकारों को स्पष्ट कीजिए।
4. राष्ट्रपति को कौन–कौन से विशेषाधिकार प्राप्त है ?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. राष्ट्रपति के निर्वाचन व सामान्य शक्तियों की व्याख्या कीजिए।
2. ''क्या आपातकालीन शक्तियाँ कभी राष्ट्रपति को तानाशाह तो नहीं बना देगी'' – कथन की मीमांसा भारतीय राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियों के संदर्भ में कीजिए।
3. ''प्रधानमंत्री, मन्त्रिपरिषद् में मेहराब की तरह है, जिसके इर्द–गिर्द समस्त, शक्तियाँ घूमती है।'' कथन के परिप्रेक्ष्य में भारतीय प्रधानमंत्री के पद व शक्तियों पर लेख लिखिए।

बहुचयनात्मक प्रश्नों के उत्तर

1. द 2. ब 3. अ 4. ब
5. ब 6. ब 7. अ

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

3. न्यायपालिका—सर्वोच्च न्यायालय का गठन, कार्य एवं न्यायिक पुनरावलोकन
(Judiciary-Composition of Supreme Court, Functions and Judicial Review)

सर्वोच्च न्यायालय
(Supreme Court)

भारत का सर्वोच्च न्यायालय वास्तव में विश्व के सबसे शक्तिशाली न्यायालयों में से एक है। 1950 से ही न्यायपालिका ने संविधान की व्याख्या और सुरक्षा करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। अधिकारों की सुरक्षा के लिए न्यायपालिका बहुत महत्त्वपूर्ण है। हर समाज में व्यक्तियों के बीच, समूहों के बीच और व्यक्ति समूह तथा सरकार के बीच विवाद उठते हैं। इन सभी विवादों को 'कानून के शासन के सिद्धान्त' के आधार पर एक स्वतन्त्र संस्था द्वारा हल किया जाना चाहिए। 'कानून के शासन' का भाव यह है कि धनी और गरीब, स्त्री और पुरुष तथा अगड़े और पिछड़े सभी लोगों पर एक समान कानून लागू हो। न्यायपालिका की प्रमुख भूमिका यह है कि वह 'कानून के शासन' की रक्षा और कानून की सर्वोच्चता को सुनिश्चित करे। न्यायपालिका व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा करती है, विवादों को कानून के अनुसार हल करती है और यह सुनिश्चित करती है कि लोकतन्त्र की जगह किसी एक व्यक्ति या समूह की तानाशाही न ले लें। इसके लिए जरूरी है कि न्यायपालिका किसी भी राजनीतिक दबाव से मुक्त हो।

न्यायपालिका को स्वतन्त्रता कैसे दी जा सकती है और उसे सुरक्षित कैसे बनाया जा सकता है? भारतीय संविधान में अनेक उपायों के द्वारा न्यायपालिका की स्वतन्त्रता सुनिश्चित की है। न्यायाधीशों की नियुक्तियों के मामले में विधायिका को सम्मिलित नहीं किया गया है। इससे यह सुनिश्चित किया गया कि इन नियुक्तियों में दलगत राजनीति की कोई भूमिका नहीं रहे। न्यायाधीश के रूप में नियुक्त होने के लिए किसी व्यक्ति को वकालात का अनुभव या कानून का विशेषज्ञ होना चाहिए। उस व्यक्ति के राजनीतिक विचार या निष्ठाएँ उसकी नियुक्ति का आधार नहीं बनना चाहिए। न्यायाधीशों का कार्यकाल निश्चित होता है। वे सेवानिवृत्त होने तक पद पर बने रहते हैं। केवल अपवाद स्वरूप विशेष परिस्थितियों में ही न्यायाधीशों को हटाया जा सकता है। इसके अलावा, उनके कार्यकाल को कम नहीं किया जा सकता। कार्यकाल की सुरक्षा के कारण न्यायाधीश बिना भय या भेदभाव के अपना काम कर पाते हैं। संविधान में न्यायाधीशों को हटाने के लिए बहुत कठिन प्रक्रिया निर्धारित की गई है। संविधान निर्माताओं का मानना था कि हटाने की प्रक्रिया कठिन हो, तो न्यायपालिका के सदस्यों का पद सुरक्षित रहेगा।

न्यायपालिका विधायिका या कार्यपालिका पर वित्तीय रूप से निर्भर नहीं है। संविधान के अनुसार न्यायाधीशों के वेतन और भत्ते के लिए विधायिका की स्वीकृति नहीं ली जाएगी। न्यायाधीशों के कार्यों और निर्णयों की व्यक्तिगत आलोचना नहीं की जा सकती। अगर कोई न्यायालय की अवमानना का दोषी पाया जाता है, तो न्यायपालिका को उसे दण्डित करने का अधिकार है। माना जाता है कि इस अधिकार से न्यायाधीशों को सुरक्षा मिलेगी और कोई उनकी नाजायज आलोचना नहीं कर सकेगा। संसद न्यायाधीशों के आचरण पर केवल तभी चर्चा कर सकती है जब वह उनके विरुद्ध पद–च्युति प्रस्ताव पर विचार कर रही हो। इससे न्यायपालिका आलोचना के भय से मुक्त होकर स्वतन्त्र रूप से निर्णय करती है।

3.1 न्यायाधीशों की नियुक्ति
(Appointment of Judges) –

सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति भारत के मुख्य न्यायाधीश की सलाह से करता है। इसका अर्थ यह हुआ कि नियुक्तियों के सम्बन्ध में वास्तविक शक्ति मंत्रीपरिषद् के पास है। 1982 से 1998 के बीच यह विषय बार–बार सर्वोच्च न्यायालय के सामने आया। शुरू में न्यायालय का विचार था कि मुख्य न्यायाधीश की भूमिका पूरी तरह से सलाहकार की है। लेकिन बाद में न्यायालय ने माना कि मुख्य न्यायाधीश की सलाह राष्ट्रपति को जरूर माननी चाहिए। आखिरकार सर्वोच्च न्यायालय ने एक नई व्यवस्था की। इसके अनुसार सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश अन्य चार वरिष्ठतम् न्यायाधीशों की सलाह से कुछ नाम प्रस्तावित करेगा और इसी में से राष्ट्रपति नियुक्तियाँ करेगा। इसे कॉलेजियम व्यवस्था कहते हैं। इस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय ने नियुक्तियों की सिफारिश के सम्बन्ध में " सामूहिकता का सिद्धान्त " स्थापित किया। इसी कारण आजकल नियुक्तियों के सम्बन्ध में सर्वोच्च न्यायालय के वरिष्ठ न्यायाधीशों के समूह का ज्यादा प्रभाव है। इस तरह न्यायपालिका की नियुक्ति में सर्वोच्च न्यायालय और मंत्रीपरिषद् महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों में नियुक्ति की नई प्रणाली को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा असंवैधानिक करार देते हुए निरस्त करना – सर्वोच्च न्यायालय ने एक महत्त्वपूर्ण फैसले मे संविधान के 99वें संशोधन द्वारा लाए गए राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग(एनजेएसी) अधिनियम को असंवैधानिक करार देते हुए इसे निरस्त कर दिया और उच्च न्यायपालिका में न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए पुरानी

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

कॉलेजियम प्रणाली को बहाल कर दिया। सर्वोच्च न्यायालय के इस फैसले से केन्द्र सरकार और सर्वोच्च न्यायालय के मध्य टकराव की स्थिति उत्पन्न हो गई है। वर्तमान सरकार न्यायाधीशों की जवाबदेहिता और अधिक पारदर्शिता की व्यवस्था के अन्तर्गत नियुक्ति की नई व्यवस्था लाना चाहती थी ताकि नियुक्तियों में भाई–भतीजावाद की प्रवृत्ति को रोका जा सके। इस प्रयोजनार्थ केन्द्र सरकार ने सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों में न्यायाधीशों की नियुक्ति की " कॉलेजियम प्रणाली " में बदलाव लाने के लिए 13 अप्रैल, 2015 को राष्ट्रीय नियुक्ति आयोग अधिनियम, 2014 और 99वाँ संविधान संशोधन अधिनियम 2014 को अधिसूचित किया। ध्यातव्य है कि इन दोनों अधिनियमों से सम्बन्धित दो विधेयक क्रमशः राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग विधेयक 2014 और 121वां संविधान संशोधन विधेयक, 2014 लोकसभा में 13 अगस्त, 2014 को और राज्यसभा में 14 अगस्त, 2014 को सर्वसम्मति से पारित हो गए थे। संविधान के अनुच्छेद 368(2) के तहत निर्धारित आधे से अधिक राज्य विधानमण्डलों के अनुमोदन मिलने के बाद 31 दिसम्बर, 2014 को राष्ट्रपति ने इन दोनों विधेयकों को मन्जूरी प्रदान की। राष्ट्रपति की मन्जूरी मिलने के बाद 121वां संविधान संशोधन विधेयक, 2014 99वां संविधान संशोधन अधिनियम, 2014 के रूप में और राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग विधेयक 2014 राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति अधिनियम 2014 के रूप में 31 दिसम्बर 2014 को ही राजपत्र में प्रकाशित किया गया था। केन्द्र सरकार ने 13 अप्रैल 2015 को इन अधिनियमों के प्रभावी होने की तिथि निर्धारित कर दी थी।

इस अनुच्छेद के अनुसार राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग के नाम से ज्ञात एक आयोग होगा, जिसका अध्यक्ष भारत का मुख्य न्यायाधीश होगा। इसके अलावा सर्वोच्च न्यायालय के दो वरिष्ठतम न्यायाधीश, केन्द्रीय विधि और न्यायमंत्री तथा दो प्रबुद्ध/विख्यात व्यक्ति इसके सदस्य होंगे। इस प्रकार यह आयोग 6 सदस्यीय होगा। उल्लेखनीय है कि दो प्रबुद्ध/विख्यात व्यक्तियों का चयन प्रधानमंत्री, भारत के मुख्य न्यायमूर्ति और लोकसभा में विपक्ष के नेता या सबसे बड़े विपक्षी दल के नेता से मिलकर बनने वाली समिति द्वारा किया जाएगा। इन दो प्रबुद्ध/विख्यात व्यक्तियों में एक व्यक्ति का अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़े वर्गों, अल्पसंख्यकों के व्यक्तियों या महिलाओं में से नाम निर्दिष्ट किए जाएँगे। उल्लेखनीय है कि उपर्युक्त संवैधानिक संशोधन को सर्वोच्च न्यायालय की संवैधानिक पीठ ने निरस्त कर दिया है।

3.2 न्यायाधीशों को पद से हटाना (Removal of Judges) –

सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को उनके पद से हटाना काफी कठिन है। कदाचार साबित होने अथवा अयोग्यता की दशा में ही उन्हें पद से हटाया जा सकता है। न्यायाधीश के विरुद्ध आरोपों पर संसद के एक विशेष बहुमत की स्वीकृति जरूरी होती है। स्पष्ट है कि न्यायाधीश को हटाने की प्रक्रिया अत्यन्त कठिन है और जब तक संसद के सदस्यों में 2/3 बहुमत की सहमति न हो तब तक किसी न्यायाधीश को हटाया नहीं जा सकता। यह भी गौरतलब है कि जहाँ उनकी नियुक्ति में कार्यपालिका की महत्त्वपूर्ण भूमिका है वहीं उनको हटाने की शक्ति विधायिका के पास है। इसके द्वारा सुनिश्चित किया गया है कि न्यायपालिका की स्वतन्त्रता बची रहे और शक्ति–सन्तुलन भी बना रहे। अब तक संसद के पास किसी न्यायाधीश को हटाने का केवल एक प्रस्ताव विचार के लिए आया है। इस मामले में हालाँकि दो–तिहाई सदस्यों ने प्रस्ताव के पक्ष में मत दिया, लेकिन न्यायाधीश को हटाया नहीं जा सका क्योंकि प्रस्ताव पर सदन की कुल सदस्य संख्या का बहुमत प्राप्त न हो सका।

3.3 न्यायपालिका की संरचना (Structure of Judiciary) –

भारतीय संविधान एकीकृत न्यायिक व्यवस्था की स्थापना करता है। इसका अर्थ यह है कि विश्व के अन्य संघीय देशों के विपरीत भारत में अलग से प्रान्तीय स्तर के न्यायालय नहीं है। भारत में न्यायपालिका की संरचना पिरामिड की तरह है जिसमें सबसे ऊपर सर्वोच्च न्यायालय फिर उच्च न्यायालय तथा सबसे नीचे जिला और अधीनस्थ न्यायालय है। नीचे के न्यायालय अपने ऊपर के न्यायलयों की देखरेख में काम करते हैं।

भारत का सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court of India)

- इसके फैसले सभी अदालतों को मानने होते हैं।
- यह उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों का तबादलों की सिफारिश कर सकता है।
- यह किसी अदालत का मुकदमा अपने पास मँगवा सकता है।
- यह किसी एक उच्च न्यायालय में चल रहे मुकदमें को दूसरे उच्च न्यायालय में भिजवा सकता है।

उच्च न्यायालय (High Court)

- निचली अदालतों के फैसले पर की गई अपील की सुनवाई कर सकता है।
- मौलिक अधिकारों को बहाल करने के लिए रिट जारी कर सकता है।
- राज्य के क्षेत्राधिकार में आने वाले मुकदमों का निपटारा कर सकता है।
- अपने अधीनस्थ अदालतों का पर्यवेक्षण और नियन्त्रण करता है।

जिला न्यायालय (District Courts)

- जिले में दायर मुकदमों की सुनवाई करती है।
- निचली अदालतों के फैसले पर की गई अपील की सुनवाई करती है।
- गम्भीर किस्म के आपधारिक मामलों पर फैसला देती है।

अधीनस्थ न्यायालय (Subordinate Courts)

- फौजदारी और दीवानी किस्म के मुकदमों पर विचार करती है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

3.4 सर्वोच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार (Jurisdiction of The Supreme Court) –

भारत का सर्वोच्च न्यायालय विश्व के सर्वाधिक शक्तिशाली न्यायालयों में से एक है। लेकिन वह संविधान द्वारा तय की गई सीमा के अन्दर ही काम करता है। सर्वोच्च न्यायालय के कार्य और उत्तरदायित्व संविधान में दर्ज हैं। सर्वोच्च न्यायालय को कुछ विशेष क्षेत्राधिकार प्राप्त हैं।

1. **प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार (Original Jurisdiction) –** मौलिक क्षेत्राधिकार का अर्थ है कि कुछ मुकदमों की सुनवाई सीधे सर्वोच्च न्यायालय कर सकता है। ऐसे मुकदमों में पहले निचली अदालतों में सुनवाई जरूरी नहीं। संघीय सम्बन्धों से जुड़े मुकदमें सीधे सर्वोच्च न्यायालय में जाते हैं। सर्वोच्च न्यायालय का मौलिक क्षेत्राधिकार उसे संघीय मामलों से सम्बन्धित सभी विवादों में एक अम्पायर या निर्णायक की भूमिका देता है। किसी भी संघीय व्यवस्था में केन्द्र और राज्यों के बीच तथा विभिन्न राज्यों में परस्पर कानूनी विवादों का उठना स्वाभाविक है। इन विवादों को हल करने की जिम्मेदारी सर्वोच्च न्यायालय की है। इसे मौलिक क्षेत्राधिकार इसलिए कहते हैं क्योंकि इन मामलों को केवल सर्वोच्च न्यायालय ही हल कर सकता है। इस कारण इसे एकमेव प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार भी कहा जाता है। इसके अलावा राष्ट्रपति एवं उप राष्ट्रपति के निर्वाचन संबंधी विवाद तथा मूल अधिकारों के अतिक्रमण संबंधी विवाद भी सीधे सर्वोच्च न्यायालय में पेश किए जा सकते है।

2. **'रिट' सम्बन्धी अधिकार**

   (Powers Related to Writ Petition) –

   मौलिक अधिकारों के उल्लघंन पर कोई भी व्यक्ति इन्साफ पाने के लिए सीधे सर्वोच्च न्यायालय जा सकता है। सर्वोच्च न्यायालय अपने विशेष आदेश रिट के रूप में दे सकता है। उच्च न्यायालय भी रिट जारी कर सकते हैं। लेकिन जिस व्यक्ति के मौलिक अधिकारों का उल्लघंन हुआ है उसके पास विकल्प है कि वह चाहे तो उच्च न्यायालय या सीधे सर्वोच्च न्यायालय जा सकता है। इन रिटों के माध्यम से न्यायालय कार्यपालिका को कुछ करने या न करने का आदेश दे सकता है। इसे समवर्ती प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार भी कहा जाता है।

3. **अपीलीय क्षेत्राधिकार (Appellate Powers) –** सर्वोच्च न्यायालय अपील का उच्चतम न्यायालय है। कोई भी व्यक्ति उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अपील कर सकता है। लेकिन उच्च न्यायालय को यह प्रमाण–पत्र देना पड़ता है कि वह मुकदमा सर्वोच्च न्यायालय में अपील करने योग्य है अर्थात् उसमें संविधान या कानून की व्याख्या करने जैसा कोई गम्भीर मामला निहित है। अगर फौजदारी के मामले में निचली अदालत किसी को फाँसी की सजा दे दे, तो उसकी अपील सर्वोच्च या उच्च न्यायालय में की जा सकती है। यदि किसी मुकदमें में उच्च न्यायालय अपील की आज्ञा न दे तब भी सर्वोच्च न्यायालय के पास यह शक्ति है कि वह उस मुकदमें में की गई अपील को विचार के लिए स्वीकार कर ले। अपीलीय क्षेत्राधिकार का मतलब यह है कि सर्वोच्च न्यायालय पूरे मुकदमें पर पुनर्विचार करेगा और उसके कानूनी मुद्दों की दुबारा जाँच करेगा। यदि न्यायालय को लगता है कि कानून या संविधान का वह अर्थ नहीं है जो निचली अदालतों ने समझा तो सर्वोच्च न्यायालय उनके निर्णय को बदल सकता है तथा इसके साथ उन प्रावधानों की नई व्यवस्था भी दे सकता है। उच्च न्यायालयों को भी अपने नीचे की अदालतों के निर्णय के विरुद्ध अपीलीय क्षेत्राधिकार है।

4. **सलाह सम्बन्धी क्षेत्राधिकार**

   (Advisory Jurisdiction) –

   मौलिक और अपीली क्षेत्राधिकार के अतिरिक्त सर्वोच्च न्यायालय का परामर्श सम्बन्धी क्षेत्राधिकार भी है। इसके अनुसार, भारत का राष्ट्रपति लोकहित या संविधान की व्याख्या से सम्बन्धित किसी विषय को सर्वोच्च न्यायालय के पास परामर्श के लिए भेज सकता है। लेकिन न तो सर्वोच्च न्यायालय ऐसे किसी विषय पर सलाह देने के लिए बाध्य है और न ही राष्ट्रपति न्यायालय की सलाह मानने को। फिर सर्वोच्च न्यायालय के परामर्श देने की शक्ति की क्या उपयोगिता है? इसकी दो मुख्य उपयोगिताएँ हैं – पहली, इससे सरकार को छूट मिल जाती है कि किसी महत्त्वपूर्ण मसले पर कार्यवाही करने से पहले वह अदालत की कानूनी राय जान ले। इससे बाद में कानूनी विवाद से बचा जा सकता है। दूसरी, सर्वोच्च न्यायालय की सलाह मानकर सरकार अपने प्रस्तावित निर्णय या विधेयक में समुचित संशोधन कर सकती है।

3.5 न्यायिक सक्रियता (Judicial Activism) –

अनेक लोगों का मानना है कि न्यायिक सक्रियता अथवा जनहित याचिका इन दोनों ने न्यायपालिका के कार्यों में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर उन्हें पहले से अधिक जनोन्मुखी बना दिया है। भारत में न्यायिक सक्रियता का मुख्य साधन जनहित याचिका या सामाजिक व्यवहार याचिका रही है। आखिर 'जनहित याचिका' है क्या?कब और कैसे इसकी शुरुआत हुई?कानून की सामान्य प्रक्रिया में कोई व्यक्ति तभी अदालत जा सकता है जब उसका कोई व्यक्तिगत नुकसान हुआ हो। इसका मतलब यह है कि अपने अधिकार का उल्लंघन होने पर या किसी विवाद में फँसने पर कोई व्यक्ति इंसाफ पाने के लिए अदालत का दरवाजा खटखटा सकता है। 1979 में इस अवधारणा में बदलाव आया। 1979 में इस बदलाव की शुरुआत करते हुए न्यायालय ने एक ऐसे मुकदमें की सुनवाई करने का निर्णय लिया जिसे पीड़ित लोगों ने नहीं बल्कि उनकी ओर से दूसरों ने दाखिल किया था। चूँकि इस मामले में जनहित से

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

सम्बन्धित एक मुद्दे पर विचार हो रहा था अतः इसे और ऐसे ही अन्य अनेक मुकदमों को जनहित याचिकाओं का नाम दिया गया। उसी समय सर्वोच्च न्यायालय ने कैदियों के अधिकार से सम्बन्धित मुकदमें पर भी विचार किया। इससे ऐसे मुकदमों की बाढ़–सी आ गई जिसमें जनसेवा की भावना रखने वाले नागरिकों तथा स्वयंसेवी संगठनों ने अधिकारों की रक्षा, गरीबों के जीवन को और बेहतर बनाने, पर्यावरण की सुरक्षा और लोकहित से जुड़े अनेक मुद्दों पर न्यायपालिका से हस्तक्षेप की माँग की। जनहित याचिका न्यायिक सक्रियता का सबसे प्रभावी साधन हो गई है।

किसी के द्वारा मुकदमा करने पर उस मुद्दे पर विचार करने के बजाय न्यायपालिका ने अखवार में छपी खबरों और डाक से प्राप्त शिकायतों को आधार बनाकर उन पर विचार करना शुरू कर दिया। इस तरह न्यायपालिका की यह नई भूमिका न्यायिक सक्रियता के रूप में लोकप्रिय हुई। वायु और ध्वनि प्रदूषण दूर करना, भ्रष्टाचार के मामलों की जाँच करना या चुनाव सुधार करना वास्तव में न्यायपालिका के काम नहीं है। ये सभी कार्य विधायिका की देखरेख में प्रशासन को करना चाहिए। इसलिए कुछ लोगों का मानना है कि न्यायिक सक्रियता से सरकार के तीनों अंगों के बीच पारस्परिक सन्तुलन रखना बहुत मुश्किल हो गया है। लोकतान्त्रिक शासन का आधार यह है कि सरकार का हर अंग एक–दूसरे की शक्तियों और क्षेत्राधिकार का सम्मान करे। न्यायिक सक्रियता से इस लोकतान्त्रिक सिद्धान्त को आघात पहुँच सकता है। लेकिन अधिकांश मामलों में अनुभव हुआ है कि न्यायिक सक्रियता का जनहितों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है।

3.6 न्यायपालिका और अधिकार (Judiciary & Rights) –

न्यायपालिका को व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा करने का दायित्व सौंपा गया है। संविधान ऐसी दो विधियों का वर्णन करना है जिसमें सर्वोच्च न्यायालय अधिकारों की रक्षा कर सके – यह अनेक रिट; जैसे – बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश आदि जारी करके मौलिक अधिकारों को फिर से स्थापित कर सकता है। (अनुच्छेद 32)। उच्च न्यायालयों को भी ऐसी रिट जारी करने की शक्ति है (अनुच्छेद 226)। सर्वोच्च न्यायालय किसी कानून को गैर–सवैंधानिक घोषित कर उसे लागू होने से रोक सकता है (अनुच्छेद 13)। ये दोनों प्रावधान एक और सर्वोच्च न्यायालय को नागरिकों के मौलिक अधिकार के संरक्षक तथा दूसरी ओर संविधान के व्याख्याकार के रूप में स्थापित करते हैं। उपर्युक्त प्रावधानों में दूसरा प्रावधान न्यायिक पुनरावलोकन की व्यवस्था करता है।

3.7 न्यायपालिका और संसद (Judiciary & Parliament) –

न्यायपालिका ने अधिकार के मुद्दे पर तो सक्रियता दिखाई ही है, राजनीतिक व्यवहार–बरताव से संविधान को ठेंगा दिखाने की प्रवृत्ति पर भी अंकुश लगाया है। इसी कारण जो विषय पहले न्यायिक पुनरावलोकन के दायरे में नहीं थे उन्हें भी अब इस दायरे में ले लिया गया है, जैसे – राष्ट्रपति और राज्यपाल की शक्तियाँ। ऐसे और भी अनेक उदाहरण हैं जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने न्याय की स्थापना के लिए कार्यपालिका की संस्थाओं को निर्देश दिए। जैसे उसने हवाला मामले, नरसिंह राव मामले और पैट्रोल पम्पों के अवैध आवंटन जैसे अनेक मामलों में सी.बी.आई. (केन्द्रीय जाँच ब्यूरो) को निर्देश दिया कि वह भ्रष्ट राजनेताओं और नौकरशाहों के विरुद्ध जाँच करे। भारतीय संविधान शक्ति के सीमित बँटवारे, अवरोध तथा सन्तुलन के एक सुन्दर सिद्धान्त पर आधारित है। इसका मतलब यह है कि सरकार के प्रत्येक अंग का एक स्पष्ट कार्य क्षेत्र है। संसद कानून बनाने और संविधान का संशोधन करने में सर्वोच्च है, कार्यपालिका उन्हें लागू करने तथा न्यायपालिका विवादों को सुलझाने और यह सुनिश्चित करने में सर्वोच्च है कि क्या बनाए गए कानून संविधान के अनुकूल है। इस स्पष्ट कार्य विभाजन के बावजूद संसद और न्यायपालिका तथा कार्यपालिका और न्यायपालिका के बीच टकराव भारतीय राजनीति की विशेषता रही है।

संविधान लागू होने के तुरन्त बाद सम्पत्ति के अधिकार पर रोक लगाने की संसद की शक्ति पर विवाद खड़ा हो गया। संसद सम्पत्ति रखने के अधिकार पर कुछ प्रतिबन्ध लगाना चाहती थी जिससे भूमि–सुधारों को लागू किया जा सके। न्यायालय ने निर्णय दिया कि संसद मौलिक अधिकारों को सीमित नहीं कर सकती। संसद ने तब संविधान को संशोधित करने का प्रयास किया। लेकिन न्यायालय ने कहा कि संविधान के संशोधन के द्वारा भी मौलिक अधिकारों को सीमित नहीं किया जा सकता।

निष्कर्ष (Conclusion) –

भारतीय न्यायपालिका अपनी स्वतन्त्रता के लिए भी जानी जाती है। अनेक निर्णयों के माध्यम से न्यायपालिका ने संविधान की नई व्याख्याएँ दी और नागरिकों के अधिकारों की रक्षा की। लोकतन्त्र वास्तव में विधायिका और न्यायपालिका के बीच एक अत्यन्त संवेदनशील सन्तुलन पर आधारित है और इन दोनों को संविधान की सीमाओं के अन्दर ही रहकर कार्य करना पड़ता है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- सर्वोच्च न्यायालय सरकार का तीसरा और सशक्त सन्तुलनकारी अंग है।
- संविधान की व्याख्या और नागरिक अधिकारों की रक्षा का दायित्व न्यायालय को दिया गया है।
- जनहित से जुड़े मुद्दों पर सर्वोच्च न्यायालय स्वयं भी किसी भी विषय पर प्रसंज्ञान ले सकता है।
- सर्वोच्च न्यायालय के परामर्शी स्वरूप में दी गई सलाह को मानना सरकार के लिए अनिवार्य नहीं है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

- भारत में संघीय देशों की भाँति प्रान्त स्तरीय स्वतन्त्र न्यायालय नहीं है अपितु त्रिस्तरीय ढांचे के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय, उच्च न्यायालय और जिला न्यायालयों की व्यवस्था है।
- सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार में मौलिक, रिट, अपीलीय और सलाहकारी क्षेत्र आते हैं।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. न्यायपालिका के न्यायाधीशों की नियुक्ति प्रक्रिया में निम्न में से किसे सम्मिलित नहीं किया गया है –
(अ) राष्ट्रपति (ब) विधायिका
(स) मुख्य न्यायाधीश (द) लोकायुक्त ( )
2. सर्वोच्च न्यायालय के परामर्शी क्षेत्राधिकार का आशय है –
(अ) सरकार को प्रत्येक नए कानून बनाने से पहले परामर्श देना।
(ब) विधायिका के सम्मुख प्रस्तुत किए जाने वाले कानूनी मसौदों पर सलाह देना।
(स) भारत के राष्ट्रपति द्वारा लोकहित या संविधान के किसी प्रश्न पर परामर्श मांगने पर सलाह देना।
(द) जनहित याचिकाओं पर परामर्श देना। ( )
3. वर्तमान समय में लोकहितों की सुरक्षा का सर्वाधिक सशक्त साधन है–
(अ) जनहित याचिका (ब) दया याचिका
(स) पुनरीक्षण याचिका (द) निरीक्षण याचिका ( )
4. सर्वोच्च न्यायालय के लिए निम्न में से कौनसा कथन सही नहीं है –
(अ) सर्वोच्च न्यायालय के आदेश सभी अदालतों के लिए बाध्यकारी है।
(ब) यह किसी भी मुकदमें को अपने पास मँगा सकता है।
(स) यह सर्वोच्च न्यायालय की नई पीठ देश में कहीं भी खोल सकता है।
(द) यह उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के तबादले कर सकता है। ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. सरकार के तीनों अंगों में शक्ति सन्तुलन के सिद्धान्त की व्याख्या का अधिकार किसे है?
2. संघीय सम्बन्धों से जुड़े मुकदमों की सीधी सुनवाई कहाँ होती है?
3. न्यायिक सक्रियता को दर्शाने वाली याचिका को क्या कहा जाता है?
4. संविधान की मौलिकता के बनाए रखने हेतु न्यायालय क्या कर सकता है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. न्यायिक सक्रियता से क्या आशय है?
2. अपीलीय क्षेत्राधिकार क्या है?
3. प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार में मुख्यतः कौन से विषय आते हैं?

निबन्धात्मक प्रश्न –

1. सर्वोच्च न्यायालय के अधिकारों एवम् शक्तियों की व्याख्या कीजिए।
2. न्यायिक सक्रियता और जनहित याचिकाऐं एक–दूसरे से जुड़ी है। सिद्ध कीजिए।

बहुचयनात्मक प्रश्नों के उत्तर

1. द 2. स 3. अ 4. स

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

4. राज्य स्तरीय एवं स्थानीय शासन 73वें एवं 74वें संविधान संशोधन के सन्दर्भ में वर्तमान स्वरूप
(State Administration & Local Self Government - Present Perspective With Reference to 73rd and 74th Constitutional Amendments)

राज्य प्रशासन
(State Administration)

भारत एक प्रभुता– सम्पन्न समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष एवं लोकतांत्रिक गणराज्य है जो एकात्मक सुविधाओं के साथ सरंचना में संघीय है। देश के संवैधानिक प्रमुख, राष्ट्रपति के परामर्श हेतु एक मंत्री परिषद् होती है जिसका प्रमुख देश का प्रधानमंत्री होता है। इसी प्रकार राज्यों में राज्यपाल के परामर्श हेतु एक मंत्रिपरिषद् होती है जिसका प्रमुख राज्य का मुख्यमंत्री होता है। भारत में जिस संसदीय शासन प्रणाली को केन्द्र में अपनाया गया है, उसी भाँति राज्यों में भी संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। केन्द्र के समान राज्य में भी इस तरह की व्यवस्था प्रचलित है – एक औपचारिक और दूसरी वास्तविक कार्यपालिका। जिस प्रकार केन्द्र में वास्तविक कार्यपालिका प्रधानमंत्री होता है उसी प्रकार राज्य में वास्तविक कार्यपालिका मुख्यमंत्री होता है। राज्य में संवैधानिक प्रमुख राज्यपाल होता है जो केन्द्र में राष्ट्रपति की भाँति राज्य का नाममात्र का कार्यपालक होता है। राज्यपाल के नाम पर ही शासन का सम्पूर्ण कार्य संचालित किया जाता है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 153 के अन्तर्गत राज्यपाल के पद का हवाला दिया गया है। अनुच्छेद 154 में वर्णित है कि राज्य की कार्यपालिका शक्ति राज्यपाल में निहित होगी। अनुच्छेद 155 के अन्तर्गत भारत का राष्ट्रपति राज्य के राज्यपाल को नियुक्त करता है।

राज्यपाल विधानसभा में बहुमत दल के नेता को मुख्यमंत्री नियुक्त करता है। केन्द्र की भाँति राज्यपाल के प्रशासनिक ढाँचे को विभागों में विभाजित किया गया है। एक सरकारी विभाग अपनी प्रशासनिक संरचना का सबसे बड़ा उपसंभाग होता है। विभाग का मुखिया राजनीतिक प्रमुख होता है तथा उसको परामर्श और तकनीकी सलाह के लिए एक प्रशासनिक अधिकारी नियुक्त किया गया है। वह नीतियों के क्रियान्वयन के लिए जिम्मेदार होता है।

भारत के संविधान में 'संघ राज्य' शब्द का प्रयोग न करके " राज्यों का संघ " शब्द का प्रयोग इस बात की ओर इंगित करता है कि भारत में राज्य प्रशासन, स्वायत्तता के बावजूद राष्ट्रीय धारा के विपरीत नहीं जा सकता।

राज्य प्रशासन को विभिन्न जिलों में विभाजित किया गया है। जिला प्रशासन का प्रमुख दायित्व कानून व्यवस्था को बनाए रखना राजस्व एकत्र करना व विकास कार्यों को क्रियान्वित करना होता है। व्यवहार में सम्पूर्ण जन–कल्याणकारी नीतियों के निष्पादन का उत्तरदायित्व जिलाध्यक्ष का ही है। भारत में लोक–कल्याणकारी राज्य की स्थापना करने का भार जिलाध्यक्ष के कंधों पर है।

73वें व 74वें सांविधानिक संशोधन के प्रावधानों से जिला प्रशासन और अधिक महत्त्वपूर्ण हो गया है। जिलाध्यक्ष अब भारत के लोक विकेन्द्रीकृत संरचना का मुख्य अभिकर्त्ता व समन्वयकर्त्ता है। स्थानीय स्वशासन व जिला प्रशासन के बीच की कड़ी जिलाध्यक्ष को ही कहा जाता है।

4.1 राज्य प्रशासन की विशेषताएँ (Characteristics of State Administration) –

1. राज्य प्रशासन का स्वतंत्र अस्तित्व
2. पृथक् संविधान का अभाव
3. आपातकाल में केन्द्रीय प्रशासन के अधीन
4. केन्द्र पर निर्भरता
5. राज्य प्रशासन विकास प्रशासन का द्योतक
6. जन सहभागिता पर आधारित
7. सचिवालय– राज्य प्रशासन की धुरी
8. प्रमुख प्रशासको का अखिल भारतीय सेवाओं से चयनित होकर आना।
9. राज्यपाल राज्य में राष्ट्रपति का प्रतिनिधि
10. स्थानीय प्रशासन राज्य प्रशासन के अधीन।

4.2 राज्य का संवैधानिक प्रधान (Constitutional Head of The State) –

राज्यपाल हमारे संविधान में केन्द्र के समान राज्यों में भी संसदीय शासन प्रणाली अपनाने के फलस्वरूप राज्य का वैधानिक प्रधान राज्यपाल को बनाया गया है। राज्यपाल नाममात्र की शक्तियों का प्रयोग करता है। जबकि वास्तविक शक्तियों का प्रयोग मुख्यमंत्री के नेतृत्व में मंत्रिमण्डल करता है।

4.3 राज्यपाल की स्थिति (Position of Governor)–

प्रारम्भ में राज्यपाल की भूमिका औपचारिकता तक ही सीमित थी किन्तु बदली हुई राजनीतिक परिस्थितियों में यह पद अत्यन्त शक्तिशाली और गरिमामय हो गया है। अब पहले जैसी स्थिति नहीं है। सीतारमैया ने इस पद के बारे में टिप्पणी करते हुए कहा है कि " राज्यपाल का कार्य अतिथियों की इज्जत करने, उनको चाय, भोजन तथा दावत देने के अलावा कुछ नहीं। "

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

संघीय सरकार के समरूप राज्य में मंत्रिपरिषद् राज्य की वास्तविक प्रधान है जिसका मुखिया मुख्यमंत्री होता है। संविधान के अनुच्छेद 163(1) के अनुसार जिन बातों में संविधान द्वारा या संविधान के अधीन राज्यपाल से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने कार्यों को स्वविवेक से करे, उन बातों को छोड़कर राज्यपाल को अपने कृत्यों का प्रयोग करने में सहायता और सलाह देने के लिए एक मन्त्रिपरिषद् होगी जिसका प्रधान मुख्यमंत्री होगा।

अनुच्छेद 163 (1) यदि कोई प्रश्न उठता है कि कोई विषय ऐसा है या नहीं जिसके सम्बन्ध में इस संविधान द्वारा या इसके अधीन राज्यपाल से यह अपेक्षित है कि वह अपने विवेकानुसार कार्य करे तो राज्यपाल का अपने विवेकानुसार किया गया विनिश्चय अंतिम होगा और राज्यपाल द्वारा की गई किसी बात की विधिमान्यता इस आधार पर प्रश्नगत नहीं की जाएगी कि उसे अपने विवेकानुसार कार्य करना चाहिए या नहीं, इस प्रश्न की किसी न्यायालय में जाँच नहीं की जाएगी कि क्या मंत्रियों ने राज्यपाल को कोई सलाह दी, और यदि दी तो क्या दी।

राज्यपाल की बदलती भूमिका के निम्नलिखित कारण है–

1. मुख्यमंत्रियों का कमजोर व्यक्तित्व।
2. राज्य सरकार के पास सुस्पष्ट बहुमत न होकर साधारण बहुमत होना।
3. गठबंधन की विखंडनकारी प्रवृत्ति
4. दल–बदल की प्रवृत्ति और राजनीतिक अस्थिरता।
5. क्षेत्रीय दलों का अधिक शक्तिशाली होना।

राज्यपाल को मनोनीत करने के कारण –

1. संसदीय शासन प्रणाली के कारण
2. राज्यपाल को नाममात्र कार्यपालिका शक्ति प्रदान की गई ताकि वास्तविक शक्ति का प्रयोग मुख्यमंत्री कर सके।
3. भारत की विविधता को ध्यान में रखते हुए संघ व राज्यों में एकता एवं अखंडता स्थापित करने के लिए।
4. एक स्वतंत्र और निष्पक्ष मध्यस्थ एवं निर्णायक के लिए।

4.4 राज्यपाल की नियुक्ति के सम्बन्ध में कुछ परम्पराएँ (Traditions for Appointment of Governor)–

1. सामान्यतया एक राज्य में उसी राज्य के निवासी को राज्यपाल नहीं बनाया जाता है।
2. राज्य मंत्रिमण्डल राज्यपाल के नाम पर सहमत हो, यद्यपि इस परम्परा को व्यवहार में कम ही माना जाता है।
3. वरिष्ठ राजनीतिज्ञों को नौकरशाहों को व सैन्य अधिकारियों को नियुक्त किया जाता है।
4. प्रशासनिक सुधार आयोग के अनुसार एक व्यक्ति को एक ही बार राज्यपाल नियुक्त किया जाना चाहिए।

4.5 राज्यपाल के सम्बन्ध में सरकारिया अयोग की सिफारिशें (Recommendations of Sarkaria Commission in Respect of Governor) –

1. राज्यपाल के रूप में मनोनीत व्यक्ति को उसके कार्यकाल के बाद पुनः लाभ के पद पर नहीं लगाना चाहिए।
2. केन्द्र में जिस दल का शासन हो उससे सम्बन्धित व्यक्ति को उस राज्य में राज्यपाल नहीं नियुक्त करना चाहिए जिसमें अन्य राजनीतिक दल की सरकार हो।
3. अनुच्छेद 155 में आवश्यक संशोधन व परिवर्तन कर राज्यपाल की नियुक्ति में मुख्यमंत्री से सलाह लेने की व्यवस्था की जानी चाहिए।

4.6 राज्यपाल की शक्तियाँ (Powers of Governor) –

राज्यपाल राज्य में संवैधानिक अध्यक्ष है। राज्य में राज्यपाल की वही स्थिति है जो संघ में राष्ट्रपति की है। दुर्गा दास बसु के शब्दों में, " राज्यपाल की शक्तियाँ राष्ट्रपति के समान है, सिर्फ कूटनीतिक, सैनिक तथा संकटकालीन अधिकारों को छोड़कर । " राज्यपाल की शक्तियाँ निम्न प्रकार है –

1. **कार्यपालिका शक्तियाँ** – संविधान के अनुच्छेद 154 के अनुसार, " राज्य की समस्त कार्यपालिका शक्ति राज्यपाल में निहित होगी और वह इसका प्रयोग इस संविधान के अनुसार स्वयं या अपने अधीनस्थ अधिकारियों के द्वारा करेगा। " संविधान के अनुच्छेद 166 के अनुसार राज्य के समस्त कार्य उसी के नाम से होते हैं। शासन के कार्य संचालन के लिए राज्यपाल मंत्रियों के बीच शासन विभागों का वितरण करता है। संविधान के अनुच्छेद 163 के अनुसार राज्यपाल को प्रशासन कार्य में सहायता तथा परामर्श देने के लिए एक मंत्री–परिषद् होगी जिसका अध्यक्ष मुख्यमंत्री होगा। अनुच्छेद 164 के अनुसार राज्यपाल मुख्यमंत्री को नियुक्त करता है और मुख्यमंत्री के परामर्श से अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करता है। मन्त्रिपरिषद् के सदस्य राज्यपाल के प्रसाद पर्यन्त ही अपने पद पर रह सकते हैं।

राज्यपाल को राज्य के शासन से सम्बन्धित सभी मामलों के विषय में सूचना प्राप्त करने का अधिकार है। मुख्यमंत्री के लिए यह आवश्यक है कि वह राज्यपाल को मन्त्रिपरिषद् के सभी निर्णयों तथा प्रशासन सम्बन्धी उन सभी मामलों के बारे में सूचना दें, जिनके बारे में राज्यपाल ऐसी सूचना की मांग करें। राज्यपाल किसी मंत्री द्वारा किए गए नये निर्णय को मुख्यमंत्री से मंत्री परिषद् के विचाराधीन रखवा सकता है।

राज्यपाल राज्य के एडवोकेट जनरल की नियुक्ति करता

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

है। वह राज्य के लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष तथा सदस्यों की नियुक्ति करता है। उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति में राज्यपाल से परामर्श लिया जाता है। उच्च न्यायालय के परामर्श से राज्यपाल जिला जजों की नियुक्ति करता है।

अनुच्छेद 161 के अनुसार राज्य के राज्यपाल को राज्य की कार्यपालिका क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत कानूनों के विरुद्ध अपराध करने वाले व्यक्तियों के दण्ड को कम करने, स्थगित करने, बदलने तथा क्षमा करने का अधिकार है।

राज्यपाल राज्य विधानसभा में एक सदस्य आंग्ल भारतीय मनोनीत कर सकता है, यदि वह समझे कि विधानसभा में उनका पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है। राज्यपाल (जिन राज्यों में दो सदन है) विधान परिषद् में 1/6 सदस्य ऐसे मनोनीत कर सकता है जिन्होंने शिक्षा, साहित्य, समाज सेवा, विज्ञान, कला आदि में विशेष योगदान दिया हो।

2. **विधायी शक्तियाँ** – अनुच्छेद 168 के अनुसार राज्यपाल विधानमण्डल का अभिन्न अंग है। राज्यपाल को राज्य विधानमण्डल के सत्र को बुलाने, सत्रावसान करने तथा विधानसभा को भंग करने का अधिकार है। राज्यपाल विधानमण्डल के सत्र के आरम्भ में तथा वर्ष के प्रथम सत्र में विधानमण्डल में अपना भाषण देता है। राज्यपाल को विधानमण्डल को सम्बोधित करने तथा किसी महत्त्वपूर्ण विधेयक के सम्बन्ध में विधानमण्डल को सन्देश भेजने का अधिकार है। विधानमण्डल द्वारा पारित किसी विधेयक पर राज्यपाल की स्वीकृति आवश्यक है। राज्यपाल विधेयक पर स्वीकृति दे सकता है या मना कर सकता है या उस विधेयक को राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए रोक सकता है। राज्यपाल साधारण विधेयक को अपने सुझावों के साथ विधानमंडल को लौटा सकता है। यदि विधानमण्डल उस विधेयक को संशोधन सहित या बिना संशोधन के दोबारा पारित कर दे तो राज्यपाल को स्वीकृति देनी होगी। राज्यपाल उस समय अध्यादेश जारी कर सकता है जबकि विधानमण्डल का अधिवेशन न हो रहा हो, वह उन सभी विषयों पर अध्यादेश जारी कर सकता है जिन विषयों पर राज्य विधानमण्डल हो विधि निर्माण करने का अधिकार है। अध्यादेश का वही प्रभाव और महत्त्व होता है जो विधानमण्डल द्वारा पारित कानूनों का होता है। विधानमण्डल का अधिवेशन आरम्भ होते ही अध्यादेश को विचार के लिए रखा जाता है। यदि विधानमण्डल उसे स्वीकार कर लेता है तो वह लागू होता है अन्यथा नहीं। विधानमण्डल के अधिवेशन आरम्भ होने की तिथि से 6 सप्ताह के पश्चात् रद्द हो जाएगा यदि विधानमण्डल उसको अस्वीकार कर देता है। जिन विषयों में राज्य का विधानमण्डल राष्ट्रपति की स्वीकृति के बिना कानून नहीं बना सकता, उन विषयों में राज्यपाल राष्ट्रपति की स्वीकृति के बिना अध्यादेश भी जारी नहीं कर सकता।

3. **वित्तीय शक्तियाँ** – प्रत्येक वित्तीय वर्ष का विवरण तैयार करना और उसे विधानसभा में प्रस्तुत करवाना राज्यपाल का कार्य है। राज्यपाल की पूर्व स्वीकृति के बिना कोई भी धन विधेयक विधानसभा में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। राज्यपाल अनुपूरक अनुदान की मांग भी प्रस्तुत कर सकता है। राज्यपाल की स्वीकृति के बिना राज्य के राजस्व की कोई राशि व्यय नहीं की जा सकती। राज्यपाल को राज्य की संचित निधि में से खर्च करने का अधिकार है, परन्तु उसके द्वारा किए गए खर्च के लिए विधानसभा की स्वीकृति आवश्यक है।

4. **न्यायिक शक्तियाँ** – अनुच्छेद 161 के अनुसार जिन विषयों पर राज्य की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार होता है उन विषयों सम्बन्धी किसी विधि के विरुद्ध अपराध करने वाले व्यक्तियों के दण्ड को राज्यपाल कम कर सकता है। वह अपने राज्य के उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति में राष्ट्रपति को परामर्श देता है। वह जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति करता है। राज्यपाल पर किसी दोष के कारण उसकी पदावधि में अभियोग नहीं चलाया जा सकता है।

5. **मंत्रियों के खिलाफ मुकदमे की अनुमति देना** – सर्वोच्च न्यायालय ने अपने 5 नवम्बर 2004 के निर्णय में महत्त्वपूर्ण व्यवस्था देते हुए कहा है कि किसी मंत्री के खिलाफ अगर प्राथमिक तौर पर कोई मामला बनता है तो राज्यपाल उसके खिलाफ मुकदमा चलाने की अनुमति दे सकता है। भले ही मन्त्रिपरिषद् ने इसकी अनुमति देने से इन्कार कर दिया है।

6. **अन्य शक्तियाँ** – राज्यपाल की कुछ अन्य शक्तियाँ निम्न है–

- राज्यपाल राष्ट्रपति को राज्य में संवैधानिक तंत्र की असफलता के सम्बन्ध में सूचना देता है और उसकी सूचना पर राष्ट्रपति शासन लागू किया जाता है। आपातकाल में राज्यपाल राष्ट्रपति के अभिकर्त्ता के रूप में कार्य करता है।
- संविधान के अनुच्छेद 164 के अनुसार छत्तीसगढ़, झारखण्ड, मध्यप्रदेश और उड़ीसा राज्यों में जनजातियों के कल्याण का भारसाधक एक मंत्री होगा जो साथ ही अनुसूचित जातियों और पिछड़े वर्गों के कल्याण का या किसी अन्य कार्य का भी भारसाधक हो सकेगा।
- असम का राज्यपाल असम की सरकार और इस आदिम क्षेत्र की जिला परिषदों के बीच खानों से उत्पन्न आय विभाजन के सम्बन्ध में होने वाले विवादों के सम्बन्ध में स्वविवेक के अधिकार का प्रयोग करता है।
-

मुख्यमंत्री और मंत्रिपरिषद्
(Chief Minister & The Council of Ministers)

मुख्यमंत्री राज्य का वास्तविक कार्यपालक होता है। संवैधानिक रूप से राज्य में राज्यपाल और मुख्यमंत्री के मध्य शक्तियों का स्पष्ट विभाजन है। राज्यपाल जो अपनी स्वविवेकीय शक्तियों के सन्दर्भ में अंतिम निर्णयकर्त्ता है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

मुख्यमंत्री जो शेष सभी मामलों में अंतिम निर्णयकर्त्ता है। मुख्यमंत्री की नियुक्ति राज्यपाल करता है लेकिन मन्त्रिपरिषद् का निर्माण, विघटन एवं विभाग आवंटन आदि मुख्यमंत्री में निहित है। राज्यपाल इस संदर्भ में मुख्यमंत्री के परामर्श के अधीन है। प्रत्येक मंत्री मुख्यमंत्री की इच्छापर्यन्त पद पर रहता है। मुख्यमंत्री उससे कभी भी इस्तीफा मांग सकता है या उसे राज्यपाल द्वारा बर्खास्त करवा सकता है। मंत्री परिषद् की बैठक की तिथि व स्थान मुख्यमंत्री तय करता है।

मुख्यमंत्री ही मंत्री परिषद् की बैठकों की अध्यक्षता करता है। मंत्री परिषद् के निर्णयों पर अन्तिम स्वीकृति या अस्वीकृति मुख्यमंत्री की इच्छा पर निर्भर करती है। मुख्यमंत्री का त्यागपत्र सम्पूर्ण मंत्री परिषद् का त्यागपत्र माना जाता है।

4.7 मुख्यमंत्री और राज्यपाल (Chief Minister & Governor)–

मुख्यमंत्री वास्तविक जबकि राज्यपाल संवैधानिक प्रधान है। मुख्यमंत्री मन्त्रिपरिषद् और राज्यपाल के मध्य संवाद की मुख्य कड़ी है। मुख्यमंत्री की नियुक्ति राज्यपाल इस आधार पर करता है कि उसके पास विधानमंडल में बहुमत की शक्ति है। त्रिशंकु विधानसभा या अस्पष्ट बहुमत की स्थिति में राज्यपाल मुख्यमंत्री के चयन में स्वविवेक का प्रयोग कर सकता है।

अनुच्छेद 167(1) के अन्तर्गत मुख्यमंत्री के लिए अनिवार्य है कि वह राज्य सम्बन्धी सूचनाएँ राज्यपाल को सूचित करें। 167(2) के तहत राज्यपाल द्वारा मांगे जाने पर मुख्यमंत्री को तत्सम्बन्धी सूचना देना आवश्यक है। अनुच्छेद 167(3) के अनुसार ऐसे विषय जिस पर मंत्री ने निर्णय कर लिया है लेकिन मंत्री परिषद् ने विचार नहीं किया है। राज्यपाल के निर्देश पर मुख्यमंत्री उसे मंत्री परिषद् के विचार– निर्णय हेतु रखेगा।

4.8 मुख्यमंत्री और राज्य विधायिका (The Chief Minister & The State Legislature)–

मुख्यमंत्री विधानसभा में बहुमत दल का नेता होता है। वह सदन का नेता होता है। वह राज्यपाल को विधानमंडल का सत्र बुलाने और सत्रावसान करने की सलाह देता है। वह विधानसभा में अपना बहुमत रहते हुए राज्यपाल को कभी भी विधानसभा भंग करने की सलाह दे सकता है। वह सरकार की नीतियों की घोषणा विधायिका में करता है। यह विश्वास प्रस्ताव या अविश्वास प्रस्ताव पर सरकार की ओर से पक्ष रखता है या इसके लिए अपने किसी मंत्री को नियुक्त कर सकता है।

4.9 राज्य– मंत्रिपरिषद् (State Council of Ministers) –

भारत में केन्द्र की तर्ज पर राज्यों में भी संसदीय शासन प्रणाली है जिसके अनुसार मंत्रिपरिषद् ही राज्य की वास्तविक शासन प्रमुख होती है। मंत्री परिषद् का मुखिया मुख्यमंत्री होता है।

संगठन – अनुच्छेद 163 के अन्तर्गत राज्यपाल को उसके कार्यों में सलाह के लिए मंत्री परिषद् होगी। मुख्यमंत्री के परामर्श से राज्यपाल इसका गठन करता है और उसके परामर्श से ही पदमुक्त। बहुमत रहते हुए मुख्यमंत्री मंत्री परिषद् का विघटन करवा सकता है। मुख्यमंत्री ही अपनी मंत्री परिषद् का आकार तय करता है। जिसमें तीन स्तरीय मंत्री होते हैं। केबीनेट, राज्य और उपमंत्री। कभी–कभी संसदीय सचिव भी नियुक्त किए जाते हैं। इन सभी के लिए 6 माह के अपवाद को छोड़कर विधानमंडल का सदस्य होना आवश्यक है। इनके मध्य कार्य विभाजन मुख्यमंत्री ही करता है। सामान्यतया विधानमंडल के सदस्यों को ही मंत्री बनाया जाता है। 91वें संशोधन द्वारा राज्य मंत्री परिषद् की संख्या विधानसभा के कुल सदस्यों की अधिकतम 15 प्रतिशत निश्चित कर दी गई है।

4.10 मुख्यमंत्री की शक्तियाँ और कार्य (Powers & Functions of The Chief Minister)–

1. मुख्यमंत्री सरकार का वास्तविक अध्यक्ष होता है। वह राज्यपाल को अपने मंत्रियों की नियुक्ति तथा उनके विभागों के आवंटन, परिवर्तन या उनके त्यागपत्र स्वीकार या अस्वीकार करने में सलाह देता है।
2. मुख्यमंत्री मन्त्रिपरिषद् की सभी बैठकों में अध्यक्षता करता है और यह सुनिश्चित करता है कि मन्त्रिपरिषद् सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त पर कार्य करें।
3. वह राज्य के प्रशासन तथा विधान सम्बन्धी प्रस्तावों के सम्बन्ध में कैबिनेट द्वारा लिए गए निर्णयों से राज्यपाल को समय–समय पर सूचित करता है।
4. किसी भी मंत्री द्वारा लिए गए निर्णय को मुख्यमंत्री राज्यपाल के कहने पर पूर्ण मन्त्रिपरिषद् में विचार के लिए रखवा सकता है।
5. मुख्यमंत्री विधानमण्डल के कार्य संचालन में नेतृत्व प्रदान करता है। सभी सरकारी विधेयक उसके निरीक्षण में तथा उसकी सलाह के अनुसार तैयार किए जाते हैं एवं सदन का समय विभाजन तथा कार्यक्रम का मसौदा तैयार करता है और सरकारी तथा निजी कार्य का समय तय करता है।
6. वह अपने अधीन मंत्रियों के विभागों के कार्यों की भी देखरेख करता है तथा मंत्रियों में परस्पर उत्पन्न होने वाले मतभेदों को दूर कर सम्पूर्ण प्रशासन में सामंजस्य बनाए रखता है।
7. राज्य विधानमण्डल में मुख्यमंत्री सरकार का मुख्य वक्ता होता है। शासकीय नीति से सम्बन्धित अधिकृत घोषणा मुख्यमंत्री के अधिकार क्षेत्र में ही आता है।
8. एडवोकेट जनरल, राज्य लोक सेवा आयोग के सदस्य व अन्य महत्त्वपूर्ण नियुक्तियों के सम्बन्ध में मुख्यमंत्री राज्यपाल को परामर्श देता है।
9. वह राज्यपाल तथा मंत्री परिषद् के मध्य सम्पर्क सूत्र के रूप में कार्य करता है। यदि कोई मंत्री राज्यपाल से मिलना चाहता है या राज्यपाल किसी मंत्री विशेष से बात

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

करना चाहता है तो इसकी पूर्व सूचना मुख्यमंत्री को देनी पड़ती है।

10. मुख्यमंत्री विधानसभा तथा विधान परिषद् के मध्य भी सम्पर्क सूत्र के रूप में कार्य करता है। वह राज्यपाल को परामर्श देता है कि विधानमण्डल का सत्र कब बुलाया जाए, कब स्थगित किया जाए और कब भंग किया जाए। वह यह भी सुनिश्चित करता है कि कैबिनेट के निर्णयानुसार कौनसे विधेयक विधानमण्डल में पेश किए जावे और विपक्ष के विरोध का किस प्रकार सामना किया जाए।
11. मुख्यंमत्री बहुमत दल का नेता होता है इसलिए वह अपने दल में एकता और अनुशासन बनाए रखने के लिए दलीय सचेतकों के माध्यम से नियत्रंण रखता है।

4.11 मुख्यमंत्री की स्थिति (Position of Chief Minister) –

मुख्यमंत्री राज्य का शासनाध्यक्ष एवं वास्तविक कार्यपालक होता है। वह अपने मंत्री मण्डल के सदस्यों का चयन करता है। वह विभिन्न विभागों का उनमें आवटंन करता है। वह किसी भी मंत्री को हटा अथवा उनके विभागों में आवश्यकतानुसार परिवर्तन भी कर सकता है। सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त को सुनिश्चित करना इसी की जिम्मेदारी है। वह मंत्री परिषद् तथा राज्यपाल और विधानमंडल और राज्यपाल के बीच कड़ी के रूप में कार्य करता है।

स्थानीय स्वशासन
(Local Self Government)

स्थानीय स्वशासन के दो स्तर हमारे देश में विद्यमान है। पहला ग्रामीण स्थानीय शासन जिसे 'पंचायती राज' के नाम से जानते हैं व दूसरा शहरी स्थानीय शासन हैं। भारत में पंचायती राज शासन प्रणाली प्राचीन काल से ही विद्यमान रही हैं। चोल शासन में तो इसका आदर्श रूप देखा जा सकता हैं। इतिहासकार अल्टेकर ने भारतीय गॉवों को छोटे–छोटे गणराज्यों की संज्ञा दी हैं।

स्वतंत्रता के पश्चात् 1957 में बलवंतराय मेहता समिति का गठन किया गया जिन्होने पूरे देश में '' त्रिस्तरीय पंचायती राज प्रणाली '' लागू करने की सिफारिश की। मेहता समिति की सिफारिश लागू करने वाला राजस्थान पहला राज्य बना। 2 अक्टूबर 1959 को नागौर जिले में प्रधानमंत्री द्वारा इसका आगाज किया गया। 1960 के दशक में पंचायती राज को देश के विभिन्न राज्यों में अपनाया किंतु राज्यों द्वारा गठित इन संस्थाओं में स्तरों की संख्या, उनका कार्यकाल, निर्वाचन के तरीको आदि में समानता नहीं थी। राजस्थान में मेहता समिति द्वारा सुझाए गए त्रिस्तरीय स्वरूप को अपनाया गया।

4.12 पंचायती राज व्यवस्था में सुधार हेतु गठित अन्य समितियाँ (Committees Constituted for Reforms in Panchayati Raj System)

1. अशोक मेहता समिति – 1977

सिफारिशें (Recommendations)

1. द्विस्तरीय पंचायती राज प्रणाली को अपनाया जाय, अर्थात् ग्राम पंचायत के स्थान पर मंडल पंचायते गठित की जाय।
2. जिला कलक्टर सहित सभी अधिकारी जिला परिषद के अधीन रखे जावें।
3. संस्थाओं के चुनाव दलगत आधार पर करवाए जाये।
4. समाज के अनुसूचित जाति, जन जाति व महिला वर्ग को आरक्षण दिया जाये।
5. पंचायती राज व्यवस्था में स्वयं सेवी संस्थाओं की भूमिका बढ़ाई जाये।

2. जी॰ वी॰ के॰ राव समिति :– 1985

सिफारिशें (Recommendations)

1. ग्राम पंचायतों को अधिक वित्तीय शक्तियां दी जाय।
2. राज्य वित्त आयोग का गठन किया जाय।
3. संस्थाओं का कार्यकाल 8 वर्ष किया जाय।

3. एल॰ एम॰ सिंघवी समिति :– 1986

इस समिति में पंचायती राज को संवैधानिक दर्जा देने की सिफारिश की। 64वें संविधान संशोधन विधेयक द्वारा तत्कालीन केन्द्र सरकार ने प्रयास भी किया किन्तु विधेयक संसद से पास नहीं हो सका।

4. पी॰ के॰ थुंगन समिति 1988

इस समिति ने भी इन संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा देने की सिफारिशें भी की।

73वाँ संविधान संशोधन अधिनियम
(73rd Constitutional Amendment Act)

यह संशोधन अधिनियम 1992 में संसद द्वारा पारित किया गया जो 24 अप्रैल 1993 को प्रभाव में आया। इस अधिनियम के लिए जो संयुक्त प्रवर–समिति बनी उसके अध्यक्ष राजस्थान से सांसद श्री नाथूराम मिर्धा थे। 24 अप्रैल को इसीलिए पंचायती राज दिवस मनाया जाता हैं।

4.13 प्रमुख विशेषताऐं (Main Features)

त्रिस्तरीय प्रणाली – 73वाँ संविधान संशोधन अधिनियम सभी राज्यों के लिए त्रिस्तरीय संस्थागत ढ़ाँचे का प्रावधान करता हैं। इसी के अनुरूप हमारे राज्य में अपनाया गया ढ़ाँचा इस चार्ट से स्पष्ट हो जाता हैं।

स्तर	निर्वाचित संस्था का नाम	निर्वाचित पदाधिकारी
↓	↓	↓
ग्राम	ग्राम पंचायत	सरपंच
↓	↓	↓
खण्ड/ब्लॉक	पंचायत समिति	प्रधान
↓	↓	↓
जिला	जिला परिषद	जिला प्रमुख

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

4.14 प्रत्यक्ष निर्वाचन (Direct Election)–

ग्राम स्तर पर वार्ड पंच एवं सरपंच, खण्ड स्तर पर मंडल सदस्य व जिला स्तर पर जिला परिषद के सदस्यों का जनता द्वारा सीधे निर्वाचन का प्रावधान किया गया हैं। साथ ही यह व्यवस्था भी की गई हैं कि खण्ड व जिला स्तर के अध्यक्ष जो कि हमारे राज्य में क्रमशः प्रधान व जिला प्रमुख कहलाते हैं – का चुनाव निर्वाचित सदस्यों में से ही किया जायेगा।

4.15 आरक्षण की व्यवस्था (Reservation System)–

अधिनियम सभी संस्थाओं में महिलाओं के लिए एक–तिहाई सीटों के आरक्षण की व्यवस्था करता हैं, वही अनुसूचित जाति, अनुसूचित जन जाति हेतु जनसंख्या के अनुपात में आरक्षण का प्रावधान करता हैं। यह अधिनियम राज्य विधान मंडलों को इसके लिए भी अधिकृत करता हैं कि वे इन संस्थाओं में पिछड़े वर्गों के लिए भी आरक्षण व्यवस्था कर सके।

4.16 पंचायतों का निश्चित कार्यकाल (Tenure)–

अधिनियम सभी स्तरों पर संस्थाओं के सदस्यों का कार्यकाल पांच वर्ष निश्चित करता हैं। यद्यपि समय पूरा होने से पूर्व भी इन्हें विघटित किया जा सकता हैं। इसके बाद अधिनियम में 6 माह की अवधि में नई संस्थाओं का गठन आवश्यक हैं।

4.17 राज्य का निर्वाचन आयोग (State Election Commission)–

पंचायती राज संस्थाओं में चुनाव प्रक्रिया के नियमित व निष्पक्ष संचालन हेतु एक निर्वाचन आयोग का गठन किया जायेगा। मतदाता सूचियाँ तैयार करने से लेकर पदाधिकारियों को निर्वाचित घोषित कर शपथ दिलाने तक की प्रक्रिया की निगरानी राज्य निर्वाचन आयोग करता हैं। राज्य का राज्यपाल, राज्य निर्वाचन अधिकारी/आयुक्त की नियुक्ति करता हैं। इसकी नियुक्ति की अवधि एवं सेवा शर्तें भी राज्यपाल द्वारा ही तय की जाती हैं। सेवाकाल में राज्य निर्वाचन अधिकारी/आयुक्त को पदमुक्त करने के भी वही तरीकें होंगे जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को हटाने के होंगे।

4.18 राज्य वित्त आयोग का गठन (State Finance Commission)–

पंचायत राज संस्थाओं की वित्तीय स्थिति की समीक्षा के लिए प्रत्येक 5 वर्ष पश्चात् वित्त आयोग का गठन करेगा। यह आयोग राज्यपाल को इन संस्थाओं की वित्तीय स्थिति की समीक्षा आय के स्रोतों, धन के वितरण, राज्य सरकार द्वारा प्राप्त अनुदान, कर, चुंगी इत्यादि के बारे में अनुशंसा करता हैं।

4.19 लेखा परीक्षण (Auditing)–

राज्य सरकार इन संस्थाओं के लेखों का समय–समय पर परीक्षण एवं जांच हेतु नियम बना सकती हैं।

पंचायती राज की इन संस्थाओं को मजबूती देने के लिए 73वें संविधान संशोधन के द्वारा संविधान में 11वीं अनुसूची जोड़ी गई हैं। इसमें 29 कार्य समाहित हैं, जो इन संस्थाओं के क्षेत्राधिकार व शक्ति में वृद्धि करते हैं। ये विषय हैः–

1. कृषि, जिसमें कृषि विस्तार सम्मिलित हैं।
2. भूमि विकास, भूमि सुधार लागू करना, भूमि संगठन व भू–संरक्षण।
3. लघु सिंचाई, जल प्रबन्धन और नदियों के मध्य का भूमि विकास।
4. पशुधन, दुग्ध का व्यवसाय तथा मुर्गीपालन।
5. मछली उद्योग
6. वनजीवन तथा वनों में कृषि
7. लघु वन उत्पादन
8. लघु उद्योग, जिसमें खाद्य प्रसंस्करण उद्योग भी शामिल हैं
9. खादी, ग्राम एवं कुटीर उद्योग
10. ग्रामीण विकास
11. पेयजल
12. ईंधन व चारा
13. सड़क, पुल, नदी तट, जलमार्ग तथा संचार के अन्य साधन।
14. ग्रामीण विद्युत एवं विद्युत विभाजन।
15. गैर परम्परागत ऊर्जा स्त्रोत।
16. गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम।
17. शिक्षा – प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा के विद्यालय
18. तकनीकी प्रशिक्षण व व्यावसायिक शिक्षा
19. प्रौढ़ व अनौपचारिक शिक्षा
20. पुस्तकालय एवं वाचनालय
21. सांस्कृतिक गतिविधियाँ
22. मेले एवं बाजार
23. स्वास्थ्य एवं इससे संबंधित संस्थाऐं – अस्पताल, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र आदि।
24. परिवार कल्याण
25. महिला एवं बाल विकास
26. समाज कल्याण, विशेषकर मानसिक विमंदित व दिव्यांगों का कल्याण शामिल हैं
27. समाज के कमजोर वर्ग, विशेषकर अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के कल्याण व समृद्धि के कार्य
28. सार्वजनिक वितरण प्रणाली
29. सार्वजनिक संपत्तियों की देखरेख

संविधान का अनुच्छेद 40 ग्राम पंचायतों को

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

संगठित कर, उन्हें ऐसी शक्तियाँ, राज्य द्वारा दिये जाने का प्रावधान करता हैं, जो उन्हें शक्तिशाली बनाती हैं।

74वाँ संविधान संशोधन अधिनियम (74th Constitutional Amendment Act)

नगरों में स्थानीय स्वशासन को मजबूत करने व उसे सक्रिय बनाने के लिए 1992 में संविधान का 74वाँ संविधान संशोधन संसद द्वारा पारित कर एक कानून बनाया गया जो 1 जून, 1993 से लागू हुआ। इस कानून के तहत् शहरी निकायों में तीन तरह की संस्थाऐं कार्य करेगी।

प्रथम, नगर, पंचायत जिसे राजस्थान में नगर पालिका का नाम दिया गया। 10 हजार से 1 लाख तक की आबादी वाले कस्बों में इसकी स्थापना की जाती हैं, जिसका प्रमुख चैयरमैन कहलाता हैं। जनसंख्या का यह आधार समय–समय पर परिवर्तनीय हैं।

द्वितीय, सामान्यतः एक लाख से 3 लाख तक की जनसंख्या वाले शहरों में नगर परिषद् की स्थापना की जाती हैं। इसे कई वार्डों में बाँट दिया जाता हैं। प्रत्येक वार्ड से एक पार्षद का जनता द्वारा सीधे निर्वाचन किया जाता हैं। नगर परिषद् के प्रमुख को अध्यक्ष या सभापति कहते हैं।

तृतीय, 3 लाख से अधिक जनसंख्या वाले बड़े शहरों में नगर निगम की स्थापना की जाती हैं। इसका प्रमुख मेयर या महापौर कहलाता हैं। इनका चुनाव प्रत्यक्ष या परोक्ष (पार्षदों द्वारा) विधि जो भी, राज्य सरकार के विधान द्वारा निर्धारित की गई हैं– द्वारा किया जाता हैं। इनका कार्यकाल सामान्यतः 5 वर्ष का होता हैं किन्तु अविश्वास प्रस्ताव से समय पूर्व भी इन निर्वाचित मंडलों को भंग किया जा सकता हैं।

74वें संविधान संशोधन में यह प्रावधान किया गया हैं कि 6 माह की अवधि में चुनाव करवाया जाना राज्य सरकार का एक संवैधानिक दायित्व रहेगा। शहरी निकायों के कार्यों एवं शक्तियों में वृद्धि के लिए संविधान की 12वीं अनुसूची में 18 विषय सम्मिलित किए गए हैं, जो इस प्रकार हैं :–

1. नगरीय योजना, जिसमें शहरी योजना भी हैं।
2. भू–उपयोग नियमन व भवन निर्माण।
3. आर्थिक एवं सामाजिक विकास की योजनाऐं।
4. सड़के एवं पुल।
5. घरेलू, औद्योगिक एवं वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए जल प्रबन्धन।
6. सार्वजनिक स्वास्थ्य, स्वच्छता, सफाई एवं कचरा प्रबन्धन ।
7. अग्निशमन सेवाऐं।
8. नगरीय व वानिकी पर्यावरण संरक्षण एवं पारिस्थिकी तंत्र का प्रबन्धन।
9. समाज के विशिष्ट आवश्यकता वाले कार्य के हितों का संरक्षण।
10. गन्दी बस्ती सुधार व उन्नयन कार्यक्रम।
11. शहरी निर्धनता निवारण कार्यक्रम।
12. सार्वजनिक उद्यान, खेल मैदान इत्यादि विकसित करना।
13. सांस्कृतिक, शैक्षणिक एवं सौन्दर्यपरक पहलुओं का विस्तार ।
14. श्माशान, कब्रिस्तान, विद्युत शवदाह गृहों का प्रबन्धन।
15. कॉजी गृहों का प्रबन्धन।
16. जन्म मृत्यु पंजीयन।
17. रोड़ लाइट, पार्किंग बस स्टॉप जैसी सार्वजनिक सुविधा का विस्तार।
18. वधशालाओं एवं चमड़ा उद्योग का विनियमन।

राजस्थान में शहरी स्थानीय शासन के इन तीन स्तरों के अलावा कुछ विशेष अभिकरण छावनी बोर्ड, टाऊन एरिया कमेटी, अधिसूचित क्षेत्र समितियाँ आदि भी कार्य करते हैं।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

1. स्थानीय स्वशासन शक्तियों के विकेन्द्रीकरण का उचित माध्यम है।
2. एल.एम. सिंघवी समिति ने पंचायती राज को संवैधानिक दर्जा देने का सुझाव दिया।
3. 24 अप्रैल 1993 को संविधान का 73वाँ संशोधन प्रभाव में आया जो पंचायती राज व्यवस्था से सम्बन्धित है।
4. पंचायती राज के त्रिस्तरीय ढाँचे में ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, खण्ड स्तर पर पंचायत समिति व जिला स्तर पर जिला परिषद् कार्य करती है।
5. राज्य निर्वाचन आयोग स्थानीय निकायों के चुनावों का स्वतंत्र तथा निष्पक्ष आयोजन करता है।
6. संविधान का 73वाँ संशोधन पंचायती राज संस्थाओं एवं 74वाँ संशोधन शहरी निकायों से सम्बन्धित है।
7. नगर–निगम का मुखिया मेयर या महापौर कहलाता है।
8. स्थानीय स्वशासी संस्थाओं के चुनाव एक निश्चित अवधि में किया जाना संवैधानिक बाध्यता है।
9. छः माह से ज्यादा अवधि तक कोई भी निर्वाचन क्षेत्र बिना प्रतिनिधित्व के नहीं रखा जा सकता है।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. भारतीय संविधान के किस अनुच्छेद के अन्तर्गत भारत के राष्ट्रपति, राज्य के राज्यपाल की नियुक्ति करते हैं –
   (अ) अनुच्छेद 154 (ब) अनुच्छेद 155
   (स) अनुच्छेद 160 (द) अनुच्छेद 356 ( )

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

2. राज्य की वास्तविक कार्यपालिका शक्ति निहित है –
(अ) मुख्यमंत्री में (ब) राज्यपाल में
(स) विधानसभा अध्यक्ष में (द) नेता प्रतिपक्ष में ( )
3. राज्य का संवैधानिक प्रधान है –
(अ) वित्तमंत्री (ब) राज्यपाल
(स) मुख्यमंत्री (द) विधानसभा अध्यक्ष ( )
4. राज्य का मुख्यमंत्री किस अनुच्छेद के अन्तर्गत राज्यपाल को राज्य सम्बन्धी सूचनाएँ देता है –
(अ) 167 (1) (ब) 163 (1)
(स) 162 (1) (द) 155 (1) ( )
5. त्रिस्तरीय पंचायती राज प्रणाली का आरम्भ 2 अक्टूबर 1959 को राजस्थान के कौनसे जिले में किया गया ?
(अ) जोधपुर (ब) नागौर
(स) झालावाड़ (द) बीकानेर ( )
6. कौन इतिहासकार भारतीय गाँवों को गणराज्यों की संज्ञा देता है –
(अ) अल्टेकर (ब) पणिन्धिकर
(स) जेम्स टॉड (द) अशोक मेहता ( )
7. इनमें से कौनसी संस्था ग्रामीण स्वशासन से सम्बन्धित नहीं है –
(अ) ग्राम पंचायत (ब) पंचायत समिति
(स) नगर परिषद् (द) जिला परिषद् ( )
8. पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं के लिए एक–तिहाई पद किस संविधान संशोधन के पश्चात आरक्षित किए गए–
(अ) 72वाँ संशोधन अधिनियम
(ब) 73वाँ एवं 74वाँ संशोधन अधिनियम
(स) 75वाँ संशोधन अधिनियम
(द) 43वाँ संशोधन अधिनियम ( )
9. नगर निगम का निर्वाचित प्रमुख कहलाता है –
(अ) सभापति (ब) अध्यक्ष
(स) आयुक्त (द) मेयर ( )

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. राज्य का नाममात्र का कार्यपालक कौन है ?
2. राज्यपाल को परामर्श कौन देता है ?
3. राज्यपाल किसको मुख्यमंत्री नियुक्त करता है?
4. भारत के संविधान में "राज्यों का संघ" शब्दों का प्रयोग किस बात की ओर संकेत करता है ?
5. संविधान के किस संशोधन द्वारा राज्यमंत्री परिषद् की संख्या, विधानसभा के कुल सदस्यों की अधिकतम 15 प्रतिशत निश्चित कर दी गई है ?
6. पंचायती राज व्यवस्था में स्थानीय शासन के कौनसे स्तर विद्यमान है ?
7. 'पंचायती राज दिवस' कब मनाया जाता है ?
8. ग्रामीण स्थानीय शासन में सबसे छोटी निर्वाचित संस्था कौनसी है ?
9. नगरीय स्वशासन की सबसे बड़ी संस्था का नाम बताइए?
10. स्थानीय निकायों के चुनाव कौनसी संस्था करवाती है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. राज्य प्रशासन की पाँच विशेषताएँ बताइए।
2. राज्यपाल की नियुक्ति के सम्बन्ध में सरकारिया आयोग की प्रमुख सिफारिशे बताइए।
3. मुख्यमंत्री और राज्यपाल के पारस्परिक संबंधों पर प्रकाश डालिये।
4. राज्य मंत्रिपरिषद् के गठन के बारे में टिप्पणी कीजिए।
5. मुख्यमंत्री और राज्य विधायिका के सम्बन्धों पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।
6. अशोक मेहता समिति की दो प्रमुख सिफारिशें क्या थी? लिखिए।
7. त्रिस्तरीय पंचायती राज ढाँचे के तीन स्तर कौन–कौन से हैं?
8. राज्य वित्त आयोग के कोई दो कार्य बताइए।
9. संविधान का अनुच्छेद 40 क्या प्रावधान करता है ?
10. नगरीय स्थानीय शासन की तीन इकाईयाँ कौन–कौनसी है ?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. राज्य प्रशासन पर एक लेख लिखिए।
2. राज्यपाल व मुख्यमंत्री के आपसी सम्बन्धों का विवरण देते हुए, राज्य प्रशासन की कार्यप्रणाली बताइए।
3. स्थानीय शासन क्या है ?इसके सुदृढ़ीकरण हेतु गठित समितियों की प्रमुख सिफारिशों पर प्रकाश डालिए।
4. पंचायती राज ढाँचे के त्रिस्तरीय स्वरूप को विस्तार से समझाइए।
5. संविधान की 11वीं अनुसूची में उल्लिखित पंचायती राज संस्थाओं के प्रमुख कार्य कौन–कौनसे है ?
6. हमारे शहरों का स्थानीय प्रशासन कौन–कौन से कार्य करता है ? वर्णन कीजिए।

बहुचयनात्मक प्रश्नों के उत्तर

1. ब 2. अ 3. ब 4. अ
5. ब 6. अ 7. स 8. ब
9. द

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

इकाई–III

भारतीय लोकतंत्र के समक्ष चुनौतियाँ

1. जातिवाद एवं साम्प्रदायिकता (Casteism & Communalism)

जातिवाद (Casteism)

जाति एक सामाजिक संरचना है जो अति प्राचीन काल से ही भारत में प्रचलित है। आधुनिक पश्चिमी राजनीतिक संस्थाओं के साथ लोकतंत्र स्वीकार करने के बावजूद जातिवाद समाप्त नहीं हुआ। वोट राजनीति ने जातिवाद को और ज्यादा बढ़ाया है। दूसरी ओर जातियाँ लोकतांत्रिक राजनीति में सहभागिता की संरचनात्मक युक्ति बन गई हैं जिनके माध्यम से अब तक अधिकारहीन रहे तबकों को भी राजनीति में सहभागिता एवं प्रतिनिधित्व का अवसर मिल सकता है।

1.1 जाति और जातिवाद का स्वरूप (Nature of Caste & Casteism) –

भारत में जाति चिरकालीन सामाजिक व्यवस्था है। प्राचीन समय की तत्कालीन परिस्थितियों में समाज के विभिन्न वर्गों को नियमित करने के लिए वर्ण व्यवस्था का उद्भव हुआ था, जो कर्म व व्यवसाय के सिद्धान्त पर आधारित थी। बहुजातीय विविधतापूर्ण समाज के व्यवस्थित समन्वय व नियमन के लिए वर्ण व्यवस्था तत्कालीन सामाजिक व राजनीतिक परिस्थितियों में अनुकूल मानी गई थी। कालांतर में विभिन्न कारणों से यह व्यवस्था विकृत होकर जाति व्यवस्था में बदल गई। इसमें कई प्रकार के दोष उत्पन्न हो जाने से यह भेदभाव पूर्ण व विखंडनकारी प्रवृत्ति पहले जातिप्रथा और आधुनिक काल में जातिवाद के रूप में विकसित हुई जिसने भारत की एकता और अखंडता को गम्भीर चुनौती प्रदान की है। अंग्रेजों ने इस स्थिति का लाभ उठाते हुए इस विभेदकारी सामाजिक व्यवस्था का अपने निहित स्वार्थों के लिए प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने इसका अपने औपनिवेशिक हित में फायदा उठाने का प्रयत्न किया, इसे और अधिक भड़काया। अंग्रेजो द्वारा दलित वर्गो के लिए भी पृथक् निर्वाचन की व्यवस्था लागू करने की कोशिश की गयी, जिसका गांधीजी ने विरोध किया। इसी मुद्दे पर गांधीजी एवं अम्बेडकर के बीच पूना पैक्ट हुआ जिसमें इन वर्गो के उचित प्रतिनिधित्व की व्यवस्था सुनिश्चित करने हेतु स्थान आरक्षित करने की व्यवस्था स्वीकार की गयी। अम्बेडकर ने पृथक् निर्वाचन का आग्रह छोड़ दिया। पृथक् निर्वाचन का उद्देश्य हिन्दुओं में तथाकथित उच्च एवं निम्न जातियों में फूट पैदा करना था जिसको राष्ट्रपिता महात्मा गांधी एवं महान नेता अम्बेडकर दोनों ने समझा।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीय राजनीति का आधुनिक स्वरूप विकसित हुआ। ऐसा माना जाने लगा था कि देश में लोकतांत्रिक व्यवस्था स्थापित होने के पश्चात् जातिवाद स्वत: ही समाप्त हो जाएगा किन्तु ऐसा नहीं हुआ। इस धारणा के विपरीत स्वतंत्र भारत ने न केवल समाज में ही वरन् राजनीति में भी उग्ररूप से प्रवेश कर लिया। स्वतंत्रता के बाद भी जातिवाद ने भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। के.एन.मेनन का निष्कर्ष सही हैं कि ''स्वतंत्रता के बाद भारत के राजनीतिक क्षेत्र में जाति का प्रभाव पहले की अपेक्षा बढ़ा हैं।'' मॉरिस जोन्स कहते हैं ''जाति के लिए राजनीति का महत्त्व एवं राजनीति के लिए जाति का महत्त्व पहले की तुलना में बढ़ गया हैं। ''स्वतंत्र भारत की राजनीति में ने जातिवादी भावनाओं को और ज्यादा उभारने का प्रयास किया। वोट बैंक बनाकर चुनाव जीत कर सत्ता पर कब्जा करने की राजनीतिक दलों एवं जन प्रतिनिधियों की आकांक्षा ने इसे सदैव बढ़ावा दिया। वर्तमान में जातिवाद ने न केवल यहाँ की आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व धार्मिक प्रवृत्तियों को प्रभावित किया है, अपितु राजनीति को भी सर्वाधिक प्रभावित किया है।

1.2 अर्थ (Meaning) –

जब एक वर्ग पूर्णतः आनुवांशिकता पर आधारित होता हैं तो हम उसे जाति कहते हैं। जाति एक ऐसा सामाजिक समूह होता हैं जो दूसरो से अपने को अलग मानता हैं जिसकी अपनी विशेषता होती हैं, अपनी परिधि में ही वैवाहिक सम्बन्ध करते हैं, जिनका कोई परम्परागत व्यवसाय होता हैं। जाति एक 'बंद वर्ग' है। परम्परागत रूप से जाति के सदस्य किसी एक पेशे से जुड़े होते थे, पिता का पेशा बेटा अपनाता था तथा आपस में ही शादी–ब्याह होते थे। 'जाति' मूलतः हिंदू समाज की विशेषता है किंतु अब इसका विस्तार मुस्लिम एवं ईसाई समाजों में भी हो गया है।

1.3 भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका (Role of Caste in Indian Politics) –

भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। जयप्रकाश नारायण के अनुसार '' जाति भारत में एक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण दल है। जाति भारतीय राजनीति में कई

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

प्रकार की भूमिका अदा करती हैं। भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका को निम्न रूपों में देख सकते हैं।

1. **निर्णय प्रक्रिया में जाति की भूमिका** – भारत में जाति पर आधारित संगठित संगठन शासन की निर्णय प्रक्रिया को प्रभावित करने का प्रयत्न करते हैं। अनुसूचित जाति एवं जनजाति के संगठन प्राप्त अपने आरक्षण अधिकार की समय सीमा बढ़ाना चाहती हैं, जिन जातियों को आरक्षण प्राप्त नहीं हुआ, वे प्राप्त करने के लिए आंदोलन कर रही है, कुछ अपने को आरक्षित जातियों की सूची में शामिल कराने हेतु प्रयत्नशील हैं। अपनी मांगों को मनवाने हेतु वे विभिन्न प्रकार से शासन को प्रभावित करने का प्रयत्न करती हैं। जातीय संगठन अपने हितों अनुसार निर्णय करने तथा अपने हितों के प्रतिकूल होने वाले निर्णयों को रोकने हेतु निर्णय प्रक्रिया को प्रभावित करने का प्रयत्न करते हैं।
2. **राजनीतिक दलों में जातिगत आधार पर प्रत्याशियों का निर्णय** – राजनीतिक दल अपने प्रत्याशियों के चयन करते समय जातिगत समीकरण को ध्यान में रखकर निर्णय करता हैं। जिस क्षेत्र में जिस जाति का बाहुल्य हो, वहां उसी जाति का प्रत्याशी चुनाव मैदान में उतारने का प्रयास किया जाता हैं। कई बार क्षेत्र विशेष में बाहुल्य युक्त उम्मीदवार दो दलों द्वारा चयन करने के बाद तीसरा दल क्षेत्र में दूसरे नम्बर पर आने वाली जाति के उम्मीदवार को उतारती हैं ताकि पहले–दो के वोट बंटने का फायदा तीसरे को मिले। राजनीतिक दल अपने आन्तरिक संगठनात्मक चुनावों एवं नियुक्तियों में भी जातीय समीकरण का ध्यान रखती हैं।
3. **जातिगत आधार पर मतदान व्यवहार** – भारत में मतदान व्यवहार में जातिगत भावना प्रबल रूप से कार्य करती हैं तथा सभी राजनीतिक दल अपने निहित राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए जातिवाद को भड़काने का प्रयास करते हैं। भारत में पंचायतीराज संस्थाओं के चुनावों में जातिवाद सर्वाधिक प्रभावशाली रूप से हावी रहता है।
4. **मंत्रि मंडलों के निर्माण में जातिगत प्रतिनिधित्व** – सभी राजनीतिक दल जातीय समीकरणों को अपने पक्ष में बनाये रखने हेतु बहुमत प्राप्त होने पर सरकार निर्माण के लिए मंत्रिमंडल निर्माण करते समय भी जातीय सन्तुलन का विशेष ध्यान रखता हैं। संघ शासन से लेकर प्रांत सरकार यहां तक कि स्थानीय शासन तक दायित्व प्रदान करते समय जातिगत लाभ–हानि का ध्यान रखा जाता हैं। कई बार केन्द्र एवं प्रांत विशेष के मंत्रिमंडल में जाति विशेष के प्रतिनिधित्व के कम होने की आलोचना होती रहती हैं।
5. **जातिगत दबाव समूह** – जातीय संगठन राजनीतिक व्यवस्था पर दबाव समूह के रूप में कार्य करते हैं। अपने जातीय हितों के अनुसार निर्णय करने एवं जातीय हितों के विरुद्ध होने वाले निर्णयों को रोकने या बदलने हेतु सरकार पर दबाव डालते हैं। आरक्षण से वंचित जातियों के संगठन आरक्षण बनाये रखने हेतु निरन्तर सरकार पर दबाव डालते रहते हैं। मेयर के अनुसार ''जातीय संगठन राजनीतिक महत्त्व के दबाव समूह के रूप में प्रवृत्त हुए हैं।''
6. **जाति एवं प्रशासन** – भारत में प्रतिनिधि संस्थाओं के अलावा प्रशासन में भी जातिगत आरक्षण की व्यवस्था की गयी हैं। अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के अलावा अन्य पिछड़े वर्गों को भी 27% आरक्षण दिया गया हैं। माना जाता हैं कि भारत में स्थानीय स्तर के प्रशासनिक अधिकारी निर्णय करते समय क्षेत्र की प्रधान एवं संगठित जातियों के नेताओं से प्रभावित हो जाते हैं। जाति के आधार पर ही आरक्षण की मांग की जा रही हैं। वर्तमान में हरियाणा, गुजरात, राजस्थान में विभिन्न जातीय संगठन जाति के आधार पर आरक्षण की मांग कर रहे हैं।
7. **राज्य राजनीति में जाति** – अखिल भारतीय राजनीति के बजाय राज्य की राजनीति में जाति की ज्यादा सक्रिय भूमिका रहती हैं। बिहार, उत्तरप्रदेश, तमिलनाडु, केरल, आन्ध्रप्रदेश, राजस्थान आदि की राजनीति का विश्लेषण बिना जातिगत गणित के किया ही नहीं जा सकता।
8. **चुनाव प्रचार में जाति का सहारा** –राजनीतिक दल एवं उम्मीदवार चुनाव प्रचार में जाति का खुलकर प्रयोग करते हैं। चुनावों के समय जातीय समीकरण बैठाये जाते हैं। प्रत्येक राजनैतिक दल क्षेत्र विशेष में जिस जाति का बाहुल्य हैं उसमें उसी जाति के बड़े नेता का चुनाव प्रचार हेतु भेजने का प्रयत्न करते हैं।
9. **जाति के आधार पर राजनीतिक अभिजनों का उदय** – जो लोक जातीय संगठनों में उच्च पदों पर पहुंच गये वे ही राजनीति में भी अच्छे स्थान प्राप्त करने में सफल हुये। ऐसे लोग राजनीति में चाहे खुलकर जातिवाद का सहारा न ले फिर भी ये अपनी पृष्ठ भूमि को नहीं भूलते। वे अपने जातीय हितों की प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप पैरवी करते रहते हैं।

1.4 जाति गत राजनीति की विशेषताएँ (Characteristics of Caste Based Politics)–

भारत में जाति गत राजनीति में निम्न विशेषताएं देखने को मिलती हैं।

(1) जातीय संघों अथवा संगठनों ने जातिगत राजनीतिक

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

महत्त्वाकांक्षा को बढ़ाया हैं। जातीय नेतृत्व जातीय हितों के मुद्दों को उठाकर जाति में अपना समर्थन बढ़ाकर राजनीतिक लाभ उठाते हैं।

(2) शिक्षा, शहरीकरण औद्योगीकरण, आधुनिकीकरण तथा लोकतंत्रीय व्यवस्था के बावजूद जातिवाद की भावना एवं एकीकरण को बल मिला हैं।

(3) क्षेत्र विशेष में कोई जाति विशेष राजनीतिक रूप से ज्यादा प्रभावशाली एवं शक्तिशाली होती हैं।

(4) जाति एवं राजनीति के सम्बन्ध गतिशील होते हैं। सदा एक जैसे नहीं रहते।

(5) जाति के राजनीतिकरण के साथ–साथ स्थानीय स्तर पर राजनीति का जातीयकरण भी हो रहा हैं।

1.5 सकारात्मक प्रभाव (Positive Impact) –

जातिवाद ने राजनीति में सकारात्मक प्रभाव भी डाले हैं। भारतीय राजनीति में जातिवाद के निम्न सकारात्मक प्रभाव दिखाई देते हैं।

(1) जाति एवं राजनीति के सम्बन्ध ने लोगों को एक सूत्र में बांधने का काम किया हैं। दूर–दूर रहने वाले जाति के लोग जातीय पंचायतों में एक दूसरे के सम्पर्क में आते हैं। विकसित संचार की तकनीक के कारण एक दूसरे से सम्पर्क बनाये रखते हैं। एक दूसरे की समस्याओं में सहायता करते हैं। शासन से अधिक से अधिक फायदा लेने के लिए अपनी जाति में एकता बनाये रखने का प्रयत्न करते हैं। इससे लोगों में सामाजिकता एवं एकता की भावना का विकास होता हैं। यही सामाजिकता एवं एकता की भावना राष्ट्रीय संदर्भ में सकारात्मक प्रभाव पैदा करती हैं।

(2) जाति की राजनीति ने अधिक लोगों में राजनीतिक सक्रियता पैदा की हैं। जाति में अपना दबदबा एवं अपने हितों की रक्षा के लिए लोग राजनीति में सक्रिय होने लगे। सामाजिक सेवा का कार्य भी करने लगे। जातीय संगठनों में सक्रिय लोग राजनीति में भी सक्रिय हो जाते हैं।

(3) जातीय सक्रियता के कारण समाज में उन जातियों का महत्त्व भी बढ़ा जो पहले राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक रूप से शक्ति विहीन थी। उन्हें प्रजातंत्र में अपनी संख्या बल का फायदा मिलने लगा। ऐसी जातियों में भी राजनीतिक जागरूकता आयी। शासन में उनकी सहभागिता बढ़ी हैं।

(4) जातिवाद के कारण सामाजिक संरचना में परिवर्तन आया। जाति की राजनीति ने समाज की संस्कृति को प्रभावित किया। समाज की सभी जातियों के खान–पान, वेशभूषा, रहन–सहन, आचार विचार में निम्न जातियां उच्च जातियों का अनुसरण करती हैं अतः इन क्षेत्रों में समानता बढ़ती हैं। समाज में सांस्कृतिक एकता की स्थापना होती हैं।

(5) रूडोल्फ तथा रूडोल्फ के अनुसार जाति की राजनीति ने जातियों के पदसोपानीय संबंधों को तोड़ दिया है और विभिन्न जातियों के सदस्यों में समानता आयी हैं।

(6) जातिगत विभिन्नीकरण के चलते, भारत में कोई भी धार्मिक समुदाय एकीकृत बहुसंख्यक समुदाय नहीं बन पाता है। इसीलिए एशिया–अफ्रीका के अन्य नव–स्वतंत्र देशों के विपरीत भारत में लोकतंत्र बहुसंख्यक तानाशाही का शिकार होने से बच गया।

1.6 नकारात्मक पक्ष (Negative Impact)–

डी.आर. गाडगिल का मत है कि जाति का प्रभाव प्रजातंत्र के विकास में सहायक नहीं हैं। डा. आशीर्वादम के अनुसार भूतकाल में जाति के चाहे जो भी लाभ हो, आज प्रगति में बाधक हैं। जातिवाद से समाज में तनाव, संघर्ष पैदा होता हैं। राष्ट्रीय हित का नुकसान होता हैं, रूढ़िवादिता को बढ़ावा मिलता हैं सरकार दबाव में कार्य करती हैं। जातिवाद लोकतंत्र के विरुद्ध हैं। जातिवाद स्वतंत्रता के बाद बढ़ा हैं तथा सभी दल इसका सहारा लेते हैं। जातिवाद के भारतीय राजनीति पर निम्न नकारात्मक प्रभाव पड़ते हैं।

(1) बंधुत्व एवं एकता की भावना को हानि पहुंचती हैं। अपने–अपने जातीय हितों के संघर्ष के कारण वैमनस्यता पैदा होती हैं। समाज में तनाव एवं संघर्ष का वातावरण पैदा होता हैं। सामाजिक समरसता पर चोट पहुंचती हैं। गुर्जर आंदोलन के दौरान गुर्जर व मीणा जाति के बीच कुछ क्षेत्रों में पैदा तनाव इसका उदाहरण हैं।

(2) समाज के वातावरण में अमन, चैन एवं शान्ति की जगह संघर्ष एवं अशान्ति पैदा होती हैं। जातियां अपने हितों के लिए तो संघर्ष करती ही हैं कई बार सरकार के इस प्रकार के निर्णयों से भी देश एवं समाज में अशान्ति पैदा हो जाती है।

(3) जाति के आधार पर चुनाव लड़ना एवं जातिगत आग्रह के आधार पर मतदान करना जातिवाद का ही परिणाम हैं। जाति के आधार पर मतदान करने से योग्य व्यक्ति चुनाव हार जाते हैं। जीतने वाला व्यक्ति भी पूरे समाज के प्रति दायित्व बोध न समझकर जातीय वफादारी पर ध्यान देता हैं। यह देश एवं समाज दोनों के लिए घातक हैं। देश का शासन अयोग्य लोगों के हाथ में चला जाता हैं जो देश का भला नहीं कर सकते।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

(4) जातिवादी भावना के कारण नागरिकों की श्रद्धा एवं भक्ति बंट जाती हैं। देश के प्रति भक्ति कम हो जाती हैं। लोग राष्ट्रीय हितों के बजाय जातीय हितों को प्राथमिकता देने लग जाते हैं। ये प्रवृत्तियां देश की एकता, भाईचारे तथा विकास में बाधा पैदा करती हैं।

(5) जातिवाद के कारण से राजनीतिक दलों का निर्माण भी जाति के आधार पर होने लगता है। स्वस्थ लोकतंत्र के विकास के लिए राजनीतिक दलों का गठन आर्थिक एवं राजनीतिक विचारधारा पर होना चाहिये। जातिवादी भावना से सिद्धान्त एवं विचार गौण हो जाते हैं।

(6) जातिवादी सोच रूढ़िवादिता को बढ़ावा देती हैं जिसमें वैज्ञानिक एवं प्रगतिशील दृष्टिकोण का विकास नहीं हो पाता। आधुनिक दृष्टिकोण का विकास अवरुद्ध हो जाता हैं। जातिवाद परम्परावाद का बढ़ावा देती हैं।

(7) अल्प संख्यक जाति या समुदाय के लोगों में असुरक्षा की भावना का विकास होता हैं।

(8) सरकारें बड़ी एवं शक्तिशाली जातीय संगठनों के दवाब में कार्य करती हैं अतः स्वतंत्र एवं निष्पक्ष सम्पूर्ण समाज हित में निर्णय लेने से बचने का प्रयास करती हैं।

(9) कभी–कभी जातीय संगठनों के आंदोलन या संघर्ष हिंसक रूप ले लेते है। तोड़ फोड़ की जाती हैं तथा राष्ट्रीय सम्पत्ति को नुकसान पहुंचाया जाता हैं। औद्योगिक विकास एवं व्यापार का भारी नुकसान होता हैं। सार्वजनिक सम्पत्ति को नष्ट किया जाता हैं।

(10) जातिवाद लोकतंत्रीय भावना के विरुद्ध होता हैं। यह स्वतंत्रता समानता व बन्धुत्व जैसे लोकतंत्रीय मूल्यों को नुकसान पहुंचाता हैं। समाज में फूट, विखण्डन एवं संकीर्ण हितों को प्रोत्साहित करती हैं।

(11) वोट बैंक की राजनीति को बढ़ावा – राजनीतिक दल एवं नेता किसी जाति को अपना वोट बैंक बनाने हेतु उसकी उचित अनुचित बातों एवं मांगों का समर्थन करते रहते हैं उन्हें प्रोत्साहित करते रहते हैं जो राष्ट्रीय हित के लिए घातक हैं। राष्ट्रीय हितों के बजाय जातीय हितों को अधिक महत्त्व दिया जाता हैं।

निष्कर्ष (Conclusion) –

कहा जा सकता है कि आधुनिक भारतीय समाज में जातिगत भेद–भाव केंसर एवं एड्स जैसे भयंकर रोगों की तरह सर्वत्र फैल गया है, जिसका निदान असम्भव है। इसलिए भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका का मूल्यांकन करना अत्यन्त जटिल कार्य है। यह केवल व्यक्ति –व्यक्ति के बीच खाई ही पैदा नहीं करती, अपितु राष्ट्रीय एकता के मार्ग में भी बाधा उत्पन्न कर रही है। आज राष्ट्रीय हितों की अपेक्षा जातिगत हितों को विशेष महत्त्व दिया जा रहा है, जिसके कारण हमारी लोकतांत्रिक व्यवस्था कमजोर हो रही है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री एम.एन श्रीनिवास का मत है '' परम्परावादी जाति व्यवस्था ने प्रगतिशील और आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था को इस तरह प्रभावित किया है कि ये राजनीतिक संस्थाएँ अपने मूलरूप में कार्य करने में समर्थ नहीं रही है।''

डी.आर. गाडगिल के शब्दों में '' क्षेत्रीय दबावों से कहीं ज्यादा खतरनाक बात यह है कि वर्तमान काल में जाति व्यक्तियों को एकता के सूत्र में बांधने में बाधक सिद्ध हुई है। '' अतः जातिवाद देश, समाज और राजनीति के लिए बाधक है। लोकतन्त्र व्यक्ति को इकाई मानता है न कि किसी जाति या समूह को। जाति और समूह के आतंक से मुक्त रखना ही लोकतंत्र का आग्रह है।

साम्प्रदायिकता (Communalism)

1.7 अर्थ एवं परिभाषा (Meaning & Definition) –

जब एक धार्मिक समूह या समुदाय समझ बूझकर अपने को अलग वर्ग मानकर धार्मिक सांस्कृतिक भेदों के आधार पर अपने लौकिक हितों की भिन्नता को रेखांकित करता है। अपनी मांगों को राष्ट्रीय एवं सामाजिक हितो से अधिक प्राथमिकता देता हैं उसे साम्प्रदायिकता कहा जा सकता हैं। विन्सेण्ट स्मिथ के अनुसार – ''एक साम्प्रदायिक व्यक्ति या समूह वह है जो कि प्रत्येक धार्मिक एवं भाषाई समूह को एक ऐसी पृथक् सामाजिक तथा राजनीतिक इकाई मानता हैं, जिसके हित अन्य समूह से पृथक् होते हैं और उनके विरोधी भी हो सकते हैं। एसे ही व्यक्तियों या व्यक्ति समूह की विचारधारा को सम्प्रदायवाद या साम्प्रदायिक कहा जायेगा।''

1.8 साम्प्रदायिक संगठनों का उद्देश्य (Objective of Communal Organisations)–

शासको के उपर दबाव डालकर अपने सदस्यों के लिए अधिक सत्ता, प्रतिष्ठा तथा राजनीतिक अधिकार प्राप्त करना होता हैं। एसे समूह राष्ट्रीय एवं सामाजिक हितों के उपर अपने समूह के हितों को अधिक प्राथमिकता देते हैं जिससे समाज में फूट पैदा होती हैं।

1.9 साम्प्रदायिकता का उदय (Origin of Communalism) –

भारत में साम्प्रदायिकता की समस्या ब्रिटिश शासन की समकालीन हैं। ब्रिटिश सरकार ने ''फूट डालो और राज करो'' की नीति अपनाई ताकि हिन्दू मुसलमान लड़ते रहे तथा वे अपना शासन आराम से चलाते रहे। भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के निर्माण एवं विकास में जितना हाथ अंग्रेजों की कूटनीतिक चाल का हाथ रहा उतना ही हिन्दुओं एवं

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

मुसलमानों के बीच राजनीतिक संघर्षो का भी। विभिन्न वर्गों की सत्ता की महत्त्वाकांक्षा के कारण भारतीय राजनीति में कांग्रेस मुस्लिम लीग के बीच ब्रिटिश सरकार मदारी की भूमिका अदा करने लगी। मेहता और पटवर्द्धन ''अंग्रेजी शासकों ने अपने आपको हिन्दू मुसलमानों के मध्य में खड़ा करके ऐसे साम्प्रदायिक त्रिभुज की रचना का निश्चय किया जिसके आधार बिन्दु वे स्वयं रहे।''

ब्रिटिश सरकार की नीतियों के कारण भारत में साम्प्रदायिकता बढ़ती रही। 1857 के राष्ट्रीय विद्रोह में हिन्दू–मुस्लिम एकजुटता से घबराकर ब्रिटिश राज ने इस एकता को तोड़ने की रणनीति बनाई। सर्वप्रथम अंग्रेजों ने मुस्लिमों को विद्रोह का सूत्रधार मानते हुए, उनकी उपेक्षा और हिन्दुओं को बढ़ावा दिया। फिर हिन्दुओं के विकास एवं आधुनिकीकरण के कारण मुसलमानों को विशेष रियायतें देकर राजी करने का प्रयास किया। 1905 में लार्ड कर्जन ने साम्प्रदायिक आधार पर बंगाल का विभाजन कर दिया। भारतीय मुसलमानों के अधिकारों की रक्षा के नाम पर 1906 में आल इण्डिया मुस्लिम लीग की स्थापना हुई। साम्प्रदायिक निर्वाचन पद्दति की शुरुआत कर ब्रिटिश सरकार ने इस समस्या को ओर अधिक बढ़ाया। 1940 में जिन्ना ने द्विराष्ट्र सिद्धान्त का प्रतिपादन किया और अन्त में 1947 में साम्प्रदायिकता के आधार पर भारत का विभाजन हुआ।

1.10 साम्प्रदायिक समस्या के कारण (Causes of Problem of Communalism)–

स्वतंत्रता से पूर्व को अंग्रेजों ने इस समस्या को बनाये रखा लेकिन स्वतंत्रता के बाद भी साम्प्रदायिक समस्या भारतीय राजनीति की एक समस्या बनी हुई है। इसके निम्न कारण हैं –

1. **विभाजन की कटु स्मृतियाँ** – मुस्लिम लीग की सीधी कार्रवाई ने साम्प्रदायिक वैमनस्य को चरम पर पहुंचा दिया था। स्वतंत्रता के साथ ही देश का विभाजन हुआ। देश के विभिन्न भागों में हिंसा भड़क उठी। लाखों लोग विस्थापित हुए विभाजन में जो क्षेत्र पाकिस्तान में आये वहां से लाखों लोगों को अपना घर बार, सम्पत्ति सब कुछ छोड़ कर भागना पड़ा। कई लोगों की हत्याएं हुई, महिलाओं एवं लड़कियों के साथ दुर्व्यवहार हुआ, परिवार बिछुड़ गये, बच्चे अनाथ हो गये। इसकी प्रतिक्रिया भारतीय क्षेत्रों में भी कही–कही देखने को मिली। अपनों का अपनों के सामने इस प्रकार कत्लेआम देखना लोगों की स्मृतियों में बना रहा। इस मानसिकता के कारण जब भी छोटी सी घटना होती हैं वह बड़ा रूप ले लेती हैं। घटना से प्रभावित लोगों के परिवार आज भी उस भयावह घटनाओं को भुला नहीं पाये हैं।
2. **राजनीतिक दलों द्वारा निहीत स्वार्थो के लिए पृथक्करण की भावना पनपाना** – स्वतंत्रता प्राप्ति व विभाजन के पूर्व व पश्चात् भारत में कई राजनीतिक दलों व संगठनों का गठन धार्मिक आधार पर हुआ है। इनमें हिन्दू महासभा, अकाली दल, जमाएत–ए–इस्लाम, ऑल इण्डिया मजलिस–ए–इत्तेहादल मुसलीमीन, ऑल इण्डिया मुस्लिम लीग व विद्यार्थी संगठन (SIMI) प्रमुख हैं। दुर्भाग्यवश इन संगठनों ने अपने निहित राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए धार्मिक आधार पर राजनीति करना प्रारंभ कर दिया, जिससे एक वर्ग विशेष में अलगाववाद की प्रवृत्ति विकसित हुई है।
3. **मुसलमानों का आर्थिक एवं शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़ापन** – ब्रिटिश शासन काल से ही मुसलमान शैक्षणिक एवं आर्थिक दृष्टि से पिछड़े रहे। नौकरी, व्यापार एवं उद्योग–धन्धों में उनकी स्थिति सुधर नहीं पायी। मुस्लिम समाज का आधुनिकीकरण नहीं हो पाया इससे उनमें असन्तोष बढ़ा जिसका फायदा राजनीतिक महात्वाकांक्षा से युक्त लोगों ने उठाया। उन्होंने मुस्लिम समाज में विकास करने के बजाय असन्तोष को ओर अधिक बढ़ाने का प्रयास किया। अब तक जो नेता एवं पार्टियां मुस्लिम राजनीति के केन्द्र में रही, उन्होंने मुसलमानों को अपने राजनीतिक स्वार्थों की पूति के लिए उन्होंने प्रतिगामी मुद्दों के दायरे से बाहर निकलने ही नहीं दिया है। बच्चों में लोकतांत्रिक मूल्यों को विकसित करके उन्हें शिक्षा एवं आधुनिकता से जोड़ना आज की महत्ती आवश्यकता है।
4. **पाकिस्तानी प्रचार और षडयंत्र** – पाकिस्तानी मीडिया भी हिन्दू मुस्लिम तनाव को बढ़ा चढ़ा कर मुसलमानों के विरुद्ध योजनाबद्ध षड़यंत्र की तरह प्रचार करती हैं। 1981 से 93 के बीच पाकिस्तान ने हिन्दुओं एवं सिक्खों के बीच साम्प्रदायिक वैमनस्य को पैदा करने एवं बनाये रखने का हर सम्भव प्रयास किया। मार्च 1993 की बम्बई बम विस्फोट की घटनाएं पाकिस्तानी षड़यंत्र का परिणाम थी जिसका उद्देश्य हिन्दुओं मुसलमानों में खूनी संघर्ष पैदा करना था। पाकिस्तान कश्मीर में भारतीय सेनाओं को मुसलमानों पर अत्याचारों के लिए प्रचारित करता है।
5. **सरकार की उदासीनता** :– सरकार एवं प्रशासन की उदासीनता एवं लापरवाही के कारण भी कई बार साम्प्रदायिक दंगे विशाल रूप से भड़क जाते हैं। छोटी सी घटना बड़ा रूप ले लेती हैं।
6. **दलीय राजनीति, गुटीय राजनीति और चुनावी राजनीति** – साम्प्रदायिकता की समस्या के लिए राजनीतिक दलों की संकुचित दलीय हितों की राजनीति भी जिम्मेदार हैं। कई राजनीतिक दल अपने स्वार्थ के लिए साम्प्रदायिक वैमनस्य को बढ़ाने का प्रयास करते हैं। 1950 से लेकर अब तक जितने भी दंगे हुये, उनमें से

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अनेक का परोक्ष कारण दलीय एवं गुटीय राजनीति रही व वरिष्ठ पत्रकार निखिल चक्रवर्ती कहते हैं कि ''सभी दंगों का मूल कारण राजनीतिक होता हैं और ये दंगे अपने स्वार्थ के लिए राजनीतिज्ञों द्वारा करवाये जाते हैं।''

7. **तुष्टीकरण की राजनीति** – सरकारों द्वारा वर्ग विशेष के वोटों के लिए उनकी उचित अनुचित मांगों को मान लेना, उन्हें विशेष रियायते व विशेषाधिकार देने के कारण अन्य सम्प्रदायों में ईर्ष्या की भावना पैदा होना स्वाभाविक हैं। ऐसी गतिविधि विभिन्न सम्प्रदायों में आपसी तनाव पैदा करती हैं। जिनको तुष्टीकरण के कारण विशेष रियायतें दी जाती हैं वे वर्ग फिर उनको अपना अधिकार मान लेते है जिससे दूसरे वर्गो में असन्तोष पैदा होता हैं।

8. **वोट बैंक की राजनीति** – कुछ राजनीतिक दल किसी वर्ग विशेष को अपना वोट बैंक बनाने हेतु उसके सभी सही गलत कदमों का समर्थन करते हैं तो प्रतिक्रिया स्वरूप दूसरे राजनीतिक दल दूसरे वर्गो को समर्थन देते हैं इस प्रकार तनाव को बढ़ावा मिलता हैं। वोट बैंक की राजनीति के कारण जब वर्ग विशेष को अन्य की उपेक्षा कुछ विशेष दिया जाता हैं तो समाज में तनाव पैदा होना स्वाभाविक हैं।

1.11 साम्प्रदायिकता के दुष्परिणाम (Repercussions of Communalism) –

साम्प्रदायिकता के कारण ना सिर्फ राष्ट्रीय एकता अखण्डता को खतरा पैदा हुआ है बल्कि विकास की प्रक्रिया भी अवरूद्ध हुई है। साम्प्रदायिकता के कारण देश के दुकड़े हुए जो आज भी अखण्डता के लिए खतरा बनी हुयी है। साम्प्रदायिक समस्या के कारण देश को कई दुष्परिणाम भोगने पड़े।

1. **आपसी द्वेष** – साम्प्रदायिकता के कारण समाज में फूट पड गयी, आपसी द्वेष एवं अविश्वास पैदा हुआ। समाज में आपसी समरसता का वातावरण नहीं रहा जिसके कारण छोटी सी घटना भयंकर साम्प्रदायिकता का रूप ले लेती है। समाज में शान्ति व्यवस्था एवं भाईचारे की भावना खत्म हो जाती है एवं विविधता में एकता का भाव खत्म हो जाता है।

2. **आर्थिक हानि** – साम्प्रदायिक दंगें भडकने पर भयंकर विनाश होता है। गाड़ियां व बाजार जला दिये जाते हैं एवं राष्ट्रीय सम्पति को नष्ट कर दिया जाता है। दंगों के कारण कर्फ्यू वगैरह के कारण कई दिनों तक बाजार बंद रहते हैं जिसके कारण आर्थिक नुकसान के साथ दैनिक मजदूरी पर गुजारा करने वाले लोगों के सामने भुखमरी की नौबत आ जाती हैं।

3. **प्राण हानि** – साम्प्रदायिक दंगों मे सैकड़ों लोग मारे जाते हैं तथा हजारों घर उजाड़ दिये जाते हैं। रांची, श्रीनगर, वाराणसी, अलीगढ़, हैदराबाद, मेरठ, बम्बई आदि के दंगे इसका उदाहरण हैं जिनमें मरने वालों के अलावा हजारों लोग अपंग व अपाहिज हो गये।

4. **राजनीतिक अस्थिरता** – साम्प्रदायिक समस्या के कारण एसी राजनीतिक समस्याएं पैदा हो जाती है जिससे सरकारों की स्थिरता प्रभावित होती हैं। अस्थायी सरकार स्थायी विकास के कार्य नहीं कर पाती। वह सदा अपने अस्तित्व को बनाये रखने हेतु प्रयत्नशील होती हैं जिससे विकास कार्यो में पर्याप्त ध्यान नहीं दे पाती। फलस्वरूप देश के विकास की गति अवरुद्ध होती हैं।

5. **राष्ट्रीय एकता में बाधा** – साम्प्रदायिकता राष्ट्रीय एकता एवं भाईचारे की भावना को नष्ट करती हैं। समाज में फूट पैदा कर सामाजिक समरसता को खत्म करती हैं। उल्लेखनीय है कि बहुसंख्यक–साम्प्रदायिकता स्वयं को राष्ट्रवाद के छद्म रूप में पेश की करती है, जबकि अल्पसंख्यक–साम्प्रदायिकता का अलगाववादी स्वरूप मुखर होता है। राष्ट्रीय एकता के लिए इन दोनों से सावधान रहना जरूरी है।

6. **राष्ट्रीय सुरक्षा को खतरा** – भारत एक बहु सम्प्रदायी देश है इसमें अनेक सम्प्रदायों के लोग निवास करते हैं। देश में शान्ति एवं व्यवस्था के साथ विकास के लिए सबको मिलजुल कर रहना आवश्यकता है लेकिन उग्र साम्प्रदायिक भावनाएं एकता को पनपने ही नहीं देती।

7. **औद्योगिक एवं व्यावसायिक विकास में बाधा** –देश का औद्योगिक एवं व्यापारिक विकास शान्ति एवं सुव्यवस्था में ही हो सकता हैं। अशान्ति एवं हिंसा के वातावरण में कोई पूंजीपति अपना धन नहीं लगायेगा। इस प्रकार साम्प्रदायिक अशान्ति देश का औद्योगिक एवं व्यापारिक विकास अवरुद्ध कर देती हैं। विकास शान्ति एवं सुव्यवस्था में ही हो सकता हैं। पंजाब में पैदा इसी प्रकार की अशान्ति ने पंजाब को आर्थिक विकास के पथ पर कई वर्ष पीछे कर दिया था।

1.12 साम्प्रदायिकता को दूर करने के सुझाव (Suggestions to Remove Communalism)–

साम्प्रदायिकता देश के लिए ही नहीं सम्पूर्ण मानवता के लिए एक गम्भीर अभिशाप हैं। देश को इससे बहुत कुछ भुगतना पड़ा हैं। देश की एकता एवं अखण्डता पर खतरा हैं, प्रगति एवं विकास में बाधक हैं। इसलिए साम्प्रदायिकता को दूर किया जाना चाहिये। साम्प्रदायिकता को दूर करने के लिए निम्न – निम्न सुझाव दिये जा सकते हैं।

1. सरकार को सदैव ही इस बात का ध्यान रखना चाहिये

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

कि उसके द्वारा ऐसा कोई कार्य नहीं किया जाये, जिससे साम्प्रदायिकता को प्रोत्साहन मिले। समानता के सम्बन्ध में आदर्शो की बातें करने के बजाय उसे व्यावहारिक रूप से क्रियान्वित करने का प्रयास किया जाना चाहिये।

2. शिक्षा में शाश्वत नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों को शामिल किया जाना चाहिये। भारत एक धर्म निरपेक्ष राज्य हैं लेकिन शाश्वत नैतिक जीवन मूल्यों की शिक्षा तो सबके लिए अनिवार्य होनी चाहिये। धर्म विशेष की शिक्षा की जगह देश भक्ति एवं राष्ट्रीयता की भावना पैदा करने वाली शिक्षा होनी चाहिये।
3. धर्म के आधार पर किसी धार्मिक वर्ग के लिए कोई विशेष रियायतें या सुविधाएं न दी जाये जिससे अन्य धर्मो के लोगों में ईर्ष्या भावना पैदा हो। धर्म एवं जाति के आधार पर इस तरह का भेदभाव आपसी तनाव पैदा करता है जिससे बंधुत्व की भावना खत्म होती हैं।
4. अल्प संख्यकों के मन में सुरक्षा का भाव पैदा हो सरकार ऐसी व्यवस्था करे, इसके लिए उन्हें विशेष अवसर दिये जाएं।
5. साम्प्रदायिकता का एक सबसे बड़ा कारण चुनावी राजनीति हैं। राजनीतिक दल चुनावों फायदा उठाने हेतु साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देते हैं इस पर कड़ा प्रतिबंध होना चाहिये। किसी भी दल को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से चुनाव प्रचार में धर्म का सहारा लेने से रोकने हेतु दृढ़ व सुनिश्चित नियमों का निर्माण व क्रियान्वयन अतिआवश्यक है।
6. समय–समय पर साम्प्रदायिकता के आधार पर प्रतिनिधित्व की मांगों को दृढ़ता से ठुकराना होगा। नागरिकों में एक राष्ट्र की भावना पैदा करनी होगी।
7. शिक्षा से दृष्टिकोण उदार बनता हैं तथा व्यक्ति का मानसिक विकास होता हैं। अशिक्षित व्यक्ति धर्म का संकीर्ण एवं अपने स्वार्थ में प्रयोग करने वालों के बहकावे में अधिक आ जाते हैं।
8. सर्वधर्म समभाव को बढ़ावा देने वाले कार्यक्रम आयोजित किये जाने चाहिये। साहित्य एवं मीडिया द्वारा भी ऐसे कार्यक्रम आयोजित किये जाने चाहिये। जिससे लोगों को एक दूसरे के धर्म की जानकारी मिल सके व धार्मिक सहिष्णुता पैदा हो सके।
9. धर्म के आधार पर राजनीतिक दलों का गठन न हो तथा धार्मिक संगठनों को राजनीति में भाग लेने पर प्रतिबंध हो। साम्प्रदायिक संगठनों पर पूर्ण प्रतिबंध हो।

सच्चर कमेटी प्रतिवेदन, 2006 – भारतीय मुसलमानों की सामाजिक, आर्थिक व शैक्षणिक स्थिति का अध्ययन करने व उसमें सुधार लाने के लिए सुझाव देने हेतु सेवानिवृत्त न्यायाधीश राजेन्द्र सिंह सच्चर की अध्यक्षता में सात सदस्यीय कमेटी का गठन किया गया। सच्चर कमेटी ने मुसलमानों की स्थिति का अध्ययन कर कुछ सुझाव दिये। जिसके तहत अल्पसंख्यकों के कल्याण एवं विकास के लिए 15 सूची कार्यक्रम, सर्व शिक्षा अभियान, मुस्लिम बालिकाओं के लिए सुविधाएं आदि। कुछ लोगों ने राजनीतिक लाभ के लिए अल्पसंख्यकों के लिए आरक्षण की मांग की। तत्कालीन केन्द्र सरकार ने पिछड़ा वर्ग कोटे मे से 4.5 प्रतिशत आरक्षण अल्पसंख्यकों को देने का निर्णय किया जिसे पहले आन्ध्रप्रदेश हाईकोर्ट ने फिर सुप्रीम कोर्ट ने खारिज कर दिया। भारतीय संविधान में धर्म के आधार पर आरक्षण को अस्वीकार किया गया हैं।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- जातिवाद एवं साम्प्रदायिकता दोनों ही भारतीय राजनीति को प्रभावित करने वाले महत्त्वपूर्ण तत्व है।
- जाति एक सामाजिक संरचना है जो अति प्राचीन काल से ही भारत में प्रचलित है।
- वोट राजनीति ने जातिवाद को और ज्यादा बढ़ाया है।
- धार्मिक समूहों द्वारा अपने को अलग वर्ग मान कर अपने वर्गीय हितों को राष्ट्रीय हितों से अधिक प्राथमिकता देने को साम्प्रदायिकता कहा जाता है।
- ब्रिटिश सरकार की " फूट डालो और राज करो" नीति साम्प्रदायिकता का कारण।
- विभिन्न समुदायों का शैक्षिक, आर्थिक पिछड़ापन एवं पृथक्कता की भावना, पाकिस्तान प्रचार, सरकारी उदासीनता दलीय राजनीति, तुष्टीकरण की नीति, वोट बैंक की राजनीति तथा विदेशी धन।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. जाति भारत में एक महत्त्वपूर्ण दल हैं। निम्न में से किस विद्वान ने कहा हैं–
   (अ) महात्मा गांधी (ब) स्वामी विवेकानन्द
   (स) जयप्रकाश नारायण (द) सरदार पटेल ( )
2. निम्न में से कौन सा कथन असत्य हैं–
   (अ) जाति निर्णय प्रक्रिया को प्रभावित करती हैं।
   (ब) राजनीतिक दल जातिगत आधार पर उम्मीदवार खड़े नहीं करते हैं।
   (स) राज्यों की राजनीतिक में जाति का प्रभाव अधिक हैं।
   (द) मतदाता सामान्यतया जातिगत आधार पर मतदान करते हैं। ( )

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

3. निम्न में से कौन से राज्य की राजनीति में जाति का प्रभाव ज्यादा हैं–
   (अ) बिहार (ब) उत्तरप्रदेश
   (स) आंध्रप्रदेश (द) उपर्युक्त सभी ( )
4. भारत विभाजन का प्रमुख कारण क्या था?
   (अ) जातिवाद (ब) साम्प्रदायिकता
   (स) भाषावाद (द) भ्रष्टाचार ( )
5. गुजरात के गोधरा में साम्प्रदायिक घटना हुई –
   (अ) फरवरी 2002 (ब) मार्च 2001
   (स) फरवरी 1992 (द) दिसम्बर 1995 ( )
6. साम्प्रदायिकता का प्रमुख दुष्परिणाम होता हैं–
   (अ) राजनीतिक अस्थिरता
   (ब) राष्ट्रीय एकता में बाधा
   (स) आर्थिक हानि
   (द) उपर्युक्त सभी ( )

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. जातिवाद किसे कहते हैं?
2. वैदिक काल में जाति का आधार क्या होता था?
3. साम्प्रदायिकता किसे कहते हैं?
4. ब्रिटिश सरकार की कौन सी नीति में भारत में साम्प्रदायिकता को बढ़ावा दिया हैं?
5. साम्प्रदायिकता के दो दुष्परिणाम बताईये।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. भारतीय चुनावों में जाति की भूमिका स्पष्ट कीजिए।
2. साम्प्रदायिकता के कोई दो कारण बताईये।
3. निर्णय प्रक्रिया को जाति किस प्रकार प्रभावित करती हैं।
4. ''साम्प्रदायिकता को ब्रिटिश सरकार की नीतियों ने बढ़ाया'' कथन को स्पष्ट कीजिए।
5. साम्प्रदायिकता बढ़ाने में विदेशी प्रचार का प्रभाव कैसे पड़ता हैं?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. जाति का क्या तात्पर्य हैं। भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका को स्पष्ट कीजिए।
2. साम्प्रदायिकता क्या हैं? इसके प्रमुख कारणों का उल्लेख कीजिए।
3. साम्प्रदायिकता के दुष्परिणामों का विश्लेषण कीजिए।
4. भारतीय राजनीति में जाति की सकारात्मक एवं नकारात्मक भूमिकाओं को स्पष्ट कीजिए।

बहुचयनात्मक प्रश्नों के उत्तर

1. स 2. ब 3. द 4. ब
5. अ 6. द

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

2. क्षेत्रवाद एवं भाषावाद
(Regionalism & Lingualism)

हमारा देश विविधताओं वाला देश है। यहाँ पर भौगोलिक, सांस्कृतिक, भाषाई भिन्नता विद्यमान है। यद्यपि ये भिन्नताएँ हमारे लिए कौतूहल का कारण बनती है तो कई बार अतिवादिता के कारण शासन के लिए व्यवस्था निर्माण में समस्या भी पैदा करती है। आजादी के समय हमारा भारत आर्थिक दृष्टि से ज्यादा सक्षम राष्ट्र नहीं था। विदेशी शासकों द्वारा हमारी अर्थव्यवस्था का अत्यधिक दोहन व प्रान्तों का असंतुलित विकास इसका प्रमुख कारण रहा। स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त हमारी संघीय सरकार ने राज्य पुनर्गठन व अन्य उपायों द्वारा असंतुलन की इस अवस्था को ठीक करने का प्रयास किया। प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता, हमारी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि इत्यादि के कारण क्षेत्रीय भिन्नताएँ मौजूद रही। स्वतंत्रता के पश्चात् राज्यों के गठन की प्रकिया भी इसका एक कारण रही। राज्यों का निर्माण, ब्रिटिश प्रान्तों के विलय, देशी रियासतों के एकीकरण एवं राजनीतिक सामाजिक एकीकरण के फलस्वरूप हुआ।

जाति, धर्म, सम्प्रदाय, व्यक्ति विशेष की अग्रणी छवि आदि ने भी राज्य पुनर्गठन की प्रकिया को प्रभावित किया। आर्थिक विकास का स्तर, नौकरशाही की राजनीति प्रतिबद्धता, क्षेत्रीय आकांक्षाएँ भौगोलिक स्वरूप के कारण भी राज्यों में क्षेत्रीय असन्तुलन विद्यमान रहा। स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान एकमात्र लक्ष्य आजादी प्राप्त करना था। उस दौर में ये आकांक्षाएँ गौण रही, किन्तु 1947 के पश्चात् ये पुनः प्रधान हो गई। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् विभिन्न प्रान्तों की इन माँगों ने क्षेत्रवाद की भावनाओं को बलवती किया।

- राज्यों के पुनर्गठन की माँग।
- नवीन राज्य निर्माण की माँग।
- भारत संघ में ही अधिक स्वायत्तता की आकांक्षा।
- प्राकृतिक संसाधनों के वितरण सम्बन्धी विवाद।
- केन्द्र से अधिकाधिक आर्थिक सहायता प्राप्त करना।
- अधिकाधिक राजनीतिक सहभागिता का दावा।

2.1 क्षेत्रवाद क्या है?
(What is Regionalism ?)

स्थानीय निवासियों द्वारा संघ या राज्य की तुलना में किसी क्षेत्र विशेष या प्रान्त से लगाव व उसकी प्रोन्नति के विशेष प्रयास क्षेत्रवाद की श्रेणी में आते है। क्षेत्रवाद का उद्देश्य है अपने संकीर्ण क्षेत्रीय स्वार्थों की पूर्ति। यह ऐसी प्रवृत्ति है जिसमें क्षेत्र विशेष के लोग आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक शक्तियों की अन्य से अधिक माँग करते हैं।

2.2 क्षेत्रवाद के कारण
(Causes of Regionalism) –

1. प्रकृति प्रदत्त भिन्नताएँ व असमानताएँ।
2. प्रशासन द्वारा संसाधनों के समान वितरण का अभाव या प्रशासनिक भेदभाव।
3. केन्द्रीय निवेश व विकास सम्बन्धी भिन्नता।
4. ऐतिहासिक एवं राजनीतिक कारण।
5. सांस्कृतिक विविधताएँ।
6. भाषायी विविधता से क्षेत्रवाद की भावना को बल।

   संकीर्ण क्षेत्रीय आकांक्षाओं के राष्ट्र को अनेक दुष्परिणाम झेलने पड़ते है जैसे–

1. **देश की अखण्डता को चुनौती** – क्षेत्रीय आकांक्षाओं के बलवती होने की प्रक्रिया में राष्ट्र की एकता व अखंडता को गौण कर दिया जाता है, यहाँ तक कि इसके उग्र स्वरूप में तो कई बार पृथकतावाद का भाव भी पनपने लगता है जो राष्ट्रीय अस्मिता को चुनौती दे डालता है। क्षेत्र विशेष का संघ सरकार व उसकी नीतियों से भरोसा उठ जाता है। हमारी राष्ट्रीय राजनीति में पिछले सात दशकों का अनुभव इस सम्बन्ध में अच्छा नहीं रहा है।
2. **नए राज्यों की माँग** –
3. **क्षेत्रीय राजनीति एवं राजनीतिक दलों का प्राबल्य**
4. **भूमि–पुत्र की अवधारणा**
5. **स्वयंभू नेताओं का उदय।**
6. **राष्ट्रीय कानूनों व आदेशों को चुनौती** – अराजकता की स्थिति का पनपना
7. **अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में देश की साख खराब होना** – आंतरिक क्षेत्रीय समस्याओं का हमारी अन्तर्राष्ट्रीय छवि को खराब करता है। कभी मानवाधिकार के नाम पर तो कभी लोकतांत्रिक मूल्यों के अनुरक्षण के नाम पर अन्य राष्ट्र हमारी क्षेत्रवाद के आधार पर उठ रही माँगों की आड़ में अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर आलोचनाएँ करते हैं।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

2.3 क्षेत्रवाद की समस्या का समाधान (Resolution of Problem of Regionalism) –

समस्या के समाधान का उपाय उसके कारणों में निहित होता है। क्षेत्रवाद पनपने के कारणों को समाप्त करने से ही इस समस्या से छुटकारा पाया जा सकता है। कुछ उपाय जिनसे हम क्षेत्रवाद की समस्या से राहत पा सकते हैं –

1. **संतुलित राष्ट्रीय नीति निर्माण** – केन्द्र सरकार का यह दायित्व बनता है कि वह सभी क्षेत्रों के समान विकास हेतु नीति निर्माण के समय राजनीतिक भेदभाव किए बिना संतुलित व समदर्शी नीति निर्माण करे। छोटे व संसाधनों की दृष्टि से अपेक्षाकृत कमजोर क्षेत्रों/राज्यों के विकास को भी समान प्राथमिकता दें तो धीरे–धीरे वहाँ के निवासियों में विश्वास पैदा होता जाएगा व क्षेत्रवाद का उग्र स्वरूप शान्त होगा।
2. **राज्यों में स्थाई आधारभूत ढाँचागत विकास** – क्षेत्रीय भिन्नताओं में कमी लाने के लिए पिछड़े व अविकसित क्षेत्रों में सिंचाई, बिजली, यातायात व संचार के आधारभूत साधनों के विकास को प्राथमिकता देनी होगी, जिसके दूरगामी सकारात्मक परिणाम सामने आयेंगे।
3. **विकास के विशेष कार्यक्रमों का परियोजनाओं के रूप में प्रारम्भ किया जाना** – यह प्रक्रिया सरकार ने प्रारम्भ कर भी दी है। सूखा संभाव्य क्षेत्र कार्यक्रम (DPAP) मरु विकास कार्यक्रम (DDP) पहाड़ी क्षेत्र विकास कार्यक्रम (AADP) जनजाति क्षेत्र विकास कार्यक्रम (TADP) विशेष राज्य का दर्जा दिया जाना आदि से क्षेत्रीय असंतुलन कम किया जा सकता है।
4. **प्रशासनिक दृष्टि से छोटे राज्यों का गठन** – छोटे–छोटे राज्यों से प्रान्तीय सरकारों द्वारा स्थानीय क्षेत्र विकास कार्यक्रम सफलतापूर्वक चलाए जा सकते हैं। केन्द्रीय करों के वितरण में ही हिस्सेदारी बढ़ती है।
5. **सांस्कृतिक भिन्नता को एकीकरण की ताकत बनाना** – दूरदर्शन, रेडियो, समाचार–पत्रों व अन्य सम्प्रेषण माध्यमों द्वारा भिन्नता को ही ताकत के रूप में उभारना हमारी पहल हो। संस्कृतियों की पहचान व प्रतिष्ठा देना व उन्हें एक–दूसरे के साथ साहचर्य भाव से जोड़ना एकीकरण का माध्यम हो सकती है।
6. **भाषायी विविधता का सम्मान** – हमारा संविधान भी इन्हें मान्यता देकर विविधता को स्वीकार कर चुका है। हमें सभी प्रान्तों को भाषाओं को परस्पर सम्मान देना होगा। अनुवाद का दायरा बढ़ाना होगा। विद्यालय पाठ्यक्रम में इन्हें समुचित स्थान देना होगा।

भाषावाद (Lingualism)

हमारे संविधान के अनुच्छेद 343 में स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि भारत संघ की राजभाषा हिन्दी होगी। हिन्दी के अधिकाधिक प्रयोग व क्षेत्रीय भाषाओं की स्थिति पर सुझाव देने हेतु राष्ट्रपति द्वारा भाषा आयोग के गठन का भी प्रावधान है। यह आयोग देश की औद्योगिक, सांस्कृतिक और वैज्ञानिक उन्नति का और लोक सेवाओं के सम्बन्ध में अहिन्दी भाषी क्षेत्रों के व्यक्तियों की उचित माँगों पर भी विचार करेगा। इसके साथ ही संविधान राज्य के विधानमण्डलों को भी यह अधिकार प्रदान करता है कि वे उस राज्य में राजकीय प्रयोजन हेतु हिन्दी या उस राज्य की क्षेत्रीय भाषा को स्वीकार कर सकेगा। परस्पर सहमति से यह व्यवस्था दो या अधिक राज्य भी स्वीकार कर सकते हैं। इस प्रक्रिया में भाषायी अल्प संख्यको के अधिकारों की पूर्ण रक्षा के भी स्पष्ट प्रावधान है।

2.4 पृष्ठभूमि (Background) –

संविधान में इनहीं व्यवस्थाओं को क्रियान्वित करने हेतु 1955 में पहला राजभाषा आयोग प्रो. बी.जी. खेर की अध्यक्षता में गठित किया गया। 1967 में राजभाषा संशोधन अधिनियम द्वारा त्रिभाषा फॉर्मूला लागू करने का सुझाव आया। इसके तहत सरकारी सेवाओं में पत्राचार के साथ–साथ प्रतियोगी परीक्षाएँ हिन्दी, अंग्रेजी व अन्य प्रादेशिक भाषा में ली जाएगी। हिन्दी का निरन्तर विकास भी इसी प्रक्रिया का हिस्सा होगा। इन स्पष्ट प्रावधानों के होते हुए भी हमारे देश में हिन्दी भाषा के विकास में बाधाएँ निरन्तर बनी हुई है। भाषा के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन एवं दक्षिण के कुछ राज्यों में हिन्दी विरोधी आन्दोलन विचारणीय मुद्दे रहे है। भाषा के आधार पर नये राज्यों के निर्माण की माँग में ही भाषावाद की संकीर्णताएँ निहित है। किसी क्षेत्रीय भाषा का विकास हो इसमें अन्य नागरिकों को कोई आपत्ति नहीं हो सकती किन्तु क्षेत्रीय भाषा के विकास में हिन्दी को बाधक मानना व उसका हिसंक तरीकों से विरोध राष्ट्रीय अस्मिता के लिए ठीक नहीं है। ' हिन्दी साम्राज्यवाद ' का असुरक्षा भाव समाप्त कर अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में विश्वास स्थापित करना देश की प्राथमिकता हो, जिससे 'त्रिभाषा फॉर्मूला' व्यावहारिक रूप धारण कर सकें।

पारिवारिक एवं क्षेत्रीय भाषाएँ कभी भी राष्ट्रीय भाषा का दर्जा नहीं ले सकती व न ही इन्हें देश की राजभाषा से कोई चुनौती महसूस होनी चाहिए। भाषायी विविधताएँ समाज का एक स्वाभाविक लक्षण है, जिसे सहज रूप से स्वीकारना चाहिए। भाषायी आधार पर आन्दोलन कुछ स्वयंभू नेताओं के अस्तित्व अनुरक्षण के व्यायाम है, आम नागरिक को यह समझना और समझाना आवश्यक है। शासन का भी यह दायित्व बनता है कि वे संसाधनों, रोजगार के अवसरों का समान वितरण बिना किसी भाषायी भेदभाव के करें। सर्वत्र

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

कानून का शासन हो, न कि भाषायी बहुसंख्यक की स्वेच्छचारिता का शासन। हमारे राज्य में भी राजस्थानी भाषा को संवैधानिक मान्यता दिलवाने हेतु शान्तिपूर्वक आन्दोलन किए जा रहे है।

2.5 भाषावाद की समस्या के समाधान के उपाय (Measures to Resolve the Problem of Lingualism)–

भाषा के आधार पर उग्र आन्दोलन राष्ट्रीय एकता व अखंडता के लिए एक चुनौती है इनके शान्तिपूर्वक हल निकालने चाहिए, कुछ उपाय ये भी हो सकते हैं –

1. परस्पर समझाईश व प्रेरित करना, बहुसंख्यक हिन्दी भाषा –भाषियों का दायित्व बनता है कि अहिन्दी भाषी राज्यों को समझाईश द्वारा प्रेरित करे कि हिन्दी किसी भी रूप में प्रादेशिक भाषा के लिए चुनौती नहीं बल्कि सहायक है।
2. हिन्दी का प्रचार–प्रसार सुनियोजित तरीके से सभी को विश्वास में लेकर किया जाए।
3. भाषायी आदान–प्रदान हेतु सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक गतिविधियों का विस्तार किया जाए।
4. पर्यटन को बढ़ावा देकर हिन्दी की आवश्यकता को व्यावहारिक बनाया जाए।
5. त्रिभाषा फॉर्मूला व्यवस्थित रूप में केन्द्र व राज्यों के स्तर पर सुचारु रूप से लागू किया जाए।
6. प्रादेशिक भाषाएँ भी हिन्दी के प्रसार के लिए सहायक हो सकती है, उसी दिशा में उनका भी विस्तार किया जाए।
7. राजनीतिक संकीर्णताएँ समाप्त कर, राष्ट्रीय हित में भाषावाद की समस्या का हल ढूँढा जाए।
8. आंग्ल भाषा का प्रशासनिक प्रयोजनार्थ एवं अनुवाद की सीमाओं तक ही उपयोग हो।
9. भाषाएँ सम्प्रेषण का माध्यम हैं, ये परस्पर जोड़ती है, तोड़ती नहीं – यह भाव देशवासियों के मन में जगाना होगा।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- किसी क्षेत्र विशेष के प्रति प्रेम को राष्ट्र प्रेम से ज्यादा तरजीह देना 'क्षेत्रवाद' है।
- क्षेत्रीयता का भाव राष्ट्रीय एकता के लिए बड़ी चुनौती है।
- भौगोलिक भिन्नता एवं प्राकृतिक संसाधनों का असमान वितरण व केन्द्र सरकार की समरूप सोच के अभाव से क्षेत्रीयता के भाव पनपते है।
- बड़े राज्यों में किसी हिस्से का उपेक्षित महसूस करना व पृथक् पहचान की माँग भी क्षेत्रवाद की श्रेणी में आते है।
- भूमिपुत्र की अवधारणा ने क्षेत्रवाद की प्रवृत्ति को जन्म दिया है।
- सांस्कृतिक व भाषायी भिन्नता आधारित उपेक्षा से भी क्षेत्रवाद पनपता है।
- भारत में त्रिभाषा फॉर्मूला अपनाया गया है– राजभाषा हिन्दी, सम्पर्क भाषा अंग्रेजी व एक क्षेत्रीय भाषा जो संविधान की सूची में विद्यमान है।
- क्षेत्रीय भाषा को हिन्दी से श्रेष्ठ मानने की प्रवृत्ति से भाषावाद पनपा है।
- हिन्दी एवं प्रादेशिक भाषाएँ परस्पर सहयोगी बनकर विकास भी करेगी, भाषावाद भी मिटेगा।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. इनमें से कौनसा कथन क्षेत्रवाद का परिचायक है?
   (1) राज्यों के पुनर्गठन की माँग
   (2) नवीन राज्य निर्माण
   (3) भारतीय संघ में स्वायत्तता
   (4) स्वयं के राज्य का बड़े राज्य में विलय
   सही कथन है –
   (अ) 1, 2, 3, 4 (ब) 1, 2, 4
   (स) 1, 2, 3 (द) 2, 3, 4 ( )
2. 'भूमिपुत्र' की अवधारणा का तात्पर्य है –
   (अ) क्षेत्र विशेष में स्वयंभू नेता का उदय
   (ब) भूमि नाम की स्त्री की संताने
   (स) भूमि पर काम करने वाले मछुआरें
   (द) जागीरदारी प्रथा का एक रूप ( )
3. पिछड़े क्षेत्रों के विकास हेतु भारत सरकार द्वारा चलाए जाने वाले कार्यक्रमों की सूची में कौनसा बेमेल है –
   (अ) जनजाति क्षेत्र विकास कार्यक्रम
   (ब) पहाड़ी क्षेत्र विकास कार्यक्रम
   (स) मरु विकास कार्यक्रम
   (द) धर्मस्थल विकास कार्यक्रम ( )
4. त्रिभाषा फॉर्मूले का कौनसा/से युग्म सही है –
   (अ) हिन्दी, अंग्रेजी, कन्नड़
   (ब) अंग्रेजी, पंजाबी, रुसी
   (स) हिन्दी, भोजपुरी, देवनागरी
   (द) हिन्दी, मलयालम, राजस्थानी ( )

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. क्षेत्रवाद पनपने का एक प्रमुख कारण बताइए।
2. भाषावाद का अर्थ क्या है?
3. क्षेत्रवाद के दो दुष्परिणाम लिखिए।
4. भाषा वाद राष्ट्रीय एकता के लिए चुनौती नहीं बनें, इसका एक उपाय सुझाएँ।
5. भारत संघ की राजभाषा का दर्जा किस भाषा को दिया गया है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. भूमिपुत्र की अवधारणा क्या है?
2. क्षेत्रवाद का अर्थ बताइए।
3. त्रिभाषा फॉर्मूला क्या है?
4. भारत सरकार द्वारा जो विशेष विकास कार्यक्रम चलाए जा रहे है, उनमे से किन्हीं चार के नाम लिखें।

निबन्धात्मक प्रश्न –

1. क्षेत्रवाद क्या है?इसके पनपने के कारण व रोकने के उपाय सुझाइए।
2. भारत में क्षेत्रवाद के दुष्परिणामों पर अपनी समीक्षा प्रस्तुत कीजिए।
3. भाषावाद क्या है?इसके उग्र स्वरूप को शान्तिपूर्ण सद्भाविकता में बदलने के उपायों पर प्रकाश डालिए।

बहुचयनात्मक प्रश्नों के उत्तर

1. स 2. अ 3. द 4. अ

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

3. आतंकवाद, राजनीति का अपराधीकरण एवं भ्रष्टाचार
(Terrorism, Criminalization of Politics and Corruption)

आतंकवाद
(Terrorism)

आतंकवाद मूलतः एक विखण्डनकारी प्रवृत्ति है जिसका अन्य विखण्डकारी प्रवृत्तियों के साथ गहरा सम्बन्ध है। आतंकवाद, साम्प्रदायिकता और पृथक्तावाद एक–दूसरे से अभिन्न रूप से जुड़े है। आतंकवाद ने विश्व शान्ति को सर्वाधिक नुकसान पहुँचाया है। भारत आतंकवाद से सर्वाधिक प्रभावित होने वाले देशों में से एक है। आतंकवाद को परिभाषित करना अत्यन्त दुष्कर कार्य है। एक दृष्टिकोण की मान्यता है कि किसी एक के विचार में जो आतंकवादी है वह दूसरे के विचार में स्वतंत्रता सेनानी भी हो सकता है। वर्तमान विश्व में आतंकवाद धार्मिक व जातीय आधार पर ही जिन्दा है।

3.1 आतंकवाद का अर्थ
(Meaning of Terrorism) –

Terror का लेटिन भाषा में अर्थ है – To Make Tremble किसी को भय से कंपकपाने को मजबूर करना। ओ दिमेरस ने लिखा है कि आतंकवाद एक विभ्रम है। यह मनोवैज्ञानिक हमला है, इसका लक्ष्य मनोवैज्ञानिक परिणाम प्राप्त करना होता है। हिंसा की नाटकीय प्रस्तुति और उन्नति व प्रसिद्ध आतंकवाद की मुख्य प्रकृति है। सामान्य अर्थ में किसी भी तरह से भय उत्पन्न करने की विधि को आतंकवाद की संज्ञा दी जा सकती है। जब एक व्यक्ति या समूह अपनी उचित माँगों की पूर्ति के लिए शान्तिपूर्वक व अहिंसात्मक ढंग से सकारात्मक प्रयास करता है तो उसे आन्दोलन कहा जाता है।आन्दोलन लोकतांत्रिक व्यवस्था की अपरिहार्य प्रक्रिया कही जा सकती है। इसके विपरीत व्यक्ति या व्यक्ति समूह जब अपनी अनुचित माँगों की पूर्ति के लिए व्यापक स्तर पर हिंसा व अशांति पर आधारित नकारात्मक प्रयत्न करता है तो उसे आतंकवाद कहा जाता है। आतंकवाद को आमतौर पर धार्मिक, जातीय, क्षेत्रीय, नस्लीय आधार पर समर्थन मिलता है। किन्तु यह अलोकतांत्रिक होने के कारण व्यापक स्तर पर लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में समर्थन प्राप्त करने में असफल रहता है। आतंक के प्रयोग से तात्पर्य है– भय पैदा करना। सभी निरकुंश समाजों की स्थापना– भय पर आधारित थी। आधुनिक युग में अधिनायकवादी शासन का मूल आधार भय ही है।शान्तिकाल में युद्ध जैसी हिंसा के घोषित रूप में आतंक की तलवार सदैव उन लोगों पर मंडराती रहती है जो विद्रोह करने की सोचते है। आतंकवादियों का मुख्य लक्ष्य वर्तमान या विधिसंगत शासन को अपदस्थ कर सत्ता हथियाना होता है। आतंकवाद विश्व की सबसे खतरनाक हिंसक मनोवैज्ञानिक युद्ध प्रणाली है। आतंकवाद एक तरह से संक्रामक बीमारी है। आतंकवाद के वास्तविक भौतिक प्रभाव से कहीं अधिक इसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव है। शीतयुद्ध की समाप्ति के पश्चात् विश्व के लिए आतंकवाद सबसे बड़ा खतरा बन गया है। आतंकवाद उन नवीन संस्कारों में शामिल है जिससे आणविक, जैविक व रासायनिक हथियारों के प्रयोग, व सामूहिक विनाश की आशंका बनी हुई है। व्यवहार में आतंकवाद कई बार गरीब का शक्तिशाली के विरुद्ध हथियार बन जाता है तो कभी धर्म की सत्ता व धर्म की रक्षा का हथियार।

3.2 आतंकवाद का वैश्विक परिदृश्य
(World Perspective of Terrorism) –

9/11 की घटना में अचानक आतंकवाद को पुनः महत्त्वपूर्ण बना दिया। वस्तुतः तालिबानी स्वरूप पिछली शताब्दी के अन्तिम दो दशकों में अफगानिस्तान में सक्रिय था, किन्तु अमेरीका ने उन्हें महिमामंडित किया और योद्धा और जन मुक्ति दाता कहा। उल्लेखनीय है कि यही रवैया पाकिस्तान का कश्मीर के आतंकवादियों के प्रति रहा है। वह उन्हें स्वतंत्रता सेनानी की संज्ञा देकर अपने राजनीतिक मंसूबों को साधना चाहता है। धार्मिक आधार पर सहानुभूति प्रदर्शित कर वह राजनीतिक रोटियाँ सेक रहा है। आतंकवाद प्रतिक्रियावादी व आत्मघाती दोनों प्रभाव रखता है। आज पाकिस्तान जो आतंकवाद का मुख्य पोषक देश है स्वंय आतंकवाद से जूझ रहा है।

एक देश ने अपने विरोधी देश के खिलाफ रणनीति के बतौर आतंकवाद का खूब सहारा लिया है। अमेरीका ने तालिबान रूपी दैत्य को पूर्व सोवियत संघ के विरोध में उत्पन्न किया। किन्तु दो दशक बाद ही वह दैत्य उसके विरुद्ध हो गया। स्वयं अमेरीका ने 9/11 के बाद युद्ध को नया नाम आतंकवाद के खिलाफ कार्रवाई देकर इराक और अफगानिस्तान की सम्प्रभुता पर हमला किया।

अमेरीका और उसके सहयोगियों का मानना है कि किसी भी किस्म के विध्वंसक हथियार रखना और उसके जरिए हिसंक कार्रवाई करना आतंकवाद है। इसी नजरिये से आतंकी

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

संगठनों और उनके पनाह देने वाले राष्ट्रों को चिन्हित किया जा रहा है।

वास्तव में आतंकवाद केवल हिंसा की तकनीक नहीं है। यह सिर्फ जान से मार देने की या आतंकित कर देने की कला नहीं है, अपितु विचारधारा है। इसका शीतयुद्धकालीन अमेरीकी विदेश नीति से गहरा सम्बन्ध है। शीतयुद्ध वस्तुतः रक्तबीज है। इसे जितना मारोगे यह उतना ही विकराल रूप धारण करता जाएगा।

ऊपरी तौर पर शीतयुद्ध समाप्त हो गया परन्तु विचारधारा के तौर पर यह आज भी जिन्दा है। मौजूदा ISIS तालिबान और आतंकवाद का विश्वव्यापी स्वरूप उसका हिस्सा है। इस स्वरूप का अपना तंत्र है और अपनी विचारधारा है। इसकी प्राणवायु बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ है। आतंकवाद अब कोई स्थानीय ढांचागत नहीं रहा है, इसके प्रभाव को सीमा में नहीं बाँधा जा सकता, इसका मौजूदा वैविध्य पूर्ण रूप इसे पूरी तरह विश्वव्यापी ढांचा संरचना बनाता है। आतंकवाद अत्याधुनिक हथियारों और विदेशी धन के सहारे फलफूल रहा है। तालिबान, अलकायदा, लिट्टे, खालिस्तान कमांडो फोर्स ओर्देन, रोबर्ती द आब्यूस्सोन फलांगा आदि दर्जनों आतंकी संगठनों के बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से सम्बन्ध रहे है। यह कम्पनियाँ दो प्रकार की है – नशीले पदार्थों की तस्करी करने वाली व दूसरी हथियारों का निर्माण करने वाली।

आतंकवाद की यह रणनीति रही है कि हिंसा के माध्यम से सुनियोजित ढंग से आम जनता में दहशत पैदा की जाए। सत्ता की प्रतिक्रियाओं में लाभ उठाया जाए और अपनी मांगों को उभारा जाए। बी क्रोजियर में ए थ्योरी ऑफ कॉन्फल्क्टि (1975) में रेखांकित किया है कि आतंक और हिंसा कमजोरों का अस्त्र है। ये लोग संख्या में कम होते हैं और सत्ताहीन होते हैं। ये ऐसे लोग है जो परम्परागत ढंग से सत्ता प्राप्ति करने में असमर्थ होते हैं।

3.3 धर्मान्धता और आतंकवाद (Fanaticism &Terrorism) –

आतंकवाद को धर्म से सम्बद्ध मानने की प्रवृत्ति काफी दिनों से विवाद का विषय रही है। यह गम्भीर प्रश्न है कि आतंकवाद को किसी धर्म विशेष से जोड़ा जाए या नहीं। यह मानना कि धर्म के अनुयायी आतंकवाद को प्रश्रय देते हैं, यह बिल्कुल असत्य व निराधार है। पश्चिमी देशों के आतंकवाद के विश्लेषकों ने माना है कि कुछ देशों में धर्म विशेष का हिंसक उत्परिवर्तन काफी गंभीर विषय है, जो विगत 25–30 वर्षों में एक शक्तिशाली प्रवृत्ति व घटना के रूप में उभरा है। आतंकवादियों में किसी एक गुट विशेष के प्रति समर्पण का भाव नहीं होकर एक समुदाय विशेष के प्रति समर्पण भाव रखना एक नकारात्मक प्रवृत्ति है, जो एक स्वस्थ लोकतांत्रिक समाज के लिए हितकारी नहीं होता है। आत्म बलिदान और असीमित बर्बरता ब्लैकमेल, जबरन धन वसूली और निर्मम नृशंस हत्याएँ करना ऐसे आतंकवाद की विशेषता बन गई है। जम्मू कश्मीर में आतंकवाद पूर्णतया पृथक्तावादी श्रेणी में आता है। पाकिस्तान में वर्ष 2014 में स्कूल में घुसकर मासूम बच्चों पर अन्धाधुन्ध गोलीबारी कर 132 बच्चों की हत्या आतंकवाद का वास्तविक भयानक चेहरा प्रस्तुत करता है। खून से भीगे बस्ते, पानी की बोतलें, जूते, खाने के टिफिन बताते हैं कि आतंकवाद मूलतः मानवता के विरुद्ध अपराध है।

3.4 भारत में आतंकवाद (Terrorism In India)

आतंकवाद कोई नई प्रवृत्ति नहीं है। भारत में पिछली सदी के दो दशकों के पंजाब के आतंकवाद, जम्मू और कश्मीर के आतंकवाद व वर्तमान में विभिन्न भारतीय राज्यों में सक्रिय नक्सलवाद और उत्तर पूर्व के विभिन्न राज्यों के उग्रवाद को आतंकवाद की परिभाषा में सम्मिलित किया जा सकता है। भारत के जम्मू और कश्मीर राज्य में कई स्थानीय आतंकी संगठनों के अतिरिक्त अन्य विदेशी आंतकी संगठन भी सक्रिय है। भारत में वर्ष 2016 तक कुल 38 आतंकवादी संगठनों को अनाधिकृत गतिविधि (निवारक) अधिनियम (यूएपीए) के तहत प्रतिबन्धित किया जा चुका है।

3.5 भारत में आतंकवाद का स्वरूप (Nature of Terrorism In India)

भारत में सक्रिय आतंकवादी संगठनों की प्रकृति एक जैसी नहीं है। यद्यपि सभी आतंकवादी संगठन हिंसा व भय पैदा करने के विभिन्न तरीकों को अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रयोग जरुर करते हैं। भारत में उत्तर–पूर्वी राज्यों, विशेषतया सीमावर्ती राज्यों, जम्मू कश्मीर, असम, पंजाब, आन्ध्रप्रदेश, छतीसगढ़, झारखंड, उड़ीसा, बिहार, बंगाल व महाराष्ट्र आदि

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

में आतंकवादी गुट सक्रिय है। कश्मीर में आतंकवादी गुटों को धार्मिक कारणों से अधिक जनाधार प्राप्त है। उन्हें विदेशी पाकिस्तानी समर्थन भी भरभूर मात्रा में प्राप्त है। धन, हथियार, प्रशिक्षण, दुष्प्रचार व युवाओं में धार्मिक वैचारिक विकार पैदा करने में पाकिस्तान ने अहम् भूमिका निभाई है। मनोवैज्ञानिक रूप से विभिन्न हथकण्डों का प्रयोग करते हुए कश्मीर के युवाओं में धर्मान्धता व कट्टरपन की भावना पैदा कर उन्हें मुख्य राष्ट्रीय धारा से विमुख करने में विदेशी समर्थन का बहुत बड़ा योगदान रहा है। जिसने भारत के भौगोलिक, राजनीतिक एवं सामरिक हितो पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है। यद्यपि पिछली शताब्दी में सक्रिय पंजाब के आतंकवादियों व कश्मीर के आतंकवादियों का केन्द्रीय लक्ष्य पृथक् राष्ट्र की मांग एक जैसा ही है। पंजाब, जम्मू कश्मीर में आतंकवाद पूर्णतया पृथक्तावादी श्रेणी में आता है। सभी आतंकी संगठनों की एक जैसी राजनीतिक सोच संभव भी नहीं है। पंजाब व जम्मू कश्मीर दोनों जगह आतंकवाद ने धार्मिक कट्टरवाद का सहारा लिया है। पंजाब में आतंकवादियों ने हत्या के लिए निर्दोष नागरिकों को अपना निशाना बनाया वहीं कश्मीर में आतंकवादियों ने सेना व अन्य सुरक्षाबलों को नुकसान पहुँचाना अपना लक्ष्य बनाया हुआ है। पंजाब में आतंकवाद के उस चरण में आतंकवादियों ने राज्य मशीनरी को निशाना बनाने की बजाय निर्दोष लोगों की हत्या की। राज्य पुलिस बल उनका दूसरा लक्ष्य था। असम, मणिपुर, त्रिपुरा, नागालैण्ड में आतंकवादी गुटों का मुख्य निशाना समुदाय विशेष के लोग है। कभी–कभी राज्य मशीनरी पर भी हमला बोला जाता है किन्तु आम तौर पर किसी समुदाय विशेष के लोगों पर ही हमले होते रहे हैं। अतः इन राज्यों के आतंकवाद में समूह या जनजातीय ग्रुपों के बीच में हिंसक मुठभेडें या हमले होते रहते हैं। राज्य मशीनरी पर हमला करने का राजनीतिक तौर पर प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है किन्तु प्रच्छन्न पृथक्तावादी गिरोहों से सम्बन्ध जरुर दिखाई देता है। मसलन, पंजाब में खालिस्तानियों और नक्सली गुटों और आन्ध्रप्रदेश में पीपुल्सवार ग्रुप का लिट्टे से रिश्ता था। इसी तरह प्रत्येक प्रान्त में ऐसे आतंकवादी गिरोह भी सक्रिय है जो प्रत्यक्षतः विदेशी इशारे पर आतंकवाद की कार्रवाईयों में सक्रिय रहे है। तात्पर्य यह है कि आतंकवादी गिरोहों का परिप्रेक्ष्य एक–सा नहीं है। भारत में प्रमुख आतंकवादी घटना 12 मार्च 1993 को बंबई में हुई जिसमें बम विस्फोटों में 317 निर्दोष लोगों की मृत्यु हुई। इस विध्वंसकारी घटना में अपराधी और तस्कर गिरोहों, कट्टरपंथियों और विदेशी एजेन्सियों की भूमिका थी। मूलतः यह एक आतंकवादी कार्रवाई थी। साम्प्रदायिकता, पृथक्तावाद और आतंकवाद एक ही सिक्के के भिन्न–भिन्न पहलू है। इन तीनों में अन्तक्रियाएँ चलती रहती है। तात्पर्य यह है कि साम्प्रदायिकता के पृथक्तावादी या आतंकवादी प्रवृत्ति में रूपान्तरण की सम्भावना है उसी तरह से पृथक्तावाद के साम्प्रदायिकता और आतंकवाद में बदल जाने की सम्भावना है। इसी प्रकार आतंकवाद के साम्प्रदायिक एवं पृथक्तावादी रूप लेने की भी सम्भावना है। झारखंड, बिहार, उड़ीसा, मध्यप्रदेश व छतीसगढ़ के नक्सली आतंकी गिरोहों की आतंकवादी कार्यवाहियों का स्वरूप पृथक्तावादी गिरोहों की कार्यवाहियों से भिन्न होता है। नक्सलवादी गिरोहों का पृथक्तावाद केन्द्रीय लक्ष्य नहीं है।

3.6 भारत के आतंकवाद व नक्सलवाद प्रभावित राज्य

(Terrorism And Naxalism Affected States of India)

1. जम्मू कश्मीर
2. पंजाब
3. उत्तर और पश्चिमोत्तर भारत
4. नई दिल्ली
5. उत्तर भारत
6. पूर्वोत्तर राज्य – आसाम, मेघालय, त्रिपुरा, अरुणाचल प्रदेश, मिजोरम, मणिपुर, नागालैण्ड
7. दक्षिण भारत – आन्ध्रप्रदेश, तमिलनाडू, कर्नाटक

3.7 आतंकवादियों की सामाजिक पृष्ठभूमि (Social Background of Terrorists)–

भारत में आतंकवादी कार्यवाहियों में शामिल व्यक्ति की सामाजिक पृष्ठभूमि अलग–अलग रही है।

1. मध्य वर्ग और उच्च मध्य वर्ग के युवा।
2. पंजाब, कश्मीर बंगाल के नक्सली, उत्तर–पूर्वी राज्यों के आतंकी मौटे तौर पर इन्हीं वर्गों से आते है।
3. धर्मान्ध गरीब तबके के विभ्रमित युवा।

3.8 आतंकवादी कार्यवाही के लक्ष्य (Objectives of Terrorist Activities) -

1. सुचिन्तित ढंग से कुछ प्रमुख केन्द्रो या संस्थानो पर हमला करना
2. आतंक और हिंसा की कार्यवाहियों की बढ़ चढ़कर जिम्मेवारी लेना।
3. सत्ता से लाभ प्राप्त करना।

पहला लक्ष्य कार्यनीतिक है। दूसरा रणनीतिक है और तीसरा मूल अभित्सित लक्ष्य है। कार्यनीतिक स्तर पर लोगों को डराना, धमकाना, आतंकित करना और हमला करना होता है। रणनीतिक चरण के अन्तर्गत अतिनाटकीय ढंग से आतंक एवं हिंसा की कार्यवाही को सम्पन्न करना। परिणामतः ज्यादा से ज्यादा माध्यमों का ध्यान खींचने में सफलता प्राप्त करना उनका लक्ष्य होता है। आतंकवादियों की कार्यनीति, रणनीति और लक्ष्य ये तीनों एक–दूसरे से अन्तग्रंथित है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

3.9 आतंकवाद के मनोवैज्ञानिक तत्व –(Psychological Elements Of Terrorism)

आतंकवाद, अपरिहार्य रूप से एक ऐसी रणनीति है जो मनोवैज्ञानिक प्रभाव पर आधारित होती है। इस रणनीति के तहत आतंकवादी दर्शकों को प्रभावित करते है। यहाँ दर्शक वे लोग है जो आतंकवादी कार्यवाही से भयग्रस्त हो जाते हैं।

1. कर्म द्वारा प्रचार (Propaganda by Deed)
2. अभित्रास (डराना–धमकाना)
3. उकसाना
4. अस्त व्यवस्तता व अराजकता उथल–पुथल
5. संघर्ष

3.10 आतंकवाद और मीडिया कवरेज (Terrorism & Media Coverage)–

आतंकवाद और मीडिया कवरेज – तकनीकी के प्रयोग के कारण आतंक और हिंसा की कार्यवाही और भी आकर्षक दिखती है। भारत में पंजाब और कश्मीर में आतंकवाद की प्रस्तुतियों में स्टीरियो टाईप छवि का प्रभुत्व रहा है। परिणामतः आतंकवादियों के प्रति तकनीकी माध्यमों के द्वारा घृणा के बजाय सहिष्णु भाव पैदा हुआ है। इस तरह के मीडिया के कवरेज का समाज पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। पहला आतंक हिंसा की गतिविधियों की रिर्पोटिंग को मिलने वाले महत्त्व अन्य को वैसी ही कार्यवाही के लिए प्रेरित करती है। दूसरा ज्यादा या कम माध्यम कवरेज से यह सम्भव है कि राज्य उत्पीड़न की कार्यवाहियाँ बढ़े। यही स्थिति आतंकवाद पैदा करना चाहती है। इससे उन्हें अपने लक्ष्य के विस्तार में मदद मिलती है। तीसरा मीडिया कवरेज के द्वारा आम जनता के अन्दर भावशून्य स्थिति पैदा हो सकती है। चौथा आतंकवादियों द्वारा अपहृत या बंदी व्यक्ति के लिए मीडिया कवरेज से जान का खतरा पैदा हो सकता है।

आतंकवादी कुछ विशेष शैली प्रतीकों और बिम्बों का प्रयोग करते हैं। पंजाब के आतंकवादी दौर में मोटरसाईकिल , मारुति वैन और ए.के 47 आतंकवादियों का प्रतीक मानी जाती थी। डर का माहौल पैदा करना उनका पहला मकसद होता है। इससे प्रशासनिक मशीनरी पंगु बन जाती है। सेना व सुरक्षा बल लगातार काम करते हैं, जिससे उनकी कार्यक्षमता कम हो जाती है। राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक व आर्थिक कारणों से समाज की आतंकवाद के प्रति सहिष्णुता पैदा होना अत्यन्त घातक हो जाती है। आम जनता में भाव शून्यता से सहन करने की क्षमता बढ़ जाती है। वह आतंकी हिंसा को जीवन की सच्चाई के रूप में देखने लगती है।

सामान्य तौर पर आतंकवादी गिरोहों की कार्यवाही के दो मकसद होते हैं।

1. हिंसा के माध्यम से जनमाध्यमों का ध्यान आकर्षित करना।
2. भय और आतंक का माहौल पैदा करना।

इन दोनो तरीकों के जरिए आतंकवादी गिरोह अपनी मांगों को लोकप्रिय बनाने और राष्ट्रीय एजेन्डे पर लाने में सफल हो जाते हैं। अपनी मांगो को पूरा कराने के लिए दबाव डालते है। अत्यधिक मीडिया कवरेज से आतंकवाद फलता–फूलता है। आतंकवाद और जन माध्यमों का जटिल सम्बन्ध है और संश्लिष्ट प्रक्रिया से यह सम्बन्ध विकसित होता है। अब यह सामान्य धारणा बन चुकी है कि किसी आतंकवादी घटना को मीडिया द्वारा अधिक कवरेज देने से इसका दुष्प्रचार होता है जो राज्य के हितों का विरोधी है।

आतंकवादी घटना के अत्यधिक मीडिया कवरेज के दुष्प्रभाव

1. यह विभिन्न आतंकवादी गुटों के निर्माण के लिए उत्प्रेरित करता है।
2. धार्मिक व साम्प्रदायिक कारणों से आतंकवादियों को सस्ती लोकप्रियता हासिल होने की सम्भावना निहित है।
3. विभिन्न गुटों में प्रतिस्पर्धा उत्पन्न होने पर बढ़त व पहलकदमी हासिल करने की होड़ उत्पन्न करना।
4. आतंकवादी गिरोहों द्वारा मीडिया कवरेज करने वाले चैनलस् पर नियंत्रण स्थापित करने की आशंका बनना।
5. प्रशासनिक मशीनरी की कार्य कुशलता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ना।

यह माना जाता है कि आतंकवाद एक तरह से संक्रामक बीमारी है। जाने– अनजाने माध्यमों से आतंक एवं हिंसा को प्रोत्साहित किया जाता है। घटनाओं की एक जैसी पुनरावृत्ति और बार–बार कवरेज पुन हिंसा और आतंक को जन्म देता है। आतंकवादी गिरोहों का सहज रूप से अपनी राजनीतिक मांगों के लिए मंच मिल जाता है। परिणामतः इससे आतंकवाद बढ़ता है।

आतंकवाद की सफलता – आतंकवादियों का मुख्य लक्ष्य वर्तमान या विधिसंगत शासन को अपदस्थ कर सत्ता हथियाना होता है। यह रणनीति मुख्यतः विद्रोही व बलवाई आतंकवादियों द्वारा अपनाई जाती है। यदि हमें आतंकवादियों के सफलता के परिणामों को देखें तो पाते है कि केवल उपनिवेशवादी विरोधी गुटों को पूरी तरह से सफलता प्राप्त हो सकी उनमें मुख्य है - EOKA the Ethmiki Organosis Krprion

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Agoniston(National Organization of Cypriot Fights) माऊ–माऊ केन्या में (ब्रिटिश उपनिवेशवाद के विरुद्ध),

एफ एल एन – अलजीरिया (फ्रांस के उपनिवेशवाद के विरुद्ध)

20वीं व 21वीं शताब्दी के अधिकांश आतंकवादी गुट अपने मंसूबों को पूरा करने में पूरी तरह से असफल रहे है। भारत में पंजाब के आतंकी पूरी तरह से असफल हुए। LTTE जैसा दुर्दान्त आतंकवादी संगठन श्रीलंका में अंततः असफल ही हुआ। आइएसआइएस (ISIS) वोकोहरम, तालिबान व अन्य मुस्लिम आतंकवादी संगठन अभी तक राजनीतिक रुस से असफल ही रहे है। फ्रांस, और इटली के आतंकवादी गुट (एक्शन डाइरेक्टो, लाल सेना गुट) रेड ब्रिगेड अंततः असफल ही रहे हैं।

निष्कर्ष –

पूर्व सोवियत संघ के विद्वान् **यूरी त्रिफोनाव** ने लिखा है कि " आतंकवाद का विश्व स्तर पर पतन हुआ है रंगमंच खून से तर–बतर है और चरित्र मृत्यु है।"

डेविड फॉमकिन ने लिखा है कि – " हिंसा आतंकवाद का प्रारम्भ है, इसका परिणाम है और इसका अन्त है।"

ब्रेनाजिन किंस ने लिखा है कि – " आतंकवादी चाहते हैं कि बहुत सारे लोग देखे और सारे लोग सुने, न कि बहुत सारे लोग मरे।" आज भी आतंकवाद विश्व शान्ति और सुरक्षा के लिए सबसे गम्भीर चुनौती बनी हुई है। विश्व के समस्त देश जब तक एकजुट होकर जब तक इस दैत्य का मुकाबला नहीं करते तब तक यह समस्या समाप्त नहीं होगी। भारत में भी आतंकवाद आधे से अधिक राज्यों को प्रभावित कर रहा है। शासन को आने वाले समय में आतंकवाद से निपटने के लिए कड़े कदम उठाने होंगे।

राजनीति का अपराधीकरण और भ्रष्टाचार (Criminalisation of Politics & Corruption)

भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले ब्रिटिश शासन में आदमी बदतर जीवन जी रहा था। स्वतंत्र भारत में प्रत्येक नागरिक की यह अपेक्षा थी कि अब उसके जीवन में खुशहाली आयेगी। मगर गरीब की स्थिति अब भी बदतर बनी हुई है। देश की प्रगति का पूरा लाभ अभी तक उसे प्राप्त नहीं हो सका है। बहुसंख्य गरीब तबके को अभी भी विकास का अपेक्षित लाभ प्राप्त नहीं हुआ है। गरीबी और अमीरी के मध्य की खाई और अधिक गहरा गई है। स्वतंत्रता के बाद में अमीर वर्ग ही सर्वाधिक लाभान्वित हुआ है। भारतीय राजनीति की जो दशा है वह देश की प्रगति के लिए चिंतनीय है। भारतीय राजनीति का अपराधीकरण एक ऐसी परिघटना है जिसने भारतीय लोकतंत्र को दिशा विहीन कर दिया है। चुनावों में बाहुबल और धनबल के बुरे प्रभाव ने सम्पूर्ण लोकतांत्रिक व्यवस्था को क्षत–विक्षत कर दिया है। इस प्रवृत्ति से चुनावी राजनीति का अपराधीकरण हो गया है। राजनीति का अपराधीकरण भारतीय लोकतंत्र के लिए सबसे गम्भीर चुनौती बनी हुई है। हालांकि विगत वर्षों में चुनाव में भ्रष्टाचार को कम करने के लिए चुनाव प्रक्रिया में अभूतपूर्व सुधार किये गये हैं। ई.वी.एम मशीनों का प्रयोग, संवेदनशील बूथों की वीडियोग्राफी, निष्पक्ष चुनाव पर्यवेक्षकों की नियुक्ति, चुनाव आचार–संहिता को लागू करना आदि कुछ सकारात्मक उपाय भी किए गए है। इन सुधारों के बावजूद राजनीति में अपराधी तत्वों की सक्रिय भूमिका व भागीदारी चिन्ता का विषय है।

3.11 राजनीति के अपराधीकरण का अर्थ (Meaning of Criminalisation of Politics) –

राजनीतिक अपराधीकरण वह प्रवृत्ति है जिसके अन्तर्गत अपराधिक पृष्ठभूमि के लोग प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से राजनीतिक प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। राजनीति में प्रवेश करने, सत्ता को प्राप्त करने व सत्ता में बने रहने के लिए राजनीतिज्ञों द्वारा समय–समय पर अपराधियों की मदद लेना राजनीतिक अपराधीकरण कहलाता है। येन–केन प्रकारेण सत्ता के गलियारे तक पहुँचने की महत्त्वाकांक्षा ही अनैतिक, अनुचित व अपराध प्रदान साधनों के प्रयोग के लिए प्रेरित करती है। भारत में राजनीति को एक फायदेमन्द व्यवसाय के रूप में मान लेने की प्रवृत्ति ही राजनीतिक अपराधीकरण को जन्म देती है। दलीय राजनीति में अपराधीकरण की और अधिक सम्भावना रहती है क्योंकि इसमें सत्ता में आने का रास्ता चुनाव के माध्यम से ही खुलता है। मत प्राप्त करने के लिए जब राजनीतिज्ञ व राजनीतिक दल मतदाताओं को नीतियों और कार्यक्रमों से प्रभावित न करके धन, बल, भय व आतंक का सहारा लेते हैं तब राजनीति का अपराधीकरण हो जाता है। चुनावी राजनीति के कारण ही अपराधियों और राजनीतिज्ञों में आपस में सांठ–गांठ पैदा होती है। यह दोनों अपने–अपने निहित स्वार्थों से प्रेरित होकर एक–दूसरे से लाभ उठाने के मंसूबों से काम करते हैं। जहाँ चुनावों में जिताने के लिए अपराधिक तत्व राजनीतिज्ञों की मदद करते हैं वहीं सत्ता में आने के बाद राजनेता अपराधियों को राजनीतिक शरण देकर उनकी मदद करते हैं।

3.12 राजनीति के अपराधीकरण के कारण (Causes of Criminalisation of Politics) –

1. राष्ट्रीय चरित्र का पतन
2. गरीबी, अशिक्षा और बेरोजगारी
3. राजनेताओं व राजनीतिक दलों द्वारा साधनों की पवित्रता में विश्वास न करना

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

4. पुलिस, राजनीतिज्ञों, नौकरशाहों व अपराधियों में परस्पर अनैतिक सांठ–गांठ
5. चुनावी राजनीति पर बाह्य तत्वों का प्रभाव
6. कानूनों को प्रभावशाली रूप से लागू न करने की व्यवस्था
7. न्यायिक प्रणाली की मूलभूत खामियाँ
8. दलीय राजनीति व सत्ता प्राप्ति की अत्यधिक राजनीतिक लालसा
9. निर्वाचन प्रणाली की खामियाँ
10. शासन की क्षमता और गुणवता में भारी गिरावट
11. अपराधिक तत्वों का समाज में दबदबा व जनता में स्वीकार्यता
12. धन, बल व राजनीति का मिश्रण

3.13 भारतीय राजनीति का वर्तमान परिदृश्य (Present Overview of Indian Politics) –

16वीं लोकसभा के 34 प्रतिशत सदस्य अपराधिक पृष्ठभूमि वाले है। जिनके विरुद्ध आपराधिक मामले विचारधीन है। हमारे जन प्रतिनिधियों में आपराधिक पृष्ठभूमि के लोगों की निरन्तर बढ़ती संख्या लोकतंत्र के लिए अच्छा संकेत नहीं माना जा सकता।

भारतीय राजनीति में निरन्तर बढ़ते हुए अपराधियों की संख्या इसके अपराधीकरण का स्तर प्रदर्शित करती है। सभी राजनीतिक दलों द्वारा अपने उम्मीदवारों का चयन अलोकतांत्रिक व निरकुंश ढंग से किया जाता है। सबसे बड़ा कारण है सभी राजनीति दल केवल इस बात से चिंतित रहते हैं कि उनके उम्मीदवारों की जीत सुनिश्चित हो। सभी दल ईमानदार छवि वाले लोगों की तुलना में धनबल और बाहुबल वाले जिताऊ उम्मीदवारों को ही टिकट देते है।

राजनीति के अपराधीकरण के दो भिन्न अर्थ में देखा जा सकता है। संकीर्ण अर्थ में – अपराधियों का विधानसभा और भारतीय संसद में प्रत्यक्ष प्रवेश व हस्तक्षेप से है। व्यापक अर्थ में – अपराधियों पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से चुनावी राजनीति और शासन को प्रभावित करने से सम्बन्धित है। इसमें धन व बाहुबल से किसी राजनीतिक दल की मदद करना, असामाजिक तत्वों के माध्यम से बुथ केपचरिंग व चुनावों में फर्जी मतदान करना। विपक्षी उम्मीदवार के मतदाताओं का धमकाना, हत्या कर देना आदि गतिविधियाँ सम्मिलित है। पिछले दो तीन चुनावों में अपराधिक पृष्ठभूमि वाले लोगों का अधिकांश राजनीतिक दलों ने भरपूर उपयोग किया है। पार्टी के लिए फन्ड जुटाने से लेकर बल व पैसे के जोर पर मतदाताओं के रुख बदलने में अपराधियों की भूमिका में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। चुनावों का प्रबन्धन, चुनाव प्रचार में भीड़ जुटाना, बैठकों और सम्मेलनों में पैसे से या डराकर भीड़ इकट्ठी करना, नियोजित ढंग से अपराधिक पृष्ठभूमि के कार्यकर्ताओं की फौज बनाना एक सामान्य सी बात हो गई है। स्थानीय स्तर से लेकर राष्ट्रीय स्तर तक यही गणित काम करता है। पूर्व में अपराधी सक्रिय राजनीति से बाहर रहकर अपने पंसदीदा दल की मदद करते हैं। अब इस व्यवहार में बदलाव आ गया है। अब वे न केवल उम्मीद्वारी हासिल करके चुनाव जीत रहे है बल्कि मंत्री बनकर इस देश के नीति निर्धारक बन गए है। भारतीय राजनीति में 'दागी मंत्री' एक मशहूर संज्ञा बन चुकी है।

देश के प्रत्येक कोने में चुनावों का अपराधिक गतिविधियों से सन्निकट सम्बन्ध रहा है। किसी विशेष उम्मीदवार को मत डलवाने से लेकर मतदाताओं को डराना, धमकाना, उन्हें मतदान केन्द्र तक पहुँचाने से रोकना (समाज के कमजोर वर्गीय तबके के दलितो, महिलाओं और आदिवासी जातियों व पिछड़े लोगों को) विगत 20 साल में एक भी चुनाव बिना हिंसक गतिविधियों व धन–बल के प्रयोग के बिना सम्पन्न नहीं हुआ है, कई बार तो प्रतिद्वन्दी उम्मीदवार की हत्या कर दी गई ताकि चुनाव रद्द कर दिए जावें।

इन अराजकतापूर्ण स्थिति व हिंसक गतिविधियों का कारण ही राजनीतिज्ञों और अपराधियों के मध्य स्थापित सांठगांठ है। कई कट्टर अपराधी जेल में बैठे–बैठे चुनाव जीतकर संसद के गलियारे तक पहुँच जाते हैं। ऐसे पृष्ठभूमि वाले तत्वों के विरुद्ध सभी प्रकार के मामले विचाराधीन है। जिसमें हत्या, डकैती, अपहरण, जबरन वसूली से लेकर बलात्कार जैसे जघन्य अपराध शामिल है।

3.14 राजनीति के अपराधीकरण को रोकने के उपाय (Steps to Control Criminalisation of Politics)

1. राजनीतिक दलों मे अन्दरुनी लोकतंत्र व जवाबदेही का विकास।
2. संविधान द्वारा राजनीतिक दलों की कार्यप्रणाली व कार्य व्यवहार को नियंत्रित करने हेतु कानूनी व्यवस्था का प्रावधान।
3. जो अपराधी राजनीतिक सक्रिय है उनके विरुद्ध चल रहे मुकदमों के शीघ्र निपटाने हेतु 'फास्ट ट्रेक' न्यायालयों की विशेष व्यवस्था।
4. त्वरित न्यायिक निर्णयों द्वारा अपराधी तत्वों को चुनाव लड़ने से प्रतिबंधित करना।
5. कानूनों में वांछित संशोधन व परिवर्तन कर

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अपराधिक पृष्ठभूमि वाले तत्वों के चुनाव लड़ने पर प्रतिबन्ध लगाना।

6. निर्वाचन आयोग का निष्पक्ष व पारदर्शी गठन।
7. जिनके खिलाफ दो या दो से अधिक आपराधिक मामले दर्ज हैं उनके चुनाव लड़ने पर प्रतिबन्ध लगाना।
8. उन राजनीतिक दलों पर जुर्माना एवं दण्ड लगाने का प्रावधान हो जो अपराधियों को टिकट देते है।
9. NOTA (None Of The Above) नोटा व अन्य पुख्ता उपायों की व्यवस्था हो जिससे अपराधिक पृष्ठभूमि का व्यक्ति चुनाव न जीत सकें।
10. भविष्य में प्रभावी ऑनलाइन निर्वाचन की व्यवस्था प्रारम्भ करना।

एन.एन वोहरा समिति की रिपोर्ट का सार – भारतीय राजनीति के अपराधीकरण की गम्भीरता की जांच पड़ताल व अध्ययन हेतु शासन द्वारा एन.एन वोहरा की अध्यक्षता में एक समिति गठित की थी। समिति ने अपनी रिपोर्ट में कहा है कि भारत में माफिया नेटवर्क एक समानान्तर सरकार चला रहा है। शासकीय मशीनरी या राज्यतंत्र हाशिये पर कर दिया गया है। भारतीय मतदाता की उदासीनता, अगम्भीरता व भावशून्यता ने इस प्रवृत्ति में अभिवृद्धि की है। माफिया गिरोहों को स्थानीय नेताओं से संरक्षण प्राप्त होने से उन्होंने गैर कानूनी रूप से लाभ प्राप्त करना प्रारम्भ कर दिया। कालान्तर में माफिया राजनेताओं का द्विगठबंधन, त्रिगठबन्धन में बदल गया है। पुलिस अपराधी और राजनेताओं का गठजोड़ भारतीय लोकतंत्र को दीमक की तरह चाट रहा है।

सार्वजनिक जीवन से भ्रष्ट्राचार को मिटाकर राजनीतिक व्यवस्था को अपराधीकरण से बचाना, भारतीय चुनावी राजनीति की प्रथम प्राथमिकता होनी चाहिए। न्यायपालिका, पुलिस, निर्वाचन आयोग व नौकरशाही की निष्पक्षता एवं जनता की चुनावी प्रक्रिया में ईमानदार व सक्रिय भागीदारी से ही राजनीति मे अपराधीकरण कम हो सकता है।

भ्रष्टाचार (Corruption)

भ्रष्टाचार का शाब्दिक अर्थ है– भ्रष्ट आचरण, जो कि दो शब्दों से मिलकर बना है भ्रष्ट आचरण इसका अर्थ है कि ऐसा आचरण जो किसी भी दृष्टि से अनैतिक और अनुचित हो। जब कोई व्यक्ति न्याय व्यवस्था के मान्य नियमों के विरुद्ध जाकर अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए गलत आचरण करने लगता है तो वह व्यक्ति भ्रष्टाचारी कहलाता है।

3.15 भ्रष्टाचार क्या है ? (What is Corruption)

किसी भी देश की अर्थव्यवस्था में भ्रष्टाचार दीमक की तरह होता है जो उसे खोखला कर देता है। भ्रष्टाचार का अर्थ है कोई व्यक्ति अथवा संगठन अपने निर्धारित कानूनी दायरे से परे जाकर अनुचित ढंग से किसी व्यक्ति अथवा संगठन को लाभ पहुँचाये तथा बदले में धन अथवा सुविधाएँ प्राप्त कर सार्वजनिक हितों को नुकसान पहुँचाये। भ्रष्टाचार मुख्य रूप से चुनावों में व्यापारियों द्वारा दिए जाने वाले चन्दे से आरम्भ होता है। प्रत्येक राजनीतिक दल को चुनाव लड़ने के लिए अपने व प्रत्याशी के प्रचार–प्रसार हेतु धन की आवश्यकता होती है। राजनीतिक दलों को अपने इस कार्य के लिए जो धन प्राप्त होता है वह बड़े औद्योगिक घरानों व व्यापारियों से मिलता है। इस प्रक्रिया के कारण चुनावों के पश्चात् सत्ता में आने वाले दलों से व्यापारिक घराने और औद्योगिक संस्थान अनुचित लाभ उठाने का प्रयास करते हैं और यही से आरम्भ होती है भ्रष्टाचार की व्यवस्था। भ्रष्टाचार के अधिकांश मामले खरीद, अनुदान, निर्माण, लाईसेन्स परमिट आवंटन, ऋण, नियुक्ति, स्थानान्तरण आदि क्षेत्रों से सम्बन्धित होते हैं।

3.16 भ्रष्टाचार के परिणाम (Consequences of Corruption) –

भ्रष्टाचार के दुष्परिणामों पर निगाह डाली जाए तो यह अत्यन्त भयावह और डरावने लगते हैं। इस व्यवस्था से उपजने वाले कुछ परिणाम इस प्रकार है –

1. सार्वजनिक निर्माण कार्यों का स्तर घटिया होता है तथा अनेक बार ये कार्य केवल कागजों पर ही होकर रह जाते हैं।
2. योग्य एवं निष्ठावान व्यक्तियों को समुचित अवसर नहीं मिल पाते हैं।
3. गरीब व्यक्तियों के जीवन जीने के प्राकृतिक अधिकारों पर प्रतिकूल असर पड़ता है।
4. समाज में आर्थिक विषमता पनपती है इससे गरीबी–अमीरी की खाई अधिक चौड़ी होती है।
5. काले धन का अम्बार लगता है इस कारण देश की अर्थव्यवस्था पंगु बन जाती है।
6. बेरोजगारी को बढ़ावा मिलता है।
7. आम आदमी का सरकारी तंत्र पर विश्वास घटता है इससे जनहितों के मुद्दों पर लोगों में असंतोष पनपता है।
8. उच्च स्तरों पर पनपने वाला भ्रष्टाचार निचले स्तर के कर्मचारियों को निकम्मा और कामचोर बना देता है।

3.17 भ्रष्टाचार रोकने के उपाय (Steps to Control Corruption) –

भ्रष्टाचार को रोकने के लिए अनेक कानून बने हुए हैं। इसके अन्तर्गत भ्रष्टाचार निरोधक कानून सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। इस कानून के प्रभावी क्रियान्वयन का दायित्व भ्रष्टाचार निरोधक ब्यूरो को सौंपा गया है। ब्यूरो के अधिकारी किसी भी कर्मचारी अथवा अधिकारी के विरुद्ध शिकायत प्राप्त होते ही

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

त्वरित कार्यवाही कर रंगे हाथों गिरफ्तार करते हैं तथा उनके विरुद्ध कानूनी कार्यवाही कर सजा दिलाते है। भ्रष्टाचार पर प्रभावी अंकुश लगाने के लिए सतर्कता आयुक्त प्रणाली भी लागू की है। इस प्रणाली के अन्तर्गत प्रत्येक विभाग में एक अधिकारी को सर्तकता अधिकारी बनाया गया है। यह अधिकारी भ्रष्टाचार से सम्बन्धित मामलों की जांच कर उनके विरुद्ध कार्रवाई करता है। इस संदर्भ में भ्रष्टाचार रोकने के लिए निम्नांकित उपाय सुझाये जा सकते है–

1. नागरिकों को सरकारी निर्णयों–प्रक्रियाओं एवं गतिविधियों को जानने का पूर्ण अधिकारी होना चाहिए।
2. दोषी पाये जाने वाले व्यक्ति को त्वरित न्याय प्रक्रिया द्वारा कठोर दण्ड दिये जाने की आवश्यकता है।
3. सरकारी निर्णयों में कम से कम गोपनीयता होनी चाहिए। अधिकांश मामले पारदर्शी रहे।
4. भ्रष्ट लोक सेवकों की गलत तरीकों से अर्जित की गई सम्पत्ति कानूनी प्रक्रिया के अन्तर्गत जब्त कर लेनी चाहिए।
5. उच्च स्तर पर लिए जाने वाले निर्णय त्वरित गति से नीचे तक पहुँचने चाहिए।
6. सार्वजनिक महत्त्व के पदों पर संदिग्ध आचरण वाले लोक सेवकों को पदस्थापित नहीं किया जाना चाहिए।
7. बेनामी सौदा निषेध अधिनियम, 1988 को तत्काल प्रभाव से लागू किए जाने चाहिए।
8. राजनीतिक दलों को मिलने वाले चन्दे की पूरी तरह जांच पड़ताल की जानी चाहिए।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- भ्रष्टाचार देश की अर्थव्यवस्था चौपट कर देता है।
- भ्रष्टाचार का मूल स्त्रोत औद्योगिक घरानों और व्यापारियों और औद्योगिक संस्थानों द्वारा राजनीतिक दलों को दिया जाने वाला चन्दा है।
- सरकारी विभागों में स्वविवेक के निर्णय और निर्णयों की गोपनीयता के कारण भ्रष्टाचार पनपने की आंशका रहती है।
- धार्मिक दुराग्रह और सांस्कृतिक वर्चस्व की आड़ में आतंकवाद को प्रोत्साहन मिलता है।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. भ्रष्टाचार का आरम्भिक केन्द्र औद्योगिक एवं व्यापारिक घरानों द्वारा दिया जाने वाला चन्दा माना जाता है, ये चंदा देते है –
(अ) धार्मिक संस्थानों को (ब) राजनीतिक दलों को
(स) मजदूर संघों को (द) कर्मचारी संगठनों को ( )
2. आतंकवाद के सम्बन्ध में निम्नलिखित में से कौनसा सही नहीं है –
(अ) यह एक शान्ति प्रिय आन्दोलन है।
(ब) यह अहिंसा पर आधारित है।
(स) यह एक सकारात्मक अवधारणा है।
(द) यह एक विखंडनकारी प्रवृत्ति है। ( )
3. वर्तमान समय में विश्व शान्ति को किससे सर्वाधिक खतरा है –
(अ) गाँधीवाद (ब) मार्क्सवाद
(स) फेबियनवाद (द) आतंकवाद ( )
4. इस्लामी आतंकवाद का निम्नलिखित में कौनसा उद्देश्य नहीं है –
(अ) विश्व में मुस्लिम राष्ट्र की स्थापना करना।
(ब) पश्चिमी गैर मुस्लिम शक्तियों का हिंसक गतिविधियों से प्रतिरोध करना
(स) विश्व में शान्ति स्थापित करना।
(द) विश्व में इस्लामी कानूनों और सिद्धान्तों को लागू करना। ( )
5. निम्नलिखित में से कौनसा देश आतंकवाद को प्रश्रय देता है –
(अ) फिलिपीन्स (ब) इण्डोनेशिया
(स) पाकिस्तान (द) कम्बोडिया ( )
6. LTTE लिट्टे किस देश में सक्रिय था –
(अ) भारत (ब) मलाया
(स) श्रीलंका (द) चीन ( )
7. निम्नलिखित में से कौनसा राज्य आतंकवाद से सर्वाधिक प्रभावित है –
(अ) अरुणाचल प्रदेश (ब) जम्मू एवं कश्मीर
(स) सिक्किम (द) गोवा ( )

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. आतंकवाद मूलतः कैसी प्रवृत्ति है?
2. आतंकवाद के दो कारण बताइए।
3. आतंकवाद का अन्य किन प्रवृत्तियों से निकट सम्बन्ध है?
4. आतंकवाद को किस आधार पर समर्थन प्राप्त होता है?
5. भारत के किस राज्य में सर्वाधिक आतंकी संगठन सक्रिय है?
6. किस विद्वान् ने कहा है कि " हिंसा आतंकवाद का प्रारम्भ है, इसका परिणाम है और इसका अन्त है? "
7. भारत के आतंकवाद प्रभावित किनहीं पाँच राज्यों के नाम बताइए।
8. राजनीतिक अपराधीकरण के दो कारण बताओ।
9. भ्रष्टाचार रोकने के लिए कौनसा कानून है?

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

10. भ्रष्टाचार का मूल स्त्रोत क्या है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. आतंक के मनोवैज्ञानिक तत्वों के बारे में लिखिए।
2. आतंकवादी कार्यवाही के प्रमुख लक्ष्य क्या है?
3. आतंकवादी घटना के अत्यधिक मीडिया कवरेज के क्या दुष्परिणाम हो सकते हैं? बताइए।
5. भारत में आतंकवाद के स्वरूप पर टिप्पणी कीजिए।
6. इस्लामी आतंकवाद से आप क्या समझते हैं?
7. भ्रष्टाचार क्या है?
8. राजनीतिक अपराधीकरण का अर्थ बतलाइए।
9. राजनीतिक अपराधीकरण को समाप्त करने के लिए क्या–क्या कदम उठाये जा सकते हैं?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. आतंकवाद की समस्या पर लेख लिखिए।
2. भारतीय राजनीति अपराधीकरण से किस प्रकार प्रभावित होती है ?स्पष्ट कीजिए।
3. '' भ्रष्टाचार दीमक की तरह है जो किसी राष्ट्र की जड़े खोखली करता है। '' इस कथन के परिप्रेक्ष्य व रोकने के उपाय सुझाइए।
4. भारत में राजनीतिक अपराधीकरण के वर्तमान परिदृश्य बताते हुए उसके कारण एवं निवारण के उपायों की समीक्षा कीजिए।

बहुचयनात्मक प्रश्नों के उत्तर

1. ब	2. ब	3. द	4. स
5. स	6. स	7. ब	8. ब

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

4. गठबंधन की राजनीति
(Politics of Coalition)

कई बार स्थिति यह पैदा हो जाती है कि प्रतिनिधि सदन में किसी दल को स्पष्ट बहुमत न मिले। बिना बहुमत के सरकार चलना असम्भव है। अतः कुछ दल मिल कर अपना एक गठबंधन बना लेते हैं आपसी विचार विमर्श द्वारा साझा कार्यक्रम तय कर लेते हैं क्योंकि अलग अलग दलों के सिद्धान्त एवं विचार अलग अलग होते हैं। गठबंधन में शामिल दल सबकी विचारधारा में स्वीकार्य ऐसे कार्यक्रम तय कर लेते हैं जिस पर गठबंधन में शामिल दलों का विरोध न हो। विरोध में भी कुछ दल मिल कर एक गठबंधन का निर्माण कर लेते है। कई दलों द्वारा न्यूनतम साझा कार्यक्रम के आधार पर जो गठबंधन का निर्माण किया जाता है उसके आधार पर मिलकर राजनीतिक गतिविधियों का जो संचालन करते हैं उसी को वर्तमान में गठबंधन की राजनीति कहा जाता है। कुछ दल मिलकर बहुमत बना कर सत्ता प्राप्त कर लेते है तो कुछ उनका सशक्त विरोध करने के लिये गठबंधन बना लेते है। ऐसी सरकारों को मिली जुली सरकार भी कहते हैं।

4.1 भारत में गठबंधन की राजनीति का उदय (Rise of Politics of Coalition in India)

–प्रथम तीन आम चुनाव कांग्रेस के वर्चस्व वाले चुनाव रहे। अपने स्वतंत्रता आंदोलन एवं पुराने संगठनात्मक ढांचे के कारण न केवल केन्द्र में बल्कि प्रांतो में भी उसको बहुमत मिलता था। लेकिन चतुर्थ आम चुनावों में (फरवरी 1967) से कांग्रेस को कई राज्यों में बहुमत से हाथ धोना पड़ा। हालांकि कम बहुमत से ही सही केन्द्र में सरकार कांग्रेस की बन गयी। राजस्थान, पंजाब व उतर प्रदेश की विधान सभाओं में उसे पूर्ण बहुमत नहीं मिला वह केवल बड़ा दल बन कर रह गया। केरल, उड़ीसा एवं तमिलनाडु में उसे बहुत कम सीटें मिली। चतुर्थ आम चुनावों के इन परिणामों ने गठबंधन की राजनीति की शुरुआत की। कई राज्यों में एक से अधिक राजनीतिक दलों ने मिल कर सरकार बनायी। कुछ राज्यों में एक दूसरे के बिल्कुल विरोधी विचारधारा वाले राजनीतिक दलों ने मिल कर सरकार बनायी। 1977 में गठित जनता पार्टी भी एक तरह का गठबंधन सा ही था।

11वीं से लेकर 15वीं लोकसभा तक फिर भारत में किसी दल को लोकसभा में बहुमत नहीं मिला। कोई भी एक दल सरकार बनाने की स्थिति में नहीं रहा। अस्थायी सरकारों का दौर शुरू हुआ और गठबंधन राजनीति की शुरुआत हुई। अटल बिहारी वाजपेयी की सरकार (मई 1996) 13 दिन चल पायी तो फिर कांग्रेस के समर्थन से संयुक्त मोर्चे की सरकार बनी जिस को अपना प्रधानमंत्री बदलना पड़ा। एच.डी. देवेगौड़ा के स्थान पर इन्द्र कुमार गुजराल प्रधानमंत्री बने। बारहवी लोक सभा में स्थिति में कोई सुधार नहीं आया। गठबंधन की राजनीति की शुरुआत हुई। धीरे धीरे भारतीय राजनीति में दो महत्त्वपूर्ण गठबंधन उभर कर आये। एक भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व में राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (एन.डी.ए.), एवं कांग्रेस के नेतृत्व में संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (यूनाइटेड प्रोगेसिव एलाइन्स) (यू.पी.ए.)।

4.2 गठबंधन सरकारों का इतिहास (History of Coalition Governments)

1977 के आम चुनाव में पहली बार केन्द्र में कांग्रेस की हार हुई, उसे लोकसभा बहुमत प्राप्त नहीं हुआ। पांच दलों की मिलकर बन जनता पार्टी ने बहुमत प्राप्त किया तथा मोरारजी देसाई के नेतृत्व में सरकार बनायी। कहने को तो प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई की सरकार जनता पार्टी की सरकार थी, लेकिन उसमें शामिल दल एक पार्टी जैसा व्यवहार नहीं कर सके और जनता पार्टी की सरकार गठबंधन सरकार की तरह ही व्यवहार करने लगी। इंडियन एक्सप्रेस में कुलदीप नायर ने 21 अप्रेल 79 में लिखा " केन्द्र मे जनता पार्टी की सरकार की स्थिति एक मिलीजुली सरकार जैसी रही और सत्ता में भागीदार सभी गुट इस बात के लिए सजग रहे।" अल्पकाल में जनता पार्टी दोहरी सदस्यता के मुद्दे पर वापस बिखर गयी। उसके बाद चौधरी चरण सिंह ने कांग्रेस के बाहरी समर्थन से सरकार बनायी लेकिन कुछ ही समय बाद कांग्रेस ने समर्थन वापस ले लिया। सरकार लोकसभा का सामना भी नहीं कर सकी और नये चुनाव कराने पड़े।

1980 के चुनावों के बाद 89 तक फिर कांग्रेस का एक दल प्रधान शासन रहा। दिसम्बर 89 में वी.पी. सिंह के नेतृत्व में राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार बनी जो दो विरोधी विचारधारा के दलों के समर्थन पर टिकी हुयी थी। भारतीय जनता पार्टी एवं वामपंथी दल। भाजपा के समर्थन वापस लेने पर अक्टूबर 1990 मे सरकार गिर गयी। जनता दल के टुकड़े होकर बने जनतादल एस के रूप में बने नये राजनीतिक दल की सरकार चन्द्रशेखर के नेतृत्व में बनी। कांग्रेस ने इसे बाहरी समर्थन दिया। कुछ ही महीनों के बाद कांग्रेस से मतभेद होने के कारण

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

चन्द्रशेखर सरकार को 6 मार्च 1991 को त्याग पत्र देना पड़ा।

11वीं लोकसभा के चुनाव के बाद आयी त्रिशंकु लोकसभा के कारण अप्रेल मई 1996 के बाद फिर गठबंधन सरकारों का दौर शुरू हुआ। दसवीं लोक सभा चुनाव के बाद कुछ अन्तराल तक कांग्रेस की अल्पमत सरकार बाहरी समर्थन से चलती रही लेकिन 11वी लोक सभा चुनाव के बाद स्थिति ऐसी नहीं रही कि कोई एक दल सरकार बनाले। इसलिए सबसे बड़ा दल होने के कारण भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व में अटलबिहारी वाजपेयी को सरकार बनाने के लिए आंमत्रित किया गया। भाजपा के साथ शिव सेना, अकाली दल एवं हरियाणा विकास पार्टी गठबंधन की सरकार बनी। बहुमत साबित न कर पाने के कारण 13 दिन बाद ही प्रधानमंत्री को त्याग पत्र देना पड़ा।

वाजपेयी सरकार के पतन के बाद कांग्रेस के बाहरी समर्थन से एच.डी. दैवेगौड़ा की सरकार बनी किन्तु कुछ ही महिनों बाद कांग्रेस ने समर्थन के लिए प्रधानमंत्री (नेता) बदलने की शर्त रख दी। इसलिए 10 माह में ही एच.डी. देवगौड़ा सत्ता से बाहर हो गये तथा इन्द्र कुमार गुजराल को नेता चुन कर प्रधानमंत्री बनाया गया। जहां दैवेगोड़ा सरकार में 13 राजनीतिक दल भागीदार थे तो गुजराल सरकार में 15 राजनीतिक दल थे। इन दलों के बीच विभिन्न राजनैतिक विषयों व समस्याओं पर वैचारिक समानता का सर्वथा अभाव था। परिणाम स्वरूप सरकार को निरन्तर दबाव में काम करना पड़ रहा था।

12वीं लोकसभा के चुनाव के परिणाम भी विखण्डित जनादेश या त्रिशंकु लोकसभा ही दे पाये। सबसे बड़े दल के आधार पर भारतीय जनता पार्टी के नेता अटल बिहारी वाजपेयी को प्रधानमंत्री पद के लिए आमंत्रित किया गया। 18 दलो ने मिलकर राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (NDA) बनाकर सरकार का गठन किया, जिसे अप्रैल 1999 में अविश्वास प्रस्ताव द्वारा पदच्युत कर दिया गया।

13वीं लोकसभा चुनाव के बाद भी भारतीय जनता पार्टी के नेता अटलबिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में गठबंधन की सरकार लगभग 20 से अधिक दलों की सरकार बनी। गठबंधन छोड़ने एवं जुड़ने का क्रम चला। सरकार को चलाने एवं स्थायी बनाने वाला महत्त्वपूर्ण तत्व था प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी की लोकप्रिय छवि जिनमें सबको साथ लेकर चलने की क्षमता थी। विकल्प के अभाव ने भी सरकार के स्थायित्व को सम्बल प्रदान किया। लोकसभा का कार्यकाल अक्टूबर 2004 में पूरा होना था लेकिन प्रधानमंत्री ने फरवरी 2004 में ही लोकसभा को भंग करने का परामर्श दे दिया।

14वीं लोकसभा के निर्वाचन के बाद कांग्रेस की स्थिति लोकसभा में पहले से थोड़ी सुधरी, कांग्रेस ने अपना नेता मनमोहन सिंह को चुना जो भारतीय रिजर्व बैंक के गवर्नर रह चुके थे तथा अर्थशास्त्री भी थे। डॉ. मनमोहन सिंह के नेतृत्व में लगभग 20 दलों की गठबंधन सरकार बनी जिसको वामपंथियों ने बाहर से समर्थन दिया। 15वीं लोकसभा के चुनाव के बाद पुनः यू.पी.ए. गठबंधन की सरकार बनी और मन मोहन सिंह प्रधानमंत्री बने। 15वी लोकसभा में कांग्रेस की स्थिति पुनः सुधरी तथा वह अकेले 206 सीटें प्राप्त करने सफल हुई।

2014 में 16वीं लोकसभा के लिए चुनाव भी मूलतः दो गठबंधनों भाजपा नेतृत्व वाले एन.डी.ए. तथा कांग्रेस नेतृत्व वाले यू.पी.ए. के मध्य हुए। इन चुनाव में मतदान प्रतिशत बढ़ा तथा देश के युवा वर्ग ने अपने मताधिकार का प्रभावशाली मात्रा में प्रयोग किया। यह चुनाव भारतीय राजनीति के इतिहास में विशिष्ट स्थान रखते हैं। 1984 के बाद पहली बार किसी एक दल को जनता ने स्पष्ट बहुमत प्रदान किया था।

16वीं लोकसभा चुनाव के बाद गठबंधनों की स्थिति इस प्रकार रही।

एन. डी. ए. (भाजपा एवं सहयोगी दल)

भाजपा	–	282,
शिव सेना	–	18
तेलगु देशम	–	16
एन. पी. एफ.	–	01
लोक जन शक्ति	–	06
एस.डब्लू. पी.	–	01
अकाली दल	–	04,
ए.आई.एन.आर.सी.	–	01
आर.एल.एस.पी.	–	03
एन.पी.पी.	–	01
ए.डी.	–	02
पी.एम.के.	–	01
कुल	–	**336**

यू. पी. ए. (कांग्रेस एवं सहयोगी दल)

कांग्रेस	–	44
झारखण्ड़ मुक्ति मोर्चा	–	02
राष्ट्रीय कांग्रेस	–	06
आई. यू. एम. एल.	–	02
राष्ट्रीय जनता दल	–	04
केरल कांग्रेस (एम)	–	01
कुल	–	**59**

गठबंधन जो भारतीय राजनीति की नियति बन चुके हैं दो प्रकार के होते हैं। एक गठबंधन वो जो चुनाव के बाद सत्ता

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

प्राप्ति के लिए सिद्धान्तों को ताक पर रख कर बनाये जाते हैं। ऐसे गठबंधनों में वे दल गठजोड़ करते हैं जो चुनाव में एक दूसरे के विरूध चुनाव लड़ते हैं, आलोचना करते हैं, चुनाव के बाद मिल कर सत्ता सुख भोगने लगते हैं। दूसरे ऐसे गठबंधन होते हैं जो चुनाव से पहले किए जाते हैं।

4.3 भारतीय गठबंधन की राजनीति की विशेषताएं
(Characteristic of Coalition Politics of India)–

1967 के चुनावों से ही गठबंधन राजनीति के बीज पड़ गये थे जो आगे लंबे समय तक अब तक भी चल रही है। गठबंधन की इस भारतीय राजनीति में निम्न विशेषताएं देखी जा सकती है।

1. **गठबंधन में एक दल की प्रधानता रही है** – भारतीय राजनीति में जो गठबंधन बने है उनमें एक दल की प्रधानता रही है। एन.डी.ए. गठबंधन का नेतृत्व भारतीय जनता पार्टी कर रही है तो यू. पी. ए. का नेतृत्व भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के पास है। सहयोगी दल बहुत ज्यादा प्रभावी भूमिका निभाने में असमर्थ होता है। सहयोगी दलों का प्रभाव प्रमुख दल के सांसदों की संख्या एवं अन्य सहयोगी दलों के सहयोग पर निर्भर करता है।
2. **गठबंधन में विचारधारा गत समानता का अभाव** – राजनीतिक लाभ के लिए विरोधी विचारधारा के राजनीतिक दल गठबंधन में शामिल हो जाते हैं। चुनावों में एक दूसरे की कार्य पद्वति की आलोचना करने वाले दल चुनाव बाद एक गठबंधन में शामिल हो जाते हैं। वर्ष 2016 में प. बंगाल में हुए विधानसभा चुनावों में भी कांग्रेस व सी.पी.एम. ने एक दूसरे के साथ गठबंधन किया था जबकि विचारधारात्मक आधार पर इन दोनों दलों के मध्य कोई साम्य नहीं है। जय प्रकाश नारायण को आदर्श मानने वाली समता पार्टी कांग्रेस के साथ गठबंधन बना कर बिहार में चुनाव लड़ती है जबकि जय प्रकाश नारायण के विचार कांग्रेस की नीतियों से कहीं मेल नहीं खाते हैं। वस्तुतः गठबंधनों का आधार विचारधारा न होकर केवल सत्ता प्राप्त करना या किसी को सत्ता में आने से रोकना है।
3. **गठबंधन में स्थायित्व नहीं होता** – गठबंधन में शामिल राजनीतिक स्थायी रूप से उस गठंबधन से जुड़े रहे यह भी आवश्यक नहीं। पं. बंगाल के चुनावो को देख कर तृणमूल कांग्रेस ने एन. डी. ए. छोड़ दिया, कभी जनता दल (युनाइटेड) एन. डी. ए. का हिस्सा थी लेकिन उसने बिहार चुनावों में एन. डी. ए. छोड़कर कांग्रेस व राजद से नाता जोड़ लिया। कुछ समय बाद पुनः एन.डी. ए. में लौट गई।
4. **गठबंधनो में स्पष्ट विचारधारा गत अलगाव का अभाव** – भारतीय राजनीति में इस समय दो ही गठबंधन महत्त्वपूर्ण एवं प्रभावशाली है। राष्ट्रीय जन तांत्रिक गठबंधन जो भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व में चलता है दूसरा संयुक्त, प्रगतिशील गठबंधन, जो कांग्रेस के नेतृत्व में चलता है, दोनों में विचारधारा एवं सैद्धान्तिक अन्तर खोजना कठिन है। तीसरा मोर्चा जो मूलतः वामपंथी प्रभाव का धड़ा है, कांग्रेस एवं भारतीय जनता पार्टी को पूंजीवादी मानता है लेकिन यू. पी. ए. सरकार को बाहर से समर्थन देता है।
5. **गठबंधन दल एवं सिद्धान्तों के बजाय नेताओं के आधार पर** – भारतीय राजनीति में गठबंधन राजनीतिक सिद्धान्त एवं विचारधारा के बजाय नेताओं के आधार पर होते हैं। समाजवादी विचार धारा होने के बावजूद समता पार्टी का गठबंधन राष्ट्रीय जनता दल से होने के बजाय भारतीय जनता पार्टी से था। जब नरेन्द्र मोदी को भारतीय जनता पार्टी ने अपना नेता घोषित किया तो जनता दल (युनाइटेड) ने गठबंधन तोड़ लिया। 1997 में एच.डी. दैवगौड़ा को कुछ दिन समर्थन देने के बाद कांग्रेस ने प्रधानमंत्री को बदलने के आधार पर समर्थन की शर्त रखी तो इन्द्र कुमार गुजराल को 10 माह बाद अप्रेल 97 को प्रधानमंत्री बनाया गया और कांग्रेस ने पुनः समर्थन दे दिया। बिहार में समता पार्टी के गठबंधन में शामिल लालू प्रसाद का राष्ट्रीय जनता दल उत्तर प्रदेश चुनावों में मुलायम सिंह की समाजवादी पार्टी को समर्थन की बात करती है जो कभी एक दूसरे के विरोधी थे।
6. **निषेधात्मक आधार पर गठित राजनीतिक गठबंधन** – भारतीय राजनीति में पहले कांग्रेस को सत्ता से बाहर रखने के लिए गठबंधन किया जाता था। 1977 की जनता पार्टी का गठन भी कांग्रेस के विरूद्ध किया गया था। वर्तमान में जनतादल, समाजवादी पार्टी, बसपा एवं समता पार्टी अपना एक ही घोषित एजेन्डा बताती है भाजपा को सत्ता से बाहर रखना। किसी दल के कार्यक्रम या नेतृत्व या विचारधारा का मात्र विरोध के लिए विरोध लोकतंत्र के स्वास्थ्य के लिए अच्छा लक्षण कहा नहीं जा सकता।
7. **दल बदल की प्रवृत्ति** – गठबंधन सरकारो के कारण भारतीय राजनीति में आया राम गया राम की प्रवृत्ति भी देखने को मिलती है जिसके कारण शासन के स्थायित्व को खतरा बना रहता है।
8. **दबाव की राजनीति** – गठबंधन में शामिल राजनीतिक दल अपने राजनीतिक हितों को पूर्ति के लिए प्रधानमंत्री पर दबाव डालते रहते हैं। तृण मूल कांग्रेस की नेता ममता बनर्जी ने अपने दल के रेलमंत्री को बदलने एंव

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

रेल का बढा हुआ किराया वापस लेने पर यू.पी.ए की मनमोहन सरकार को मजबूर कर दिया। ऐसे में कई बार राष्ट्रीय महत्व के विषयों पर क्षेत्रीय हित हावी हो जाते हैं।

4.4 गठबंधन सरकारों के बनने के कारण (Causes for Making Coalition Governments) –

भारत में बहुदलीय व्यवस्था है। इसीलिए किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिलने के अवसर अधिक पैदा होते हैं। बिना बहुमत के संसदीय शासन का निर्माण एवं संचालन सम्भव नहीं होता है। इसलिए गठबंधन बना कर सरकार बनाने का प्रचलन बढा। 16वी लोकसभा में बहुमत प्राप्त होने के बाबजूद भी अकेले भारतीय जनता पार्टी की सरकार न बनाकर गठबंधन की सरकार बनायी गयी। भारत विविधताओं से भरा देश है यहां विभिन्न वर्गों, धर्मों संस्कृतियों एंव जातियों के लोग निवास करते हैं। वर्गीय हितों के आधार पर राजनीतिक दलों का निर्माण हुआ, जिससे सैंकड़ो राजनीतिक दलों का गठन हो गया। एक गठबंधन में 20 से 24 तक राजनीतिक दल शामिल रहे है। इतने राजनीतिक दलों के होने के कारण त्रिशंकु लोकसभा के अवसर अधिक ही पैदा होने की आशंका है अतः शायद गठबंधन की राजनीति भारतीय राजनीति का स्थायी तत्व बन गया है।

4.5 गठबंधन की राजनीति के लाभ (Advantages of Coalition Politics) –

ऐसा नहीं है कि गठबंधन राजनीति के नकारात्मक प्रभाव ही हैं। गठबंधन की राजनीति के अपने लाभ भी हैं जो निम्नानुसार हैं :–

1. **शासन निरंकुश नहीं बन पाता** – गठबंधन मंत्रिपरिषद् पर प्रधानमंत्री का उतना वर्चस्व नहीं होता जितना एक दल की सरकार में होता है। मंत्रिपरिषद को न्यूनतम साझा कार्यक्रम के आधार पर कार्य करना पड़ता है। मंत्रिपरिषद् मनमाने तरीके से कार्य नहीं कर सकती। गठबंधन में शामिल सभी दलों की नीतियों एवं सिद्धान्तों को ध्यान में रखना पड़ता।
2. **अधिक योग्य लोगों के योगदान का देश को लाभ** – एक दल की सरकार में उसी दल के लोगों में से मंत्री लेने पड़ते थे, दूसरे दल के लोगों का कोई योगदान नहीं होता । गठबंधन की स्थिति में गठबंधन में शामिल सभी दलों के योग्य लोगों को मंत्रिपरिषद में लिया जाता है। इन सभी दलों के वरिष्ठ एवं योग्य लोगों की योग्यता का लाभ देश को मिलता है। मंत्रि परिषद के गठन का दायरा बढ जाने से अधिक योग्य लोगों की मंत्रिपरिषद का निर्माण होता है।
3. **व्यापक जनमत समर्थन** –एक दल के मंत्रि परिषद के बजाय गठबंधन मंत्रिपरिषद के जनमत के समर्थन का दायरा बड़ा होता है। गठबंधन में शामिल दलों की संख्या जितनी ज्यादा होती है उतना ही उसे जन समर्थन मिल जाता है। सरकार की स्वीकार्यता बढ़ जाती है।
4. **सशक्त विपक्ष का निर्माण** – गठबंधन राजनीति का एक लाभ यह भी है कि एक राजनीतिक दल सत्तारूढ दल का उतना प्रभावशाली प्रतिरोध नहीं कर सकता जितने कई दलों से मिलकर बना गठबंधन कर सकता है। जब यू. पी. ए. गठबंधन की सरकार थी, तब एन. डी. ए. गठबंधन प्रभावशाली ढंग से सरकार का प्रतिरोध कर उसकी मनमानी रोकने में सक्षम होता था। तो अब एन. डी. ए. की सरकार है और यू. पी. ए. गठबंधन सरकार की मनमानी को प्रभावशाली ढंग से रोकती है।
5. **अतिवाद से मुक्ति** –गठबंधन की राजनीति से अतिवादी दृष्टिकोण से बचा जा सकता है। एक दल की सरकार अपने दृष्टिकोण को थोपने का प्रयत्न कर सकती है। गठबंधन में कोई भी दल केवल अपनी नीति एंव सिद्धान्त का नहीं थोप सकता क्योंकि गठबंधन में शामिल अन्य दल विरोध कर सकते हैं। मध्य का रास्ता निकाला जाता है।

4.6 गठबंधन राजनीति का नकारात्मक पक्ष (The Negative Aspect of Coalition Politics)–

1. **अस्थायी सरकारों का निर्माण** – गठबंधन में शामिल दल अपने राजनीतिक लाभ हानि को ध्यान में रख कर समर्थन वापस भी लेते रहते हैं। इससे सरकार का बहुमत खत्म हो जाता है। सरकार को त्याग पत्र देना पड़ता है। इस प्रकार सरकारों का स्थायित्व प्रभावित होता है। अस्थायी सरकारें स्थायी विकास के कार्य नहीं कर सकती।
2. **सामूहिक उतरदायित्व** के सिद्धान्त के कमजोर होने का भय अलग अलग दलो के मंत्रियों में विचारधारा गत एवं अन्य भिन्नताएं होती है। अलग अलग विचारधारा के लोगो को एक सूत्र में पिरोकर काम करना बेहद कठिन है। कई बार गठबंधन सरकार के मंत्रियों के मतभेद खुल कर सामने आ जाते हैं और यह टकराव कई बार शीर्ष नेतृत्व की कार्यक्षमता व शैली पर नकारात्मक प्रभाव डालते हैं।
3. **कमजोर सरकार** – गठबंधन की सरकार कमजोर साबित होती है वह दृढता से निर्णय लेने में असमर्थ होती है चाहे वैदेशिक क्षेत्र में हो या आन्तरिक राजनीतिक निर्णय हों।
4. **प्रधान मंत्री की भूमिका में सीमितता** – प्रधान मंत्री का अपने मंत्री परिषद् में शामिल अपने व अन्य दलों के

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

सदस्यों पर प्रभावशाली नियन्त्रण नहीं होता। गठबंधन में सम्मिलित मंत्री अपने दल के नेतृत्व के निर्देशों का पालन करते हैं। कमजोर प्रधान मंत्री प्रभावशाली भूमिका नहीं निभा पाता एवं अनिर्णय की स्थिति में रहता है।

5. **गठबंधनों में क्षेत्रीय दलों का प्रभाव** बढता जा रहा है जो राष्ट्रीय हितों के बजाय क्षेत्रीय हितों को प्राथमिकता देते है। इससे राष्ट्रीय हितों का नुकसान होता है तथा क्षेत्रीय भावनाओं का प्रभाव बढता है। क्षेत्रीय भावनाओं के कारण राष्ट्रीय एकता को खतरा पैदा होता है।
6. **सरकारों में स्थायित्व नहीं** – गठबंधन की सरकार में स्थायित्व का अभाव रहता है। गठबंधन में शामिल राजनीतिक दल सरकार पर अपने हितों की पूर्ति के लिए दबाब डालते रहते हैं। हितों की अवहेलना होने पर गठबंधन छोड़कर सरकार को अस्थिर कर देते है।
7. **राष्ट्रीय एकता को नुकसान** – गठबंधन में क्षेत्रीय दलों का प्रभाव बढ जाने के कारण क्षेत्रीय दल अपने क्षेत्रीय हितों को साधने पर अधिक जोर देते है। प्रधानमंत्री में सरकार के स्थायित्व के कारण उनके दबाब में आने के लिए मजबूर होता है। ममता बनर्जी के विरोध के कारण प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह बंगला देश के साथ सम्बन्धों में दबाब में रहे। क्षेत्रीय हितों पर अधिक दबाब होने से राष्ट्रीय हितों को हानि होती है।
8. **सुदृढ विदेश नीति का अभाव** – गठबंधन का प्रधानमंत्री सुदृढ विदेश नीति बनाने एवं संचालन करने में समर्थ नहीं हो पाता क्योंकि वह अपने सहयोगी दलों के दबाब में होता है एवं स्वतंत्र रूप से निर्णय नहीं ले सकता। इस प्रकार विदेश नीति के मामले में देश की स्थिति कमजोर होती है। विदेशों से किये जाने वाले संधि या समझौते के समय सहयोगी दलों की सलाह लेनी पड़ती है। विदेशों के सामने हमारी स्थिति कमजोर पड़ती है। एक दल का प्रधानमंत्री या सरकार स्वतंत्र एवं सुदृढ नीति अपनाने में सफल होता है।
9. **सरकार किसी स्पष्ट नीति पर कार्य नहीं कर पाती** – गठबंधन में अलग अलग विचारधारा एवं सिद्धान्तों के राजनीतिक दल शामिल होते हैं। सभी दल अपनी अपनी नीति को सरकार की नीति बनाना चाहते हैं परिणाम यह होता है कि सरकार कोई स्पष्ट नीति निर्धारित नहीं कर पाती जिसका प्रभाव सरकार के कार्यों पर पड़ता है।
10. **छोटे छोटे राजनीतिक दलों के निर्माण को प्रोत्साहन** – गठबंधन में शामिल सभी दलों को सरकार में मंत्रीपद मिलता है लेकिन इन पदों पर बड़े एक दो नेता ही कब्जा कर लेते है जो दल के सर्वेसर्वा होते हैं। इसलिए कई नेता अपने दल का सर्वेसर्वा बनने या प्रथम स्थान पर आने के लिए नये दल का गठबंधन कर अध्यक्ष या संसदीय दल का नेता बन जाते हैं। इस प्रकार छोटे दलों के निर्माण को बल मिलता है। अधिक राजनीतिक दलों का निर्माण स्थायी सरकारों के निर्माण में बाधा है।
11. **सरकार के विभिन्न मंत्रालयों में तालमेल का अभाव** – गठबंधन शासन में अलग अलग मंत्रालयों को अलग राजनीतिक दल के नेता सम्भालते हैं जिनमें आपसी सहयोग उतना नहीं होता जितना एक राजनीतिक दल के मंत्रियों मे रहता है। अलग अलग राजनीतिक दल अपने अपने गुप्त एजेन्डे पर कार्य करते हैं एवं अपना हित साधन करते हैं। शासन के इन मंत्रालयों का आपसी असहयोग कई बार शासन में गतिरोध पैदा करता है। शासन के सुचारू संचालन के लिए विभिन्न विभागों में आपसी सहयोग बहुत जरूरी है।

वर्तमान में भारतीय राजनीति में राजनीतिक दलों की मुख्य तीन धाराएं हैं।

1. **राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (एन.डी.ए.) (National Democratic Alliance)** – भारतीय जनता पार्टी एवं उसके साथ गठबंधन में शामिल अन्य राजनीतिक दल जैसे अकाली दल, शिवसेना, लोकजनशक्ति पार्टी, आई.एल.एस.पी, पी.एम.के सहित 13 दल शामिल है।
2. **संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (यू.पी.ए.) (United Progressive Alliance)** – इसमें प्रमुख रूप से कांग्रेस पार्टी है उसके साथ अन्य राजनीतिक दल हैं राष्ट्रीय कांग्रेस दल, राष्ट्रीय जनता दल, झारखण्ड़ मुक्ति मोर्चा, केरल कांग्रेस आदि।
3. वामपंथी राजनीतिक दल तीसरा गठबंधन वामपंथी राजनीतिक दलों का है।
4. चौथे स्थान पर वो राजनीतिक दल है जो इन तीनों ही गठबंधन में शामिल नहीं है। अन्ना द्रमुक, तृणमूल कांग्रेस, बीजू जनता दल, जनता दल (युनाइटेड), आम आदमी पार्टी, जनता दल सेकुलर आदि।

चौथे वर्ग में शामिल दल में से कभी कभी राजनीतिक सुविधानुसार गठबंधन की सदस्यता ले लेते हैं तथा वापस छोड़ देते हैं। जैसे तृण मूल कांग्रेस एवं बीजू जनता दल कभी एन. डी. ए. का हिस्सा रहे है और अब नहीं है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- भारतीय राजनीति में गठबंधन में एक दल की प्रधानता रहती है।
- गठबंधन में विचारधारागत समानता का अभाव रहता है।
- गठबंधनों में स्थायित्व नहीं होता है।
- गठबंधनो में स्पष्ट विचारधारागत अलगाव है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

- गठबंधन दल एवं सिद्धान्तों के बजाय नेताओं के आधार पर बनते हैं।
- निषेधात्मक आधार पर गठित राजनीतिक गठबंधन अस्थायी होते हैं।
- गठबंधन राजनीति में दल बदल की प्रवृत्ति होती है।
- गठबंधन राजनीति में दबाब की राजनीति भी की जाती है।
- कुछ दल मिल कर अपना एक गठबंधन बना लेते है जो आपसी विचार विमर्श द्वारा साझा कार्यक्रम बनाते हैं।
- चतुर्थ आम चुनावों (1967) से गठबंधन की राजनीति की शुरुआत हुई।
- 11वीं से लेकर 15वीं लोकसभा तक फिर भारत में किसी भी दल को लोकसभा में बहुमत नहीं मिला। कोई भी एक दल सरकार बनाने की स्थिति में नहीं रहा। अस्थायी सरकारों का दौर शुरू हुआ और गठबंधन राजनीति की शुरुआत हुई।
- वर्तमान में भारतीय राजनीति में राजनीतिक दलों की मुख्य तीन धाराएं हैं–1. राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (एन.डी.ए.), 2. (संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन) यू.पी.ए., 3. वामपंथी राजनीतिक दल।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

(1) देश के प्रथम तीन आम चुनावों में जिस दल का वर्चस्व रहा वह है–

(अ) भारतीय जनता पार्टी

(ब) भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस

(स) भारतीय साम्यवादी दल

(द) समाजवादी दल ( )

(2) कौन से आम चुनाव के बाद गठबंधन की राजनीति का प्रारम्भ हुआ–

(अ) 1967 ई (ब) 1977 ई

(स) 1980 ई (द) 1971 ई ( )

(3) जनता पार्टी का गठन हुआ –

(अ) 1980 (ब) 1990

(स) 2000 (द)1977 ( )

(4) डा. मनमोहन की गठबंधन सरकार जिस गठबंधन की थी वह है–

(अ) वामपंथी

(ब) राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन

(स) संयुक्त लोकतांत्रिक गठबंधन

(द) राष्ट्रीय गठबंधन ( )

(5) राजनीतिक दलों की द्रष्टि से भारत में जो दलीय व्यवस्था है वह–

(अ) द्विदलीय व्यवस्था (ब) निर्दलीय व्यवस्था

(स) बहुदलीय व्यवस्था (द) एक दलीय व्यवस्था

( )

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. यू.पी.ए. गठबंधन के प्रधानमंत्री कौन रहे ?
2. जनता पार्टी के विघटन का तत्कालीन मुख्य मुद्दा क्या था ?
3. एन.डी.ए. गठबंधन में प्रधान राजनीतिक दल कौनसा है ?
4. वर्तमान में कौन से गठबंधन की सरकार है ?
5. 16वीं लोकसभा चुनाव में किस राजनीतिक दल को लोकसभा में स्पष्ट बहुमत मिला?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. वर्तमान समय में भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में कौन कौन से गठबंधन है? उनमें मुख्य दल कौन से है?
2. गठबंधन की राजनीति सरकार के स्थायित्व के लिए खतरा है कैसे ?
3. क्या जनता पार्टी की सरकार एक गठबंधन सरकार थी ?
4. गठबंधन की राजनीति के कोई दो लाभ बताइए ?
5. भारतीय गठबंधन राजनीति की तीन विशेषताएं बतायें?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. गठबंधन की राजनीति का भारतीय राजनीति पर क्या क्या नकारात्मक प्रभाव पड़े।
2. गठबंधन की राजनीति के सकारात्मक पक्ष का विश्लेषण कीजिए।

बहुचयनात्मक प्रश्नों के उत्तर

1. ब 2. ब 3. द 4. स 5. स

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

इकाई–IV

भारत की विदेश नीति व संयुक्त राष्ट्र संघ

1. भारत की विदेश नीति की प्रमुख विशेषताएँ एवं गुट निरपेक्षता
(Characteristics of Indian Foreign Policy & Non-Alignment)

भारत की विदेश नीति
(Foreign Policy of India)

स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व ही हमारी विदेश नीति ने साकार स्वरूप लेना प्रारम्भ कर लिया था। स्वतंत्र विदेश नीति का पं. नेहरु का संकल्प हमारे सामने था। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् विश्व का दो गुटों में बंटना व अन्य राष्ट्रों द्वारा अनुवृत्ति गुट बनाना जारी था। भारत ने इनसे पृथक् रीति–नीति का अनुसरण किया। हमारा यह भी संकल्प था कि हम विश्व में उपनिवेशवाद, रंग–भेद व साम्राज्यवाद का विरोध करेंगे। विदेश नीति का जो ताना–बाना हमने उस समय बुना उसकी प्रमुख विशेषताएँ ये है –

1. **शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व की नीति**
   (Policy of Peaceful Coexistence) –

   हमारी विदेश नीति सदैव शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व की रही हैं। इतिहास इस बात का साक्षी है कि युद्धों ने मानवता को तहस–नहस किया है। के.एम.पणिक्कर के शब्दों में –''भारत को इस बात की बड़ी चिन्ता है कि उसकी प्रगति को तथा सामान्य रूप से मानव जाति की उन्नति को संकट में डालने वाला कोई युद्ध नहीं हो। इसी नीति पर चलते हुए हमने विश्व में अपनी भूमिकाएँ तय की है।''

   पड़ोसी राष्ट्रों के साथ हमारे रिश्ते भी इस नीति से प्रभावित हो रहे हैं। यद्यपि कई बार इसे हमारी दुर्बलता माना गया। 1956 का स्वेज नहर संकट, 1967 का अरब इजराइल युद्ध, 1960 का सिन्धु जल समझौता, 1965 का भारत पाक युद्ध, इससे पूर्व 1962 में चीन के साथ संघर्ष, 1971–72 में बांग्लादेश का निर्माण व पाक के टकराव के पलों में भी हमने इस नीति को कभी छोड़ा नहीं। शान्ति और सह अस्तित्व हमारी भारतीय संस्कृति के मूलमंत्र ''जीओ और जीने दो'' के आगामी चरण हैं, जो आज भी राष्ट्र की आतंरिक व विदेश नीति को दिशा देते है।

2. **उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद का विरोध**
   (Anti Colonialism & Imperialism) –

   उपनिवेशवाद व साम्राज्यवाद का दंश भारत भोग चुका है। विश्व के किसी भी हिस्से में, द्वितीय महायुद्ध के बाद विशेषकर हमारी स्वतंत्रता के पश्चात् भारत ने इसका विरोध किया है। 1956 में मिस्र पर हमला हो या खाड़ी में अमेरीकी हस्तक्षेप, हमने महाशक्तियों की प्रसारवादी नीति का विरोध किया है।

3. **रंगभेद का विरोध (Anti Apartheid)–** विश्व में नस्ल या मनुष्य के रंग के आधार पर भेदभाव का विरोध करना हमारी विदेश नीति की प्रमुख विशेषता रही है। नेल्सन मंडेला की आजादी व उनके सत्तारूढ़ होने से पूर्व रंगभेदी दक्षिण–अफ्रीकी सरकार से अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का विच्छेद हमारी इसी नीति को इंगित करता है।

4. **अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं को समर्थन**
   (Supporter of International Institutions)–

   हमारी विदेश नीति का यह आधार रहा है कि हमने अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं को खुलकर समर्थन दिया है। स्वतंत्रता से पूर्व ही हम संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना को समर्थन दे चुके थे। स्वतंत्रता के पश्चात् हमने इसकी सदस्यता स्वीकार कर इसके विभिन्न कार्यक्रमों व एजेन्सियों में बढ़ चढ़कर भागीदारी निभाई। संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रति हमारी प्रतिबद्धता अटूट है। संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् में हमारी स्थाई सदस्यता का दावा व अन्तर्राष्ट्रीय मंचों का समर्थन हमारी विदेश नीति की सफलता का द्योतक है।

5. **पंचशील के सिद्धान्त पर आधारित**
   (Based on Principles of Panchsheel)–

   आचरण के 5 सिद्धान्तों पर आधारित पंचशील की हमारी विदेश नीति प्रारम्भ में पड़ोसी चीन के साथ तथा कालांतर में अन्य राष्ट्रों के साथ ही रही। ये सिद्धान्त है–

   1. एक दूसरे देश की प्रादेशिक अखंडता और सर्वोच्च सत्ता के लिए पारस्परिक सम्मान की भावना
   2. अनाक्रमण
   3. एक दूसरे के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप न करना।
   4. समानता
   5. शांतिपूर्ण सहअस्तित्व

6. **गुटनिरपेक्षता (Non-Alignment) –** हमारी विदेश नीति का गुटनिरेपेक्षता के सिद्धान्त से विशेष सम्बन्ध रहा है। गुटनिरपेक्षता आन्दोलन के प्रमुख भारत के नेहरु,

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

यूगोस्लाविया के टीटो और मिस्र के नासिर थे। गुटनिरपेक्षता से तात्पर्य अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विश्व के किसी भी गुट के साथ द्विपक्षीय सम्बन्धों के आधार पर सैनिक समझौते में भाग न लेना है। इस नीति का अनुसरण करने वाले देश विश्व की गुटबाजी की राजनीति के विलग्न रहने को प्राथमिकता देते है, किन्तु विश्व शान्ति और सुरक्षा के मुद्दों पर संयुक्त राष्ट्रसंघ और अन्य अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों की भरपूर सहायता करने पर बल देते है। गुटनिरपेक्षता की नीति उदासीनता व तटस्थता की नीति नहीं। पं. जवाहर लाल नेहरु ने इस नीति के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा था कि यदि स्वतंत्रता का हनन और न्याय की हत्या होती अथवा कहीं आक्रमण होता है तो वहाँ हम न तो आज तटस्थ रह सकते हैं और न ही भविष्य में रहेंगे। गुटनिरपेक्ष आन्दोलन 1955 के बाडुंग सम्मेलन में अस्तित्व में आया था उसके पश्चात् 25 विकासशील देशों के नेताओं ने 1961 में बेलग्रेड सम्मेलन में मुलाकात की थी। भारत गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के संस्थापक सदस्यों में से एक है। भारत ने 1983 में नई दिल्ली में आयोजित सातवें गुट निरपेक्ष आन्दोलन के शिखर सम्मेलन की मेजबानी की।

17वें गुट निरपेक्ष आन्दोलन शिखर सम्मेलन का आयोजन 13 सितम्बर 2016 से 18 सितम्बर 2016 के बीच वेनेजुएला के मारगरीता शहर में सम्पन्न हुआ है। राजनीति वैज्ञानिकों का मत है कि गुट निरपेक्षता की नीति का जन्म शीतयुद्ध के समय विश्व के दो शक्ति केन्द्रो में विभाजन के कारण हुआ था। जिसमें एक का नेतृत्व संयुक्त राष्ट्र अमेरीका कर रहा था तो दूसरे का नेतृत्व पूर्व सोवियत संघ। सोवियत संघ के नेतृत्व वाले साम्यवादी धड़े के 1990 में विघटन के बाद विश्व में अमेरीका केन्द्रित एक ध्रुवीय व्यवस्था स्थापित हो चुकी है। उनके अनुसार वैश्वीकरण के युग में गुटनिरपेक्षता आन्दोलन अपनी परम्परागत महता खो चुका है और वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की मांगों के अनुरूप नहीं रहा है।

1.1 गुट निरपेक्षता का अर्थ (Meaning of Non- Alignment) –

इस नीति का अर्थ है कि विश्व के किसी भी गुट का साथ जिसका स्वरूप सैनिक हो, के साथ जुड़ाव न रखना। नाटो, सीटों व वारसा संगठनों जैसे सैनिक गठबंधनों में शामिल न होकर अलग रहना। यह ऐसी नीति है जो विश्व राजनीति में स्वतंत्र नीति के अनुगमन पर बल देती है। यह नीति सभी गम्भीर अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर निरपेक्ष, पूर्वाग्रह रहित, स्वतंत्र व वस्तुनिष्ठ रुख अपनाने की वकालत करती है। यह नीति तटस्थता की नीति नहीं है बल्कि विश्व राजनीति की जटिल गुटीय प्रभावशीलता से मुक्त एक स्वतंत्र नीति है। यह नीति अन्तर्राष्ट्रीय विवादों के शान्तिपूर्वक व अहिंसक समाधान की पक्षधर है। यह नीति शीतयुद्ध के समय के दो शक्तिशाली धड़ों से दूर रहने पर बल देती थी। यह नीति अन्तर्राष्ट्रीय समस्या का गुण दोष के आधार पर आकलन कर वस्तुनिष्ठ निर्णय करने की पक्षधर रही है। गुट निरपेक्षता की नीति विरोधी गुटों के मध्य संतुलन बनाये रखने पर बल देती है। यह अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की जटिलताओं से पृथक् रहने की नीति नहीं है बल्कि विश्व राजनीति में सार्थक योगदान देने वाली नीति है।

1.2 भारत की विदेश नीति में गुटनिरपेक्षता को अपनाने के कारण (Reasons for Adopting Non Alignment in Indian ForeignPolicy)–

1. भारत किसी एक गुट से जुड़कर विश्व में तनाव की स्थिति उत्पन्न करने का पक्षधर नहीं रहा है।
2. भारत अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में स्वतंत्र नीति (जो अन्य शक्ति के प्रभाव से मुक्त हो) के अनुसरण को अपने लिए अधिक उपयोगी मानता है।
3. भारत अपने आर्थिक विकास के लिए दोनों ही शक्तियों से बराबरी के सम्बन्ध बनाए रखने का पक्षधर रहा है।
4. गुटनिरपेक्षता की नीति भारत की सामाजिक, सामरिक, भौगोलिक, राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक मांगों के अनुरूप थी।
5. भारत के प्रारम्भिक नेतृत्व की गुटनिरपेक्षता की नीति में अटूट श्रद्धा व विश्वास था।
6. गुट निरपेक्षता की नीति भारत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि व विविधतापूर्ण बहुलवादी संस्कृति के लिए अनुकूल थी।

1.3 वर्तमान संदर्भ में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की प्रासंगिकता (Relevance of Non Alignment movement in Present Context)–

गुटनिरेपक्ष आन्दोलन ने अपने 50 वर्षो से अधिक के कार्यकाल में अनेक उपलब्धियाँ हासिल की है। इसकी महत्त्वपूर्ण उपलब्धि उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद की समाप्ति है जिसके परिणामस्वरूप एशिया व अफ्रीका के अनेक देश स्वतंत्रता प्राप्त कर सके। दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद की नीति की समाप्ति में भी इसका महत्त्वपूर्ण योगदान है। इसके अतिरिक्त इसने नवोदित राष्ट्रों के मध्य एकता व सहयोग बढ़ाने व विश्व मंच पर उनके दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने, गुटों से दूर रहकर संघर्ष के क्षेत्र को कम करने तथा विश्व शान्ति को प्रोत्साहित करने की दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। 1991 में सोवियत संघ के विघटन एवं शीत युद्ध की समाप्ति के उपरान्त गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के औचित्य पर प्रश्नचिह्न लगने लगे।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

वस्तुतः सच्चाई यह है कि गुट निरपेक्ष का तात्पर्य विदेश नीति की स्वतंत्रता से है तथा इसका उद्देश्य संप्रभु राष्ट्रों की समानता व उनकी संप्रभुता व अखण्डता को सुरक्षित रखना है। इस संदर्भ में इसका औचित्य स्वयंसिद्ध हो जाता है।

विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं व चुनौतियों मानवाधिकार, विश्व व्यापार, वार्ताएँ जलवायु परिवर्तन वार्ताएँ अथवा संयुक्त राष्ट्र संघ के सुधार के संदर्भ में विकासशील देशों का दृष्टिकोण प्रस्तुत करने हेतु एक प्रभावी मंच की आवश्यकता है। गुटनिरपेक्ष आन्दोलन इसी मंच के रूप में कार्य करता है। यद्यपि सोवियत संघ के विघटन के बाद शीतयुद्ध की समाप्ति हो गई है तथा द्विध्रुवीय व्यवस्था भी समाप्त हो गई हैं, लेकिन गरीब व कमजोर राष्ट्रों की सुरक्षा व संप्रभुता की चुनौतियाँ कम नहीं हुई है। अमेरीका के नेतृत्व में एकध्रुवीय व्यवस्था के लक्षण पनप रहे है। पश्चिमी देशों का सैनिक गुट नाटों और अधिक मजबूत हुआ है। गुट निरपेक्ष आन्दोलन ने अफ्रीका, एशिया व लैटिन अमेरीका के विकासशील देशों के मध्य सहयोग और एकता के मंच के रूप में कार्य किया है। आज भी इन देशों के मध्य आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक सहयोग की आवश्यकता है। इस सहयोग को दक्षिण–दक्षिण सहयोग के नाम से जाना जाता है। अतः गुट निरपेक्ष आन्दोलन दक्षिण दक्षिण सहयोग को एक मंच प्रस्तुत करता है। गुटनिरपेक्ष देशों के आज तक 17 शिखर सम्मेलन आयोजित किए जा चुके है। 17वां शिखर सम्मेलन वेनेजुएला के मारगरीता शहर में 17 – 18 सितम्बर 2016 को आयोजित हुआ इसमें ''विकास के लिए शान्ति संप्रभुता व समरसता '' को इस सम्मेलन का मुख्य विषय रखा गया। इससे पहले 16वां शिखर सम्मेलन अगस्त 2012 में ईरान की राजधानी तेहरान में सम्पन्न हुआ था। इस गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के शिखर सम्मेलन में पुनः एक बार राष्ट्रों की संप्रभुता तथा उनके विदेश नीति के स्वतंत्रता के मुदद् को उठाया गया था। आज भी विश्व की मुख्य चुनौतियों का सामना करने के लिए गुट निरपेक्ष आन्दोलन प्रभावशाली है। यह एक ऐसा मंच है जो विश्व के विकासशील राज्यों को एक समान भागीदारी प्रदान करता है तथा जो विश्व की प्रमुख चुनौतियाँ जैसे सुरक्षा के खतरे, पर्यावरण प्रदूषण, स्वास्थ्य समस्याएँ आदि का प्रभावी ढंग से सामना कर सके। विश्व व्यवस्था के अनेक अभिकरण ऐसे है, जिनके निर्णय निर्माण में विकासशील देशों की पर्याप्त भूमिका नहीं है। अतः विश्व की विभिन्न संस्थाओं में विकासशील देशों को अधिक प्रभावी प्रतिनिधित्व देने की आवश्यकता है। इस सम्बन्ध में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा अन्य अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं पर गुट निरपेक्ष आन्दोलन के माध्यम से विशेष रूप से ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है। गुटनिरपेक्ष आन्दोलन विश्व के विभिन्न देशों के मध्य सांस्कृतिक, सामाजिक व राजनीतिक मूल्यों के परस्पर आदान–प्रदान के लिए भी सार्थक है।

1.4 गुट निरेपक्षता और वर्तमान सरकार (Non-Alignment & Present Government) –

गुट निरपेक्ष आन्दोलन के प्रमुख संस्थापक देशों में भारत भी शामिल था एवं सिंगापुर से लेकर क्यूबा तक के विभिन्न परिवेश के देशों का इसका सदस्य होना इसे ओर भी अधिक प्रासंगिक बनाता है। भारत आतंकवाद पीड़ित देशों में सर्वाधिक प्रभावित देश है और आतंकवाद की लड़ाई में गुट निरपेक्ष आन्दोलन के सदस्य देशों का समर्थन अपरिहार्य है। भारत को पाकिस्तान को अलग–थलग करने एवं आतंकवाद के मुदद् पर उसे घेरने के लिए भी गुट निरपेक्ष आन्दोलन एक उचित मंच प्रदान करता है।

भारत संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद् का स्थायी सदस्य बनने के लिए कई वर्षों से प्रयत्नरत है और इसमें गुटनिरपेक्ष देशों के समर्थन की दरकार निरन्तर बनी हुई है। गुट निरपेक्ष देशों का समर्थन निश्चित रूप से उसकी इस मांग को सबल बनाती है। भारत जिस तरह की विदेश नीति का अनुसरण कर रहा है उसको देखते हुए गुट निरपेक्ष नीति का आज भी उतना ही महत्त्व है जितना कि इस संगठन के स्थापना के समय था। आज की विदेश नीति की व्यवस्थता को देखते हुए हमें इस संगठन की सदस्यता अर्थपूर्ण न लगे, परन्तु इस परिवर्तनशील दौर में विश्व समुदाय को साथ–साथ चलना अपने आप में एक बड़ा कीर्तिमान है।

1.5 भारतीय विदेश नीति के नवीन आयाम (New Dimensions of India's Foreign Policy)–

भारत ने नब्बे के दशक से आर्थिक क्षेत्र में जो उदारवादी सुधार शुरू किए हैं वे ही आज भारत की विदेश नीति का मुख्य आधार बने हुए हैं।

भारत एक तेजी से उभरती अर्थव्यवस्था है जिसकी गति व क्षमता का एक मुख्य पक्ष विदेश नीति भी है। इसकी एक विशेषता निरन्तरता है और इसमें किसी भी समय पर आमूलचूल परिवर्तन देखने को नहीं मिलते है। मात्र सरकार बदलने से भारत की विदेश नीति की व्यापक, रूपरेखा या ढाँचे में परिवर्तन नहीं आता। भारत की विदेश नीति का मुख्य उद्देश्य एक सुरक्षित और स्थिर क्षेत्रीय पर्यावरण की स्थापना करना है ताकि भारत का आर्थिक विकास अनवरत जारी रहे।

वर्तमान सरकार की विदेश नीति ''वसुधैव कुटुम्बकम'' की परम्परा के अनुरूप विदेश नीति के अनुगमन पर बल देती है। भारत अपने सहयोगियों का संजाल विकसित करना चाहता है। भारत की मौजूदा विदेश नीति 'आतंकवाद' के प्रति 'शून्य सहयता' (Zero Tolerance) जीरो टोलरेन्स की नीति का अनुसरण करेगी। वर्तमान

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

सरकार ने भारतीय विदेश नीति को सक्रिय बनाने की चेष्टा की है। वर्तमान सरकार एशिया व विश्व में बढ़ती हुई चीन की शक्ति से सचेष्ट है वह भारत को एक शक्तिशाली राष्ट्र बनाने के लिए अर्थ व्यवस्था से भ्रष्टाचार, लालफीता शाही और अवसंरचनात्मक सुधार पर विशेष बल देती है।

1.6 नवीन विदेश नीति का सूत्रपात (Beginning of New Chapter in Foreign Policy) –

विगत कुछ वर्षों में भारत की वैश्विक छवि तथा भारत की राजनीतिक पहुंच, प्रयास, कल्पना और गति के साथ एक नए रूप में बदल गई है। इसके साथ तीन बिन्दु जुड़े है व्यापार, संस्कृति और सम्पर्क। इसको रूपान्तरकारी कूटनीति की संज्ञा दी जा सकती है। इन तीन वर्षो में भारत ने अनेक बाधाओं को पार किया है और अनेक उपलब्धियों को अर्जित किया है। सबसे बड़ी उपलब्धि जुलाई 2015 में वर्षों से भारत – बांग्लादेश के मध्य विवाद का मुद्दा रहे 162 भू–गलियारों (Enclaves) के हस्तान्तरण से सम्बन्धित माना जा सकता है। इस समझौते से भारत बांग्लादेश के सम्बन्धों में आई कटुता को दूर किया जा सकेगा।

1.7 पांच मूल सिद्धान्त (Five Basic Foundations)–

निरन्तर वार्ता, आर्थिक समृद्धि को प्रोत्साहन, भारत की प्रतिष्ठा और सम्मान में वृद्धि, राष्ट्रीय सुरक्षा का समर्थन तथा भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता की मान्यताओं को प्रोत्साहन, ऐसे पांच मूल सिद्धान्त है जो वर्तमान सरकार की विदेश नीति को प्रेरित करते हैं।

1.8 पड़ोस पहले की नीति (Neighbourhood First) –

प्रधानमंत्री बनने के बाद भारत की विदेश नीति को नवीन दिशा प्रदान करने के लिए पड़ोस पहले की नीति अपनाते हुए वर्तमान प्रधानमंत्री जी ने सभी पड़ोसी देशों की यात्रा कर भारतीय विदेश नीति में एक नये अध्याय का सूत्रपात किया। यह भारतीय विदेश नीति के बुनियादी बदलाव को प्रतिबम्बित करता है। वर्तमान प्रधानमंत्री जी की स्वतंत्र रूपान्तरकारी कूटनीति की शुरुआत देश के नजदीकी पड़ौसियों के साथ सम्पर्क से हुई। मॉरिशस सहित सभी सार्क देशों के नेताओं को सरकार के शपथग्रहण समारोह में बुलाकर भारत ने अपने पड़ोसी देशों के साथ सघन सम्पर्क स्थापित करने का एक अभूतपूर्व उदाहरण प्रस्तुत किया। ऐसे पड़ोसी देश जिनके भविष्य और सपने भारत देश के साथ गहराई से जुड़े है। इसी कड़ी में भारत की संसद द्वारा बाग्लादेश के साथ सीमा करार की पुष्टि हुई। नेपाल के साथ पनबिजली परियोजनाओं के समझौते पर हस्ताक्षर हुए, भारत–भूटानी 600 मेगावॉट खोलोंगचु पनबिजली परियोजना की आधारशिला रखी गई। अफगानिस्तान में हमारी प्रमुख परियोजनाओं को निश्चित समयावधि में पूरा किया गया व 24 वर्ष बाद कोलम्बो जाफना रेल सम्पर्क को दोबारा भारतीय सहयोग से खोला गया। सच्ची मित्रता की भावना से भारत ने अपने संकटग्रस्त पड़ौसियों को तत्परता से सहायता दी। जब मालदीव गंभीर संकट से घिर गया था तब एक सुचारु रूप से संचालित कार्यक्रम 'ऑपरेशन नीर' के तहत पानी के जहाज और हवाई जहाज के जरिए वहाँ जल पहुँचाने वाला पहला देश था। नेपाल में गंभीर भूकम्प का जब झटका आया तो भारत पुनः अपने संसाधनों और मशीनरी के साथ संकटग्रस्त मित्र के कष्ट का निवारण करने वाला पहला देश था। इस प्रकार भारत की पड़ोसी देशों के प्रति कूटनीति की शक्ति, कौशल, ऊर्जा और करुणा समान रूप से प्रदर्शित हुई है। पहले जिसे 'लुक ईस्ट' (Look East) नीति के नाम से जाना जाता था वर्तमान प्रधानमंत्री जी के कार्यकाल में विदेश नीति में आई सक्रियता के कारण अब इसे 'एक्ट ईस्ट' (Act East) नीति के रूप में जाना जाता है। इस नीति के अन्तर्गत आर्थिक रूप से गतिशील क्षेत्र में अधिक सघन सम्पर्क हुआ है। पूर्व में सक्रियता की यह नीति भारत के प्रधानमंत्री सहित अन्य पदाधिकारियों की यात्राओं में प्रदर्शित हुई है। प्रधानमंत्री ने जापान, म्यांमार, ऑस्ट्रेलिया, दक्षिण कोरिया, सिंगापुर और चीन की यात्रा की जब कि विदेश मंत्री सुषमा स्वराज ने सिंगापुर, वियतनाम, म्यांमार, दक्षिण कोरिया, चीन और इण्डोनिशिया की यात्रा की।

1.9 भारत व मध्यपूर्व (India & Middle East)–

भारत का पश्चिमी एशिया के देशों के साथ ऐतिहासिक जुड़ाव रहा है। भारत में आतंकवाद प्रभाव वही से आया था। आज भारत सर्वाधिक मुस्लिम आबादी वाला देश है। धर्मान्धता व कट्टरवाद भी मध्यपूर्व के दशों से अफगानिस्तान व पाकिस्तान के माध्यम से भारत में प्रसारित हुआ है। वैश्वीकरण के प्रौद्योगिकी प्रधान युग में मध्यपूर्व में अभी भी मध्यकालीन अवधारणा का बोलबाला है जो वहां के नागरिकों को मध्यकालीन मॉडल पर चलने को प्रेरित करती है। मध्यपूर्व के देशों में एक ओर सऊदी अरब और ईराक आदि देशों में सुन्नी विचारधारा का वर्चस्व है वहीं ईरान में शिया विचारधारा का वर्चस्व है। खाड़ी के लगभग सभी देश तेल का उत्पादन करते हैं और इसी कारण उनकी अर्थव्यवस्था तेल के कारण सुदृढ़ है। परन्तु भारत की ऊर्जा आवश्यकता की पूर्ति भी मध्यपूर्व के देशों पर निर्भर है। जिनमें ईरान सबसे महत्त्वपूर्ण है। ईरान और

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

भारत के आपसी सम्बन्ध भी सौहादपूर्ण है किन्तु अमेरीका व ईरान के आपसी सम्बन्धों की कड़वाहट से भारत के सम्बन्ध भी प्रभावित हुए है। भारत ने ईरान के चाबाहार बंदरगाह में भारी निवेश किया है।

एक अन्य महत्त्वपूर्ण पश्चिमी एशियाई देश सऊदी अरब पाकिस्तान द्वारा भारत के विरुद्ध फैलाये गए इस्लामी आतंकवाद में उसका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से साझेदार है भारत दुनिया का तीसरा सबसे बड़ा तेल आयातक देश है और वह तेल की आवश्यकता पूर्ति के लिए खाड़ी देशों पर आश्रित है। यह उसकी कूटनीतिक व्यवस्था है। एक ओर भारत के लगभग 70 लाख कामगार खाड़ी देशों ने रोजगार प्राप्त कर रहे है। जिसका सकारात्मक पक्ष यह है कि वे लगभग 35 अरब डॉलर का वित्तीय विप्रेषण भारत में करते हैं।

नकारात्मक पक्ष यह है कि वे धन के साथ 'वहाबी विचारधारा' को भी भारत में निर्यात कर रहे है जिससे भारत की एकता और अखंडत को खतरा उत्पन्न हो गया है। ईराक और सीरिया में सक्रिय आई.एस.आई.एस (Islamic State of Iraq & Syria) के बढ़ते हुए प्रभाव से अन्य देशों की भाँति भारत भी चिन्तित है। पिछले दो वर्षों में भारत में इस्लामी राज्य की विचारधारा से प्रभावित होकर कई युवक इस संगठन के प्रति आकर्षित हुए है जो भारत के हितों के प्रतिकूल है। मध्यपूर्व के गैर मुस्लिम देश इजराइल के साथ भारत के अच्छे सम्बन्ध है।

भारत व इजराइल में आबादी के अनुसार कोई साम्य नहीं है। जहाँ भारत 1.3 अरब जनसंख्या वाला विशाल देश है वहीं इजराइल की कुल आबादी 80 लाख ही है। इस असमानता के बावजूद दोनों देश कई महत्त्वपूर्ण समान गुण रखते हैं। दोनों देशों में प्राचीन धर्मों का प्रधान रूप से अस्तित्व है जो धर्म परिवर्तन करने में विश्वास नहीं रखते। दोनों लोकतंत्र व धर्मनिरपेक्षता में विश्वास रखते हैं व आतंकवाद से उत्पीड़ित है।

दोनों ही देशों की अमेरीका से निकटता है और दोनों ही देशों में बहुतायत में मुस्लिम अल्पसंख्यक समुदाय निवास करता है। दोनों ही देशों के लिए आतंकवाद उनके अस्तित्व को गंभीर चुनौती प्रदान करने वाला है। दोनों ही देशों के अपने –अपने हित है जो पारस्परिक निर्भरता पर बल देते है। विशेष तौर पर वे आपस में खुफिया सूचनाएँ आदान–प्रदान कर सकते हैं। जल प्रौद्योगिकी, चिकित्सा, सुरक्षा और उच्च तकनीकी नवाचार व कृषि में इजराइल भारत की मदद कर सकता है। वहीं भारत इजराइल के उत्पादों को बेचने के लिए एक बड़ा बाजार प्रदान कर सकता है।

हाल ही में भारत ने इजराइल से लगभग तीन अरब अमेरीकी डॉलर की कीमत का सैन्य हार्डवेयर खरीदा है। दोनों ही देशों की सेनाओं में प्रशिक्षण व अन्य क्षेत्रों में निरन्तर सहयोग बन रहा है। भारत के लिए मध्यपूर्व की विदेश नीति सबसे बड़ी चुनौती पूर्ण है क्योंकि हम एक तरफ मध्यपूर्व के देशों के साथ अपनी ऊर्जा आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अच्छे सम्बन्ध बनाए रखना जरूरी हैं साथ ही, देशों की राजनीतिक अस्थिरता व वहाँ की कट्टरवादी विचारधारा के भारत पर पड़ने वाले प्रभावों से सावधान रहने की आवश्यकता है।

1.10 भारत और रुस (India & Russia)–

भारत और रुस दोनों परम्परागत मित्र रहे है। परन्तु 1991 में पूर्व सोवियत संघ के विघटन व भारत द्वारा समाजवादी अर्थव्यवस्था के स्थान पर बाजारोन्मुखी वैश्वीकरण की अर्थव्यवस्था को अपनाने से दोनों देशों के परम्परागत सम्बन्धों में पुरानी प्रगाढता में कमी आई। भारत आज भी अपने अधिकांश सैन्य साजो सामान व उपकरणों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए रुस पर निर्भर करता है। किन्तु बदली हुई राजनीतिक परिस्थितियों में भारत के लिए जर्मनी एवं फ्राँस जैसे अन्य यूरोपीय देशों एवं संयुक्त राज्य अमेरीका से निकट सम्बन्ध स्थापित करना अपरिहार्य हो गया है।

1.11 भारत और अमेरीका एवं यूरोपीय देश (India, US & European States) –

भारत की वर्तमान विदेश नीति तात्कालिकता और व्यावहारिकता पर आधारित है। वर्तमान सरकार को भारत की सुरक्षा जरूरतों का एवं एशिया में बदलती नवीनतम राजनीति समीकरणों का पूर्ण अभिज्ञान है।

हमारी विदेश नीति में यह परिवर्तन मुख्यतः चीन की नवीन प्रखरतापूर्ण नीति की प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ है। ऐसे समय में जब विश्व की प्रथम शक्ति, संयुक्त राज्य अमेरीका ने अपनी पुनः संतुलन की विदेश नीति के पूरे पत्ते नहीं खोले है। जहाँ पाकिस्तान की नीति सदैव भारत केन्द्रित रही है, वही भारत की विदेश नीति विश्व उन्मुख होने के कारण अधिक व्यापक है व किसी एक देश पर आधारित नहीं है। भारत पाकिस्तान को आतंकवाद के मुद्दे पर अलग–थलग करने मे काफी हद तक सफल रहा है। वर्तमान में भारत की विदेश नीति रूपान्तरकारी चरण में है।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

- विश्व के अन्य राष्ट्रों के साथ सम्बन्धों का निर्धारण, विदेश नीति का हिस्सा है।
- भारतीय विदेश नीति की विशेषता है –

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

- ❍ शान्तिपूर्ण सह– अस्तित्व की नीति।
- ❍ उपनिवेशवाद व साम्राज्यवाद का विरोध।
- ❍ रंगभेद का विरोध।
- ❍ अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं को समर्थन ।
- ❍ पंचशील के सिद्धान्त।
- ❍ गुट निरपेक्षता।

- गुट निरपेक्षता का अर्थ – विश्व के किसी भी शक्ति गुट के साथ न जुड़कर स्वतंत्र रीति–नीति का अनुसरण करना तथा सत्य का साथ देना। गुटनिरेपक्षता या असंलग्नता की नीति है।
- सोवियत संघ के विघटन के पश्चात दो ध्रुवों में शक्ति संतुलन बिगड़ने के उपरान्त आज गुट निरपेक्षता आन्दोलन की प्रासंगिकता बहु–ध्रुवीकरण के मंच के रूप में रेखांकित हुई है।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. सह–अस्तित्व का भावार्थ है –
   (अ) जीओ और जीने दो।
   (ब) साथ– साथ संघर्ष करो।
   (स) सबके साथ राष्ट्र की सीमाएँ मिला दो।
   (द) अपना अस्तित्व बनाए रखो। ( )
2. भारतीय विदेश नीति के उद्देश्य से मेल नहीं खाने वाला कथन है –
   (अ) उपनिवेशवाद का विरोध
   (ब) साम्राज्यवाद का प्रसार
   (स) साम्राज्यवाद का विरोध
   (द) संयुक्त राष्ट्र संघ में विश्वास ( )
3. ' शील ' शब्द का भावार्थ है –
   (अ) मोहर (ब) लिफाफा बंद करना
   (स) आचरण (द) शिलालेख ( )
4. भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ के किस अंग की स्थाई सदस्यता की मांग कर रखी है –
   (अ) महासभा (ब) न्यास परिषद्
   (स) सुरक्षा परिषद् (द) अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय ( )
5. गुट निरपेक्ष आन्दोलन के संस्थापक थे –
   (अ) नेहरु (ब) नासिर
   (स) टीटो (द) ये सभी ( )

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. भारतीय विदेश नीति की दो विशेषताएँ बताइए ।
2. पंचशील के दो सिद्धान्त कौन से है ?
3. गुट निरपेक्ष आन्दोलन के संस्थापक सदस्य राष्ट्र कौनसे है ?
4. बांग्लादेश को स्वतंत्रता कब मिली ?
5. यू.एन.ओ का पूरा नाम बताइए ।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. पंचशील के सिद्धान्तों पर टिप्पणी लिखिए ।
2. उपनिवेशवाद क्या है ?
3. रंगभेद से आप क्या समझते हैं ?
4. गुट निरपेक्षता का अर्थ बताइए ?
5. सह– अस्तित्व के सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारत की विदेश नीति की प्रमुख विशेषताओं की व्याख्या कीजिए।
2. ' शक्ति गुटों के विध्रुवीकरण के पश्चात् गुटनिरपेक्षता की नीति अप्रासंगिक होती जा रही है। ' इस कथन के आलोक में गुटनिरपेक्षता की नीति का विवेचन कीजिए।

बहुचयनात्मक प्रश्नों के उत्तर

1. अ 2. ब 3. स 4. स
5. द

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

2. संयुक्त राष्ट्र संघ – संगठन एवम् विश्व शान्ति में योगदान
(United Nations Organisation - Contribution Towards World Peace & Security)

संयुक्त राष्ट्र संघ को आज के विश्व का प्रभावशाली अन्तर्राष्ट्रीय मंच कहा जा सकता है। आशावादी लोगों ने तो संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना के समय इसकी आत्मा में विश्व सरकार के दर्शन किए थे, लेकिन यह कोरा अतिवाद ही सिद्ध हुआ। संयुक्त राष्ट्र संघ के द्वितीय महासचिव रहे डेग हेमरसोल्ड ने इस सत्य को स्वीकार करने में कोताही नहीं बरती और कहा कि "संयुक्त राष्ट्र संघ" का गठन मानवता को स्वर्ग तक पहुँचाने के लिए नहीं बल्कि उसे नर्क से बचाने के लिए हुआ है।"

स्पष्ट है कि प्रथम विश्व युद्ध की विभिषिका से झुलसा विश्व आगत को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से राष्ट्र संघ के गठन को उद्यत हुआ था। किन्तु द्वितीय विश्व युद्ध के भीषण नरसंहार ने अवगत करा दिया कि राष्ट्र संघ एक अधूरा प्रयास था, जो द्वितीय विश्व युद्ध को नहीं रोक सका। तनावपूर्ण सम्बन्धों, विजेता और पराजित राष्ट्रों की परछाइयों में पुनः प्रयास हुए और संयुक्त राष्ट्र संघ के रूप में एक नया विश्व संगठन उदित हुआ। ब्रिटेन के पूर्व प्रधानमन्त्री चर्चिल ने चुटकी लेते हुए बताया कि हथियारों की लड़ाई से बेहतर है जुबानी जंग। यह बेहतर होगा कि एक ऐसा विश्व मंच बने जहाँ दुनिया के सारे देश एकत्रित हों और एक–दूसरे का सिर खाएं न कि सिर कलम करें।

संयुक्त राष्ट्र संघ के सृजन के बाद यद्यपि विश्व पटल पर भीषण युद्धों का संहारक नजारा लगातार देखने को मिला है, लेकिन युद्धों से इतर मसलों में संयुक्त राष्ट्र संघ ने प्रभावी मंच का दर्जा अवश्य प्राप्त कर लिया है। इसलिए अनेक कमजोरियों के बावजूद यह विश्व संस्था आज भी प्रासंगिक है।

दूसरे विश्व युद्ध के बाद अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति बनाए रखने तथा अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग स्थापित करने के लिए व्यापक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की आवश्यकता महसूस की गई। संगठन की धारणा के बारे में विभिन्न विचार थे। एक विचार के अनुसार, नया संगठन राष्ट्र संघ के समान ही होना चाहिए। दूसरा विचार था कि संगठन का स्वरूप युद्ध के बाद की अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति तथा अनुभवों से निश्चित होना चाहिए। यही विचार अन्त में स्वीकार किया गया।

संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना विश्व के पाँच प्रमुख राष्ट्र – अमरीका, रूस, चीन, फ्रांस तथा ब्रिटेन द्वारा समर्थन करने के बाद 24 अक्टूबर, 1945 को हुई थी। इस दिवस को स्थाई रूप से "संयुक्त राष्ट्र दिवस" कहा जाता है। संयुक्त राष्ट्र की महासभा की पहली बैठक 10 जून, 1946 को लंदन में हुई, जहाँ केवल तीन महिने पहले राष्ट्र संघ को समाप्त करने के लिए राष्ट्र संघ की असैम्बली की आखिरी बैठक हुई थी। संयुक्त राष्ट्र के चार्टर में 111 अनुच्छेद हैं, जिनमें इसके संगठन, शक्तियाँ तथा कार्यों का उल्लेख किया गया है।

1. संयुक्त राष्ट्र के लक्ष्य (Objective of UNO) –

संयुक्त राष्ट्र की प्रस्तावना में इसके उद्देश्य इस प्रकार उल्लेखित हैं –

- विश्व को युद्ध की विभिषिका से बचाना।
- मानव के मूल अधिकारों पुरूष, स्त्री तथा छोटे–बड़े राष्ट्रों सभी के लिए समान अधिकार स्थापित करना।
- परस्पर राष्ट्रों की होने वाली संधियों द्वारा लगाए बन्धनों के प्रति आदर तथा न्याय बनाए रखना।
- सभी की सामाजिक उन्नति तथा लोगों का बेहतर जीवन स्तर प्रदान करना।

2. संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्य (Aims of UNO) –

संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर के पहले अध्याय के पहले अनुच्छेद में संयुक्त राष्ट्र के निम्नलिखित उद्देश्य बताए गये हैं –

- अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवम् सुरक्षा बनाए रखना।
- आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा मानवीय, किसी भी प्रकार की अन्तर्राष्ट्रीय समस्या को सुलझाना।
- समान अधिकारों के लिए आदर एवम् मित्रतापूर्ण सम्बन्ध कायम करना।
- उपर्युक्त उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए कार्य को सुव्यवस्थित करने का केन्द्र बनना।

3. संयुक्त राष्ट्र के सिद्धान्त (Principles of UNO)–

संयुक्त राष्ट संघ एवम् इसके सदस्यों को निम्न काम करना होता है –

- सभी सदस्यों की प्रभुसत्ता का सम्मान।
- सदस्यों को चार्टर के अनुसार लगाए गए प्रतिबन्धों का अपनी इच्छा के अनुसार पालन करना होता है।
- जो राज्य इसके सदस्य नहीं है वे भी संयुक्त राष्ट्र संघ के सिद्धान्तों के अनुसार कार्य करें।
- झगड़ों का निपटारा शान्तिपूर्वक करेंगे।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

- राज्यों की भू–अखण्डता के विरुद्ध धमकी या बल प्रयोग से परहेज पर बल।
- सभी सदस्य संयुक्त राष्ट्र संघ को हर प्रकार से सहायता देंगे।
- संयुक्त राष्ट्र संघ किसी भी राज्य के घरेलू मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगा।

4. **संयुक्त राष्ट्र की सदस्यता (Membership of UNO)–** संयुक्त राष्ट्र के दो प्रकार के सदस्य हैं –

- वे सदस्य जो प्रारम्भ में ही संयुक्त राष्ट्र में शामिल हो गए थे तथा जिन्होंने सान–फ्रांसिस्को सम्मेलन में भाग लिया था, संयुक्त राष्ट्र के मूलतः 51 सदस्य थे।
- वे सदस्य जो संयुक्त राष्ट्र संघ में बाद में शामिल हुए।

इस प्रकार वे सभी शान्तिप्रिय राज्य जो वर्तमान चार्टर में दिए गये दायित्वों तथा नैतिक बन्धनों को मानते हैं – संयुक्त राष्ट्र संघ में शामिल हो सकते हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ में किसी भी देश को सदस्यता सुरक्षा परिषद् की सिफारिश पर महासभा द्वारा दी जाती है।

यदि कोई राज्य संयुक्त राष्ट्र के निर्देशों का बार–बार उल्लंघन करता है तो उसे सुरक्षा परिषद् की सिफारिश पर उसे महासभा द्वारा निकाला भी जा सकता है।

वर्तमान में संयुक्त राष्ट्र के कुल 193 सदस्य देश है। 193 वां सदस्य दक्षिण सूडान 2011 में बना।

2.1 संयुक्त राष्ट्र की महासभा (UN General Assembly) –

महासभा संयुक्त राष्ट्र संघ की वह संस्था है जिसे 'सारे विश्व की नगर बैठक' का नाम दिया जा सकता है। महासभा में संयुक्त राष्ट्र के सभी छोटे–बड़े सदस्यों के विचारों में सुना जाता है। संयुक्त राष्ट्र के सभी सदस्य महासभा के सदस्य होते हैं। कोई भी सदस्य राष्ट्र महासभा में 5 से अधिक प्रतिनिधि नहीं भेज सकता और प्रत्येक राज्य का महासभा मे केवल एक ही मत होता है। इसे ही संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा कहा जाता है। वास्तव में, यह महासभा कोई भी समस्या रखने तथा अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने वाला एक अन्तर्राष्ट्रीय मंच है।

2.2 महासभा की शक्तियाँ एवम् कार्य (Powers & Functions of General Assembly) –

महासभा के कार्य तथा कार्यक्षेत्र बड़ा विशाल स्वरूप वाला एवं बड़ा विविध है। उन्हें पाँच श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है–

1. अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति व सुरक्षा से सम्बन्धित मामलों पर विचार–विमर्श
2. निरीक्षण कार्य
3. बजट पास करना
4. चुनाव सम्बन्धी कार्य
5. UNO चार्टर में संशोधन

2.3 महासभा का संगठन (Organisation of General Assembly) –

महासभा संयुक्त राष्ट्र संघ की शीर्ष संस्था है तथा इसके अपने ही नियम तथा प्रक्रियाएं हैं। यह एक ऐसा अंग है जहाँ न तो मेजबान होते हैं तथा न मेहमान।

महासभा एक वर्ष के लिए अपना सभापति चुनती है। वह अपनी व्यक्तिगत योग्यता के आधार पर चुना जाता है। उसे गोपनीय मत द्वारा चुना जाता है। बैल्जियम के मि. पॉल स्पूक महासभा के प्रथम सभापति थे तथा उन्होंने 10 जनवरी, 1946 को महासभा की प्रथम बैठक की अध्यक्षता की थी। सामान्यतः अध्यक्ष किसी छोटे राष्ट्र से ही लिया जाता है। अध्यक्ष की सहायता के लिए महासभा में चीफ डि–कैबिनेट होता है। यह व्यक्ति महासभा के अफसरों का अवर सचिव होता है। महासभा के 17 उपाध्यक्ष होते हैं, जो विभिन्न क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं। 17 उपाध्यक्षों तथा 7 स्थाई समितियों के सभापतियों को मिला कर एक महासमिति बनी होती है।

2.4 महासभा के सत्र (Sessions of General Assembly) –

महासभा की बैठक सितम्बर के तीसरे मंगलवार को नियमित रूप से होती है। सुरक्षा परिषद् के महासभा या संयुक्त राष्ट्र के बहुमत सदस्यों की प्रार्थना पर इसका विशेष सत्र भी बुलाया जा सकता है। महासभा का सभापति यद्यपि एक वर्ष के लिए चुना जाता है किन्तु यदि विशेष सत्र बुलाया गया है तो फिर हर सत्र के लिए अपना अध्यक्ष चुनती है।

सन् 1950 में स्थापित एक विशेष प्रक्रिया के अन्तर्गत यदि सुरक्षा परिषद् में विटो के प्रयोग से शान्ति की पुनर्स्थापना में रूकावट पैदा होती है तब 24 घण्टे में महासभा की विशेष बैठक हो सकती है तथा विश्व शान्ति के लिए उपयुक्त निर्णय ले सकती है, जिसे सुरक्षा परिषद् भी मानने के लिए बाध्य होती है।

2.5 महासभा का मूल्याँकन (Appreciation of General Assembly) –

महासभा की भूमिका का मूल्याँकन करते समय स्टार्क ने कहा था कि "अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवम् सुरक्षा के प्रश्नों पर सभा व्यावहारिक रूप से मुख्य स्वरूप ग्रहण करने के योग्य हो गई है, यह सचमुच विलक्षण है"। सन् 1950 में पारित शान्ति के लिए संगठन का प्रस्ताव को अपनाने के बाद महासभा की शक्तियों एवम् भूमिका में आश्चर्यजनक परिवर्तन हुए हैं। इस

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

प्रस्ताव ने महासभा को संयुक्त राष्ट्र की सामूहिक सुरक्षा का संरक्षक बना दिया है। इस प्रस्ताव में लिखा गया है कि यदि सुरक्षा परिषद् अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति को खतरा होने, शान्ति भंग होने तथा आक्रामण जैसी किसी भी स्थिति में अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवम् सुरक्षा बनाए रखने में असफल रहती है तो महासभा अपने सदस्यों से उचित सिफारिश करने के लिए मामले को एकदम हाथ में ले लेगी, ताकि वे सामूहिक प्रयत्न कर सकें। इस प्रकार "शान्ति के लिए संगठित प्रस्ताव" के परिणामस्वरूप, महासभा की स्थिति पर्याप्त सुदृढ़ हुई है। परन्तु यह केवल सिद्धान्त रूप में ही दिखाई देता है, वास्तविक व्यवहार में महासभा की "शान्ति के लिए संगठित प्रस्ताव" के अन्तर्गत कार्य करते हुए 2/3 बहुमत से मुश्किल से ही प्रस्ताव पारित हुए हैं। लेकिन निश्चय ही महासभा कि यही शक्ति उसे एक असाधारण दर्जा अवश्य ही देती है।

सुरक्षा परिषद्
(Security Council)

सुरक्षा परिषद् संयुक्त राष्ट्र की कार्यकारिणी समिति है जिसके कन्धे पर अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवम् सुरक्षा को बनाए रखने का उत्तरदायित्व है। सुरक्षा परिषद् पर ही संयुक्त राष्ट्र संघ की सफलता एवम् असफलता का अन्तिम उत्तरदायित्व है क्योंकि यह ही महासभा के निर्णयों को तथा संयुक्त राष्ट्र के चार्टर को लागू करने से सम्बन्ध रखती है। यदि महासभा निर्देशी अंग है तो सुरक्षा परिषद् राष्ट्र संघ का निर्णय क्रियान्वयन विभाग है। जी.जे. मैंगॉन ने ठीक ही कहा है, "अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध को रोकने के लिए न तो सारे विश्व में, न ही इतिहास में कहीं भी इस तरह का शक्तिशाली अंग मिलता है। बाद के वर्षों में अनेक बार सुरक्षा परिषद् ने अपनी उपयोगिता भी सिद्ध की है।

2.6 गठन (Composition)–

सुरक्षा परिषद् में संयुक्त राष्ट्र के 15 सदस्य हैं: चीन, फ्रांस, अमरीका, रूस, इंग्लैण्ड पाँच स्थाई सदस्यों के रूप में तथा 10 महासभा द्वारा दो वर्ष के लिए चुने गए अस्थाई सदस्य। सुरक्षा समिति के सदस्य चुनते समय महासभा की भौगोलिक परिस्थितियों को ध्यान में रखना पड़ता है। इससे यह निश्चित हो जाता है कि सुरक्षा समिति में सभी क्षेत्रों को विश्वव्यापी प्रतिनिधित्व मिल गया है। सुरक्षा परिषद में सदस्यता प्रदान करते समय महासभा अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा में उस राष्ट्र के योगदान को भी ध्यान में रखती है।

2.7 शक्तियाँ एवम् कार्य (Powers & Functions)–

संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद् विश्व शान्ति एवम् सुरक्षा की सर्वोच्च संरक्षक है। इसे विश्व शान्ति एवम् सुरक्षा बनाए रखने का विशेष उत्तरदायित्व सौंपा गया है। यह संयुक्त राष्ट्र के सिद्धान्तों एवम् उद्देश्यों से भी बंधी है, इसलिए यह अपनी इच्छानुसार कार्य नहीं कर सकती है। इसके सदस्य, "वर्तमान चार्टर के अनुसार सुरक्षा समिति के निर्णयों को स्वीकार करने तथा लागू करने की स्वीकृति देते हैं।"

1. अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति व सुरक्षा से सम्बन्धित निर्णय लेने की शक्तियाँ
2. अपने निर्णयों के निशस्त्र क्रियान्वयन की शक्तियाँ
3. नए सदस्य, महासचिव व अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के न्यायाधीश के चुनाव की शक्तियाँ
4. विवादों का शान्तिपूर्ण निपटारा

2.8 आलोचनात्मक मूल्यांकन (Critical Evaluation) –

सुरक्षा परिषद् अपनी विस्तृत शक्तियों के आधार पर संयुक्त राष्ट्र संघ का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण तथा अतिसम्वेदनशील अंग माना गया है, किन्तु 1950 के बाद यह सामान्यतः इस आधार पर आलोचना का केन्द्र बन गई कि संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के अन्तर्गत जिस भूमिका को निभाने की जिम्मेदारी इसके कन्धों पर थी, उसे वह पूरी तरह निभा नहीं पाया। पामर तथा पर्किन्स के अनुसार, "सुरक्षा परिषद् की संयुक्त राष्ट्र की केन्द्रीय एजेन्सी के रूप में कल्पना की गई थी, परन्तु यह अपनी अपेक्षित भूमिका नहीं निभा पाई।"

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय
(International Court of Justice)

चार्टर के अनुच्छेद 92 में कहा गया है कि अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय संयुक्त राष्ट्र का मुख्य अंग है। जिसका मुख्यालय हेग में है। संयुक्त राष्ट्र के सदस्यों को पूरी आजादी देता है कि वे अपने झगड़ों का निपटारा न्यायालय के अतिरिक्त दूसरी अदालतों में कर सकते हैं। इसके लिए उन्हें एक समझौता करना पड़ेगा। संयुक्त राष्ट्र के सदस्य अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के उन विषय पर निर्णयों को, जिनमें वे स्वयं भी शामिल होते हैं, मानने के लिए प्रतिबद्ध होते हैं।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

2.9 संरचना (Structure)–

संयुक्त राष्ट्र के सभी सदस्य वस्तुतः न्यायालय के सदस्य होते हैं। सुरक्षा परिषद की सिफारिशों पर कार्यरत महासभा द्वारा प्रत्येक विषय पर निर्धारित शर्तों के अनुसार वे राज्य भी अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के संविधान में शामिल हो सकते हैं जो इसके सदस्य नहीं होते। नई सदस्यता के लिए निम्नांकित शर्तें लगाई जाती हैं –

1. संविधान तथा न्यायालय के सम्बन्ध में दूसरे प्रतिबन्धों को स्वीकार करना।
2. महासभा द्वारा अनुमानित व्यय में अपना योगदान देना।

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में 15 न्यायाधीश होते हैं जो कि वे अन्तर्राष्ट्रीय कानून में मान्य योग्यता के विधिवेत्ता या उच्च अदालती कार्यालयों में नियुक्ति के लिए अपने–अपने देशों में आवश्यक योग्यता वाले लोगों में से उच्च नैतिक चरित्र के मालिक होंगे। उन्हें राष्ट्रीयता का विचार किये बिना चुना जाएगा। इसके अलावा कुछ तदर्थ न्यायाधीश भी होते हैं।

न्यायाधीशों का चुनाव –

महासभा तथा सुरक्षा परिषद एक–दूसरे से बिल्कुल स्वतन्त्र न्यायालय के सदस्य बनने के लिए आवश्यक उम्मीदवारों की नियुक्ति करते हैं। वे व्यक्ति जो सुरक्षा तथा महासभा में पूर्ण बहुमत प्राप्त कर लेते हैं, निर्वाचित घोषित कर दिये जाते हैं।

न्यायाधीशों का कार्यकाल –

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के न्यायाधीशों का कार्यकाल 9 वर्ष का होता है तथा हर 3 वर्ष के बाद 5 न्यायाधीश सेवानिवृत्त हो जाते हैं। न्यायाधीश पुनः भी चुनाव लड़ सकते हैं। हालाँकि राष्ट्रीय सरकारें न्यायाधीशों को मनोनीत करने तथा उनके चुनाव में भाग लेती हैं, परन्तु न्यायाधीश न तो अपने देश के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करते हैं, न ही अपनी सरकार के निर्देशों के अनुसार। भारत के जस्टिस दलवीर भंडारी वर्तमान में अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के न्यायाधीश है।

2.10 शक्तियाँ एवम् क्षेत्राधिकार (Powers & Jurisdiction) –

1. **ऐच्छिक क्षेत्राधिकार (Optional Jurisdiction)** –

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के पास राज्यों के मुकद्दमों के सम्बन्ध में ऐच्छिक क्षेत्राधिकार है। इसका अर्थ है कि ऐसे मुकद्दमें राज्य किसी समझौते के अन्तर्गत इसमें लाते हैं। किसी भी राज्य पर यह प्रतिबन्ध नहीं है कि वह अपने मुकद्दमें इसी न्यायालय में लाये।

2. **अनिवार्य क्षेत्राधिकार (Compulsory Jurisdiction)**–

अनुच्छेद 30 के अनुसार, राज्य निम्नलिखित प्रकार के मुकद्दमों में इसके क्षेत्राधिकार को अनिवार्य मान सकते हैं –

- सन्धि की व्याख्या;
- अन्तर्राष्ट्रीय कानून सम्बन्धी प्रश्न;
- कोई भी वास्तविकता जो स्थापित हो चुकी हो, अन्तर्राष्ट्रीय दायित्व की शाखा बन जाएगी;
- अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिबन्ध को भंग करने की स्थिति में क्षतिपूर्ति का स्वरूप तथा सीमा।

3. **सलाहकारी क्षेत्राधिकार (Advisory Jurisdiction)** –

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के पास महासभा, सुरक्षा समिति तथा महासभा द्वारा स्थापित की गई दूसरी विशिष्ट एजेन्सियों को कानूनी प्रश्नों पर सलाह देने की भी शक्ति है। अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की सलाह लिखित निवेदन द्वारा ली जाती है। न्यायालय स्वयं ही अपना मत प्रकट नहीं करता। इसके अतिरिक्त, इसकी सलाह को, सलाह मांगने वाली एजेन्सी द्वारा मानना आवश्यक नहीं होता। इसका मत सलाह ही होता है, निर्णय नहीं।

2.11 न्यास परिषद् (Trusteeship Council) –

संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के अनुच्छेद 7 में संयुक्त राज्य की न्यास परिषद् इसके छः प्रमुख अंगों में से है। यद्यपि इसे संयुक्त राष्ट्र में सम्मानित जगह प्राप्त है फिर भी यह एक अधीनस्थ अंग है क्योंकि महासभा के सहायक अंग के रूप में यह असामरिक ट्रस्ट भूक्षेत्रों के प्रशासन का निरीक्षण तथा सामरिक क्षेत्रों के मामले में सुरक्षा समिति के सहायक अंग के रूप में कार्य करती है। 1994 के बाद से इसका वैधानिक अस्तित्व तो है, किंतु सक्रिय भूमिका समाप्त हो गई है।

2.12 योगदान (Contribution) –

न्यास परिषद ने राजनीतिक, आर्थिक एवम् सामाजिक क्षेत्रों में काफी विकास किया है। समिति ने अपना अधिक ध्यान इन प्रदेशों के राजनीतिक विकास की ओर दिया है। समिति ने इन प्रदेशों के लोगों को ऐसे कदम उठाने के लिए प्रेरित किया है जिनसे उनके अन्दर राजनीतिक जागृति पैदा हो। आर्थिक क्षेत्र में समिति ने विस्तृत आर्थिक योजना की आवश्यकता पर बल दिया है। समिति ने दौरों के दौरान काफी कुछ जाना है तथा कुछ आर्थिक समस्याओं पर सुझाव भी दिए हैं। इसी प्रकार समिति ने प्रवासी मजदूरों जैसे सामाजिक महत्त्वपूर्ण मामलों को सुलझाने में भी उन्नति की है। आई.सी.ओ. के विशेषज्ञों ने उनके इन प्रयत्नों में उन्हें

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

सहायता प्रदान की है। इसके अतिरिक्त 11 में से 10 इस तरह के भू–क्षेत्रों ने स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली है या अधिदेश शासन की व्यवस्था के कारण दूसरे राज्यों में मिल गए हैं।

2.13 आर्थिक तथा सामाजिक परिषद् (Economic & Social Council)

संयुक्त राष्ट्र का उद्देश्य मात्र युद्ध रोकना तथा शान्ति बनाए रखना ही नहीं बल्कि राज्यों के आर्थिक तथा सामाजिक कल्याण की ओर भी ध्यान देना है। संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के निर्माता इस सच्चाई से भली–भाँति परिचित थे कि विश्व में एक जैसी सामाजिक एवम् आर्थिक उन्नति के बिना अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा की स्थापना नहीं की जा सकती। चार्टर के अनुच्छेद एक के अनुसार, "संयुक्त राष्ट्र के विभिन्न उद्देश्यों में से एक उद्देश्य है, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा लोकोपकारी स्वरूप की समस्याओं को सुलझाने के लिए राष्ट्रों के बीच सहयोग प्राप्त करना तथा जाति, भाषा, लिंग तथा धर्म के उल्लेख बिना मानव के मूल अधिकारों तथा स्वतन्त्रताओं के लिए लोगों में सम्मान की भावना पैदा करना।"

2.14 सचिवालय तथा महासचिव (Secretariat & General Secretary)

सचिवालय संयुक्त राष्ट्र के मुख्य अंगों में से एक है। यह संयुक्त राष्ट्र का मुख्यालय है जो संयुक्त राष्ट्र के अन्य संगठनों या एजेन्सियों द्वारा बनाए गए प्रोग्रामों तथा नीतियों को प्रशासित एवम् समन्वित करता है। प्रशासनिक मुखिया होने के नाते महासचिव के कितने ही सहायक महासचिव, विशेषज्ञ, प्रशासन अधिकारी तथा क्लर्क होते हैं। सचिवालय का प्रभारी होने के नाते महासचिव का मुख्य कार्य संयुक्त राष्ट्र के रिकार्ड रखना तथा उन कार्यों को करना है जिनको चार्टर द्वारा प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप में किसी भी अंग को न दिए गए हों। सचिवालय का स्टाफ महासभा द्वारा स्थापित नियमों के आधार पर महासचिव द्वारा नियुक्त किया जाता है।

2.15 संयुक्त राष्ट्र संघ से सम्बन्धित विशेष एजेन्सियाँ (Special Agencies of UNO)

अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण में संयुक्त राष्ट्र संघ के साथ–साथ कई एक विशेष एजेन्सियाँ सक्रिय और प्रभावशाली अन्तर्राष्ट्रीय कार्यकर्त्ताओं के रूप में कार्य कर रही हैं। इनमें बहुत सी एजेन्सियाँ संयुक्त राष्ट्र संघ के साथ विशेष समझौतों के आधार पर सम्बन्धित हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में वर्णित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए यह एजेन्सियाँ भी महत्त्वपूर्ण भूमिकाएं निभा रही है। इनमें से कुछ प्रमुख विशेष एजेन्सियाँ निम्नांकित हैं –

यूनेस्को (UNESCO) UN Educational, Scientific and Culturd

यूनेडो (UNIDO)

डब्ल्यू.एच.ओ. (WHO) The World Health Organization

डब्ल्यू.आई.पी.ओ. (WIPO) The World Intellectud Project Organization

यू.पी.यू.) (UPU) The Universal Postal Union

आई.टी.यू. (ITU) The International Telecommunication Union

आई.ए.ई.ए. (IAEA) The International Atomic Energy Agency

एफ.ए.ओ. (FAO) The Food and Agriculture Organization of The Union

आई.एफ.ए.डी. (IFAD) The International Fund for Agricultural Development

आई.सी.ए.ओ. (ICAO) The International Civil Aviation Organization

यू.एन.आई.डी.ओ. (UNIDO) The Un Indastrial Development Organization

आई.एम.ओ. (I.M.O.) International Maritime Organization

डब्ल्यू.टी.ओ. (W.T.O.) World Trade Organization

2.16 संयुक्त राष्ट्र की भूमिका (Role of UNO) –

विश्व शान्ति तथा सुरक्षा को बनाये रखना आज के युग की सर्वोपरि आवश्यकता है। दूसरे विश्व युद्ध, जो कि पहले विश्व युद्ध के केवल 20 वर्ष बाद ही आरम्भ हो गया था, की समाप्ति के समय सभ्य राज्यों ने विश्व शान्ति और सुरक्षा की रक्षा के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना को एक आवश्यक और उत्तम उपकरण माना तथा 24 अक्टूबर, 1945 के दिन संयुक्त राष्ट्र की स्थापना की।

संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर की प्रस्तावना में ही यह घोषणा की गई कि इस अन्तर्राष्ट्रीय संगठन में शामिल हुए लोगों का लक्ष्य है, आने वाली पीढ़ीयों को युद्ध की त्रासदी से बचाना। इस चार्टर में संयुक्त राष्ट्र के सामने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में शान्ति और सुरक्षा को बनाए रखने को प्राथमिकता दी गई। युद्ध को गैर–कानूनी क्रिया बतलाया गया तथा युद्ध को रोकने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ को निःशस्त्रीकरण की प्राप्ति, उपनिवेशवाद की समाप्ति, विभिन्न राष्ट्रों में शान्तिपूर्ण सह–अस्तित्व तथा सहयोग को विकसित करने तथा विश्व शान्ति एवम् सुरक्षा की रक्षा करने के उत्तरदायित्व सौंपे गये।

इस वास्तविकता का घोषणा–पत्र की विषय–वस्तु में भली–भाँति पता चला जाता है। इसमें 'अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा' शब्द 32 बार प्रयोग किए गए हैं। घोषणा–पत्र के प्रथम अनुच्छेद में, संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्य के बारे में बतलाते हुए,

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवम् सुरक्षा को संयुक्त राष्ट्र की मुख्य प्राथमिकता बतलाया गया है। इस अनुच्छेद के अनुसार, "अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवम् सुरक्षा कायम रखना तथा इसके लिए प्रभावपूर्ण सामूहिक प्रयत्नों द्वारा शान्ति के संकटों को रोकना और समाप्त करना तथा आक्रमण एवम् शान्ति–भंग की अन्य चेष्टाओं को दबाना एक अन्तर्राष्ट्रीय उद्देश्य है।

संयुक्त राष्ट्र संघ ने इन सभी उत्तरदायित्वों को निभाने का भरसक प्रयास अपने अस्तित्व के पिछले लगभग सात दशकों में किया है। निःशस्त्रीकरण, परमाणु तथा निःशस्त्रीकरण की दिशा में इसने कई एक संस्थागत उपक्रम किये हैं और कर रहा है। विभिन्न देशों में आपसी मित्रता तथा सहयोग स्थापित करने में इसने एक अन्तर्राष्ट्रीय मंच की तरह कार्य किया है। इसने विभिन्न देशों तथा उनके नागरिकों में सामाजिक–आर्थिक– सांस्कृतिक सहयोग का विकास करने का सराहनीय कार्य किया है। नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की स्थापना करने तथा हिन्द महासागर को शान्ति का क्षेत्र घोषित करने, परमाणु निःशस्त्रीकरण तथा शस्त्र–नियन्त्रण के लिए कार्य करने, परतन्त्र उपनिवेशों को स्वतन्त्रता प्रदान करने, नस्लवाद की समाप्ति करने, दक्षिण अफ्रीका में प्रजाति–पार्थक्य की नीति को समाप्त करने आदि कई एक अन्य अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान के लिए प्रस्ताव पास किये हैं। उपनिवेशवाद तथा साम्राज्यवाद की समाप्ति के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ ने विशेष तौर पर सराहनीय भूमिका अदा की है।

2.17 विश्व शान्ति व सुरक्षा तथा संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रयास (World Peace & UN Efforts)

1945 से लेकर अब तक कई बार ऐसे अवसर पैदा हुए जिनमें स्थानीय युद्ध विश्व युद्ध अथवा क्षेत्रीय युद्धों में परिवर्तित हो सकते थे। लेकिन संयुक्त राष्ट्र ने सामूहिक सुरक्षा कार्यवाही के द्वारा ऐसे युद्धों को फैलने से रोका। इसने सैनिक कार्यवाही तथा अन्य साधनों द्वारा जो इसके चार्टर के सातवें अध्याय में वर्णित हैं, का प्रयोग करके विश्व में शान्ति की स्थापना के लिए कार्यवाही की। कई एक जटिल समस्याओं को वार्तालाप तथा अन्य शान्तिपूर्ण साधनों के द्वारा हल करने की पहल इस अन्तर्राष्ट्रीय संगठन ने की और आज भी कर रहा है। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा विश्व शान्ति की सुरक्षा के लिए इन समस्याओं के हल हेतु प्रयास किए गए –

1. ईरान समस्या
2. यूनान विवाद
3. इण्डोनेशिया विवाद
4. कश्मीर विवाद
5. दक्षिण अफ्रीका में नस्लवाद तथा संयुक्त राष्ट्र संघ
6. कांगो संकट

2.18 संयुक्त राष्ट्र संघ की प्रासंगिकता (Relevance of UNO) –

यह ठीक है कि शीत युद्ध के समय 1945–70 तथा 1980–89 के दौरान संयुक्त राष्ट्र संघ कई विवाद का हल उचित समय पर नहीं कर सका। ईरान–इराक युद्ध दस वर्ष तक चलता रहा। अफगानिस्तान में सोवियत हस्तक्षेप भी लगभग 10 वर्ष तक बना रहा। शीत युद्ध काल में लगभग 100 प्रमुख विवाद हुए जिनमें लगभग 2 करोड़ लोग मारे गये। संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद् में 279 बार स्थाई सदस्यों ने वीटो शक्ति का प्रयोग कर संयुक्त राष्ट्र को कार्य करने से रोका।

आजकल भी संयुक्त राज्य अमरीका संयुक्त राष्ट्र संघ पर शीत युद्ध की समाप्ति, सोवियत संघ के विघटन, यूरोप के कुछ देशों में अस्थिरता, खाड़ी युद्ध में सफलता के बाद सुदृढ़ राष्ट्रों को संयुक्त राष्ट्र संघ व्यवस्था को संयुक्त रूप से संचालित करने के लिए सहयोग करना चाहिए। लेकिन इसके लिए सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि संयुक्त राष्ट्र के सबसे शक्तिशाली अंग, सुरक्षा परिषद् का लोकतान्त्रीकरण, विकेन्द्रीकरण एवम् शक्तिकरण किया जाए। संयुक्त राष्ट्र संघ आज 193 देशों का संगठन है। लेकिन इसकी सुरक्षा परिषद् में विश्व के सभी महाद्वीपों एवम् प्रमुख शक्तियों को उचित प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं है। इस बात की परम आवश्यकता है कि इस संस्था की सदस्य संख्या में वृद्धि की जाए और इसमें भारत, जापान, जर्मनी तथा ब्राजील को स्थाई सदस्यता प्रदान की जाए। इसके साथ ही गैर–स्थाई सदस्यों की संख्या में भी वृद्धि की जानी चाहिए। वास्तव में इस बात की आवश्यकता है कि संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् की सदस्यता को 15 से बढ़ाकर कम से कम 25 अथवा 27 अवश्य किया जाए। आज के अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था की यह एक स्वाभाविक आवश्यकता है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु –

- संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना 24 अक्टुबर 1945 को हुई
- संयुक्त राष्ट्र संघ में 111 अनुच्छेद है।
- संयुक्त राष्ट्र संघ स्थापना का उद्देश्य –
  - अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवम् सुरक्षा बनाए रखना।
  - आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा मानवीय, किसी भी प्रकार की अन्तर्राष्ट्रीय समस्या को सुलझाना।
  - समान अधिकारों के लिए आदर एवम् मित्रतापूर्ण सम्बन्ध कायम करना।
  - उपर्युक्त उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए कार्य को सुव्यवस्थित करने का केन्द्र बनना।
- संयुक्त राष्ट्र संघ की प्रमुख एजेन्सियाँ – यूनेस्को, विश्व

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

बैंक, विश्व स्वास्थ्य संगठन, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा संगठन, युनिसेफ आदि।

•

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्यों से कौनसा कथन मेल नहीं खाता है –
   (अ) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति व सुरक्षा बनाए रखना।
   (ब) विश्व को युद्धों से बचाना।
   (स) भारत–पाकिस्तान के मध्य व्यापार की देख–रेख।
   (द) अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को सुलझाने की पहल। ( )
2. संयुक्त राष्ट्र संघ के संस्थापक सदस्यों की संख्या थी –
   (अ) 193 (ब) 51
   (स) 15 (द) 05 ( )
3. इनमें से कौनसा राष्ट्र सुरक्षा परिषद् का स्थाई सदस्य है –
   (अ) फ्रांस (ब) भारत
   (स) भारत (द) आस्ट्रेलिया ( )
4. शिक्षा व संस्कृतियों के प्रसार हेतु संयुक्त राष्ट्र संघ एजेन्सी है –
   (अ) विश्व बैंक (ब) विश्व स्वास्थ्य संगठन
   (स) यूनेस्को (द) अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ( )
5. अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में वर्तमान में भारत के कौन न्यायाधीश चुने गए है –
   (अ) जस्टिस दलवीर भंडारी
   (ब) ज. डॉ. नगेन्द्रसिंह
   (स) ज. विनीत कोठारी
   (द) ज. अमरसिंह गोदारा ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना कब हुई ?
2. अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय का मुख्यालय किस शहर में है ?
3. सुरक्षा परिषद् में अस्थाई सदस्यों की संख्या कितनी है ?
4. संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् के स्थायी सदस्यों की विशेष शक्ति का क्या नाम है ?
5. वर्तमान में यूएन महासचिव कौन है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रमुख उद्देश्य बताइए।
2. महासभा के तीन प्रमुख कार्य क्या है ?
3. सुरक्षा परिषद् के पाँच स्थाई सदस्यों के नाम लिखिए।
4. न्यास परिषद् क्या काम करता है ?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना के मुख्य उद्देश्य व उसकी वर्तमान प्रासंगिकता पर प्रकाश डालिए।
2. संयुक्त राष्ट्र संघ के संगठनात्मक ढाँचे पर एक लेख लिखिए।
3. सुरक्षा परिषद् का गठन अन्तर्राष्ट्रीय शांति व सुरक्षा के लिए किया गया था किन्तु आज वह महाशक्तियों का आभामंडल बनकर रह गई है। क्या आप इस कथन से सहमत है ?समालोचनात्मक विवेचन कीजिए।

बहुचयनात्मक प्रश्नों की उत्तरमाला

1. स 2. ब 3. अ 4. स
5. अ

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

3. भारत के पड़ौसी देशों से सम्बन्ध – पाकिस्तान, चीन और नेपाल
(India's Relations With Its Neighbours-Pakistan, China & Nepal)

भारत के पड़ोसी देशों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और बेहद संवेदनशील सम्बन्ध वर्तमान समय में चीन, नेपाल और पाकिस्तान के साथ ही बने हुए हैं। यद्यपि भारत की विदेश नीति का मूल तत्व है पड़ोसी मुल्कों के साथ सद्भाव, शान्ति और मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रखे जाएँ। किन्तु कहा जाता है कि मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों का निर्वहन करने के लिए दोनों पक्षों की परस्पर सहमति और सद्इच्छा का होना आवश्यक है। इस दृष्टि से भारत अपनी सीमाओं से सटे पड़ोसियों के साथ सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्धों का हिमायती तो अवश्य है किन्तु अपनी सीमाओं में घुसपैठ, अतिक्रमण और देश के अन्दरूनी मामलों में हस्तक्षेप की कीमत पर चुप नहीं बैठ सकता। इसीलिए जब कभी पड़ोसी राष्ट्र अपनी हदों को पार करने लगते हैं तो भारत द्वारा प्रत्युत्तर देना ही पड़ता है। स्वतन्त्रता के तुरन्त बाद यद्यपि भारत के चीन और नेपाल से परस्पर सम्बन्ध सामान्य और मैत्रीपूर्ण ही थे, लेकिन बाद में चीन द्वारा आकस्मिक रूप से भारतीय सीमाओं में घुसपैठ (सन् 1962) और सीमा का अतिक्रमण दोनों देशों के बीच भारी कड़वाहट का कारण बना। नेपाल में वहाँ के राजा वीरेन्द्र वीर विक्रम शाह की सपरिवार हत्या के बाद उपजे हालात थोड़े सुधरे अवश्य लेकिन अब भी पूर्णरूपेण ठीक नहीं कहे जा सकते। कभी भारत का हिस्सा रहे पड़ोसी मुल्क पाकिस्तान के साथ संबंध सच्चे अर्थों में कभी भी मैत्रीपूर्ण नहीं रहे। पाकिस्तान ने 14 अगस्त, 1947 को अपने गठन के कुछ समय बाद ही भारत के अभिन्न अंग कश्मीर पर आक्रमण कर एक भाग पर अनाधिकृत रूप से कब्जा कर लिया, जिसे पाकिस्तान ने आज तक खाली नहीं किया है।

भारतीय विदेश नीति का अध्ययन करने से यह बात साफ हो जाती है कि भारत को निरन्तर जटिल चुनौतियाँ मिल रही हैं। आजादी के तत्काल बाद ही पाकिस्तान द्वारा कश्मीर विवाद प्रकट किया गया और इसी कारण एक युद्ध का विस्फोट भी। तबसे आज तक उसके साथ तीन और युद्ध लड़े जा चुके हैं जिनके बावजूद कश्मीर विवाद निपटा नहीं है। इसी तरह चीन और नेपाल के साथ भी अनेक पेचिदगियाँ उभरी हैं।

पड़ोसी देशों के साथ सदियों पुरानी मैत्री भी सीमा विवाद और सैनिक टकराव के कारण उलझ रही हैं। बड़ी शक्तियों के साथ अपने सम्बन्धों को परस्पर लाभप्रद ढंग से बनाए रखना आसान नहीं रहा। इन सब के अलावा अपने छोटे पड़ोसियों, नेपाल तथा श्रीलंका के साथ भी उभयपक्षीय सम्बन्धों में बीच–बीच में तनाव पैदा होने से राष्ट्रीय सुरक्षा को जोखिम का सामना करना पड़ा है। श्रीलंका में साम्प्रदायिक गृह–युद्ध हो या बांग्लादेश का संघर्ष अथवा भूमिबद्ध नेपाल को अभयारण्य के रूप में इस्तेमाल कर भारत के अलगाववाद को प्रोत्साहित करना, ये सभी मुद्दे भारतीय विदेश नीति का सरदर्द बनते रहे हैं।

इस प्रकार भारत के उक्त तीनों देशों के साथ सम्बन्धों का व्यापक सन्दर्भ है, जिस पर विस्तृत अध्ययन हेतु आगे उल्लेख किया गया है।

3.1 भारत पाकिस्तान सम्बन्ध (India & Pakistan Relations)

एशिया महाद्वीप में ब्रिटिश उपनिवेशवाद की समाप्ति के साथ एक नये संघर्ष की शुरुआत हुई, जिसके परिणामस्वरूप इस क्षेत्र में 'शान्ति' शब्द का लोप ही हो गया। यह संघर्ष है दो पड़ौसी देशों का संघर्ष, जिसे भारत–पाक संघर्ष के नाम से जाना जाता है, जिसके मूल में पाकिस्तान की आतंकवादियों को सत्ता समर्थन और अनुचित परमाणु प्रसार की गतिविधियाँ हैं।

भारत–पाक संघर्ष की प्रकृति को सही रूप में समझने के लिए भारत विभाजन में निहित तथ्यों का अध्ययन आवश्यक है। विभाजन की घटना ने दो समुदायों के बीच घृणा, अविश्वास और वैमनस्य को उजागर किया है। विभाजन के बाद पाकिस्तान द्वारा सभी समस्याओं के स्वयं ही सुलझ जाने का जो सपना देखा गया था वह वास्तविकता में स्वयं पाकिस्तान ने ही उलझा दिया। पाकिस्तान ने अपने जन्म से ही समस्याएं अत्यधिक उलझाई और इस महाद्वीप में स्थाई रूप से संघर्ष का सूत्रपात कर दिया।

3.2 भारत–पाक सम्बन्धों को प्रभावित करने वाली समस्याएं (Problematic Areas of India Pakistan Relations) –

भारत–पाक सम्बन्धों को प्रभावित करने वाली समस्याएं मुख्यतः तीन प्रकार की हैं –

1. विभाजन से उत्पन्न होने वाली समस्याएं
2. भारत विरोधी नीति से उत्पन्न होने वाली समस्याएं और आतंकवाद को खुला समर्थन
3. पाकिस्तान की सीटो, सेण्टों की सदस्यता तथा भारत की घेराबन्दी और चीन, अमेरिका के साथ भारत विरोधी समूह बनाना।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

आजादी के साथ ही भारत–पाक में सैन्य तनाव को दर्शाने वाले तथ्य –

1. भारत और पाकिस्तान विकास कार्यों पर अपने सकल घरेलू उत्पाद का क्रमशः 6.2 प्रतिशत तथा 3.8 प्रतिशत व्यय।
2. भारत और पाकिस्तान अपनी सैन्य तैयारियों पर अपने सकल घरेलू उत्पाद का क्रमशः 2.9 प्रतिशत तथा 4.7 प्रतिशत व्यय।
3. पाकिस्तान जेहाद और आतंकवाद से जुड़ी गतिविधियों पर अपने सकल घरेलू उत्पाद का 8 प्रतिशत से अधिक व्यय करता है, जबकि भारत का इस क्षेत्र में व्यय शून्य है।
4. पाकिस्तान द्वारा भारत में तस्करी के जरिए होने वाले अवैध व्यापार द्वारा अनुचित घुसपैठ।
5. तनावपूर्ण सम्बन्धों के कारण भारत को सियाचिन सहित सीमाओं की हिफाजत पर प्रतिवर्ष लगभग 9 हजार करोड़ रूपये का अतिरिक्त व्यय करना पड़ रहा है।
6. कश्मीर के एक भाग पर पाकिस्तान का अनाधिकृत कब्जा।

3.3 विभाजन से उत्पन्न होने वाली समस्याएं –

भारत को आशा थी कि देश के विभाजन के बाद शान्ति और आपसी मेल–जोल को बढ़ावा मिलेगा और दोनों देशों में शान्ति, सद्भावना और सहयोग के वातावरण से आर्थिक विकास के लम्बे और कठिन कार्य आरम्भ हो जायेगें। लेकिन पाकिस्तान ने अपने जन्म के साथ ही कुछ ऐसी समस्याएं पैदा कर दी जिनके कारण प्रारम्भ से ही दोनों देशों के मध्य सम्बन्धों में कटुता आ गई। ये समस्याएं थीं – 1. हैदराबाद विवाद, 2. जूनागढ़ विवाद, 3. ऋण की अदायगी का प्रश्न, 4. नहरी पानी विवाद, 5. शरणार्थियों का प्रश्न और 6. कश्मीर पर कब्जा।

3.4 कश्मीर विवाद –

भारत–पाकिस्तान के मध्य अन्य सभी समस्याओं में ज्वलन्त और स्थाई है कश्मीर की समस्या। दोनों देशों के बीच यह एक ऐसे ज्वालामुखी की तरह है, जो समय–समय पर लावा उगलती रहती है। अलाप माईकल के शब्दों में – "कश्मीर समस्या अनिवार्यतः भूमि या पानी की समस्या नहीं यह दोनों देशों के लोगों और प्रतिष्ठा का प्रश्न है।"

कश्मीर की समस्या भारत और पाकिस्तान के बीच सबसे उलझी हुई समस्या है। स्वतन्त्रता के बाद जहाँ भारत और पाकिस्तान दो नये देश बने वहीं देशी रियासतें एक प्रकार से स्वतन्त्र हो गई। ब्रिटिश सरकार ने घोषणा कर दी थी कि देशी रियासतें अपनी इच्छानुसार भारत अथवा पाकिस्तान में विलय हो सकती हैं। अधिकांश रियासतें भारत अथवा पाकिस्तान में मिल गई और उनकी कोई समस्या उत्पन्न नहीं हुई। भारत के लिए हैदराबाद और जूनागढ़ ने अवश्य समस्या उत्पन्न कर दी थी परन्तु वह शीघ्र ही हल कर ली गई। कश्मीर की स्थिति कुछ विशेष प्रकार की थी। भारत की उत्तर–पश्चिम सीमा पर स्थित यह राज्य भारत और पाकिस्तान दोनों को जोड़ता है। यहाँ की जनसंख्या का बहुसंख्यक भाग मुस्लिम धर्मी था, परन्तु वहाँ का आनुवांशिक शासक एक हिन्दू राजा था। अगस्त, 1947 में कश्मीर के शासक ने अपने विलय के विषय में कोई तात्कालिक निर्णय नहीं किया। पाकिस्तान इसे अपने साथ मिलाना चाहता था। 22 अक्टूबर, 1947 को उत्तर–पश्चिम सीमाप्रान्त के कबायलियों के भेष में पाकिस्तानी सेना ने कश्मीर में घुसपैठ कर आक्रमण कर दिया। साथ ही पाकिस्तान ने अपनी सीमा पर भी सेना का जमाव कर लिया। 4 दिनों के भीतर ही हमलावर आक्रमणकारी श्रीनगर से 25 मील दूर बारामुला तक जा पहुँचे। 26 अक्टूबर को कश्मीर के राजा ने आक्रमणकारियों से अपने राज्य को बचाने के लिए भारत सरकार से सैनिक सहायता की माँग की और साथ ही कश्मीर को भारत में सम्मिलित करने की प्रार्थना की। भारत सरकार ने इस प्रस्ताव को तत्काल स्वीकार कर लिया। 27 अक्टूबर को भारतीय सेनाऐं कश्मीर भेज दी गई तथा युद्ध समाप्ति पर जनमत संग्रह की शर्त के साथ कश्मीर को भारत का अंग मान लिया गया।

भारत द्वारा जम्मू व कश्मीर की सुरक्षा व कश्मीर के भारत में विलय के निर्णय के कारण और उधर पाकिस्तान द्वारा आक्रमणकारियों को सहायता देने की नीति के कारण कश्मीर दोनों राष्ट्रों के बीच युद्ध का क्षेत्र बन गया। भारत सरकार ने पाकिस्तान से कहा कि कबायलियों का मार्ग बन्द करे, परन्तु जब इस बात के प्रमाण मिलने लगे कि पाकिस्तान सरकार स्वयं इन कबायलियों की सहायता कर रही है तो 1 जनवरी, 1948 को भारत सरकार ने सुरक्षा परिषद् में शिकायत की कि पाकिस्तान की सहायता से कबायलियों ने भारत के प्रमुख अंग कश्मीर पर आक्रमण कर दिया है, जिससे अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

और सुरक्षा को खतरा है। सुरक्षा परिषद् ने इस समस्या का समाधान करने के लिए 5 राष्ट्रों – चेकोस्लोवाकिया, अर्जेण्टाइना, अमरीका, कोलम्बिया और बेल्जियम को सदस्य नियुक्त कर मौके की स्थिति का अवलोकन करके समझौता कराने के उद्देश्य से संयुक्त राष्ट्र आयोग की नियुक्ति की।

3.5 संयुक्त राष्ट्र आयोग के कार्य –

संयुक्त राष्ट्र आयोग ने तुरन्त अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया और मौके पर स्थिति का अध्ययन कर 13 अगस्त, 1948 को दोनों पक्षों से युद्ध बन्द करने और समझौता करने हेतु निम्नांकित आधार प्रस्तुत किये –

1. पाकिस्तान अपनी सेनाऐं कश्मीर से हटाये तथा कबायलियों व घुसपैठियों को भी वहाँ से हटाये।
2. सेनाओं द्वारा खाली किये गये प्रदेश का शासन प्रबन्ध स्थानीय अधिकारी करे।
3. पाकिस्तान द्वारा उपर्युक्त वर्णित शर्तों को पूरा करने की सूचना भारत को दे तब समझौते के अनुसार वह भी अपनी सेनाओं का अधिकांश भाग वहाँ से हटा ले।
4. भारत सरकार युद्ध विराम के अन्दर उतनी ही सेनाऐं रखे जितनी कि इस प्रदेश में कानून और व्यवस्था बनाये रखने के कार्य में स्थानीय अधिकारियों को सहायता देने के लिए वांछनीय हो।

इस सिद्धान्त के आधार पर दोनों पक्ष एक लम्बी वार्ता के बाद 1 जनवरी, 1949 को युद्ध विराम के लिए सहमत हो गये। कश्मीर के विलय का अन्तिम निर्णय जनमत संग्रह से किया जाना था। जनमत संग्रह की शर्तों को पूरा करने के लिए एक अमरीकी नागरिक एडमिरल चेस्टर निमित्ज को प्रशासक नियुक्त किया गया। उन्होंने जनमत संग्रह के सम्बन्ध में दोनों पक्षों से बातचीत की किन्तु उसका कोई परिणाम नहीं निकला। अन्त में उन्होंने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया।

युद्ध विराम के साथ सीमा रेखा निर्धारित हो जाने पर पाकिस्तान के हाथ में कश्मीर का 32000 वर्गमील क्षेत्रफल रह गया, जिसकी जनसंख्या 7 लाख थी। पाकिस्तान ने इस क्षेत्र को 'आजाद कश्मीर' नाम से पुकारा। युद्ध विराम रेखा के इस पार भारत के अधिकार में 53,000 वर्गमील क्षेत्रफल था, जिसकी जनसंख्या 33 लाख थी। स्पष्ट है कश्मीर भारत का ही अंग बना था।

3.6 भारत–पाक के बीच स्थाई है कश्मीर विवाद –

स्वतन्त्रता के समय भारत की आबादी लगभग 34 करोड़ थी और वह दुनिया की दूसरी सबसे ज्यादा आबादी वाला देश था। हम आज भी दूसरे स्थान पर ही हैं। अपने पड़ौसियों के साथ यदि हमारे सम्बन्ध शान्तिपूर्ण रहते तो आर्थिक व सांस्कृतिक सहयोग की बात बढ़ाई जा सकती थी। मगर पाकिस्तान इस बात के लिए कतई तैयार नहीं था। पाकिस्तान, यह मानने को तैयार नहीं था कि कश्मीर घाटी की बहुसंख्यक मुसलमान आबादी भारत के साथ शेख अब्दुल्ला के बताये जनतान्त्रिक, धर्मनिरपेक्ष मार्ग पर ही चलने की इच्छुक है। पाकिस्तान इस बात को भी बहुत जल्द भूल गया कि उसने कश्मीर पर नाजायज कब्जा करने के लिए घुसपैठिये सैनिक भेजे थे और भारत पर एक अघोषित युद्ध थोप दिया था। अक्टूबर 1947 के कबायली आक्रमण से लेकर अब तक पाकिस्तान ने कश्मीर समस्या को पेचीदा बनाने में कोई कसर नहीं रखी है। धन व धर्म का सहारा लेकर पाकिस्तान ने इस विवाद को धार्मिक रंग देकर अत्यंत गंभीर बना दिया है। कश्मीर का मुद्दा भारत की सुरक्षा व अखंडता से जुड़ा हुआ मुद्दा है। तत्कालीन जम्मू कश्मीर राज्य के शासक हरी सिंह को जम्मू कश्मीर राज्य को माउण्टबैटन योजना के तहत् स्वतंत्र घोषित करना और तत्पश्चात पाकिस्तान के साथ "स्टेण्डस्टिल एग्रीमेण्ट" (Standstill Agreement) करना कश्मीर और भारत दोनों के लिए दुर्भाग्यपूर्ण रहा। आज जब कभी भी भारत से सहयोग की बात होती है तो पाकिस्तान कश्मीर का कांटा चुभा कर वार्ताओं को असफल कर देता है। यद्यपि उस घटना के बाद कश्मीर में हुए चुनावों ने जनमत के तर्क की हवा निकाल दी है, इसीलिए भारत का तर्क यह है कि जम्मू–कश्मीर राज्य में एक नहीं, अनेक बार निष्पक्ष चुनाव हो चुके हैं और वहाँ की जनता ने अपने आत्म निर्णय के अधिकार का प्रयोग कर यह दिखला दिया है कि वह भारत के साथ ही रहना चाहती है।

3.7 कश्मीर समस्या धर्मनिरपेक्षता और भावनात्मक मुद्दा –

कश्मीर का विवाद सिर्फ विवादग्रस्त भू–भाग तक सीमित नहीं। कश्मीर का भारत का अभिन्न अंग रहना उसकी धर्म–निरपेक्ष पहचान की एक बड़ी कसौटी भी है। कश्मीर राज्य का अर्थ सिर्फ श्रीनगर की घाटी ही नहीं वरन् यह लद्दाख की विस्तृत इलाका, जहाँ सियाचीन का ग्लेशियर फैला है जो इसी राज्य का हिस्सा है। भारत चीन सीमान्त का सबसे बड़ा अतिसंवेदनशील भाग है। भारत सिर्फ पाक अधिकृत कश्मीर और श्रीनगर की घाटी के बीच सम्बन्धों को सामान्य बना कर यह नहीं मान सकता कि विवाद निपटाया जा चुका है। ना ही केन्द्र सरकार जम्मू–कश्मीर राज्य में हिन्दूओं के उत्पीड़न और विस्थापन की अनदेखी कर सकती है। कश्मीर से हिन्दुओं के पलायन ने बहुसंख्यक आबादी को उद्वेलित किया है।

3.8 1965 का भारत–पाक युद्ध –

अप्रेल, 1965 में कच्छ के रण को लेकर भारत और पाकिस्तान के बीच संघर्ष हुआ। पाकिस्तानी सेना की दो टुकडियाँ भारतीय क्षेत्र में घुस गई और कच्छ के कई भागों पर

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अधिकार कर लिया। कच्छ–के–रण में उत्पात के साथ–साथ पाकिस्तान ने कश्मीर में भी घुसपैठ प्रारम्भ कर दी थी। यह घुसपैठ पूर्ण योजनाबद्ध थी। कश्मीर में आन्तरिक रूप से उपद्रव एवम् तोड़–फोड़ द्वारा ऐसी स्थिति उत्पन्न करने की योजना थी जिससे भारतीय सेना को कश्मीर से मैदान छोड़कर भागना पड़े। पाकिस्तान को विश्वास था कि कश्मीर की मुस्लिम जनता छापामारों का साथ देगी। 4 तथा 5 अगस्त 1965 को हजारों पाकिस्तानी छापामार सैनिक कश्मीर में घुस आये। पाकिस्तानी घुसपैठ को सदैव के लिए रोकने के विचार से भारत सरकार ने उन स्थानों पर अधिकार करने का निर्णय किया जहाँ से होकर पाकिस्तानी घुसपैठिये कश्मीर के भारतीय हिस्से में आते थे। इसी बीच पाकिस्तान की नियमित सेना ने अन्तर्राष्ट्रीय सीमा रेखा को पार करके भारतीय भू–भाग पर आक्रमण कर दिया और पूर्ण रूप से युद्ध आरम्भ हो गया। 4 सितम्बर, 1965 को सुरक्षा परिषद् ने एक प्रस्ताव पास कर भारत और पाकिस्तान दोनों से अपील की कि वे युद्ध विराम करे। 22 सितम्बर, 1965 को दोनों देशों में युद्ध बन्द हो गया। भारत ने युद्ध में 750 वर्ग मील भूमि पर कब्जा कर लिया और पाकिस्तान को यहाँ मुँह की खानी पड़ी।

3.9 ताशकन्द समझौता –

युद्ध के बाद बीच–बचाव की दृष्टि से सोवियत प्रधानमन्त्री ने पाकिस्तान के राष्ट्रपति अय्यूब खां और भारत के प्रधानमन्त्री लालबहादुर शास्त्री को वार्ता के लिए ताशकन्द में आमन्त्रित किया। 4 जनवरी, 1966 को यह प्रसिद्ध सम्मेलन प्रारम्भ हुआ और सोवियत संघ के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप 10 जनवरी, 1966 को प्रसिद्ध "ताशकन्द समझौते" पर हस्ताक्षर हुए। समझौते के अन्तर्गत भारतीय प्रधानमन्त्री एवम् पाकिस्तान के राष्ट्रपति परस्पर शान्ति बहाली के लिए सहमत हुए।

यद्यपि इस समझौते के कारण भारत को वह सब प्रदेश पाकिस्तान को वापस देने पड़े जो उसने अपार धन एवम् जन की हानि उठाकर प्राप्त किये थे। तथापि यह समझौता निश्चित रूप से भारत और पाकिस्तान के सम्बन्धों में एक शान्तिपूर्ण मोड़ आने का प्रतीक बन गया।

3.10 भारत–पाक युद्ध 1971 तथा शिमला समझौता –

1965 के युद्ध के बाद पाकिस्तान के हालात बदतर होने लगे। तानाशाह शासक जनता के शोषक बन गए। पूर्वी पाकिस्तान (बांग्लादेश) में असन्तोष बढ़ता जा रहा था। शेख मुजीब के नेतृत्व में बांग्लादेश में स्वायत्तता का आन्दोलन प्रारम्भ हो गया। पूर्वी पाकिस्तान पूर्णतया मुजीब के साथ था। पाकिस्तानी जनरल याह्या खां ने बंगालियों पर अत्याचार करने प्रारम्भ कर दिये। घोर अत्याचारों से घबराकर लोग घरबार, सामान छोड़ जान बचाने हेतु भारत की सीमा में प्रवेश करने लगे। 10 हजार शरणार्थी प्रतिदिन भारत आने लगे। शरणार्थियों की संख्या भारत में 1 करोड़ तक पहुँच गई। इसी समय 3 दिसम्बर, 1971 को पाकिस्तानी वायुयानों ने भारत के हवाई अड्डों पर भीषण बमबारी कर दी। 4 दिसम्बर, 1971 को भारतीय वायु सेना ने जवाबी हमला किया। भारत के विमानों ने पाकिस्तान के महत्त्वपूर्ण हवाई अड्डों पर बम वर्षा की। भीषण युद्ध के बाद पाक सेना को पराजय का सामना करना पडा और एक नए देश बांग्लादेश का उदय हुआ। 16 दिसम्बर, 1971 को ढ़ाका में एक सैनिक समारोह में जनरल नियाजी ने भारत के लेफ्टिनेंट जनरल जगजीत सिंह अरोरा के सम्मुख आत्म–समर्पण कर दिया। उनके साथ 93 हजार सैनिकों ने भी हथियार डाल दिये और उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। बांग्लादेश स्वतन्त्र हो गया तथा भारत ने एकतरफा युद्ध विराम कर दिया। भारत ने इस युद्ध में पाकिस्तान की 6 हजार वर्ग मील भूमि पर अधिकार कर लिया। पाकिस्तानी जनरल याह्या खां को सत्ता छोड़नी पड़ी, उनके स्थान पर सत्ता जुल्फिकार अली भुट्टो के हाथ में आ गई। भुट्टो और श्रीमती गाँधी में पत्र–व्यवहार हुआ और 28 जून, 1972 को दोनों देशों के मध्य शिमला में वार्ता होना तय हुआ। 3 जुलाई, 1972 को दोनों देशों के बीच एक ऐतिहासिक "शिमला समझौता" हो गया। इस समझौते का लक्ष्य दोनों देशों के बीच शान्ति स्थापित करना था।

शिमला समझौते के आलोचकों का कहना है कि भारत के सैनिकों ने जिसे युद्ध के मैदान में जीता था उसे भारत की कूटनीति ने शिमला में खो दिया, अर्थात् कश्मीर समस्या का स्थाई हल ढूंढ़े बिना भारत ने पाकिस्तान को 5,139 वर्ग मील क्षेत्र लौटा दिया। यद्यपि यह भारत की शान्तिपूर्ण कूटनीति का प्रतिफल था, लेकिन पाकिस्तान ने इसे सही परिप्रेक्ष्य में नहीं लिया। और बाद में पाकिस्तान पुनः अपनी पुरानी शत्रुतापूर्ण नीति का अनुसरण करने लगा।

3.11 आतंकवाद और पाकिस्तान –

हाल के वर्षों में धार्मिक कट्टरवाद के कारण विश्व में आतंकवाद को गहरा बढ़ावा मिला है। खाड़ी के कुछ तेल उत्पादक देशों ने जेहादी जुनून को गैर जिम्मेदाराना ढंग से भड़काया है। सामरिक दबावों के कारण वैश्विक महाशक्तियों ने खाड़ी के विभिन्न देशों में पनप रही साम्प्रदायिकता और धार्मिक कट्टरवाद को लगातार नजरअंदाज किया है। इसके अलावा अफगानिस्तान से 1979 में सोवियत संघ की सेना को निष्कासित करने के लिए अमेरिका ने पाकिस्तान में तालिबान का समर्थन किया। दुनिया भर में धार्मिक कट्टरवाद और आतंकवाद को बढ़ाने में पाकिस्तान की सर्वाधिक भूमिका रही है।

अफगानिस्तान में दशकों से चल रहे गृह युद्ध से परेशान जो शरणार्थी पाकिस्तान पहुँचे वे उसके लिए जोखिम पैदा कर रहे थे, उन्हें पेशेवर जेहादियों के रूप में कश्मीर में प्रवेश कराने

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

में पाकिस्तान की प्रत्यक्ष भूमिका रही है। पाकिस्तान ने कश्मीर विवाद को अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप देने के लिए जिस आतंकवाद और धार्मिक कट्टरवाद का सहारा लिया था, आज वह उसी के जाल में फंस चुका है।

3.12 पाकिस्तान के खस्ता हालात और भारत की परेशानी –

जब से भारत आजाद हुआ तभी से पड़ोसी देश उसकी विदेशनीति के लिए संकट पैदा करते रहे हैं। धार्मिक आधार पर गठित पाकिस्तान ने धर्म निरपेक्ष भारत से सदैव वैमनस्यपूर्ण व्यवहार किया है। रक्तरंजित साम्प्रदायिक दंगों की विभीषिका और जम्मू–कश्मीर राज्य पर पाकिस्तान द्वारा भेजे गए घुसपैठियों के हमले की वजह से यह सम्बन्ध और भी बिगड़े। सरकारी परिसम्पत्तियों के बंटवारे, शरणार्थी सम्पत्ति के मुआवजे और नदी–जल वितरण जैसे मुद्दे भी उभयपक्षीय रिश्तों को दूषित करते चले गए। सबसे ज्यादा नुकसान तब हुआ जब पाकिस्तान में फौजी तख्ता पलट ने उस देश में जनतन्त्र की किसी भी सम्भावना को नष्ट कर दिया। इसका प्रभाव हुआ दक्षिण एशिया में शीत युद्ध के प्रसार के साथ। गुटनिरपेक्ष भारत, अमेरिकी या सोवियत सैनिक सन्धि संगठनों का सदस्य बनने को राजी नहीं था वहीं पाकिस्तानी फौजी तानाशाह अमेरिकी आर्थिक सहायता की बैसाखी पर टिके थे और उन्हें अपने इशारे पर कठपुतली की तरह नचाना अमेरिकियों के लिए आसान था।

पाकिस्तान में जनतन्त्र का ही पतन नहीं हुआ, सच तो यह है कि वहाँ सत्ता में जनता की सीधी भागीदारी कभी नहीं रही है। फौज ने अधिकाँश समय वहाँ सत्ता सम्भाली है। अशिक्षा, बेरोजगारी और गरीबी के साए में पलता–बढ़ता पाकिस्तान हमेशा ही भारत के लिए सरदर्द रहा है। रही–सही कसर वहाँ के हित समूहों के टकराव और आतंकवादी गतिविधियों के उकसावे ने पूरी कर दी। वास्तव में पाकिस्तान के आन्तरिक व बाह्य दोनों स्थितियां भारत के लिए संभावित खतरे का पर्याय बनी हुई है।

3.13 पाकिस्तान द्वारा आतंकवाद को प्रोत्साहन –

बाद में पाकिस्तान ने पंजाब और जम्मू–कश्मीर सहित भारत के विरुद्ध आतंकवाद को लगातार सहायता पहुँचाने और उसे बढ़ावा दिये जाने के कारण दोनों देशों के बीच सम्बन्धों में काफी कटुता उत्पन्न हुई। भारत के विरुद्ध आतंकवाद को पाकिस्तान के समर्थन तथा भारत के आन्तरिक मामले में हस्तक्षेप करने से उसकी प्रवृत्ति मार्च, 1993 में मुम्बई में हुए विस्फोटों से प्रकट हुई। मुम्बई में हुए बम विस्फोटों की योजना बनाने तथा उसे कार्यरूप देने में पाकिस्तान की सह–अपराधिता से भारतीय जनता का यह मत पक्का हुआ है कि पाकिस्तान भारत के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप के मंसूबे बनाता है और भारत में अस्थिरता पैदा करने के लिए स्थितियों का निर्माण करता है। भारत ने स्पष्ट शब्दों में पाकिस्तान को बताया कि उसके द्वारा भारत के विरुद्ध आतंकवाद को लगातार दिये जा रहे समर्थन से न केवल शिमला समझौते और अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार के लिये सर्वमान्य मानकों का उल्लंघन हुआ है, बल्कि इसका द्विपक्षीय सम्बन्धों में विश्वास का माहौल बनाने के प्रयासों पर भी विपरित प्रभाव पड़ा है।

1980–90 के दशक में पाकिस्तान ने सोवियत आक्रमण के भय की आड़ में अमरीका और चीन से भारी मात्रा में सैनिक साजो सामान और आर्थिक सहायता प्राप्त की। अमरीका और चीन भी दक्षिण एशिया में सोवियत विस्तारवाद को रोकने के बहाने पाकिस्तान को सुदृढ़ और शक्तिशाली बनाने के लिए आधुनिकतम टैंक रोधी मिसाइलें, धरती से धरती और आकाश में मार करने वाली मिसाइलें, एफ–15, एफ–16, एफ–16सी जैसे विध्वंसक वायुयानों की सप्लाई करते रहे। महाशक्तियों द्वारा पाकिस्तान की किलेबन्दी और उसका इस्लामिक बम के नाम पर परमाणु बम बनाने का दुराग्रह भारत के लिए गम्भीर चिन्ता का विषय बन गया। पाकिस्तान ने कारगिल युद्ध में भी करारी हार का सामना किया था, लेकिन वह अब भी लगातार भारतीय सीमा में घुसपैठ और आतंकवादियों का समर्थन कर रहा है।

3.14 भारत–पाक सम्बन्ध : रिश्तों को सुधारने के प्रयत्न –

भारत–पाक सम्बन्धों को सामान्य बनाने के भी प्रयत्न किये जाते रहे हैं। ताशकन्द समझौता तथा शिमला समझौता कुछ इसी प्रकार के प्रयत्न थे। सन् 1974 में जो त्रि–पक्षीय समझौता हुआ उससे युद्धबन्दियों की समस्या का समाधान हुआ। नवम्बर 1974 में दोनों देशों में डाक, तार, यात्रा आदि विषयों के बारें में समझौता हुआ। नवम्बर 1974 में व्यापार समझौता हुआ। सन् 1976 में दोनों देशों में कूटनीतिक सम्बन्धों को पुनः स्थापित करने का निश्चय किया। 14 अप्रेल, 1978 को सलाल जल–विद्युत परियोजना के सम्बन्ध में भारत और पाकिस्तान में एक सन्धि हुई जो सलाल जल–सन्धि के नाम से प्रसिद्ध है। जब सन् 1979 में पाकिस्तान ने सेण्टों की सदस्यता त्याग दी तो उसे सितम्बर, 1979 में हवाना शिखर सम्मेलन में गुट–निरपेक्ष आन्दोलन की सदस्यता प्रदान की गई और भारत ने उसका विरोध नहीं किया। 17 दिसम्बर 1985 को प्रधानमन्त्री राजीव गाँधी और राष्ट्रपति जिया उल हक के मध्य एक छः सूत्री समझौता हुआ जिसमें तय किया गया कि वे एक–दूसरे के परमाणु ठिकानों पर हमला नहीं करेंगे। 10 जनवरी, 1986 को भारत और पाकिस्तान के आपसी आर्थिक सम्बन्धों में एक नये

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

युग की शुरुआत हुई। दोनों देशों के बीच मुक्त व्यापार पुनः शुरू करने के अलावा सार्वजनिक क्षेत्र के व्यापार को दुगुना करने, दोनों देशों के बीच सीधी हवाई सेवा शुरू करने व वायु सेवा सुविधा बढ़ाने पर सहमति हुई। दिसम्बर, 1988 में पाकिस्तान में बेनजीर भुट्टों के नेतृत्व में लोकतान्त्रिक सरकार की स्थापना हुई। बेनजीर ने भारत के साथ युद्ध–वर्जन सन्धि के प्रस्ताव को ठुकराते हुए कश्मीर समस्या सहित अन्य विवादों के निपटारे के लिए शिमला समझौते के महत्त्व को स्वीकार किया। 31 दिसम्बर, 1988 को दोनों देशों के मध्य तीन समझौतों पर हस्ताक्षर हुए। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण समझौता दोनों देशों के बीच एक–दूसरे के परमाणु संस्थानों पर हमला नहीं करने से सम्बद्ध है। भारत ने एक दिल्ली–लाहौर–दिल्ली बस सेवा आरम्भ करने की पहल की। इस सेवा को नियमित करने के सम्बन्ध में 17 फरवरी, 1999 को इस्लामाबाद में एक करार और एक प्रोटोकॉल सम्पन्न किया गया। भारत के प्रधानमन्त्री अटल बिहारी वाजपेयी ने फरवरी, 1999 में दिल्ली–लाहौर–दिल्ली बस सेवा के उद्घाटन के अवसर पर लाहौर की यात्रा करके ऐतिहासिक पहल की। दोनों देशों के प्रधानमन्त्रियों ने लाहौर घोषणा पर हस्ताक्षर किए जो दोनों देशों की शान्ति और सुरक्षा के लिए एक युगान्तकारी घटना है। इस सद्भवना की आड़ में पाकिस्तान ने कारगिल में घुसपैठ कराकर भारत पर अप्रत्यक्ष युद्ध थोप दिया जिसमें पाकिस्तान की हार हुई। 14–16 जुलाई 2001 में आगरा में परवेज मुशर्रफ और अटल बिहारी वाजपेयी की वार्ता का कोई परिणाम नहीं निकला और उसके पश्चात् 13 दिसम्बर 2001 भारतीय संसद पर पाकिस्तान समर्थित आतंकवादियों ने हमला कर दिया। वर्ष 2003 में भारत–पाक सम्बन्ध उतार–चढ़ाव भरे रहे। बाद में देश के अन्य अनेक नेताओं और शिष्ट मण्डलों ने लगातार परस्पर एक–दूसरे देशों की यात्राऐं की। लेकिन इसका कोई सार्थक परिणाम नहीं निकला।

3.15 वार्ता दर वार्ता नतीजा शून्य –

इस्लामाबाद में सम्पन्न भारत–पाक विदेश मन्त्रियों की वार्ता (15–16 जुलाई, 2010) से जैसी उम्मीद थी, परिणाम भी वैसा ही सामने आया। बातचीत को लेकर भारत सरकार भले ही कोई सार्थक परिणाम निकलने की आस लगाए बैठी हो, लेकिन देश की जनता को यह पता था कि ऐसी बातचीत से न पहले कोई हल निकला है और न ही भविष्य में निकलने वाला है। दोनों देशों के करोड़ो लोग भले ही अमन और भाईचारे की बात सोचते हों, लेकिन पाकिस्तान के हुक्मरान कभी नहीं चाहेंगे कि दोनों देश दोस्ती की गाड़ी पर सवार हों।

पाकिस्तान अपने आतंकवाद को कश्मीर के आतंकवाद से जोड़कर बात को आगे बढ़ाए और समस्या का हल निकालने की दिशा में प्रयास करे, तभी कश्मीर शान्त रह सकता है और तभी पाकिस्तान भी हिंसा की आग में जलने से बच सकता है। साथ ही पाकिस्तान अपने अधीन कश्मीरी हिस्से को तत्काल खाली करे। पाकिस्तान हाफिज सईद और दाऊद इब्राहिम जैसे भारत के दुश्मनों को पनाह भी देता रहे और अमन की दुआ भी करे, यह सम्भव नहीं हो सकता।

8 जनवरी, 2013 को युद्ध विराम का उल्लंघन कर पाकिस्तान ने भारत के दो जवानों की बर्बरतापूर्वक हत्या कर दी, जिससे भारत और पाकिस्तान के बीच शान्ति प्रक्रिया पटरी से उतर गई। दोनों देशों के बीच नई वीजा नीति शुरू की जानी थी जिसमें 65 वर्ष से अधिक उम्र के लोगों को 'वीजा ऑन अराइवल' देना तय किया गया था, जिसे स्थगित कर दिया गया। सांस्कृतिक आदान–प्रदान पर भी तात्कालिक प्रभाव से रोक लगा दी गई। इन सबका मूल कारण पाकिस्तान की शत्रुतापूर्ण कार्यवाही कही जाएगी।

मई, 2013 के चुनाव में पाकिस्तान के प्रधानमन्त्री नवाज शरीफ को प्राप्त मजबूत जनादेश के पश्चात् प्रधानमन्त्री डॉ. मनमोहन सिंह ने अपने बधाई–सन्देश में पाकिस्तान की नई सरकार के साथ द्विपक्षीय सम्बन्धों के नए अध्याय लिखने हेतु कार्य करने की इच्छा व्यक्त की। प्रधानमन्त्री डॉ. मनमोहन सिंह ने 29 सितम्बर, 2013 को न्यूयॉर्क में यूएनजीए के दौरान पाकिस्तान के प्रधानमन्त्री नवाज शरीफ के साथ मुलाकात की। भारत के विरुद्ध लगातार जारी आतंकवाद के मुद्दे को उठाने के अतिरिक्त प्रधानमन्त्री ने मुम्बई हमले के सभी अपराधियों पर शीघ्र न्यायिक कार्यवाही करने की आवश्यकता पर जोर दिया।

3.16 भारत की नई सरकार की पाकिस्तान के प्रति सकारात्मक पहल –

26 मई, 2014 की प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी ने अपने शपथ ग्रहण समारोह में पाकिस्तान के प्रधानमन्त्री नवाज शरीफ को आमन्त्रित किया था जिससे लगा कि दोनों देशों में बातचीत एवम् वार्ताओं का सिलसिला शुरू होगा, किन्तु पाकिस्तानी हाई कमिश्नर द्वारा अलगाववादी हुर्रियत नेताओं से मुलाकात के बाद 25 अगस्त, 2014 को इस्लामाबाद में होने वाली विदेश सचिव स्तर की बातचीत को भारत ने रोक दिया। 26–27 नवम्बर, 2014 को काठमाण्डू में आयोजित 18वें सार्क सम्मेलन में भी मोदी–शरीफ के मध्य कोई बातचीत नहीं हुई।

भारत और पाकिस्तान के बीच सम्बन्धों में होने वाली हर नई शुरुआत ढ़ाक के तीन पात ही साबित हो रही है। क्रिसमस (25 दिसम्बर, 2015) के दिन प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी जब नवाज शरीफ को उनके जन्मदिन की बधाई देने और उनकी नातिन की शादी पर आशीर्वाद देने अचानक लाहौर पहुँचे, तो यह महीने भर चली उस अथक कूटनीतिक कवायद का निर्णायक पल साबित होता दिख रहा था जिनसे गुजरते हुए दोनों देश एक बार फिर बातचीत की प्रक्रिया में शामिल हो सके थे। किन्तु हफ्ते भर बाद ही नए वर्ष के दिन (1 जनवरी, 2016) यह उत्साह एकदम चकनाचूर हो गया जब सीमा पार से पठानकोट में पाकिस्तान सशस्त्र आतंकवादी हमला किया।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

पाकिस्तान ने इसके बाद लगातार कश्मीर में आतंकवादियों की घुसपैठ कराई और हमारे आन्तरिक मामलों मे हस्तक्षेप का प्रमाण दिया। केन्द्र सरकार लगातार प्रयासरत है कि वहाँ शान्ति बहाल हो, लेकिन कश्मीरी आतंकियों के पाकिस्तान में बैठे सरगना उन्हें भारतीय फौजों के खिलाफ न केवल उकसा रहे हैं, अपितु सैन्य और आर्थिक सहायता भी पहुँचा रहे हैं। पठानकोट हमले के पश्चात पाकिस्तान समर्पित आतंकवादियों ने कश्मीर के उड़ी सेना शिविर पर हमले किए जिसमें 20 से अधिक भारतीय वीरगति को प्राप्त हुए। उसकी प्रतिक्रियास्वरूप भारतीय सेना द्वारा पाक अधिकृत कश्मीर में सर्जिकल स्ट्राइक किया।

भारत–चीन सम्बन्ध
(India-China Relations)

3.17 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि (Historical Perspective)–

1950 के दशक में लगातार और बड़े जोर–शोर से 'हिन्दी–चीन भाई–भाई' का नारा मुखर किया गया था और बारम्बार भारत और चीन के बीच हजारों वर्ष पुराने सांस्कृतिक सम्बन्धों का उल्लेख होता रहता था। भारत (साम्यवादी खेमे के बाहर) पहला जनतान्त्रिक देश था जिसने जनवादी चीन को मान्यता दी थी। पण्डित नेहरू ने अपने मित्र एवं सहयोगी के. एम. पाणिक्कर को भारतीय राजदूत के रूप में चीन भेजा था। भारत ने ही चीन को सुरक्षा परिषद् में उसकी स्थाई सीट दिलाने की मुहिम में बढ़–चढ़ कर हिस्सा लिया था। नेहरू और कृष्ण मेनन के प्रयत्नों से ही बान्डुंग शिखर सम्मेलन में चीन को आमन्त्रित किया गया था। तिब्बत के मसले पर भारत ने इस क्षेत्र में चीन की सम्प्रभुता स्वीकार कर पंचशील समझौते पर हस्ताक्षर किए। तब यह लगा था कि सीमा विवाद के बारे में मतभेद के बावजूद दोनों देशों के सम्बन्ध सद्भावपूर्ण बने रहेंगे। जिनेवा शान्ति सम्मेलन में हिन्द–चीन संकट को निपटाने के लिए चीनी राजनयिकों को भारत का समर्थन प्राप्त हुआ और किसी को इस बात का आभास नहीं था कि स्थिति इतनी जल्दी बिगड़ेगी। अधिकांश भारतीयों को 1962 में यह लगा कि चीन ने भारत के साथ विश्वासघात किया है। चीन ने अचानक सीमा विवाद की आड़ में भारत पर आक्रमण कर करोड़ों भारतीयों को हतभ्रत कर दिया था।

सन् 1962 में भारत–चीन सीमा युद्ध के दूरगामी परिणाम सामने आये। इससे पूर्व तक भारत यह दावा करता रहा था कि एशिया में दो ही बड़ी ताकते हैं एवम् दो अलग–अलग हजारों साल पुरानी सभ्यताएं भारत एवम् चीन, जिनके अपने–अपने सांस्कृतिक प्रभाव क्षेत्र हैं। इस युद्ध के बाद यह बात खुलकर सामने आई कि गुटनिरपेक्ष अफ्रीकी–एशियाई बिरादरी में भारत बिल्कुल अकेला पड़ गया। भारत के सुनियोजित आर्थिक विकास की सारी योजनाएं गड़बड़ा गई और खस्ता हाल भारत अन्तर्राष्ट्रीय रंगमंच पर पहले जैसी प्रभावी भूमिका भी निभाने में असमर्थ हो गया।

ब्रिटिश शासनकाल में मैकमोहन नाम के अंग्रेज सर्वेक्षक अफसर ने उस वक्त चीन–भारत के बीच सीमाओं का निर्धारण कर दिया था। यह याद रखने लायक है कि शिमला समझौते में जहाँ दोनों पक्षों अर्थात् ब्रिटिश भारत और चीन ने इस सीमा को मान्यता दे दी थी, लेकिन चीन ने इसे मन से कभी भी स्वीकार नहीं किया था।

यह बात रेखाँकित करना बेहद जरूरी है कि जहाँ तक चीन के राष्ट्रीय गौरव और उसकी पारम्परिक सीमाओं को अक्षत् रखने का प्रश्न है, इस बारे में चीन की सभी सरकारें हमेशा एक मत रही हैं, वे साम्राज्यवादी हों, राष्ट्रवादी, साम्यवादी या माओवादी। जनवादी चीन को यह आशा थी कि आजादी के बाद भारत की सरकार का आचरण ब्रिटिश औपनिवेशिक सरकार के उत्तराधिकारियों जैसा नहीं रहेगा और तिब्बत तथा हिमालयी सीमांत में वह चीनी दावों को आसानी से स्वीकार कर लेंगे और जो उसने गंवाया था, उसे वह वापस प्राप्त कर लेगा। यह उम्मीद इसलिए भी थी कि चीन की आजादी की लड़ाई के दौरान भारत की कांग्रेस पार्टी ने चीन के मुक्ति संग्राम के साथ अपना सहयोग प्रदर्शित किया था।

3.18 स्वतन्त्र भारत और चीन (Independent India & China)–

प्रारम्भिक चरण – चीन के प्रति भारत का दृष्टिकाण प्रारम्भ से ही मित्रतापूर्ण था। भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन काल में पं. नेहरू भारत और चीन की मित्रता पर बल देते रहे थे। अक्टूबर 1949 की साम्यवादी क्रान्ति का भारत ने समर्थन किया। भारत ने चीन को राजनायिक मान्यता दी एवं संयुक्त राष्ट्र संघ में चीन को मान्यता दिलाने का भरसक प्रयास किया। भारत ने तिब्बत में चीन की प्रभुसत्ता को स्वीकार किया, जो भारत की भारी भूल थी। समझौते में पंचशील के सिद्धान्तों में विश्वास प्रकट किया गया। 1956 में तिब्बत के खम्पा क्षेत्र में चीनी शासन के प्रति विद्रोह हो गया जो 1959 तक चला। इन विद्रोह को दलाईलामा का समर्थन प्राप्त था। चीनी सरकार ने इसे कुचल दिया। 31 मार्च 1959 को दलाईलामा ने भारत में शरण ली। चीन ने इसे शत्रुतापूर्ण कार्य की संज्ञा दी।

देश के प्रथम प्रधानमन्त्री इस बात के प्रति सचेत हुए कि हिमालयी क्षेत्र में और तिब्बत के क्षेत्र में सभी चीनी दावों को बिना शर्त स्वीकार करना भारत के लिए बेहद नुकसानदेह हो सकता है। इस तरह नेहरू ने सामरिक सन्दर्भ में वह तमाम् मैत्री पूर्ण सम्बन्धों और परम्पराओं के बावजूद चीन और भारत के बीच एक भू–भाग का, मध्यस्थ पट्टी के रूप में होना परमावश्यक माना। नेपाल को एक 'बफर' राज्य के रूप में महत्त्वपूर्ण समझा गया और तिब्बत की भी ऐसी ही सामरिक

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

उपयोगिता थी। सन् 1950 में चीन द्वारा तिब्बत पर कब्जा करने से नेहरू ने रणनीति के तहत पंचशील की नीति को चीन के साथ विवादों के शान्तिपूर्ण समाधान के लिए उपयोगी समझा था।

तिब्बत को लेकर भारत–चीन रिश्तों में खटास –

1956 में जब किशोर दलाई लामा भारत यात्रा पर आए और उन्होंने तिब्बत लौटने की अनिच्छा दिखलाई, तब नेहरू ने उन्हें समझा–बुझा कर वापस भेज दिया कि कहीं चीन इससे नाराज न हो जाए। जब तिब्बत में साम्यवादी चीन के बढ़ते अत्याचारों से त्रस्त दलाई लामा अपने समर्थकों के साथ सन् 1959 में पुनः शरणार्थी के रूप में भारत पहुँचे तो चीन ने इसे शत्रुतापूर्वक कार्यवाही समझा। जाहिर है कि तिब्बत से इस तरह दलाई लामा का पलायन, चीन को मानवाधिकारों के उल्लंघन के लिए अपराधी के रूप में कटघरे में खड़ा करने वाली कार्यवाही थी।

भारत–चीन के बीच सीमा विवाद और बेनतीजा वार्ताओं का दौर –

भारत और चीन के बीच सीमा विवाद के समाधान के लिए राजनयिक वात्ताओं के कई दौर चले जिनमें से कुछ अधिकारी स्तर पर सम्पन्न हुए और कुछ को शिखर वार्ताएँ कहा जा सकता हैं। दुर्भाग्यवश इनमे गतिरोध बना रहा और जरा भी सकारात्मक प्रगति नहीं हो सकी और किसी भी तरह के समझौते नहीं हो सके। भारत अपनी भूमि एक इंच भी चीन को देने को तैयार नहीं था। चीन का मानना था कि दोनों देशों में एशियाई भाईचारे और तीसरी दुनिया की एकता के आधार पर होना चाहिए। जब कि भारत का जोर पश्चिमी अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों और उन संधियों–समझौतों पर रहा, जिन्हें जनवादी चीन सिरे से नकारता रहा था। आज तक ऐसी बेनतीजा वार्ताऐं जारी हैं। बल्कि अब तो चीन अधिक आक्रामक और विस्तारवादी रवैया अपनाकर आक्रामक कार्यवाही में संलग्न है। 2017 में भारत–भूटान–चीन के मध्य अवस्थित डोकलाम पर चीनी अतिक्रमण के प्रयास एवं सैन्य गतिविधियों का भारत ने दृढ़ता से कूटनीतिक व सैन्य विरोध किया, परिणामस्वरूप चीन को अपने इस अतिक्रमण से पीछे हटना पड़ा व दोनों पक्षों के बीच इसके कूटनीतिक समाधान पर सहमति बनी। ज्ञातव्य है कि डोकलाम पर चीन का रूख सदैव अतिक्रमणकारी रहा है। इस पठारी क्षेत्र में चीन के सड़क मार्ग बनाने के प्रयास के कारण विवाद उत्पन्न हुआ।

चीन की विस्तारवादी नीति –

चीन ने हिमालयी पठार में पचास हजार वर्ग किलोमीटर से भी अधिक विस्तृत भू–भाग पर पहले ही कब्जा कर लिया था। जहाँ उसने सामरिक महत्त्व का सड़क निर्माण पूरा कर लिया था और बड़े पैमाने पर अपनी फौजें तैनात कर दीं थी। नेहरू इस बात से अनभिज्ञ न थे कि इन सब के बाद चीन ने लद्दाख के अक्साई चीन प्रदेश पर भी अपना कब्जा कर लिया था।

भारतीय भू–भाग पर अचानक अतिक्रमण –

सन् 1962 में चीन द्वारा युद्ध शुरू किया गया, तब यह बात साफ हो गई कि भारतीय सैनिक युद्ध के लिए तैयार नहीं थे। चीनी फौंजें हर मोर्चे पर तेजी के साथ आगे बढ़ी और उनका मुकाबला करते हुए संसाधनों व सैन्य साजो सामान के अभाव में भारतीय सैनिक उनका बेहतर मुकाबला ना कर सके। संकट की इस घड़ी में उत्कट देश प्रेम का ज्वार ऊफान पर आया और असाधारण भारतीयों ने त्याग और बलिदान की अनेक अनूठी मिसालें पेश की। लगभग एक महीने बाद चीन ने अपने सभी सामरिक राजनयिक उद्देश्य पूरा करने के बाद एक तरफा युद्ध विराम की घोषणा की और कुछ पीछे हट गया।

इस प्रकार सन् 1962 से भारत चीन के बीच स्थाई रूप से तनावपूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो गए। अपनी विस्तारवादी नीति पर चीन आज तक कायम है और भारत के चारों ओर सामरिक घेरेबन्दी कर रहा है। फिर चाहे वह हिमालय हो या समुद्र मार्ग।

चीनी प्रभाव के सन्तुलन हेतु भारत–रूस सम्बन्ध विकसित –

जब तक सन् 1962 के भारत–चीन सीमा युद्ध के नतीजों का प्रश्न है, इसके अनेक दूरगामी परिणाम सामने आये। चीन में माओ ने साम्यवादी विकास का जो मॉडल अपने 'आविष्कार' के रूप में सामने रखा था वह सिर्फ एक विकल्प था। इससे कहीं अधिक आकर्षक विकल्प भारत ने पेश किया था जिसने अपने विकास के लिए सशस्त्र छापामार युद्ध का नहीं, बल्कि शान्पिूर्ण मिश्रित अर्थव्यवस्था वाला जनतान्त्रिक विकल्प चुना था।

यही कारण रहा कि चीन के उग्रवादी और विस्तारवादी रवैये के विरुद्ध सोवियत रूस को भारत के प्रति झुकाव बढ़ता चला गया। चूँकि चीन और रूस के मध्य भी सीमा विवाद था। अतः रूस ने सन्तुलन के रूप में सहायता हेतु भारत को चुना। रूस भारत मैत्री धीरे–धीरे परवान चढ़ने लगी। आज रूस–चीन की तुलना में अधिक स्वाभाविक मित्र है जो हर संकट के समय भारत के साथ खड़ा रहता है। भारत–पाक या फिर भारत–चीन के मध्य जब कभी तनाव पैदा हुआ रूस ने हमेशा भारत का साथ दिया। परमाणु ईंधन आपूर्ति, तकनीकों का हस्तान्तरण और सामरिक साजो–सामान की पूर्ति वह लगातार करके भारत को सुदृढ़ सहयोग प्रदान कर रहा है।

रस्मी समझौते –

यह दावा किया जाता रहा है कि सीमा विवाद को विस्फोटक बनने से बचाने के लिए परस्पर दोनों देशों के बीच भरोसा बढ़ाने वाले एक समझौते पर हस्ताक्षर किए जा सकते हैं। लेकिन चीनी सेना के अधिकारी यह स्पष्ट कह चुके हैं कि ऐसा कोई भी समझौता 'राजनीतिक' फैसला ही समझा जाना चाहिए – राजनयिक रस्म अदायगी – जिसका कोई असर जमीनी हकीकत पर या सामरिक समीकरण पर कोई असर नहीं

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

होगा। यह भी न भूलें कि चीन की सेना की तुलना भारतीय सेना से नहीं की जा सकती जो निर्वाचित जनप्रतिनिधियों के आदेशानुसार काम कर सकती है। चीन की जनमुक्ति सेना और साम्यवादी पार्टी का रिश्ता बहुत घनिष्ठ और जटिल है, उसके नजरिये को वहाँ की सरकार खारिज नहीं करती है।

जल विवाद –

चीन के साथ भारत के हितों का टकराव सीमा विवाद तक सीमित नहीं है। जल विवाद भी कम विकट नहीं है। चीन की दक्षिण से उत्तर की ओर जल प्रवाहित करने की महत्त्वाकांक्षी परियोजना जगजाहिर है। ब्रह्मपुत्र, जिसे चीन में यारलुंग सांगपो कहते हैं, ऊँचे पहाड़ों में दैत्याकार बांध निर्माण कर चीन अपनी जल सुरक्षा तो सुनिश्चित कर रहा है इससे समस्त भारतीय उपमहाद्वीप की जल सुरक्षा तथा पर्यावरण जोखिम में पड़ रही है। इस विषय में भारत को तकनीकी जानकारी देने या उसके साथ परामर्श में चीन परहेज करता है, जिससे तरह–तरह की आशंकाऐं उत्पन्न हो चुकी हैं।` भारत इस मुद्दे को कई बार उठा चुका है। लेकिन सिवाय मौखिक आश्वासनों के हमारे हाथ कुछ नहीं लगा।

3.19 विकास के सोपान पर सम्बन्ध (Relationship On the Ladder of Development) –

भारत में जनता पार्टी की सरकार के 1977 में सत्तारूढ़ होने और चीन में माओत्तर नेताओं द्वारा बागड़ोर सम्भालने के बाद दोनों देशों ने विगत बातों को भूलकर नये सिरे से मधुर सम्बन्ध स्थापित करने की दिशा में काफी प्रयास किये हैं। अनेक कूटनीतिक माध्यमों से भारत को पीकिंग से इस बात के संकेत मिले कि वह भारत के साथ सम्बन्ध सुधारने का इच्छुक है। सन् 1975 में टेबिल–टेनिस की प्रतियोगिता कोलकाता में हुई, जिसमें चीनी खिलाड़ियों के एक दल ने भाग लिया। जनवरी, 1978 में वांग–पिंग–नान के नेतृत्व में एक उच्च स्तरीय चीनी प्रतिनिधि मण्ड़ल भारत आया। इसके बाद व्यापार–वाणिज्य प्रतिनिधि मण्ड़लों का दौरा हुआ और दोनों देशों के बीच सन् 1978 में 1 करोड़ 20 लाख का व्यापार हुआ। सितम्बर 1978 में चीन के कृषि वैज्ञानिकों ने भारत यात्रा की और न्यूयार्क में विदेश मन्त्री वाजपेयी ने चीनी विदेश मन्त्री हुआंग हुआ से भेंट की। 1 अक्टूबर, 1978 को चीन की स्थापना की 29वीं वर्षगांठ पर उपराष्ट्रपति बी.डी. जत्ती उपस्थित थे। नवम्बर, 1978 में मृणालिनी साराभाई के नेतृत्व में भारतीय नृत्य मण्ड़ली का चीन में भव्य स्वागत किया गया। 12 फरवरी, 1979 में प्रारम्भ होने वाली अपनी चीनी यात्रा को विदेश मन्त्री वाजपेयी ने 'टोही मिशन' की संज्ञा दी थी। विदेश मन्त्री वाजपेयी के अनुसार उनकी पीकिंग यात्रा का उद्देश्य लेन–देन करना नहीं अपितु यह जानना था कि इतने वर्षों के बिगड़े सम्बन्ध के बाद आज चीन में हवा क्या है?इसके बाद भी 1980 से लेकर आज तक भारत–चीन के विभिन्न प्रतिनिधि मण्ड़ल लगातार वार्ताएँ और विभिन्न समझौते कर वाणिज्यिक – व्यापारिक समझौते कर रहे हैं। 1988 में प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने चीन यात्रा की, जिसने विगत 26 वर्षो से भारत–चीन संबंधों पर जमी बर्फ को पिघलाने का काम किया। यह सहमति बनी कि विवादास्पद मुद्‌दों को एक तरफ रखकर पहले व्यापार–वाणिज्य–संस्कृति के क्षेत्रों में संबंधों का विस्तार किया जाए तथा विश्वास बहाल होने के बाद सीमा विवाद को भी सुलझाया जाए।

3.20 आर्थिक सम्बन्ध (Economic Relationship)–

आर्थिक रिश्तों के बारे में भी गम्भीरता से सोचने की जरूरत है। यह खाता भारत के प्रतिकूल और असन्तुलित है। 250 अरब डालर के करीब पहुँचा व्यापार लगभग इकतरफा है इससे चीन का दबाव निरन्तर बढ़ता जा रहा है। चीन हमारे लिए नम्बर एक का साझेदार है परन्तु चीन में हमारा व्यापार दसवें स्थान पर भी नहीं है। यद्यपि यह सही है कि जब सारा विश्व आर्थिक मन्दी की चपेट में है तब हम किसी भी तरह का जोखिम नहीं उठा सकते और चीन के साथ अपने व्यापार को यथावत् जारी रखना देश हित में है। चीन दुनिया का सबसे बड़ा बाजार है और सस्ते श्रम का विपुल भण्ड़ार है। तकनीक के क्षेत्र में भी वह भारत की तुलना में काफी अधिक आगे है। खाद्य सुरक्षा से लेकर ऊर्जा सुरक्षा तक अनेक उदाहरण जो इस तथ्य को पुष्ट करते हैं। अतः हम चीन के आर्थिक साझेदारी तो निर्वाहित करना चाहेंगे लेकिन सख्त व्यापार सन्तुलन की आवश्यकता अवश्य ही बनी हुई है।

चीन के राष्ट्रपति शी जिनपिंग की भारत यात्रा –

राष्ट्रपति जिनपिंग 17 सितम्बर, 2014 को तीन दिवसीय भारत यात्रा पर सर्वप्रथम अहमदाबाद पहुँचे। वहाँ प्रधानमन्त्री मोदी की उपस्थिति में चीन और गुजरात सरकार के बीच तीन करार सम्पन्न हुए। पहला समझौता ग्वांगडोंग की तर्ज पर गुजरात का विकास, दूसरा ग्वांगझू की तरह अहमदाबाद का विकास तथा तीसरा वडोदरा के पास औद्योगिक पार्क को विकसित करने से सम्बन्धित है। दोनों देशों के बीच 18 सितम्बर को 12 करार हुए। कैलाश–मानसरोवर के लिए नया रास्ता खोलने पर सहमति बनी। चीन भारत में लगभग 1,200 अरब रूपये का निवेश पाँच वर्ष में करने के लिए राजी हुआ। बुलेट ट्रेन चलाने, रेल्वे स्टेशनों को आधुनिक बनाने पर भी चीन का भारत को सहयोग मिलेगा, लेकिन दोनों पक्षों में सीमा विवाद पर कोई समझौता नहीं हो सका।

भारत के प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी की चीन यात्रा –

प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी 14 से 16 मई, 2015 तक चीन की यात्रा पर रहे। दोनों देशों के मध्य 10 अरब डॉलर के 24

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

समझौतों पर हस्ताक्षर हुए। 16 मई को भारत और चीन की कम्पनियों के बीच 22 अरब डॉलर के 26 समझौते हुए। मोदी ने चीन के निवेशकों को भारत में निवेश के लिए आमन्त्रित किया। मोदी ने चीन के नागरिकों को ई–वीजा देने की घोषणा की। कैलाश–मानसरोवर जाने वालों के लिए नाथूला मार्ग जून 2015 से खोल दिया गया है।

निष्कर्ष (Conclusion)–

संक्षेप में कहा जा सकता है कि यदि भारत और चीन का सीमा समझौता हो जाये तो निःसन्देह अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति और क्षेत्रीय राजनीति पर उसका गम्भीर प्रभाव होगा और इसके व्यापक एवम् दूरगामी परिणाम होंगे। भारत–चीन सीमा पर आमतौर पर शान्ति बनी है। दोनों देशों ने सीमा पर शान्ति और अमन से सम्बद्ध करार (1993) तथा विश्वासोत्पादक उपायों से सम्बद्ध करारों (1996) के अनुसरण में शान्ति और अमन बनाए रखने के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को दोहराया भी है। कारगिल मुद्दे पर चीन ने पाकिस्तान का समर्थन नहीं करके भारत के प्रति सद्भाव प्रदर्शित किया था। आज अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ भी कुछ ऐसी बदली हैं कि भारत और चीन का करीब आना अवश्यभावी हो गया है। विश्व व्यवस्था में भारत की बढ़ती हैसियत, आर्थिक विकास व आधुतिक तकनीक खासकर आईटी के क्षेत्र में भारतीय पेशोवरों की विशेषज्ञता ये कुछ ऐसी कारण हैं जिनसे दोनों देश करीब आ रहे हैं। पिछले पाँच वर्षो में दोनों देशों के बीच व्यापार में कई गुना बढ़ोतरी हो चुकी है और अब धीरे–धीरे व्यापारिक सन्तुलन भी कायम हो रहा है। चीन ने सीमा विवाद के कई मुद्दों पर भारत का पक्ष करीब–करीब स्वीकार कर लिया है। उसने सिक्किम को भारत का हिस्सा मान लिया है और नाथू–ला दर्रा व्यापार के लिए खुल गया है। तथापि आने वाले वर्षों में भारत की कई क्षेत्रों में कड़ी प्रतिस्पर्धा भी चीन के साथ ही रहने वाली है।

भारत – नेपाल सम्बन्ध (India – Nepal Relations)

आज जिस क्षेत्र को दक्षिण एशिया कहा जाता है, उसकी ऐतिहासिक पहचान हिन्दुस्तान के ही रूप में रही है। भारत, पाकिस्तान और बांग्लादेश तो सन् 1947 तक, एक अविभाजित राज्य ही थे, जिसकी आजादी के लिए एक संयुक्त लड़ाई लड़ी गई थी। श्रीलंका और बर्मा (अब म्यांमार) भी ब्रिटिश साम्राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था में भारतीय उपमहाद्वीप के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़े रहे हैं। न केवल इन दो देशों में बड़ी संख्या में भारतीय आप्रवासी निवास करते थे, वहाँ के आर्थिक, सांस्कृतिक जीवन में असरदार भूमिका भी निभाते थे। यह भी सच है कि बर्मा हो या श्रीलंका, इनको कोई भी भारतीय 'विदेशी' नहीं समझता था। नेपाल को भी इन उदाहरणों से भिन्न नहीं कहा जा सकता।

3.21 आरम्भिक अवस्था (Initial Phase)

नेपाल हिमालय की पहाड़ियों में बसा हुआ एक छोटा–सा देश है। भारत व चीन के मध्य एक बफर स्टेट है। यह विश्व का एकमात्र हिन्दू राज्य था। वर्तमान में यहाँ जनतान्त्रिक धर्म निरपेक्ष शासन प्रणाली है। आधुनिक नेपाल के निर्माता पृथ्वी नारायण शाह (1723–1774) ने नेपाल के लिए कहा था यह देश दो चट्टानों के बीच खिले हुए फूल के समान है। हमें चीनी सम्राट के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रखने चाहिए तथा हमारे सम्बन्ध दक्षिणी सागरों के सम्राट भारत से भी मधुर होने चाहिए। लेकिन अपने दो पड़ोसियों में से वह भारत को खतरे का अधिक बड़ा स्त्रोत मानता था। पिछले 200 वर्षों के इतिहास में नेपाल की विदेश नीति की प्रधान विशेषता यह रही है कि दोनों पड़ोसियों से सम्बन्ध अच्छे रखो।

भारत के उत्तर–पूर्व में स्थित नेपाल सामरिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। चीन द्वारा तिब्बत पर कब्जा कर लेने के बाद भारत–चीन सम्बन्धों में नेपाल की सामरिक स्थिति का राजनीतिक महत्त्व बढ़ गया है। उत्तर में भारत की सुरक्षा आज एक बड़ी सीमा तक नेपाल की सुरक्षा पर निर्भर करती है। पण्डित नेहरू ने 17 मार्च, 1950 को कहा था, "नेपाल पर किये जाने वाले किसी भी आक्रमण को भारत सहन नहीं कर सकता। नेपाल पर कोई भी सम्भावित आक्रमण निश्चित रूप से भारतीय सुरक्षा के लिए खतरा होगा।" सन् 1956 में भारत के राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने अपनी नेपाल यात्रा के दौरान कहा था कि नेपाल की शान्ति और सुरक्षा के लिए कोई भी खतरा भारतीय शान्ति और सुरक्षा के लिए खतरा है। नेपाल के मित्र हमारे मित्र हैं और नेपाल के शत्रु हमारे शत्रु हैं।

3.22 ब्रिटिश काल (Nepal During British Period)

अन्तर्राष्ट्रीय कानून की दृष्टि से नेपाल हमेशा स्वाधीन बना रहा लेकिन नेपाल नरेश की स्वाधीनता अन्य भारतीय रजवाड़ों रियासतों की 'पराधीनता' से जरा भी भिन्न नहीं थी। नेपाल के महाराज को भी अपने दरबार में ब्रिटिश रेजिडेन्ट की नियुक्ति स्वीकार करनी पड़ती थी और ब्रिटिश प्रभुत्व (पैरामाउन्ट्सी) को स्वीकार कर ही यह पहाड़ी भूमिबद्ध राज्य अपने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का संचालन, ब्रिटिश भारतीय सरकार के निर्देशानुसार करता रहा था। नेपाल पूरी तरह औपनिवेशिक सरकार के अंकुश में था। घरेलू राजनीति में भी नेपाल नरेश स्वतन्त्र नहीं थे। असली शक्ति राणा वंश के निरंकुश प्रधानमन्त्रियों के हाथ में थी जो सेनाध्यक्ष भी होते थे। राणा वंश का शादी आदि का रिश्ता नेपाली राजवंश से तो था ही साथ ही अनेक भारतीय रजवाड़ों के साथ भी रहा है। इसी कारण अंग्रेजों ने सामन्तशाही नेपाल में बरकरार बनाए रखी थी।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

3.23 भारत–नेपाल सीमा जुड़ाव (India Nepal Border Connectivity)–

भारत–नेपाल सीमा के पश्चिमी छोर को महाकाली अंचल में छोटी–बैताड़ी करनाली वाला अथवा उत्तरप्रदेश–बिहार को सैकड़ों मील छूता तराई वाला भू–भाग आम आदमी के लिए अदृश्य अन्तर्राष्ट्रीय सीमा कभी भी रोकने–टोकने वाली नहीं रही। इस पूरे इलाके में रहने वाले भारतीय और नेपाली खुशी–खुशी अपने को दोनों देशों की सन्तान समझते रहे हैं और भाषा, धर्म में समानता के कारण उनमें अन्तर करना बड़ा कठिन रहा है। नेपाल एक मात्र ऐसा विदेशी राष्ट्र है, जिसके नागरिक भारतीय सेना में भर्ती किए जाते हैं। यह बात उल्लेखनीय है कि आजादी के पहले नेपाल औपचारिक रूप से भारत का हिस्सा न रहने पर भी भारत के साथ उसके घनिष्ठ एवम् आत्मीय सम्बन्ध, पाकिस्तान, बांग्लादेश या श्रीलंका की तुलना में, कम महत्त्वपूर्ण नहीं थे। इसीलिए यह ब्रिटिश काल में भारत का रक्षित राज्य था, जो सहर्ष वैदेशिक सम्बन्धों में और प्रतिरक्षा के क्षेत्र में भारत सरकार की सलाह, स्वेच्छा से स्वीकार करता था।

3.24 नेपाल के साथ उलझनें (Complications With Nepal) –

विडम्बना यह है कि पाकिस्तान से इतर जो अन्य पड़ोसी देश हमारे मित्र हुआ करते थे, वे भी क्रमशः हमसे दूर होते चले गए हैं। नेपाल के साथ हमारे जितने घनिष्ठ – आत्मीय सांस्कृतिक सम्बन्ध हैं शायद ही किसी दूसरे देश के साथ हो सकते हैं। नेपाली नागरिक भारतीय सेना तक में भर्ती हो सकते हैं। लेकिन आज भारत के प्रति नेपाल की भाषा जितनी उग्र सुनने को मिलती है उतनी शायद ही पहले कभी सुनाई दी थी। कभी सन् 1950 की विषम सन्धि तनाव पैदा करती है तो कभी नदी जल–विवाद। भारत नेपाली भूमि में शरण लेने वाले तस्करों – आतंकवादियों को लेकर खिन्न रहता है तो नेपाली देशप्रेमियों की शिकायत मुनाफाखोर भारतीय व्यापारियों को ले कर भी है। स्वाधीन नेपाल का कहना कि उसके मित्रों या शत्रुओं का निर्णय भारत नहीं कर सकता, पर उसके लिए यह समझना भी जरूरी है कि भारत के मन में चीन या पाकिस्तान को ले कर आशंकाए पैदा होने के बाद नेपाल पहले जैसी सहायता–समर्थन की आशा भी नहीं कर सकता। भारत का दृष्टिकोण है कि नेपाल की स्थिरता और विकास का मॉडल भारतीय साँचे के अनुरूप हो। भारत द्वारा नेपाल की राजशाही को समर्थन देने की नीति ने भारत–नेपाल सम्बन्धों में काफी तनाव पैदा किया था। इसी तरह नेपाली माओवादियों को भारतीय माओवादियों के साथ रख, उनकी राजनीतिक भूमिका का आकलन भी हमारे लिए अनुकूल नहीं रहा। नेपाल में भारत के हितों को हम मात्र चीन के साथ उसके रिश्तों के चश्में से ही नहीं देख सकते। नेपाली समाज भारत से कम विविधता वाला नहीं। वहाँ भी आर्थिक विकास का असन्तुलन बहुत विकट है। अतीत की साझेदारी भरी यादों के सहारे हम भविष्य का ताना–बाना भी नहीं बुन सकते।

3.25 भारत–नेपाल सम्बन्ध 1950 की सन्धि (India Nepal Treaty - 1950)–

सन् 1947 में नेपाल के प्रधानमन्त्री की माँग पर भारत सरकार ने एक वरिष्ठ भारतीय राजनयिक को नेपाल भेजा, जिससे नेपाल का संविधान तैयार कराने में सहायता दी जा सके। लेकिन वहाँ जो संविधान बना वह राजशाही की निरंकुशता का अन्त करने वाला था, अतः नेपाल के राजाओं ने क्रियान्वित ही नहीं होने दिया।

भारत सरकार भी नेपाल के साथ एक नई सन्धि भी करना चाहती थी। सन् 1949 में सन्धि का एक मसौदा भी तैयार किया गया, परन्तु इसका भी कोई अन्तिम निष्कर्ष नहीं निकला, क्योंकि नेपाल सरकार भारत के प्रति शंकित थी। सन्धि की महत्त्वपूर्ण शर्त यह थी कि नेपाल में लोकतान्त्रिक प्रणाली स्थापित हो। तिब्बत में चीन की गतिविधियाँ बढ़ने से नेपाल की सुरक्षा के बारे में भारत की चिन्ता बढ़ गई और 17 मार्च, 1950 को प्रधानमन्त्री नेहरू ने संसद में कहा कि नेपाल पर कोई भी सम्भावित आक्रमण निश्चित रूप से भारत की सुरक्षा के लिए खतरा होगा। अन्त में अप्रेल, 1950 मे जनरल विजय शमशेर और एन.एम. दीक्षित ने नेपाल सरकार के प्रतिनिधि के रूप में भारत की यात्रा की और 30 जुलाई, 1950 को दोनों देशों के मध्य एक ऐतिहासिक सन्धि हुई, पर इसी बीच नेपाल में घटित घटनाओं के कारण भारत सरकार और नेपाल की राणा सरकार के सम्बन्धों में तनाव उत्पन्न हो गया।

3.26 नेपाल में राणाशाही का विरोध और भारत की भूमिका (Opposition of Monarchy in Nepal & Role Played by India)–

सन् 1950 में राणाशाही से मुक्ति के लिए प्रयास शुरू हुआ। 16 नवम्बर, 1950 को नेपाल के महाराजा त्रिभुवन ने राज परिवार के 14 सदस्यों के साथ अपने राजमहल का परित्याग कर भारत में शरण ली। राणा शमशेर के विरुद्ध गृहयुद्ध शुरू हो गया। यह विद्रोह भारत के भूभाग से ही संचालित किया गया। अन्त में भारत के सहयोग से ही नेपाल में राणाशाही का अन्त हुआ और नेपाल के महाराजा त्रिभुवन वास्तविक शासक बने तथा लोकतन्त्र की स्थापना हुई। इस समय पण्डित नेहरू ने कहा, "नेपाल की स्वतन्त्रता का सम्मान करते हुए भी हम नेपाल में कोई अव्यवस्था सहन नहीं कर सकते।"

भारत की सहायता से नेपाल सन् 1955 में संयुक्त राष्ट्र का सदस्य बना। नेपाल के विदेश मन्त्री ने 1 फरवरी, 1955 को एक भाषण में कहा कि नेपाल किसी भी दशा में भारत के विरुद्ध नहीं जाएगा। भारत ने नेपाल को अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

कराने में बड़ी सहायता की और कहा कि वह नेपाल का सबसे बड़ा मित्र है।

3.27 नेपाली मामलों में चीन की अभिरुचि और भारत की धरती (Chinese Interest in Nepal Matters)

सन् 1959 में नेपाल के प्रधानमन्त्री कोइराला ने चीन की यात्रा की और चाऊ–एन–लाई को पुनः नेपाल आने के लिए आमन्त्रित किया। चीन एवम् नेपाल के मध्य एवरेस्ट पर्वत शिखर के बारे में एक समझौता भी हुआ जिसकी भारत में कड़ी आलोचना हुई। कोइराला मन्त्रिमण्ड़ल कुछ ही समय बाद भंग कर दिया गया और नेपाली कांग्रेस के अनेक नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया, किन्तु इनमें से कुछ व्यक्ति भागकर भारत चले गये और वहीं से नेपाल में जन–आन्दोलन को संचालित करने तथा सफल बनाने का प्रयत्न करने में लगे रहे। नेपाल में यह समझा गया कि भारत द्वारा नेपाल नरेश विरोधी कार्य को प्रश्रय दिया जा रहा है। इससे दोनों देशों के आपसी सम्बन्धों में कटुता आ गई, जो काफी समय तक बराबर बनी रही।

भारत की चेतावनियों को अनसुनी करके तत्कालीन महाराजा महेन्द्र ने काठमाण्डू–ल्हासा मार्ग बनाने के सम्बन्ध में चीन से समझौता करके भारत के लिए खतरा उत्पन्न कर दिया। महाराजा महेन्द्र चीन यात्रा पर गये। उन्होंने भारत के ऐतिहासिक और अटूट सम्बन्धों का जिक्र किया किन्तु साथ ही चीन के साथ पुरातन सम्बन्धों की चर्चा की। जब सन् 1962 में भारत–चीन युद्ध प्रारम्भ हुआ तब नेपाल ने तटस्थता की नीति अपनाई, जिससे भारत में नेपाल के प्रति आशंका पैदा हुई।

3.28 सम्बन्धों की पुनर्स्थापना (Reestablishment of Relationship) –

चीनी आक्रमण के बाद भारत के लिए नेपाल में अपनी स्थिति सुदृढ़ करना आवश्यक हो गया। तत्कालीन गृहमन्त्री लाल बहादुर शास्त्री ने नेपाल की यात्रा की और सरल सौम्य नीति से नेपाल के अनेक सन्देह दूर किये। इसके बाद नेपाल महाराजा ने 13 दिन की भारत यात्रा की एवम् डॉ. राधाकृष्णन ने नेपाल की यात्रा की। इस समय नेपाल सरकार ने आश्वासन दिया कि नेपाल के मार्ग से भारत पर कोई आक्रमण नहीं होने दिया जाएगा। 23 सितम्बर, 1964 को नेपाल और भारत के मध्य एक समझौता हुआ। इसके अनुसार भारत ने नेपाल के सीमावर्ती कस्बे सगौली और मध्यपूर्वी नेपाल में अखोरा घाटी के बीच 128 मील लम्बी सड़क का निर्माण करेगा। काठमाण्डू से लेकर भारतीय सीमा में रक्सौल को जोड़ने वाली एक अन्य सड़क योजना एवम् कोसी योजना भी बनी। कोसी योजना का उद्देश्य नेपाल को बाढ़ से बचाना, बिजली पूर्ति करना एवम् सिंचाई से लाभ पहुँचाना था। इसके बाद भारत–नेपाल के मध्य परस्पर अनेक समझौते होते रहे और दोनों देशों के राजनयिक, नेता और विशेषज्ञ परस्पर एक–दूसरे के यहाँ आते जाते रहे। सन् 1971 के भारत–पाक युद्ध के बाद नेपाल पाक को लेकर काफी सतर्क हो गया। उसे यह भी समझ आ गया कि अब यह भारत सन् 1962 वाला नहीं है, अर्थात् दुर्बल और कमजोर देश नहीं अपितु सशक्त और मजबूत देश बन चुका है।

3.29 भारत–नेपाल आर्थिक–तकनीकी सम्बन्ध (Economic & Technological Relations)–

नेपाल के विकास कार्यों में सबसे अधिक धन भारत का ही लगा हुआ है। नेपाल को भारत से हर तरह का प्रशिक्षण, तकनीकी और गैर–तकनीकी सहायता मिलती है। कोलम्बो योजना के अन्तर्गत भारत ने अनेक नेपाली नागरिकों को प्रशिक्षण दिया है। भारत ने नेपाल की जिन परियोजनाओं के लिए सहायता दी है। उनमें कुछ प्रमुख हैं – 1. देवी घाट, त्रिशूल, करनाली, पंचेश्वर जल–विद्युत योजनाएं; 2. त्रिभुवन गणपथ, काठमाण्डू–त्रिशूली मार्ग, त्रिभुवन हवाई अड्डा; 3. काठमाण्डू–रक्सौल टेलीफोन संयन्त्र; 4. चत्र नहर परियोजना, कोसी और गंडक परियोजना; 5. भूवैज्ञानिक अनुसन्धान तथा खनिज खोजबीन का काम; 6. वीरगंज और हितौदा रेल निर्माण; तथा 7. काठमाण्डू घाटी के एक उपनगर पाटन में एक औद्योगिक बस्ती की स्थापना। नेपाल में भारत की प्रसिद्ध परियोजनाओं में से एक नेपाल के पूर्व–पश्चिम राजमार्ग पर कोहलापुर–महाकाली क्षेत्र में 22 पुलों का निर्माण भी शामिल है।

दिसम्बर, 1991 में भारत ने नेपाल के महान देशभक्त एवम् स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी वी.एच. कोइराला की पुण्यतिथि में 'भारत–नेपाल फाउण्डेशन' बनाने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। दोनों ही देश के अंशदान से स्थापित इस फाउण्डेशन के द्वारा द्विपक्षीय सहयोग को बढ़ावा दिया गया। दोनों देश औद्योगिक क्षेत्र में साझा उद्यम लगाने को भी सहमत हुए। इसके अन्तर्गत चीनी, कागज तथा सीमेण्ट पर विशेष ध्यान दिया गया। नेपाल के आग्रह पर भारत विराटनगर में वी.पी. कोइराला स्मृति मेडिकल कॉलेज, रंगेली में एक टेलीफोन एक्सचेंज, विराटनगर–झापा तथा चतरावीपुर मार्ग के निर्माण, जनकपुर–बीजलपुर रेल लाईन के नवीनीकरण और रक्सौल तक की रेल लाईन को बड़ी लाईन में परिवर्तित करने में व्यापक सहयोग दिया।

3.30 1950 में बनी द्विपक्षीय सन्धि की समाप्ति (Collapse of Bilaleral Treaty of 1950) –

1989 में भारत ने नेपाल के साथ व्यापार और पारगमन संधि की अवधि पूरी हो जाने पर उसका नवीनीकरण करने से मना कर दिया। सीमा शुल्क और जाँच सम्बन्धी कार्यों में

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

कठोरता बरती गयी। इस संधि के समापत होने के बाद दोनों देशों के बीच छोटे–छोटे मतभेदों से शुरू हुआ मामला अन्ततः गहरे तनाव में बदल गया।

भारत चाहता है कि नेपाल सरकार सन् 1950 की शान्ति व मैत्री सन्धि की पाबन्दियों का सम्मान करे या द्विपक्षीय रिश्तों का ताना–बाना फिर तैयार करे। सन् 1950 की सन्धि वह आधार है जिस पर भारत–नेपाल सम्बन्धों की नींव रखी गई थी। इसके अनुच्छेद 7 के अनुसार इस बात पर सहमति बनी थी कि "एक देश के नागरिकों को दूसरे देश में निवास, जायदाद की मिल्कियत, उद्योग–व्यापार में भागीदारी व घूमने–फिरने के समान अधिकार पारस्परिक आधार पर दिये जायेगे।" परिणामस्वरूप नेपाली नागरिकों को भारत में रहने, घूमने–फिरने, काम–धन्धा करने, सरकारी नौकरियाँ करने की छूट है। नेपाल में भी भारतीयों को सन् 1967 तक ऐसे ही अधिकार मिले थे, लेकिन इसके बाद उनके लिए वर्क परमिट लेने की शर्त लगा दी गई। भारत के अनुसार इन कदमों से भारतीय नागरिकों व भारतीय सामान के साथ विशेष व्यवहार की शर्त का उल्लघंन हुआ। नेपाल ने ये प्रतिबन्ध लगाने से पहले भारत से मशविरा भी नहीं किया था। जबकि सन्धि के हिसाब से नेपाल अपने नागरिकों और भारतीयों के बीच भेदभाव नहीं कर सकता। भारत ने अपने यहाँ रह रहे करीब 50 लाख नेपालियों पर ऐसा कोई प्रतिबन्ध आज तक नहीं लगाया है।

भारत नेपाल का सबसे बड़ा व्यापारी भागीदार तथा एफ. डी.आई. का स्त्रोत बना हुआ है। जुलाई, 2014 को समाप्त नेपाली वित्तीय वर्ष के आँकड़ों के अनुसार भारत के साथ द्विपक्षीय व्यापार नेपाल के कुल बाहरी व्यापार का 66.5 प्रतिशत दर्ज था। नेपाल में कुल विदेशी निवेश का 46 प्रतिशत हिस्सा भारत का है।

3.31 भारत–नेपाल के मध्य मतभेद (Disputes Between India & Nepal) –

1. **नेपाल का स्वयं को शान्ति क्षेत्र घोषित करने का दबाव** – भारत और नेपाल के सुरक्षा सम्बन्धी हित समान होने पर भी उनके सम्बन्धों में अत्यधिक उतार–चढ़ाव रहा है। अनेक बार भारतीय हितों की उपेक्षा करते हुए अर्थात् भारतीय हितों के विरुद्ध नेपाल ने साम्यवादी चीन के साथ समझौते किये। भारत और नेपाल में गलतफहमियाँ विद्यमान रही हैं और वस्तुओं के लिए पारगमन की सुविधाओं और व्यापार संचालन के सम्बन्ध में मतभेद रहे हैं। नेपाल में चीन की गतिविधियाँ भारत विरोधी और ध्वंसात्मक रही हैं। नेपाल द्वारा काठमाण्डू–ल्हासा सड़क मार्ग बनाने के सम्बन्ध में चीन के साथ समझौता स्पष्टतः भारत विरोधी कदम था। एवरेस्ट पर्वत के सम्बन्ध में नेपाल–चीन में प्रारम्भिक समझौता भारत के प्रति विश्वासघात था। आजकल नेपाल का आग्रह है कि नेपाल को "शान्ति क्षेत्र" घोषित किया जाये। भारत सरकार का दृष्टिकोण यह है कि केवल नेपाल ही क्यों सम्पूर्ण उपमहाद्वीप को "शान्ति क्षेत्र" घोषित किया जाये। भारत इसे अपना विरोधी प्रस्ताव मानता है। उनके अनुसार यह अप्रत्यक्ष रूप से भारत पर एक प्रकार का दोषारोपण है कि भारत नेपाल के लिए खतरा है। नेपाल को स्वयं को "शान्ति क्षेत्र" घोषित कराने के पीछे प्रधान उद्देश्य भारत के प्रभाव और विशिष्ट स्थिति को नकारना है, जिसे वह अपने राष्ट्रीय व्यक्तित्व की खोज में बाधक मानता है। यह उसकी भारत और चीन के मध्य ऐतिहासिक सन्तुलनकारी भूमिका का एक रूप भी है, नेपाल इस प्रस्ताव को भारत से अधिकाधिक आर्थिक सहायता पाने के लिए एक सौदेबाजी के आधार के रूप में भी उपयोग करना चाहता है।

2. **राज परिवार की हत्या और आपातकाल** – नेपाल नरेश ज्ञानेन्द्र ने जून, 2001 में अपने भाई राजा वीरेन्द्र और उनके पूरे परिवार की हत्या के बाद बहुत ही रहस्यमय एवम् सन्देहास्पद परिस्थितियों में नेपाल की राजगद्दी सम्भाली थी। नरेश बनने के बाद से ही ज्ञानेन्द्र ने संसदीय लोकतन्त्र को नुकसान पहुँचाने, संसद भंग करने और अपनी मर्जी से प्रधानमन्त्रियों को बर्खास्त करने और उन्हें नियुक्त करने का कार्य किया। गौरतलब है कि नेपाल में ज्ञानेन्द्र द्वारा यह सब तब किया जा रहा था जब नेपाल में माओवादियों द्वारा खूनी गृहयुद्ध जारी था। 1 फरवरी, 2005 को नरेश ने नेपाल में आपातकाल लागू कर लोकतन्त्र का विध्वंस करते हुए पूर्ण राजशाही स्थापित कर दी।

3. **नेपाल में लोकतन्त्र की हत्या** – जनवरी, 2005 में राजनीतिक सत्ता अपने हाथ में लेने के बाद से राजा ज्ञानेन्द्र की सारी राजनीतिक कार्यवाहियाँ प्रतिक्रियावादी रही हैं। सत्ता के अधिग्रहण ने जहाँ माओवादी आन्दोलन को मजबूत किया, वहीं राजनीतिक दमन व उत्पीड़न की नीति से राजा एवम् उनके राजनीतिक दावों में मध्य गहरी खाई पैदा कर दी। राजा ज्ञानेन्द्र की सत्ता का केन्द्र बने रहने की प्रबल इच्छा का ही परिणाम है कि नेपाल समस्त राजनीतिक दल व माओवादी एक मंच पर आ गये। नेपाल में लोकतन्त्र बहाली के लिए बढ़ते अन्तर्राष्ट्रीय दबाव और राजशाही के विरुद्ध प्रबल जन–आन्दोलन के आगे झुकते हुए राजा ज्ञानेन्द्र को 24 अप्रेल, 2006 को पुरानी संसद को बहाल करने की घोषणा करनी पड़ी। नई संसद ने राजा ज्ञानेन्द्र से करीब–करीब सारे अधिकार छीन लिये। संसद सर्वोच्च होगी और माओवादियों ने अंतरिम सरकार में शामिल होने का फैसला किया।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

3.32 नेपाल के लोकतन्त्र की राह (Nepal on the Path of Democracy)–

नेपाल में 11 वर्षों से चला आ रहा माओवादियों का सशस्त्र संघर्ष 21 नवम्बर, 2006 को समाप्त हो गया, जब राजनीतिक दलों की अंतरिम सरकार के साथ माओवादियों ने समग्र शान्ति समझौते पर हस्ताक्षर कर दिये। दोनों पक्ष इस बात के लिये सहमत हुए कि नेपाल नरेश के सभी अधिकार समाप्त हो जायेगे तथा शाही महल से जुड़ी समस्त सम्पत्ति सरकार की होगी। माओवादियों के सशस्त्र आन्दोलन के चलते हुए हिंसक घटनाओं में लगभग 20 हजार से अधिक लोग पिछले डेढ़ दशक में मारे जा चुके हैं। भारत ने समझौते का स्वागत करते हुए कहा कि सरकार और माओवादियों के बीच हुई इस सन्धि से नेपाल शान्ति और लोकतन्त्र की डगर पर आगे बढ़ सकेगा।

नेपाल ने विगत 240 वर्ष से चली आ रही राजशाही 28 मई, 2008 को समाप्त हो गई और नव निर्वाचित संविधान सभा ने देश को धर्मनिरपेक्ष संघीय लोकतान्त्रिक गणराज्य घोषित किया। संविधान सभा के इस निर्णय से नेपाल के महाराज का दर्जा आम नागरिकों के समान हो गया।

भारत के विदेश सचिव ने जनवरी, 2011 को नेपाल की यात्रा की। यात्रा के दौरान विदेश सचिव ने राजनीतिक पार्टियों के नेताओं से मुलाकात की। इन बैठकों में भारत और नेपाल के बीच द्विपक्षीय सम्बन्धों और दोनों देशों के बीच घनिष्ठ और बहुआयामी सम्बन्ध बढ़ाने एवम् उसे और सुदृढ़ करने पर जोर दिया। मुलाकात के दौरान इस बात पर जोर दिया कि भारत नेपाल को एक प्रजातान्त्रिक, स्थाई और समृद्धिशाली राष्ट्र के रूप में देखना चाहता है और उन्होने नेपाल में बहुपक्षीय प्रजातन्त्र को सुदृढ़ करते हुए तथा नेपाली नेतृत्व वाली शान्ति प्रक्रिया सफलतापूर्वक सम्पन्न करने के लिए भी संविधान के प्रारूप की प्रक्रिया में भारत की ओर से समर्थन देने का आश्वासन दिया।

दुर्भाग्य से नेपाल में लोकतान्त्रिक प्रक्रिया बहाल होने के बाद से राजनीतिक अस्थिरता का नया दौर आरम्भ हो गया। माओवादी नेता प्रचण्ड़ की महत्त्वाकांक्षा और नए नेपाली संविधान में मधेशी समुदाय को दोयम दर्जे की नागरिकता देने के कारण नेपाल में वर्ग संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो गई।

3.33 नेपाल सरकार के प्रति प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी का सद्भाव –

प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी ने 3–4 अगस्त, 2014 को नेपाल का अधिकारिक दौरा किया। मोदी ने नेपाल की सविधान सभा तथा विधायी संसद को सम्बोधित किया। मोदी पशुपतिनाथ मन्दिर भी गये और वहाँ मन्दिर को 2500 किलो चन्दन की लकड़ी उपहार में दी। अपनी यात्रा के दौरान मोदी ने काठमाण्डू–दिल्ली यात्री बस सेवा 'पशुपतिनाथ एक्सप्रेस' को हरी झण्डी दिखाकर रवाना किया। पनौती में प्रस्तावित राष्ट्रीय पुलिस अकादमी के निर्माण के लिए भारत सरकार ने 550 करोड़ भारतीय रूपये की लागत सहायता की जाएगी। प्रधानमन्त्री ने नेपाल सेना को एक उन्नत हल्का हेलीकॉप्टर मार्क–III सौपा। 25 अप्रेल, 2015 को नेपाल में आये भूकम्प के बाद भारत ने 'आपरेशन मैत्री' अभियान के अन्तर्गत तत्काल सहायता प्रदान की और हजारों लोगों तक राहत पहुँचाई। वर्ष 2018 में नेपाल प्रधानमंत्री के.पी.शर्मा ओली के भारत यात्रा के दौरान भारत ने वर्ष 2022 तक नई दिल्ली से काठमाण्डू रेल लिंक को शुरू करने पर सहमति व्यक्त की।

3.34 मधेशी आन्दोलन और भारत–नेपाल सम्बन्ध –

नेपाल के नेताओं ने भारत सरकार से विचार–विमर्श किए बिना नया संविधान तो लागू कर दिया लेकिन नये संविधान में मधेशियों की न्याय संगत माँगों को स्थान नहीं दिया गया। मधेश यानी नेपाल की पहाड़ियों और बिहार–उत्तर प्रदेश के मैदान के बीच पड़ने वाला तराई का क्षेत्र या मध्य देश है। सिर्फ 50 कि.मी. चौड़ी इस पट्टी में नेपाल की आधी आबादी बसती है। नेपाल का सबसे पिछड़ा, गरीब और उपेक्षित क्षेत्र है मधेश। नेपाल की सत्ता पहाड़ी, ब्राह्मण, क्षत्रिय और नेवाड़ी लोगों के हाथ रही है जबकि मधेश में भारतीय मूल के मैथिल, भोजपुरी और अवधि बोलने वाले पिछड़े और दलित समाज का प्रभुत्व है। नेपाल के सत्ताधारियों ने मधेशियों के साथ भेदभाव किया। नए संविधान में पहाड़ी नेताओं ने जनसंख्या के तर्क की उपेक्षा करते हुए संसद में अपने बहुमत को सुनिश्चित कर लिया। फलतः मधेशी नेताओं ने आर–पार की लड़ाई छेड़ दी। नेपाल सरकार ने मधेशी आन्दोलन का दमन किया और मानवाधिकारों का खुले तौर से हनन किया। इस पर मधेशियों ने ब्रह्मस्त्र का प्रयोग करते हुए भारत–नेपाल सीमा को बन्द कर दिया। चाहे अनजाने ही भारत सरकार को मधेशियों के साथ खड़ा होना पड़ा। पूरे नेपाल में पेट्रोल, गैस और दवाईयों का संकट हो गया..... सदियों पुराना भारत–नेपाल सम्बन्ध खतरे में हैं।

नेपाल सरकार ने अपने देश में पैट्रोलियम पदार्थों की किल्लत को देखते हुए आनन–फानन में चीन से नया समझौता कर लिया। मधेशियों के भारी विरोध और भारत से मिलने वाली सप्लाई को रोकने के बाद माओवादियों ने मधेशियों से नए समझौते कर उन्हें संसद, सरकार और अन्य स्थानों पर आगे बढ़ने का रास्ता अब खोल दिया है। उम्मीद है इससे नेपाल के हालात सुधरेंगें।

3.35 नेपाल–चीन पेट्रोलियम उत्पाद समझौता –

भारत से होने वाले पेट्रोलियम उत्पादों की सप्लाई में

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

भारी कमी आने के बाद नेपाल ने चीन का रूख कर लिया। नेपाल ने 28 अक्टूबर, 2015 को 'पेट्रो चाइना' के साथ दो समझौतो पर हस्ताक्षर किए। समझौते के अन्तर्गत नेपाल को चीन की ओर से 1000 मीट्रिक टन पेट्रोलियम उत्पादों तथा 13 लाख लीटर गैसोलिन की आपूर्ति की जाएगी। चीन हमारे सभी पड़ोसी देशों के साथ सम्बन्ध बढ़ा रहा है। नेपाल में इस समय कम्युनिस्ट सरकार है, जिसका रूख चीन की तरफ ज्यादा है। नेपाल–चीन समझौता भारत सरकार के लिए भी खतरा है। सन् 2014 में जब मोदी नेपाल यात्रा पर गए थे, तब उन्होने सम्बन्धों को पटरी पर लौटाने के लिए हर सम्भव प्रयास का वादा किया था। नेपाल की जनता ने भी उनका जोरदार स्वागत किया, लेकिन इस समझौते ने साबित कर दिया है कि भारत को नेपाल नीति पर फिर से विचार करने की तत्काल आवश्यकता है।

3.36 भारत–नेपाल के बीच 9 समझौते –

फरवरी, 2016 नेपाल के प्रधानमन्त्री के.पी. शर्मा 'ओली' अपनी पहली विदेश यात्रा पर भारत आए। इसके साथ ही दोनों देशों के बीच कई महीनों से चली आ रही खटास दूर हुई है। दोनों देशों के प्रधानमन्त्रियों की उपस्थिति में सहयोग के 9 समझौतों पर भी दस्तखत हुए जिनके अन्तर्गत भारत द्वारा नेपाल की तराई में 518 किमी. की 17 सड़के बनाना भी शामिल है। ओली के त्यागपत्र के बाद पुनः प्रधानमन्त्री बने प्रचण्ड़ ने भी इसे दोहराया।

3.37 नेपाल का मनोविज्ञान –

नेपाल भारत के सन्दर्भ में जूनियर भागीदार के मनोविज्ञान से ग्रसित है तथा दक्षिण के पड़ोसी के आधिपत्य की आशंका का भूत उसे सताता रहता है। नेपाल भारत और चीन के साथ समदूरी सिद्धान्त के आधार पर सम्बन्ध विकसित करना चाहता है, जिससे चीन को भी सन्तुष्ट किया जा सके। परन्तु भारत समदूरी सिद्धान्त को नहीं मानता, वह तो नेपाल के साथ विशिष्ट सम्बन्ध चाहता है, उसका कहना है कि नेपाल एक आन्तरिक देश है अतः उसके साथ भारत के विशिष्ट सम्बन्ध रहना स्वाभाविक है।

3.38 नेपाल की भावी रणनीति (Future Strategy of Nepal) –

सन् 1950 में हुई सन्धि में एक बात यह भी कही गई थी कि नेपाल यदि हथियारों का कोई आयात करेगा तो भारत को सूचित करेगा। मूलतः यह प्रावधान इसलिए है कि नेपाल को हथियारों के आयात की आवश्यकताओं की भारत से ही पूर्ति की जा सके और उसे अपनी विदेशी मुद्रा इस पर खर्च न करनी पड़े, लेकिन नेपाल को लगता है कि यह हथियार आयात करने के उसकी सम्प्रभुता का हनन होता है। यह भी कहा जा रहा है कि सन् 1950 की सन्धि तत्कालीन विश्व परिस्थिति के सन्दर्भ में की गई थी, आज बहुत कुछ बदल चुका है। हाल ही में नेपाल ने भारतीय सीमा पर हुई आर्थिक नाकेबन्दी से सबक लेकर चीन से निकटता बढ़ानी शुरू कर दी है। नेपाल के पूर्व प्रधानमन्त्री के.पी. शर्मा 'ओली' ने चीन से आग्रह किया है कि नेपाल से तिब्बत होते हुए चीन तक रेल लाईन बनाए ताकि भारत पर उसकी निर्भरता कम हो सके। 20 मार्च, 2016 को चीन भी इस पर सहमत हो गया है। ओली के चीन दौरे के समय नेपाल और चीन ने रिश्ते मजबूत करने के लिए 10 समझौतों पर हस्ताक्षर किए हैं। इस प्रकार भारत–नेपाल सम्बन्ध भविष्य की नई इबारत रच रहे हैं, जिसके अवश्य ही दूरगामी परिणाम होंगें। यहाँ भारत को अब फूँक–फूँक कर कदम रखने की आवश्यकता है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- 14 अगस्त, 1947 तक भारत –पाकिस्तान व बांग्लादेश एक अविभाजित राज्य थे।
- भारत नेपाल के सम्बन्धों के खटास के कारण – 1950 की संधि व नदी जल विवाद है।
- भारत व चीन के मध्य विवाद का कारण तिब्बत समस्या व भौगोलिक सीमाएँ है।
- कश्मीर का विभाजन व उसके बाद की घटनाएँ भारत व पाक के बीच मन–मुटाव का कारण रही है।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. 1950 में नेपाल का कौनसा शासक भारत की शरण में आया –
   (अ) पृथ्वीनारायण शाह
   (ब) राजा त्रिभुवन
   (स) शमशेर बहादुर
   (द) गिरीजा प्रसाद कोईराला ( )
2. भारत चीन के बीच भौगोलिक सीमा का नाम है –
   (अ) मैकमोहन सीमा (ब) मनमोहन सीमा
   (स) तिब्बत सीमा (द) रेड क्लिप सीमा ( )
3. भारत चीन सम्बन्धों को मधुर बनाये रखने हेतु नेहरु जी ने कौनसे सिद्धान्त प्रतिपादित किए –
   (अ) शान्ति सिद्धान्त
   (ब) सीमा सिद्धान्त
   (स) पंचशील सिद्धान्त
   (द) गुट निरपेक्षता सिद्धान्त ( )
4. भारत पाक सम्बन्धों में तनाव का कारण है –

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

(अ) तिब्बत समस्या (ब) बांध की समस्या
(स) कश्मीर विवाद (द) अफगानिस्तान विवाद ( )

5. भारत संविधान की कौनसी धारा कश्मीर को विशेष दर्जा प्रदान करती है –
(अ) धारा 356 (ब) धारा 352
(स) धारा 360 (द) धारा 370 ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. पाकिस्तान अपना स्वतन्त्रता दिवस कब मनाता है?
2. भारत की सीमाओं से सटे देशों के नाम लिखिये।
3. भारत नेपाल के मध्य मशहूर सन्धि कब हुई थी?
4. आधुनिक नेपाल का संस्थापक किसे माना गया है?
5. 1959 में भारत ने किसे शरण दी थी, जिसे चीन ने शत्रुतापूर्ण कार्यवाही माना था?
6. चीन के हिस्से में ब्रह्मपुत्र नदी को क्या कहा जाता है?
7. प्रधानमन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी ने चीन की यात्रा कब की थी?
8. चीनी राष्ट्रपति जिनपिंग की सितम्बर 2014 में अहमदाबाद यात्रा में कितने समझौते किये गये थे?
9. कारगिल युद्ध में चीन का रवैया कैसा था?
10. पाकिस्तान आतंकवाद की गतिविधि पर कितनी राशि व्यय करता है?
11. भारत को अपनी सीमाओं की हिफाजत पर प्रतिवर्ष कितना धन खर्च करना पड़ता है?
12. पाकिस्तान ने कश्मीर में सर्वप्रथम किस दिन घुसपैठ की थी?
13. पाकिस्तान ने कश्मीर की कितनी भूमि पर कब्जा कर रखा है?
14. 1971 का युद्ध किस कारण हुआ।

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. भारत की उत्तरी पूर्वी सीमा पर नेपाल का क्या सामरिक महत्त्व है?
2. 1959 में चीन ने नेपाल के साथ क्या सन्धि की थी?
3. प्रधानमन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी ने नेपाल यात्रा में उन्हें क्या विश्वास दिलाया?
4. नेपाल की अर्थ–व्यवस्था में भारत का योगदान बताइए।
5. नेपाल में मधेशी आन्दोलन का मुख्य कारण क्या है?
6. गुजरात सरकार के साथ चीन ने कौनसे तीन समझौते किये थे?
7. भारत–चीन व्यापार पर लघु टिप्पणी लिखें।
8. चीन के साथ भारत के तीन प्रमुख विवाद क्या हैं?
9. चीन से तनाव के चलते रूस हमारा सहयोगी कैसे बना?
10. चीन भारत की सुरक्षा परिषद् की सदस्यता का समर्थन खुलकर क्यों नहीं कर रहा है?
11. ताशकन्द समझौते में क्या निश्चय किया गया था?
12. पाकिस्तान को आतंकवाद का गढ़ क्यों कहते हैं?
13. प्रधानमन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी ने पाकिस्तान से सम्बन्ध सुधारने के क्या उपाय किये हैं?
14. मुम्बई और पठानकोट हमलों के पीछे पाकिस्तान की क्या मंशा थी?
15. भारत ने पाकिस्तान में मानवाधिकार उल्लंघन पर क्या कार्यवाही की है?

निबन्धात्मक प्रश्न –

1. भारत–नेपाल सम्बन्धों का ताना–बाना बार–बार क्यों गड़बड़ा जाता है? दोनों देशों में तनाव के प्रमुख कारण क्या हैं?
2. भारत–नेपाल सम्बन्धों के बीच चीन की अभिरुचि को बाधक क्यों माना जाता है?चीन की नेपाल में विशेष रुचि क्यों है?
3. भारत–नेपाल रिश्तों पर आलोचनात्मक विवेचना कीजिए।
4. भारत–चीन सम्बन्धों का ऐतिहासिक आधार क्या है?वर्तमान में दोनों देशों के सम्बन्ध कैसे हैं?
5. भारत–चीन के आर्थिक रिश्तों से दोनों देशों की अर्थ–व्यवस्था को कैसे जोड़ा है?विस्तार से लिखिये।
6. भारतीय विदेश–नीति के प्रमुख घटक के रूप में चीन की क्या स्थिति है?
7. भारत–पाक सम्बन्धों की विपरीत धुरी है कश्मीर। इसे आधार बना कर लिखें कि कश्मीर में हालात पाकिस्तान की वजह से कैसे बिगड़े?
8. पाकिस्तान भारत को परेशान करने के उद्देश्य से हमारे अन्य पड़ोसियों से सम्बन्ध बढ़ा रहा है। इससे भारत पर क्या प्रभाव पड़ रहा है?
9. प्रधानमन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी की पाक विदेश नीति पर निबन्धात्मक लेख लिखिये।

बहुचयनात्मक प्रश्नों की उत्तरमाला

1. ब 2. अ 3. स 4. स 5. द

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

4. क्षेत्रीय संगठन – आसियान एवं सार्क
(Regional Organisations - ASEAN & SAARC)

आसियान
(ASEAN)

विश्व राजनीति में दक्षिण–पूर्वी एशिया सामरिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है। इस क्षेत्र में चीन के दक्षिण में तथा भारतीय उपमहाद्वीप के पूर्व में स्थित विभिन्न देश आते है। जिनमें म्यांमार, ब्रूनेई, थाईलैण्ड, इण्डोनेशिया, लाओस, मलेशिया, सिंगापुर, कम्पूचिया, वियतनाम, फिलिपीन्स आदि देश शामिल है। हाल ही में दक्षिण चीनी महासागर का विवाद इसी क्षेत्र के सामरिक हितों से जुड़ा हुआ है। यह क्षेत्र दूसरे विश्वयुद्ध के बाद से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बन गया है। विश्व राजनीति में 'दक्षिण पूर्वी एशिया' शब्द की उत्पति दूसरे विश्वयुद्ध के पश्चात् हुई है। सबसे पहले इस शब्द का प्रयोग एडमिरल माउण्टबैटन के नेतृत्व में दक्षिण पूर्वी एशिया कमाण्ड की स्थापना के दौरान 1953 में क्यूबेक सम्मेलन में किया गया है। वर्तमान में ये दस राष्ट्र इस क्षेत्र में स्थित है। दक्षिण पूर्वी एशिया सामरिक और भौगोलिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह हिन्द महासागर को प्रशान्त महासागर से मिलाने वाले समुद्री मार्ग पर स्थित है और एशिया व ऑस्ट्रेलिया को प्राकृतिक पुल के द्वारा आपस में जोड़ता है। उपजाऊपन में श्रेष्ठता के कारण इस क्षेत्र को 'एशिया का चावल का कटोरा' कहा जाता है। मलाया रबड़ उत्पादन में पूरी दुनिया में सबसे अग्रणी है। इण्डोनेशिया, सारावाक और उत्तरी ब्रूनेई प्रमुख तेल उत्पादक देशों में शामिल है। राजनीतिक दृष्टि से इस क्षेत्र के निकट स्थित साम्यवादी महाशक्ति चीन अपने प्रभाव को निरन्तर बढ़ाने के लिए अग्रसर है। वहीं अमेरीका के नेतृत्व में पश्चिमी देश चीन की साम्यवादी विचारधारा व उसके प्रभाव को रोकने के लिए प्रयत्नरत है। मूलतः इन सभी देशों में मंगोल नस्ल के लोग निवास करते हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् तत्कालीन विश्व शक्ति ब्रिटेन की शक्ति के पराभव के उपरान्त यह क्षेत्र शक्ति शून्य हो गया और चीन इस शून्यता को भरने के प्रयास करने लगा। चीन की विस्तारवादी नीति के कारण दक्षिण पूर्वी एशिया के सभी छोटे–बड़े देश चीन के प्रति सशंकित रहने लगे। 1949 ई. में चीन में साम्यवादी शासन की स्थाापना हुई। जिसका प्रत्यक्ष एव अप्रत्यक्ष प्रभाव इस क्षेत्र पर पड़ा। इन देशों ने चीन की बढ़ती हुई विस्तारवादी एवं साम्राज्यवादी नीति के विरुद्ध तटस्थता का मार्ग अपनाते हुए आपसी सहयोग पर बल दिया। अन्ततः परस्पर आर्थिक सहयोग को गति प्रदान करने के लिए इन्होंने आसियान (ASEAN) अर्थात् दक्षिण पूर्वी एशियाई राष्ट्र संघ (Association of South East Asian Nations) नामक संगठन की स्थापना की।

4.1 आसियान का संगठन (Organisation of ASEAN) –

दक्षिण पूर्वी एशियाई राष्ट्र संघ (Association of South East Asian Nations) की स्थापना 8 अगस्त, 1967 में 5 देशों ने क्षेत्रीय सहयोग के उद्देश्य से असैनिक संगठन के रूप में की। इसके प्रारम्भिक सदस्यों में इण्डोनेशिया, मलेशिया, फिलिपीन्स, सिंगापुर तथा थाईलैण्ड शामिल थे। 1984 में ब्रूनेई भी आसियान का सदस्य बन गया। प्रारम्भ में वियतनाम, लाओस, कम्बोडिया तथा म्यांमार को प्रेक्षक का दर्जा दिया गया था। वियतनाम को 1995 में और कम्बोडिया को 30 अप्रैल, 1999 को आसियान का पूर्णकालिक सदस्य बना दिया गया। प्रारम्भ में भारत को भी आसियान का आंशिक सहयोगी बनाया गया। 24 जुलाई, 1996 में भारत को इसको 'पूर्ण संवाद सहभागी' बना दिया गया है। चीन और रुस को भी भारत के समान पूर्ण संवाद सहभागी बना दिया गया है। आसियान का सचिवालय जकार्ता (इण्डोनेशिया) में है और उसका अध्यक्ष महासचिव होता है। महासचिव दो वर्ष के लिए चुना जाता है। अब तक आसियान की सहयोगी संस्था एशियाई क्षेत्रीय फोरम (Asian Regional Forum - ARF) के अमेरीका, रुस, भारत, चीन, जापान और उत्तरी कोरिया सहित कुल 23 सदस्य है। आसियान का पहला शिखर सम्मेलन 1976 में बाली (इण्डोनेशिया) में आयोजित किया गया था और उसका 28वाँ व 29वाँ सम्मेलन वियनतियाने (लाओस) में 6 से 7 सितम्बर, 2016 को आयोजित किया गया।

4.2 आसियान की प्रकृति एवं उद्देश्य (Nature & Objectives of ASEAN) –

आसियान के दस सदस्य राष्ट्रों की अलग–अलग पृष्ठभूमि है। इन देशों की औपनिवेशिक विरासत, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक जीवन मूल्यों में भी अन्तर पाया जाता है, तथापि इन सभी देशों की कुछ चुनौतियाँ एक जैसी है और इन चुनौतियों का सामूहिक मुकाबला करने के लिए ही यह संगठन अस्तित्व में आया। इन देशों के समक्ष जनसंख्या विस्फोट, निर्धनता, आर्थिक शोषण, असुरक्षा आदि

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

की समान चुनौतियाँ है जिनका समाधान परस्पर क्षेत्रीय सहयोग से ही सम्भव है। आसियान के निर्माण का मुख्य उद्देश्य दक्षिण पूर्वी एशिया में आर्थिक प्रगति को गति प्रदान करना और सदस्य देशों की अर्थव्यवस्थाओं को स्थायित्व प्रदान करना है। सदस्य देशों में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, व्यापारिक, वैज्ञानिक, तकनीकी, प्रशासनिक आदि क्षेत्रों में परस्पर सहयोग करना एवं विभिन्न साझी समस्याओं का मिलकर समाधान ढूँढ़ना ही इस संगठन का उद्देश्य है। इस संगठन का एक महत्त्वपूर्ण लक्ष्य ' साझा बाजार ' तैयार करना है और इन देशों के मध्य परस्पर व्यापार को बढ़ाना है। यह संगठन पूर्णतः आर्थिक सहयोग पर आधारित है और इसका स्वरूप कदापि सैनिक नहीं है। सदस्य राष्ट्र सामूहिक सुरक्षा जैसी शर्तों से नहीं बंधे हुए है, न ही यह संगठन किसी महाशक्ति के प्रभाव में कार्यरत है।

4.3 आसियान के कार्य एवं भूमिका (Role & Function of ASEAN) –

आसियान का कार्यक्षेत्र निरन्तर बढ़ रहा है। यह राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, तकनीकी तथा प्रशासनिक सभी क्षेत्रों में सक्रिय है। इसके सदस्य देश अपनी वैयक्तिक कार्यप्रणालियों को क्षेत्रीय आधार पर सुलझाने का प्रयास कर रहे है। 1969 में संचार व्यवस्था एवं सांस्कृतिक गतिविधियों को बढ़ाने के लिए इन देशों ने एक अनुबन्ध किया जिसके अन्तर्गत सभी देशों में रेडियो एवं दूरदर्शन के विभिन्न कार्यक्रमों का आदान–प्रदान किया जाना तय किया गया । पर्यटन के क्षेत्र में 'आसियण्टा' नामक सामूहिक संगठन की स्थापना की गई जो इन देशों में बिना किसी वीजा के परस्पर पर्यटन पर बल देता है। 1971 में हवाई सेवाओं के व्यापारिक अधिकारों की रक्षा एवं 1972 में फँसे हुए जहाजों को सहायता पहुँचाने से सम्बन्धित करार किए गए। आसियान द्वारा कृषि क्षेत्र में एवं खाद्यान्न के उत्पादन को प्राथमिकता देने के लिए किसानों को अर्वाचीन तकनीकी शिक्षा देने के ठोस कदम उठाये है। इसी तरह इन देशों में स्वतंत्र व्यापार क्षेत्र स्थापित करने के लिए भी प्रयास जारी है ताकि आपस में निर्यात–आयात सम्भव हो सके।

4.4 भारत और आसियान (India & ASEAN)–

भारत आसियान का पूर्ण संवाद सहयोगी देश है व आसियान के सहयोगी संगठन एशियाई क्षेत्रीय फोरम का भी सदस्य है। भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी अपनी 'एक्ट–ईस्ट' नीति के तहत दक्षिण पूर्व एशिया के देशों के साथ प्रगाढ़ता बढ़ाना चाहते हैं।

विगत 10 वर्षों में आसियान के साथ भारत का व्यापार बढ़कर पाँच गुणा हो चुका है। भारत की वर्तमान सरकार की "एक्ट ईस्ट नीति" को एशिया–प्रशान्त क्षेत्र में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई है।

आसियान क्षेत्र में बढ़ती हुई भूमिका के मुख्य रूप से तीन कारण है। पहला भारत को अपनी तेजी से उभरती अर्थव्यवस्था के लिए बाजार की आवश्यकता है। 'मेक इन इन्डिया' पहल के तहत भारत न केवल राष्ट्रीय अपितु बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को भारत में उत्पादन करने के लिए प्रोत्साहन दे रहा है। वियतमान और सिंगापुर ने प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में नवीन कीर्तिमान हासिल किए हैं। आसियान क्षेत्र विश्व की सातवीं सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है जिसमें दुनिया की 200 बड़ी कम्पनियां स्थित है। जहाँ एक ओर भारत नये बाजार की तलाश में है वहीं आसियान देशों को भी अपने उत्पादों के लिए भारत के बाजार की आवश्यकता है।

दूसरा कारण, भारतीय अर्थव्यवस्था को न केवल बाजार की आवश्यकता है बल्कि तेल, प्राकृतिक गैस और ऊर्जा बाजारों की आवश्यकता है जो उसकी ऊर्जा आवश्यकताओं को पूरा कर सके। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए आसियान सर्वाधिक उपयुक्त क्षेत्र है। भारत की कोयले की मांग इण्डोनिया से पूरी हो सकती है और गैस की वियतमान और ऑस्ट्रेलिया।

तीसरा प्रमुख कारण भारत आसियान देशों के साथ प्रगाढ़ संबंध स्थापित करना चाहता है। भारत इन देशों में कूटनीतिक और आर्थिक जगह बनाना चाहता है जो अभी चीन के प्रभाव क्षेत्र में है। वियतमान, फिलीपीन्स के दक्षिण चीन सागर को लेकर चीन के साथ गम्भीर सामुद्रिक सीमा विवाद हैं और यह देश चीन की बढ़ती हुई शक्ति से आशंकित है। म्यानमार जो परम्परागत रूप से चीन से निकटता रखता था अब स्वतंत्र विदेश नीति का अनुसरण करना चाहता है। भारत बदली फिजां में म्यानमार से निकटता बनाना चाहता है।

प्रधानमंत्री 6 से 7 सितम्बर के मध्य लाओस की राजधानी वियंतियेन में 14वें आसियान भारत शिखर सम्मेलन को संबोधित करते हुए आतंकवाद और कट्टरवाद का मिलकर सामना करने पर बल दिया। उन्होंने आसियान भारत शिखर सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए कहा कि आसियान भारत की ऐक्ट–ईस्ट पॉलिसी का केन्द्र है। आसियान इंडिया प्लान ऑफ ऐक्शन (2016–20) के तहत ऐक्टिविटिड को लागू किया जा चुका है। इसी सम्मेलन में नरेन्द्र मोदी ने पाकिस्तान को अलग–थलग करने के लिए उसे आतंकवाद का निर्यातक देश करार दिया और कहा कि जो देश आतंकवाद का निर्यात कर रहा है उसे सजा दी जानी चाहिए। नरेन्द्र मोदी ने आतंकवाद के खतरे को क्षेत्रीय सुरक्षा के लिए साझा खतरा बताते हुए आपसी सहयोग पर बल दिया। नरेन्द्र मोदी जापान सहित सभी दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों के साथ नये सिरे से व्यापार व सामरिक सम्बन्ध स्थापित करने पर बल दिया है।

4.5 आसियान का योगदान एवं समीक्षा (Appreciation & Contribution of ASEAN)–

आसियान की स्थापना से लेकर इसके 28वें शिखर

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

सम्मेलन तक के आसियान के सारे कार्यकलापों एवं उपलब्धियों का विश्लेषण करने पर पता चलता है कि जिन उद्देश्यों के लिए आसियान की स्थापना की गई थी उनको पूरी तरह से प्राप्त नहीं किया जा सका है। आसियान यूरोपियन साझा बाजार की तरह सफल नहीं हो सका है। यह संगठन सदस्य राष्ट्रों में आर्थिक एवं अन्य प्रकार का सहयोग तीव्र गति से नहीं बढ़ा पाया है। आर्थिक सहयोग में आसियान की गति मन्द होने का कारण सदस्य राष्ट्रों के पास आवश्यक पूँजी एवं क्रय शक्ति का कम होना है। सदस्य राष्ट्रों के हितों में टकराव के कारण उनके बीच कई अन्तर्राष्ट्रीय विवाद भी उठे है। ऐसा प्रतीत होता है कि अधिकांश आसियान देशों का झुकाव पश्चिमी देशों की तरफ अधिक रहा है। इण्डोनेशिया के अतिरिक्त आसियान के अन्य सदस्य राष्ट्र मलेशिया, सिंगापुर, फिलिपीन्स एवं थाईलैण्ड पश्चिमी देशों के साथ सुरक्षात्मक समझौते से जुड़े है तथा उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अनेक मुद्दों पर ही नहीं, बल्कि हिन्दचीन पर भी पश्चिमी शक्तियों का साथ दिया है। आसियान के सदस्य राष्ट्रों में विदेशी सैनिक अड्डे भी मौजूद है। इन सब आलोचनाओं के बावजूद आसियान एक असैनिक स्वरूप का संगठन है। आसियान की सदस्यता के द्वार दक्षिण–पूर्वी एशिया के उन सभी राष्ट्रों के लिए खुले हुए है जो इसके उद्देश्य, सिद्धान्त तथा प्रयोजनों में विश्वास रखते हैं। आसियान क्षेत्र को मुक्त व्यापार क्षेत्र बनाने के प्रयत्न क्षेत्रीय सहयोग की दिशा में महत्त्वपूर्ण चरण है। आसियान के महत्त्व को इस बात से आंका जा सकता है कि दुनिया के महत्त्वपूर्ण 23 देशों में जिनमें अमेरीका, रुस, जापान, चीन एवं भारत आदि शामिल है, वे इसकी 'एशियन रीजनल फोरम' के सदस्य है।

दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन (SAARC-South Asian Association for Regional Cooperation)

दक्षिण एशिया में क्षेत्रीय सहयोग की दिशा में ऐतिहासिक कदम उठाते हुए 1985 में दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन की स्थापना की गई। उसकी स्थापना ढाका में हुई और उसका सचिवालय काठमांडू में स्थित है। मूलरूप से उसके सात सदस्य देश है – भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल, श्रीलंका, भूटान तथा मालदीव। 3 अप्रैल 2007 को अफगानिस्तान दक्षेस का आठवाँ सदस्य देश बना। वर्तमान में इन आठ सदस्य देशों के अतिरिक्त पर्यवेक्षक भी शामिल है। दक्षेस की हिस्सेदारी विश्व जनसंख्या में 21 प्रतिशत क्षेत्रफल 3 प्रतिशत तथा वैश्विक अर्थव्यवस्था में 9.12 प्रतिशत है। दक्षेस स्वयं भी संयुक्त राष्ट्र संघ में एक पर्यवेक्षक है।

4.6 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि (Historical Background) –

दक्षिण एशिया में क्षेत्रीय संगठन बनाने के प्रयास 1947 में नई दिल्ली में एशियाई सम्बन्ध सम्मलेन से ही प्रारम्भ हो गए थे। तत्पश्चात् फिलीपीस के बागुई सम्मेलन 1950 एवं 1954 के कोलंबो सम्मेलन में इस प्रक्रिया पर पुनः विचार–विमर्श हुआ।

पूरे दक्षिण एशिया का क्षेत्र राजनीतिक रूप से दो बड़े देश – भारत और पाकिस्तान के परस्पर तनाव के कारण व्यापक सहयोग को मूर्त रूप नहीं दे पाया। 1970 के दशक में ऐसे व्यापक क्षेत्रीय सहयोग की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। विश्व के अनेक क्षेत्रीय सहयोग संगठनों, विशेष रूप से दक्षिण पूर्व एशियाई सहयोग संगठन (ASEAN) की सफलता ने भी दक्षिण एशियाई देशों के नेतृत्व को उस ओर गम्भीरता से सोचने पर बाध्य किया। उस दिशा में प्रारम्भिक पहल करने का कार्य 1977 में बांग्लादेश के तत्कालीन प्रधानमंत्री जियाउर्रहमान अंसारी ने किया। तत्पश्चात् 1981 में कोलंबो में सात देशों के विदेश मंत्रियों ने बांग्लादेश के प्रस्ताव पर गहन विचार किया। बहुत चर्चा के पश्चात् क्षेत्रीय सहयोग के पाँच प्रमुख विषय निश्चित किए गए। 1983 में नई दिल्ली में सात देशों के विदेश मंत्रियों के सम्मेलन में इन पाँच विषयों – कृषि, ग्रामीण, विकास, दूरसंचार, मौसम विज्ञान तथा स्वास्थ्य एवं जनसंचार पर दक्षेस के घोषणा–पत्र को स्वीकार कर लिया गया। दक्षेस का प्रथम शिखर सम्मेलन 7–8 दिसम्बर 1985 को ढाका में सम्पन्न हुआ। अब तक कुल 18 शिखर सम्मेलन हो चुके है। इसका मुख्यालय काठमाण्डू (नेपाल) में है। इसकी स्थापना के समय विश्व राजनीति में सात पड़ौसी देशों (भारत, पाकिस्तान, नेपाल, बांग्लादेश, भूटान, श्रीलंका और मालदीव) के क्षेत्रीय सहयोग की शुरूआत हुई। सार्क का तेरहवां शिखर सम्मेलन (13–17 नवम्बर, 2005) ढाका में सम्पन्न हुआ।

4.7 सम्मेलन (Summits)–

1. 1985 – ढाका
2. 1986 – बेंगलुरु
3. 1987 – काठमांडू
4. 1988 – इस्लामाबाद
5. 1990 – माले
6. 1991 –कोलंबो
7. 1993 – ढाका
8. 1995 – नई दिल्ली
9. 1997 – माले
10. 1998 – कोंलबो
11. 2002 – काठमांडू
12. 2004 – इस्लामाबाद
13. 2005 – ढाका
14. 2007 – नई दिल्ली
15. 2008 – कोंलम्बो
16. 2010 – थिम्फू

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

17. 2011 – अड्डू
18. 2014 – काठमांडू
19. 2016 – इस्लामाबाद (प्रस्तावित) उड़ी आतंकवादी हमले के कारण भारत सहित अन्य सदस्य राष्ट्रों द्वारा बहिष्कार करने पर सम्पन्न नहीं हुआ है।

दक्षेस का 19वां शिखर सम्मेलन इस्लामाबाद पाकिस्तान में अक्टूबर 2016 में प्रस्तावित हुआ। परन्तु पाकिस्तान प्रायोजित आतंकवादियों द्वारा भारत में लगातार हो रहे आतंकी गतिविधियों, कश्मीर के उड़ी सेना शिविर पर हुए हमले जिसमें 20 से अधिक भारतीय वीरगति को प्राप्त हुए और उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप भारतीय सेना द्वारा पाक अधिकृत कश्मीर के अंदर जाकर किए गए सर्जिकल स्ट्राइक के कारण उत्पन्न हुए तनाव में यह शिखर सम्मेलन रद्द करना पड़ा।

4.8 दक्षेस का चार्टर (Charter of SAARC)

दक्षेस के घोषणा–पत्र अथवा चार्टर जिस पर 1985 के ढाका सम्मेलन में सहमति बनी, में कुल दस धाराएँ है। इनमें सार्क के प्रमुख सिद्धान्तों, उद्देश्यों एवं संस्थागत संरचनाओं का उल्लेख किया गया है। अनुच्छेद एक में सार्क के प्रमुख उद्देश्यों का उल्लेख है।

1. दक्षिण एशिया में परस्पर सहयोग से आम जनता के कल्याण एवं जीवनस्तर में सुधार का प्रयास।
2. इस क्षेत्र में सामूहिक आत्मनिर्भरता का प्रयास।
3. आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक सहयोग और विकास।
4. पारस्परिक विश्वास एवं समन्वय द्वारा समस्याओं का समाधान।
5. तकनीकी और वैज्ञानिक क्षेत्र में सहयोग।
6. अन्य विकासशील देशों के साथ सहयोग।
7. अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर आपसी सहयोग एवं एकजुटता।

अनुच्छेद दो में सार्क के मुख्य सिद्धान्तों का वर्णन है। इसके अन्तर्गत सहयोग, समानता, क्षेत्रीय अखंडता, परस्पर आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप इत्यादि शामिल है।

4.9 सांगठनिक ढांचा (Organisation)

- अनुच्छेद 3 में दक्षेस के राष्ट्राध्यक्षों के शिखर सम्मेलन का प्रावधान है।
- अनुच्छेद 4 में सदस्य देशों के विदेश मंत्रियों के परिषद् का प्रावधान है जिसकी वर्ष में दो बैठक आवश्यक है। अनुच्छेद 5 में एक स्थायी समिति का प्रावधान है जिसमें सदस्य देशों के विदेश सचिव शामिल होते हैं। इसकी वर्ष में एक बैठक अनिवार्य है और यह सहयोग के क्षेत्रों की पहचान और उसकी प्रगति की देखरेख का कार्य करती है।
- अनुच्छेद 6 में तकनीकी समितियों का प्रावधान है जो क्षेत्रीय सहयोग के नवीन विषयों और समन्वय का कार्य करते हैं।
- अनुच्छेद 7 में कार्यकारी समिति का प्रावधान है।
- अनुच्छेद 8 में दक्षेस सचिवालय का प्रावधान है जिसकी स्थापना 1987 में की गई और इसका मुख्यालय काठमांडू में है। एक महासचिव होता है जिसका कार्यकाल 2 वर्ष का होता है। सचिवालय के अतिरिक्त सहयोग के लिए 12 क्षेत्रीय केन्द्र विभिन्न सदस्य देशों में बनाए गए है। इसके अतिरिक्त अन्य सामाजिक, आर्थिक, और साहित्यिक सहयोग की दृष्टि से 6 अन्य उच्च स्तरीय संस्थाएँ और 17 मान्य संस्थाएँ भी अस्तित्व में है।
- अनुच्छेद 9 और 10 में दक्षेस के वित्तीय संस्थानों और अंशदानों का प्रावधान करता है।

दक्षिण एशिया मुक्त व्यापार क्षेत्र South Asian Free Trade Area (SAFTA)

दक्षिण एशियाई मुक्त व्यापार क्षेत्र की स्थापना पर सर्वप्रथम 1995 में दक्षेस मन्त्रिपरिषद् की बैठक में सहमति बनी। 1998 में दक्षेस के 10वें शिखर सम्मेलन में एक विशेषज्ञ समिति बनाने का निर्णय हुआ जिसका कार्य सॉफ्टा की पृष्ठभूमि बनाना था। अंततः 2004 में 12वें शिखर सम्मेलन में इस्लामाबाद में सॉफ्टा समझौते पर हस्ताक्षर किए गए और यह जनवरी 2006 से लागू हो गया। उस समझौते के अन्तर्गत दक्षेस के सदस्य राष्ट्रों से यह अपेक्षा थी कि वे 2009 तक अपने करों में 20 प्रतिशत तक की कमी करें परन्तु ऐसा पाकिस्तान की नीतियों के कारण संभव नहीं हो सका। दक्षेस राष्ट्रों के मध्य आपस का कुल व्यापार उन देशों की GDP के मात्र 1 प्रतिशत के आसपास ही है जबकि आसियान के राष्ट्रों के बीच यही 10 प्रतिशत तक है। यह सॉफ्टा की असफलता दक्षेस देशों के मध्य आर्थिक सहयोग की धीमी रफ्तार और परस्पर विश्वास के अभाव का ही द्योतक मान जा सकता है।

4.10 दक्षेस का मूल्याकंन और प्रासंगिकता (Appraisal & Relevance of SAARC) –

दक्षेस का घोषित उद्देश्य क्षेत्र को सामूहिक सहयोग के आधार पर सामाजिक–आर्थिक और सांस्कृतिक रूप से विकसित करना है, परन्तु दक्षेस के देशों, विशेष रूप से भारत और पाकिस्तान के बीच जारी राजनीतिक विवादों ने उक्त सहयोग की प्रक्रिया को अत्यन्त धीमा कर दिया है। 1988 के इस्लामाबाद शिखर सम्मेलन में ही भारत आर्थिक सहयोग के बाधित विकास पर चिन्ता व्यक्त कर चुका है। पाकिस्तान और कुछ हद तक बांग्लादेश बड़े पैमाने पर आर्थिक सहयोग के विरोध में थे क्योंकि उन्हें भय था कि भारत की विशाल

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अर्थव्यवस्था उनकी छोटी अर्थव्यवस्था को निगल लेगी। यद्यपि ऐसी आशंकाएँ आधारहीन ही थी। प्रारम्भिक वर्षों में केवल कृषि, संस्कृति और वैज्ञानिक क्षेत्रों में सहयोग आगे बढ़ पाया जो IPA अर्थात् एकीकृत कार्यक्रम में शामिल किए गए थे। राजनीतिक विवादों ने भी उस पारस्परिक सहयोग को बाधित किया है। कश्मीर, सीमापार आतंकवाद, चीनी हस्तक्षेप इत्यादि कई राजनीतिक विवादों ने दक्षेस को वर्तमान में लगभग अप्रासंगिक ही कर दिया है। गत कुछ वर्षों में म्यांमार के रखाईन प्रान्त से विस्थापित होकर बड़े पैमाने पर रोंहिग्या मुस्लिम समुदाय शरणार्थी के रूप में बांग्लादेश, भारत तथा अन्य दक्षिण एशियाई देशों में अवैध रूप से निवास करने लगे हैं। यह एक मानवीय त्रासदी के साथ–साथ आतंकी समस्या के माध्यम के रूप में भी उभरा है जिसकी पुष्टि भारतीय सुरक्षा ऐजेंसियों ने भी की है। इस विकट समस्या की चुनौति का भी दक्षेस को सामना करना पड़ रहा है। यद्यपि इसके बारे में कोई एकीकृत नीति नहीं बन पाई है। दक्षिण एशिया में एक प्रकार से भारत को कूटनीतिज्ञ स्तर पर विश्वव्यापी सफलताएँ मिली है। आर्थिक स्तर पर भारत की प्रशंसा हुई है और राजनीतिक स्तर पर भारतीय लोकतंत्र की सर्वत्र सराहना हुई है। इसलिए दक्षिण एशिया में इनका निर्णायक होना स्वाभाविक ही है। यदि दक्षेस में पाकिस्तान इस बात को स्वीकार नहीं करता तो संभवतः दक्षेस की प्रासंगिकता ही प्रश्नचिह्न के दायरे में होगी।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- आसियान (ASEAN) की स्थापना पाँच देशों द्वारा 8 अगस्त 1967 में हुई
- आसियान (ASEAN) का पूरा नाम Association of South East-Asian Nation दक्षिण पूर्वी एशियाई राष्ट्र
- म्यांमार, ब्रुनेई, थाईलैण्ड, इण्डोनेशिया, लाओस, मलेशिया, सिंगापुर, कम्पुचिया, वियतनाम तथा फिलिपीन्स, आसियान के सदस्य है।
- भारत पूर्ण संवाद सहयोगी देश व एशियन रीजनल फोरम का सदस्य है।
- सार्क (SAARC) की स्थापना 1985 में दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन के रूप में हुई।
- सार्क के 8 सदस्य देश है – भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल, श्रीलंका, भूटान, मालदीव एवं अफगानिस्तान।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. सार्क की स्थापना कब हुई –
   (अ) 1985 (ब) 1995
   (स) 2004 (द) 1947 ( )
2. सार्क का मुख्यालय किस शहर में है –
   (अ) ढाका (ब) कोलम्बो
   (स) काठमांडू (द) मुम्बई ( )
3. साफ्टा क्या है –
   (अ) दक्षिण एशिया मुक्त व्यापार क्षेत्र।
   (ब) दक्षिण एशिया मुक्त टेनिस एसोशियेसन।
   (स) संयुक्त राष्ट्र संघ की एक एजेन्सी।
   (द) इनमें से कोई नहीं। ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. SAARC का पूरा नाम लिखिए ?
2. SAFTA का पूरा नाम लिखिए ?
3. ASEAN का पूरा नाम लिखिए ?
4. आसियान की स्थापना कब हुई ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. आसियान के संगठन के बारे में बताइए।
2. आसियान के कार्य एवं भूमिका को समझाइए।
3. सार्क की स्थापना क्यों की गई ?
4. साफ्टा क्या है ?
5. सार्क सदस्य राष्ट्रो के नाम लिखिए।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. आसियान संगठन पर लेख लिखिए।
2. ' दक्षिण एशियाई राष्ट्रों के विचार–विमर्श का एक प्रमुख माध्यम है – सार्क ' इसके संगठनात्मक ढाँचे की पृष्ठभूमि में इस कथन की मीमांसा कीजिए।

बहुचयनात्मक प्रश्नों की उत्तरमाला

1. अ 2. स 3. अ

Downloaded from https:// www.studiestoday.com